भारतीय वाङ्मय में सीता का स्वरूप

डॉ० कृष्णदत्त अवस्थी

प्रतिमा प्रकाशन *
५११, के० एल० कीडगंज, इलाहाबाद

मुझे यह जान करके हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि डॉ० कृष्णदत्त अवस्थी अपने शोध प्रवन्ध—'भारतीय वाङ्मय में सीता का स्वरूप'—को शीघ्र ही पुस्तकाकार प्रकाशित करने जा रहे हैं।

डॉ० अवस्थी हमारे इस विश्वविद्यालय के अन्तर्गत हिन्दी विषय को लेकर प्रथम डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त करने वाले विद्वान है। उन्होंने विभिन्न दिशाओं में लगन के साथ शोध-कार्य किया है और भविष्य में उनसे सबको बहुत आशायें हैं।

मुझे विश्वास है कि उनका शोध-प्रवन्ध जव प्रकाशित हो जायगा तब सीता के पावन स्वरूप पर पुष्कल प्रकाश पड़ेगा और सभी पाठकों को उससे नयी प्रेरणा मिलेगी। अतः मैं इस अवसर पर अपनी हार्दिक मंगल कामनायें अंकित करता हूँ।

भक्त दर्शन
कुलपति,
कानपुर विश्वविद्यालय

'भारतीय वाङ्मय में सीता का स्वरूप' पर दो शब्द लिखने में मुझे प्रसन्नता हो रही है। इस शोध-प्रबन्ध के लेखक श्री डॉ० कृष्णदत्त जी अवस्थी ने अपने विषय का न केवल व्यापक अध्ययन ही किया है किन्तु उस पर तुलनात्मक दृष्टि से गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए विवेक-सम्मत निष्कर्ष भी निकाले हैं। भारत के किसी प्रदेश का वाङ्मय, वह शिष्ट संस्कृति के रूप का हो चाहे लोक-संस्कृति के रूप का, रामकथा के बिना सर्वथा अधूरा माना जाता है। रामकथा का सार है सीता चरित। आदि कवि महर्षि वाल्मीकि जी ने अपनी रामायण को 'सीतायाश्चरित महत्' कहा है। सीता चरित की ऐतिहासिकता, उसकी परम्परा, उसकी प्रतीकात्मकता, उसके कथा-भेद और पाठ-भेद, सभी कुछ अनेक दृष्टियो से अध्ययनीय है। बहुश्रुत ग्रंथकर्ता ने यह महत्वपूर्ण कार्य अपने जिम्मे लिया और इस शोध प्रबन्ध के रूप मे हिन्दी जगत् को एक उत्तम वस्तु दी है। मुझे विश्वास है कि उनका यह गवेषणापूर्ण ग्रन्थ राम-साहित्य की श्री वृद्धि करता हुआ, सुधी समाज में यथेष्ट समादृत होगा।

बलदेवप्रसाद मिश्र

सदस्य, विधान सभा, म० प्र०

भूमिका

कोई भी सिद्धि प्रयत्न सापेक्ष होती है। इस प्राप्ति के लिए साधक का सत्य संकल्प पर्याप्त सहायक होता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लेखन में मुझे इन सिद्धान्तों की सत्यता का परिपूर्ण प्रमाण प्राप्त हो सका है। इस विषय पर शोध करने की मुख्य प्रेरणा मुझे भारतीय साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान पूज्य गुरुवर पं० बलदेव उपाध्याय जी (वाराणसी) के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ भारतीय वाङ्मय में ही श्री राधा के अनुशीलन से प्राप्त हुई थी। इनके अतिरिक्त मेरे पी-एच० डी० उपाधि के प्रधान परीक्षक एवं विश्वविख्यात विद्वान महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज जी ने भी मुझे इस क्षेत्र में उच्चतम अध्ययन करने की आज्ञा दी थी। विषय की गरिमा, महिमा, एवं व्यापकता को हृदयंगम करते हुए भक्ति साहित्य के सुधी समीक्षक डॉ० मुशीराम शर्मा सोम डी० लिट्०, डॉ० भगीरथ मिश्र, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय तथा डॉ० प्रेम नारायण शुक्ल डी० लिट्० (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर) प्रभृति विद्वानों ने इस शीर्षक को (भारतीय वाङ्मय में सीता का स्वरूप) डी० लिट्० की उपाधि के लिए अत्यन्त उपयुक्त बतलाया था। अपने षोडश वर्षीय अध्यापन अनुभव एवं अनुसन्धान प्रधान प्रवृत्ति के कारण भी मुझे उक्त शीर्षक अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत हुआ। वस्तुतः समस्त भारतीय वाङ्मय मे सीता विषयक विपुल ग्रन्थराशि बिखरी हुई है, उसकी अनेकरूपता में एकता की सहज अनुभूति के भी दर्शन होते है। इस क्षेत्र में आनुसंगिकरूप से जितना भी शोध कार्य हुआ है, वह सीमित है, आंशिक हैं और व्यापक दृष्टिकोण तथा अध्ययन की अपेक्षा करता है। इधर भारतीय संस्कृति के अनुसार आलोचकों ने विगत कई वर्षो से सीता के विषय मे निरन्तर आक्षेप किये हैं, जिनके समुचित उत्तर देने के लिए भारतीय प्रतिभा का आह्वान किया गया है। इन्ही समस्त कारणों से मैं इस गम्भीर विषय के अध्ययन में प्रवृत्त हुआ हूं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में सीता के उद्भव तथा विकास की सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इसमें वैदिक साहित्य के अन्तर्गत प्रयुक्त सीता

शब्द पर व्यापक विचार किया गया है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि कृषि अधिष्ठात्री देवी के रूप में सीता शब्द का प्रयोग वैदिक काल मे होता रहा है। सीता जनक की पुत्री अथवा राम की पत्नी के रूप में कही प्रतिष्ठित नही प्रतीत होती। हो सकता है कि सीता के भूमिजा रूप की प्रसिद्धि का कारण यही वैदिक साहित्य की सीता हो, जिसका कृषि या भूमि से व्यापक सम्बन्ध माना गया है। वर्तमान उपलब्ध साहित्य में आदि कवि वाल्मीकि विरचित रामायण ही, वह सर्वप्रथम ग्रन्थ है, जिसमें सीता का सम्पूर्ण कथानक प्राप्त होता है। इसी ग्रन्थ के बालकाण्ड (५।१, २) में यह उल्लेख मिलता है कि इस रचना के पूर्व आख्यान के रूप में रामकथा प्रचलित थी। इस प्रकार मूल वाल्मीकि रामायण की रचना के पूर्व शताब्दियों से सीता लोकाख्यानों मे चर्चित सिद्ध होती है। इस प्रकार सीता का उद्भव कम से कम ५०० वर्ष ई० पू० मानना सर्वथा संगत प्रतीत होता है।

रामायण तथा महाभारत दोनों प्राचीन ग्रन्थों में सीता चरित्र का व्यापक उल्लेख मिलता है, किन्तु दोनों ग्रन्थों की सीतायें भिन्न प्रतीत होती हैं, अतः रामायण तथा महाभारत उभय ग्रन्थों में सीता का क्या स्वरूप है, इस तथ्य का विशद विवेचन करने के पश्चात् दोनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इतना तुलनात्मक, संतुलित, सूक्ष्म व्यापक तथा वैज्ञानिक अध्ययन भारतीय वाङ्मय में प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके अनन्तर पुराण साहित्य की सीता का सूक्ष्म आकलन किया गया है और साथ ही परिवर्तन की दिशाओं की ओर भी इंगित किया गया है। इसके पश्चात् संस्कृत साहित्य की व्यापक परिधि के अन्तर्गत काव्य ग्रन्थों एवं नाटिकादिकों में सीता के स्वरूप का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है, जिससे सीता विषयक मान्यताओं के विकास क्रम की रूपरेखा भी स्पष्ट होती गई है।

द्वितीय अध्याय में पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य की सीता पर गवेषणात्मक विचार प्रस्तुत किया गया है। प्रायः बौद्धो तथा जैनियों ने रामकथा से प्रभावित होकर एक पृथुल साहित्य की सृष्टि की है। इन्होंने अपने धार्मिक आग्रहों के कारण राम कथा को विकृत रूप मे प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ पाली के दशरथ जातक के अनुसार सीता दशरथ की पुत्री एवं राम की सहोदरा भगिनी थी। वनवास से प्रत्यावर्तित होकर राम ने उनके साथ विवाह किया था। इसी प्रकार जैनों में भी सीता को जैन परम्परा में दीक्षित दिखलाया है। प्रस्तुत अध्याय में इन अनेक विसंगतियो का आवरण हटा पर मूल सत्य को प्रकाशित करने की चेष्टा की गयी है। इसके अतिरिक्त प्राकृत और पाली, अपभ्रंश और प्राकृत की सीता विषयक विशेषताओं का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करके सीता के विकास का एक रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत सीता के विविध रूपों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें तुलसी पूर्व राम साहित्य की समीक्षात्मक पृष्ठभूमि देकर तुलसी एवं वाल्मीकि की सीता का तुलनात्मक रूप प्रदर्शित किया गया है, जिससे तुलसी की सीता का रूप सुस्थिर करने में विशेप सुविधा हुई है। भक्तिकाल एवं रीतिकाल की सन्धि में कविवर केशव की सीता का भी अपना विशिष्ट स्थान है। तुलसी की सीता की अपेक्षा केशव की सीता वाल्मीकि की सीता के अधिक समीप है, फिर भी दोनों में सूक्ष्म अन्तर है। इस अन्तर के कौन-कौन कारण हो सकते हैं और क्यों, इत्यादि बातों पर तर्कसंगत तुलनात्मक विवेचन इस अध्याय की प्रमुख विशेपता है। इसके अनन्तर हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में सीता के किन-किन रूपों का चित्रण हुआ है, इस बात पर विस्तृत विचार किया गया है और अन्ततः यह सिद्ध किया गया है कि इस युग की सीता आधुनिक नवचेतना है, जैसा कि लोकायतन में पन्त ने चित्रित किया है।

चतुर्थ अध्याय में भारतीय प्राच्य भापाओं की सीता का स्वरूप निर्धारित करने में मैथिली, बंगला, उड़िया तथा असमिया के सीता चरित प्रधान ग्रन्थों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमें वाल्मीकि की सीता का प्रभाव कितना है और कितना सामाजिक प्रभाव है, इन बातों को ध्यान में रखते हुए यह सिद्ध किया गया है कि प्राच्य भापाओं की सीता भारतीय मध्यम परिवार की कुलवधू हैं, वैसे प्रत्येक भापा की सीता के व्यक्तिगत विशेपतायें भी हैं।

पंचम अध्याय में पश्चिम अंचलीय भापाओं की सीता का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत मराठी एवं गुजराती साहित्य की परिधि में आने वाले ग्रन्थों में से रामकथा विपयक ग्रन्थों का सामान्य परिचय देकर मराठी एवं गुजराती साहित्य की सीता का तुलनात्मक विवेचन किया गया है और यह सिद्ध किया गया है कि उभयत्र सीता एक आध्यात्मिक शक्ति हैं, किन्तु मराठी की सीता में आनन्द रामायण की सीता का विशेप प्रभाव होने के कारण उसमें लालित्य की मात्रा अधिक है, जबकि गुजराती सीता में अध्यात्म रामायण का प्रभावाधिक्य होने के कारण गाम्भीर्य अधिक है।

पष्ठ अध्याय में भारत के दक्षिणांचलीय भापाओं की सीता पर तुलनात्मक विचार किया गया है। सर्वप्रथम तमिल की प्रमुख रामकथा ग्रन्थ कम्बन रामायण में वर्णित सीता के स्वरूप पर विस्तृत विचार किया गया है और यह भी दिखलाया गया है कि इसका मूल प्रेरणास्रोत वाल्मीकि रामायण है, किन्तु फिर भी इस ग्रन्थ की सीता की कुछ अपनी विशेपतायें हैं। उनमें शृंगारी प्रवृत्ति अधिक है और वे लक्ष्मी-स्वरूपा होती हुई भी स्वाधीनपतिका प्रतीत होती हैं। इसके पश्चात् तेलुगु साहित्य के

रामकथा ग्रन्थों का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है और तेलुगु के प्रसिद्ध ग्रन्थ रंगनाथ रामायण के आधार पर सीता के स्वरूप पर व्यापक विचार किया गया है। इसके अनुसार सीता लक्ष्मी है, किन्तु उनमें वाल्मीकि की सीता का विशेष प्रभाव प्रतीत होता है। वे कम्बन की सीता की तुलना में अधिक गम्भीर, तर्कशील एवं स्पष्ट-वादिनी प्रतीत होती है। तदनन्तर मलयालम के राम साहित्य की एक संक्षिप्त परिचयात्मक रूपरेखा देकर कविवर एपुतच्छन द्वारा विरचित अध्यात्म रामायण के आधार पर सीता का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। यह ग्रन्थ सस्कृत अध्यात्म रामायण का मलयालम अनुवाद प्रतीत होता है, अतः इसकी सीता मे अध्यात्म० की सीता की छाप प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त तेलुगु की सीता के साथ मलयालम की सीता का तुलनात्मक विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मलयालम की सीता अधिक गम्भीर, पीडित एवं अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त है। इस अध्याय के अन्त मे कन्नड़ साहित्य के अन्तर्गत सीताराम विषयक ग्रन्थों का सामान्य परिचय देने के पश्चात् तोरवै रामायण एवं जैमिनी अवश्मेध के आधार पर कन्नड़ की सीता का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। तदनन्तर कन्नड़ की सीता के साथ मलयालम की सीता का तुलनात्मक विवेचन करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि दोनों में पर्याप्त साम्य है, किन्तु गाम्भीर्य की दृष्टि से कन्नड़ की सीता श्रेष्ठतर है। कन्नड़ की पम्परामायण में जैनीय विचार-धारानुसार सीता के विकृत कथानक का उल्लेख मिलता है, अतः उस पर भी सामान्य विचार किया गया है।

सप्तम अध्याय मे लोक साहित्य के अन्तर्गत सीता विषयक मान्यताओं का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है और यह दिखलाया गया है कि ईसा से ५०० वर्ष पूर्व भी इन लोकगीतो में सीता विषयक आख्यान प्रचलित रहे है। इन लोकगीतो की मौखिक स्थिति के कारण आज उनका अस्तित्व विलुप्त हो चुका है। इसके अनन्तर प्रतिनिधि लोकगीतो के रूप में भोजपुरी तथा मैथिली के लोकगीतो को आधार मान कर सीता का स्वरूप निर्धारित किया गया है। इन लोकगीतों की यह विशेषता है कि प्रायः सभी लोक भाषाओं में सीता त्याग के करुण अंश को अधिक उभारा गया है। इन गीतों की सीता एक परित्यक्ता, निरपराध सती नारी है, जो अपने पति की निष्ठुरता के कारण अपना जीवन तक उत्सर्ग कर देती है।

अष्टम अध्याय में उपासना के क्षेत्र में सीता के स्वरूप का वितत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त उपासना शब्द के अनेक अर्थों एवं व्याख्याओं का सन्तुलित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात् यह दिखलाया गया है कि वैदिक साहित्य के रचना काल से ही शक्ति की उपासना होती आई है। श्री सूक्त, रात्रिसूक्त एव देवी सूक्त प्रभृति अश इस बात के अकाट्य प्रमाण है। इसी शक्ति के

इतिहास में लक्ष्मी के स्थान पर सीता की प्रतिष्ठा हुई है। सीतातत्व के रूप में कम से कम २०० वर्ष ई० पू० सीता की प्रतिष्ठा प्रारम्भ हो गयी थी, किन्तु उनकी विधिवत प्रतिष्ठा का श्रेय स्वामी रामानन्दाचार्य (१४ वी शतक) को दिया जाता है। इन्होंने रामानुज की लक्ष्मीनारायणोपासना के स्थान पर सीताराम की उपासना का प्रचलन किया था। अध्याय के अन्त में यह दिखलाया गया है कि विविध सम्प्रदायों के अन्तर्गत सीता की उपासना का क्या रूप रहा है और है। तदनु दास्यभक्ति के अनन्तर १७वी शताब्दी से अग्रदास ने जिस रसिक सम्प्रदाय का प्रतिष्ठापन किया है, उसके विचारों, सिद्धान्तों आदि पर भी विचार किया गया है।

ग्रन्थ के अन्त में उपसंहार के अन्तर्गत समस्त भारतीय वाङ्मय में चित्रित सीता के वैविध्य को दृष्टिपथ में रखते हुए उनके जीवन तथा व्यक्तित्व विषयक निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं, जिनके अध्ययन से प्रस्तुत शोधग्रन्थ की उपादेयता सुतरां सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार यह शोध-प्रबन्ध अधिकाधिक मौलिक बनाया गया है। मेरा यह कथन कहाँ तक सत्य है, इस बात का वास्तविक निर्णय इसके सुधीसमीक्षक एवं पटु प्रबन्ध परीक्षक ही कर सकेंगे। इस प्रबन्ध के प्रस्तुत करने में अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ा है। प्रथम समस्या तो सामग्री संचयन की थी। इसके लिए अनेक पुस्तकालयों एवं ग्रन्थागारों के द्वार खटखटाने पड़े है। कतिपय आवश्यक पुस्तकें क्रय करनी पडी हैं और कुछ विशिष्ट पुस्तकें तत्तद् स्थानों के जाकर देखनी पड़ी हैं। द्वितीय समस्या विभिन्न भाषाओ एवं लिपियो के सम्बन्ध में थी, जिसका समाधान करने के लिए कुछ भाषाओं का प्रारम्भिक छात्र भी बनना पड़ा। वैसे तो देववाणी संस्कृत की सुदृढ़ नींव ने मुझे प्रान्तीय भाषाओ के दुर्गम द्वारो तक पहुँचने में पर्याप्त सहायता प्रदान की है, किन्तु इसके अतिरिक्त आन्तरिक प्रवेश हेतु कुछ अन्य यत्न भी करने पड़े है। दक्षिण भारतीय भाषाओ में से तमिल तथा तेलुगु की समस्या का समाधान बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना द्वारा प्रकाशित कम्बन रामायण तथा रंगनाथ रामायण के हिन्दी रूपान्तरों के सहायता से हुआ है। इसी प्रकार हिन्दी मे प्रकाशित प्रान्तीय भाषाओं के इतिहास ग्रन्थो से भी यथेष्ट सहायता ली गई है।

मैं सर्व प्रथम डॉ० प्रेम नारायण शुक्ल डी० लिट्० (हिन्दी विभागाध्यक्ष, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर) तथा उनके सहयोगी डॉ० बैजनाथ गुप्त का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे अनुसन्धान प्रार्थना पत्र पर मेरी पात्रता प्रमाणित की थी। रामकथा के मर्मज्ञ विद्वान डॉ० कामिल बुल्के की अमूल्य शोध पुस्तक राम कथा से मुझे पर्याप्त सूचनायें सुलभ हो सकी हैं, एतदर्थ मैं उनका चिर ऋणी रहूँगा। उस्मानिया विश्व-विद्यालय, हैदराबाद के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्रद्धेय डॉ० राम निरंजन पांडेय की

विशिष्ट कृपा से मेरा सम्पर्क दक्षिण के अनेक विशिष्ट विद्वानों से हो सका है। डॉ० नरसिंहाचारी (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय तिरुपति), डॉ० गनेशन (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय), डॉ० विश्वनाथ अय्यर, (हिन्दी विभाग, केरल वि० वि० एर्नाकुलम), आचार्य एन० नागप्पा (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मैसूर वि० वि०) इन विशिष्ट विद्वानों ने क्रमशः तेलुगु, तमिल, मलयालम तथा कन्नड़ के क्षेत्र से सहायता देकर मुझे अनुगृहीत किया है, किन्तु सर्वाधिक श्रेय डॉ पांडेय को है, जिन्होंने समय-समय पर मेरी अनेक समस्याओं का समाधान किया है। पूर्वांचलीय रामायणों के अधिकृत विद्वान डॉ० रामनाथ त्रिपाठी डी० लिट्० (दिल्ली विश्वविद्यालय) ने अपने क्षेत्र में मुझे प्रभूत सामग्री प्रदान कर अनुगृहीत किया है, एतदर्थ लेखक उनका ऋणी है। मराठी तथा गुजराती साहित्य के सम्बन्ध में डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित (हिन्दी विभागाध्यक्ष, पूना विश्वविद्यालय) तथा डॉ० सुरेश चन्द्र त्रिवेदी (सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभनगर, गुजरात) से मुझे जो सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

इस अनुसन्धान के क्षेत्र में मेरे प्राचीन गुरुजनों का आशीर्वाद भी पर्याप्त सहायक हुआ है। श्रद्धेय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० विश्वनाथ मिश्र, डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र, डॉ० हरिराम मिश्र, डॉ० भागीरथ मिश्र, डॉ० मुंशीराम शर्मा एवं पूज्यपाद पं० बलदेव उपाध्याय प्रभृति गुरुजनों की शुभकामनायें इस अकिंचन के के साथ रही हैं, जिनसे दिशा पाकर लेखक इस विस्तृत तथा बीहड़ पथ से यथाकथंचित पार पा गया है।

अन्त में मैं अपनी पतिपरायणा पत्नी कुसुमादेवी के मनोवांछित सहयोग एवं सेवावृत्ति की सराहना किन शब्दों में करूँ, जिसने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लेखनकाल में मुझे सर्वथा स्वस्थ रखने का स्तुत्य प्रयास किया है। वागीश्वरी की सेवा में समर्पित यह सुमन माल साहित्य और संस्कृति के समतल क्षेत्र में कितना सौरभ बिखेर सकेगी, इसे भविष्य ही बतला सकेगा। मुझ अकिंचन का यत्न तो व्यापक अनुसन्धान-प्रवृत्ति का उद्बोधक मात्र है।

कृष्णदत्त अवस्थी

क्रम-सूची

अध्याय १

सीता का उद्भव और विकास

भारतीय वाङ्मय में जिस प्रकार श्री राम तथा श्री कृष्ण का व्यापक महत्व है, उसी प्रकार सीता तथा राधा का भी महत्व है। अवतारवाद की परम्परा के अनुसार रामावतार त्रेता में हुआ था और कृष्णावतार द्वापर में। इस प्रकार सीता का अस्तित्व राधा की अपेक्षा पूर्ववर्ती मानना सुसंगत है।

जहाँ तक सीता की लिखित प्राचीनता का सम्बन्ध है, उस पर विचार विमर्श आवश्यक है। सीता, शब्द वैदिक साहित्य में अनेक बार आया है, किन्तु जनक जी के साथ उनका पिता-पुत्री सम्बन्ध सिद्ध नहीं हो पाता। सर्वप्रथम ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के ४७ वें सूक्त में सीता, कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। इनका यह स्वरूप वैदिक साहित्य में विशेष प्रतिष्ठित प्रतीत होता है, जिसके विषय में हम इसी अध्याय में विस्तृत उल्लेख करेंगे। कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में (२, ३, १०) एक सीता सावित्री, का उल्लेख प्राप्त होता है, जो राज्य सोम, की परिणीता वधू बनी थीं। उक्त उल्लेखों में सीता में व्यक्तित्व का आरोप मिलता है, किन्तु वैदिक साहित्य में सीता शब्द का प्रयोग अन्य अर्थों में भी मिलता है, जिसका विश्लेषण इसी अध्याय में किया जायगा, परन्तु यह उल्लेखनीय है कि उन अर्थों में व्यक्तित्व के आरोप का प्रमाण नहीं मिलता। इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर गृह्यसूत्रों तक सीता का उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु वे जनक की पुत्री के रूप में अथवा राम की पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकीं।

वैदिक साहित्य के पश्चात् और वाल्मीकि रामायण की रचना के पूर्व लोक आख्यान के रूप में रामकथा प्रचलित थी, जिससे सीता का अभिन्न सम्बन्ध सुतरांसिद्ध है। इन आख्यानों का प्रचलनकाल पूर्णतः निश्चित करना कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि वाल्मीकि रामायण के रचनाकाल के विषय में ही विद्वानों में मतभेद है, किन्तु इतना तो प्रायः सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि वर्तमान प्रचलित वाल्मीकि रामायण का रूप द्वितीय शतक ई० के पश्चात् का नहीं है और आदि रामायण से इस रामायण तक के विकास में अनेक शताब्दियों का समय लगा होगा। इस प्रकार कम से कम

आदि रामायण का रचनाकाल तृतीय शतक ई० पू० मानना उचित है।[१] इस मान्यता को स्वीकार कर लेने पर आख्यानों का प्रचलनकाल षष्ठ शतक ई० पू० मानने मे कोई आपत्ति नही प्रतीत होती। वाल्मीक रामायण में भी इस कथा तथ्य का उल्लेख प्राप्त होता है कि "इक्ष्वाकुवंश के राजाओ के सम्बन्ध में 'रामायण' नामक महदुपाख्यान उत्पन्न हुआ सुना जाता है।"[२]

निष्कर्ष यह है कि आख्यानों के सग्रह स्वरूप सर्वप्रथम वाल्मीक रामायण में सीता जी का कथानक प्राप्त होता है। इन्ही लोकाख्यानों में सीता का उद्भव मानना भी समुचित होगा। वाल्मीक रामायण से ही परवर्ती रामसीता साहित्य अनुप्राणित हुआ है, यह बात दूसरी है कि कवियों ने अपनी विचारधारानुसार उसमें अनेक परिवर्तन कर लिये है। 'वाल्मीक रामायण' के पश्चात् महाभारत में सीता कथानक की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। मुख्यतया द्रोणपर्व एवं शान्तिपर्व में सीताचरित्र पर विशेष प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त आरण्यकपर्व में भी दो स्थानों पर रामकथा का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसका विश्लेषण अगले पृष्ठो पर किया जायेगा। इस पर्व में रामोपाख्यान ७०४ श्लोकों मे वर्णित है, यही अधिक महत्वपूर्ण है। द्वितीय उल्लेख जो नाममात्र का है, उसमें केवल ११ श्लोको मे बनवास से अयोध्या प्रत्यागमन तक का कथानक वर्णित है।

महाभारत की परम्परा में विस्तृत पुराण साहित्य की रचना हुई, जिसमे सीता जी के विशिष्ट चरित्रो का उल्लेख हुआ है। सस्कृत के अतिरिक्त पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश में भी मुख्यतया बौद्ध ,तथा जैनधर्म के दृष्टिकोण से रामसीता कथानक का विस्तृत उल्लेख किया गया है। बौद्धजातकों मे 'दशरथ जातक, अनामकं जातकम् तथा दशरथ कथानम्' इन तीन में रामकथा का विकृत रूप विद्यमान है।

दशरथ जातक में 'सीतादेवी, राम की सहोदरा भगिनी के रूप मे प्रस्तुत की गयी है और द्वादशवर्ष के वनवास के पश्चात् सीतादेवी के साथ राम के विवाह कर लेने का उल्लेख है। सम्भवतः धार्मिक द्वेष के कारण बौद्धो ने सीताकथानक की यह विकृति प्रस्तुत की है। अनामक जातक मे सांकेतिकपद्धति से सीतावनवास, अग्नि-परीक्षा आदि का उल्लेख किया गया है, किन्तु स्पष्ट रूप से सीता नाम का कही पर उल्लेख नही किया गया। दशरथ कथानम् में सीता की कथा का पूर्णतः अभाव है।

---

१. स्म० विंटरनित्स : हिस्ट्री आफ इंडियन लिट्रेचर, भाग १ पृष्ठ ५१७।

२. इक्ष्वाकूणामिदं तेषा राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्॥
वाल्मीक रामायण : बा० कां०, ५, १-३

पुराण साहित्य में हरिवंश, विष्णु, वायु, ब्रह्मांड, भागवत, कूर्म, वाराह अग्नि, लिंग, वामन, ब्रह्म, गरुड़, स्कन्ध, पद्म तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में न्यूनाधिक रूप में सीता कथानक प्राप्त है। उपपुराणों में विष्णुधर्मोत्तर, नृसिंह, वह्नि, शिव, देवीभागवत, महाभागवत, वृहद्धर्म, सौर, कालिका, आदि तथा कल्कि पुराणों में भी सीताविषयक रोचक कथानक उपलब्ध हैं, जिनमें सीता चरित्र में विकास के दर्शन होते हैं।

संस्कृत ललित साहित्य के अन्तर्गत महाकाव्यों, नाटकों एवं अन्य काव्यों में सीता जी से सम्बद्ध पर्याप्त रोचक सामग्री प्राप्त होती है। महाकवि कालिदास का रघुवंश, कविवर भट्टि का रावणवध, कुमारदास का जानकीहरण, अभिनन्द कृत रामचरित, क्षेमेन्द्र कृत रामायण मञ्जरी, मल्ल कृत उदारराघव प्रभृति प्राचीन महाकाव्यों एवं चक्रकृत जानकीपरिणय, अद्वैतकृत रामलिंगामृत तथा राघवोल्लास एवं मोहनस्वामी कृत रामरहस्य प्रभृति अर्वाचीन महाकाव्यों में सीता जी का व्यापक उल्लेख किया गया है।

संस्कृत नाटक साहित्य में भी रामकथा और सीताचरित्र का विविध प्रकार से उल्लेख मिलता है। भासकृत प्रतिमानाटक एवं अभिलेखनाटक सीतासाहित्य की प्राचीनतम कृतियाँ मानी जाती हैं। इसके पश्चात् महाकवि भवभूति की दो रचनाएँ महावीरचरित तथा उत्तररामचरित परम प्रसिद्ध हैं, इनमे सीता जी की कथा अत्यन्त रोमांचक पद्धति से प्रस्तुत की गयी है। इनके अनन्तर धीरनाग कृत कुन्दमाला, मुरारि कृत अनर्घराघव, राजशेखर कृत बालरामायण, दामोदर मिश्र सम्पादित हनुमन्नाटक (महानाटक), शक्तिभद्रकृत आश्चर्यचूड़ामणि प्रभृति नाटको में सीता के कथानक प्राप्त हैं। इनके अतिरिक्त महादेव कृत अद्भुतदर्पण, हस्तिमल्लकृत मैथिली-कल्याण, भास्करकृत उन्मत्तराघव, सुभटकृत दूतांगद, छविलालकृत कुशलवोदय, व्यास मिश्र कृत रामाभ्युदय, रामभद्र दीक्षित कृत जानकी परिणय प्रभृति नाटक भी सीता कथा से सम्बद्ध माने जाते है।

उदारराघव, छलितराम, राघवानन्द, मायापुष्पक, स्वप्नदशानन, कृत्यारावण रघुविलास, राघवाभ्युदय, प्रसन्नराघव, उल्लाघ राघव प्रभृति अनेक नाटक अप्राप्य है, जिनमें सीताकथानक का अस्तित्व था। संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों एवं नाटकों के अतिरिक्त श्लेपकाव्य, विलोमकाव्य, चित्रकाव्य, खण्डकाव्य, सन्देशकाव्य, चम्पूकाव्य तथा कथा साहित्य प्रभृति साहित्यिक विधाओं में भी सीता कथा से सम्बद्ध विपुल सामग्री प्राप्त है, जिसका यथास्थान विश्लेषण किया जायेगा।

संस्कृत ललित साहित्य के अतिरिक्त संस्कृत धार्मिक साहित्य में सीता जी के विकसित स्वरूप का अत्यन्त रोचक तथा प्रभावपूर्ण वर्णन मिलता है। योगवासिष्ठ,

अध्यात्मरामायण, अद्भुतरामायण, तत्वसंग्रहरामायण, कालनिर्णयरामायण, भुशुण्डी रामायण, महारामायण, मन्त्ररामायण वेदान्तरामायण, जैमिनिभारत, हनुमद्विजय, सहस्रमुखरावणचरित्र. वासिष्ठोत्तररामायण, शतमुखरावणचरित्र, सत्योपाख्यान, धर्मखण्ड, हनुमत्संहिता, वृहत्कोशलखण्ड प्रभृति ग्रन्थों में सीता के अनेक चरित्र वर्णित है।

जैनसाहित्य मुख्यतया प्राकृत तथा अपभ्रंश में प्राप्त है, वैसे संस्कृत ग्रन्थों की भी न्यूनता नही है। इनमें सीता विपयक पर्याप्त सामग्री प्राप्त है, किन्तु इन्होंने मतवादी होकर कथानक में स्वैच्छिक परिवर्तन कर दिये है, जिनसे मूलकथा विकृत हो गयी है। जैनियों मे रामकथा दो रूपों मे प्रचलित है: प्रथम विमलसूरि की परम्परा, द्वितीय गुणभद्राचार्य की परम्परा। इसमें प्रथम परम्परा विशेष प्रचलित है। प्राकृत मे विमलसूरि ने पउम चरियं नामक ग्रन्थ की रचना की थीं, जिसका संस्कृतानुवाद रविषेणाचार्य ने ६६० ई० में किया था। इसमें सीता जी राजा जनक की पुत्री तथा भामण्डल की सहोदरा भगिनी के रूप मे वर्णित है। गुणभद्राचार्य की परम्परा मे सीता जी मन्दोदरी की पुत्री मानी गयी है। उत्तरपुराण मे गुणभद्र ने ने इसका उल्लेख किया है। प्राकृत में शीलाचार्य के रामलक्खणचरियम्, भद्रेश्वरकृत रामायणम् एवं भुवनतुंगसूरिकृत सीयाचरिय का विशेप महत्व है, इनमे सीता विपयक अनेक कथानक प्राप्त होते है। अपभ्रंश रचनाओ मे अभी तक केवल तीन ग्रन्थ मिल सके है, जिनमें सीता जी के जीवन से सम्बद्ध सामग्री प्राप्त है: (१) स्वयंभूकृत पउमचरिउ (२) पुष्पदन्तकृत पउमचरिउ (३) रइधूकृत पद्मपुराण (वलहद्दचरिउ)। उक्त ग्रन्थों में जैनधर्मानुसार अनेक परिवर्तन किये गये है, जिनका उल्लेख शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे किया जायगा।

इस प्रकार सीता सम्वन्धी साहित्य संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रश के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय भाषाओ मे भी पृथुलमात्रा मे विद्यमान है। द्रविढभापाओं में तमिल, तिलगू, मलयालम तथा कन्नड़ सभी में सीताकथानक वर्णित है और इनकी विस्तृत ग्रन्थावली है। तमिलभापा की कम्बनरामायण (१२वीशतक) तिलगूभाषा की द्विपदरामायण (१३वी शतक) अथवा रंगनाथ रामायण, मलयालम की रामचरितम् (१४वी शतक) तथा कन्नडभाषा की तोरवै रामायण विशेष उल्लेखनीय है।

आर्य भाषाओं में सीताविपयक प्रचुरसाहित्य की रचना हुई है। सिंहली, काश्मीरी, असमीया, वंगाली, उड़िया, हिन्दी, मराठी, गुजराती तथा उर्दू-फारसी भाषाओं में सीताचरित्र के वैविध्य के दर्शन होते है। दिवाकर प्रकाश भट्ट कृत कश्मीरीरामायण, माधवकंदलीकृत असमिया रामायण, कृत्तिवासकृत कृतिवासरामायण (वंगला), वलरामदास कृत जगमोहनरामायण (उड़िया) तुलसीदासकृत रामचरितमानस

(हिन्दी), एकनाथकृत भावार्थरामायण (मराठी), आसाईतकृत रामलीलानापदो (गुजराती) तथा जगन्नाथकृत रामायण खुश्तर (उर्दू) प्रभृति आधुनिक आर्यभाषा के गौरव ग्रन्थों में सीताकथा का व्यापक उल्लेख पाया जाता है। इन आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं तथा द्रविड़ भाषाओं में आज भी सीताराम विषयक स्फुटित रचनाएँ हो रही हैं।

जिस प्रकार सुशिक्षित समाज में सीताराम का कथानक प्राचीनकाल से अद्यावधि मेधावी मनीषियों की रचना का विषय रहा है और अब भी है, इसी प्रकार उक्त चरित्र लोक साहित्य का भी अतीव प्रभावोत्पादक वर्ण्य विषय रहा है और भविष्य में भी रहेगा। अन्तर इतना है कि इस साहित्य के प्रणेता मुख्यतया ग्रामीण अंचलों में बसते हैं और अपनी अनुभूति को अपनी बोलचाल की भाषा में अत्यन्त सरल तथा स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्ति देते हैं। यह लोक साहित्य पूर्वोक्त साहित्य से किसी भी प्रकार अर्वाचीन नहीं कहा जा सकता। वाल्मीकि रामायण की रचना के पूर्व जिन लोकाख्यानों की चर्चा की गयी है, उसके आधार पर यह सिद्ध होता है कि सीताविषयक लोकगीत भी कम से कम ६०० वर्ष ई० पू० प्रचलित थे। खेद है कि इन लोकगीतों के प्रणेताओं ने उन्हें मौखिक ही रहने दिया, कभी लिपिबद्ध करने का साहस या प्रयास नहीं किया, अन्यथा यह साहित्य स्वतन्त्र रूप से अध्ययन का विषय बनता। इस उपेक्षा का परिणाम यह हुआ कि असंख्य लोकगीतों की जीवन लीला समाप्त हो गयी, जिनमें भारतीय संस्कृति का यथार्थ इतिहास अंकित रहा होगा। इधर इस शताब्दी के विगत कुछ वर्षों से ये लोकगीत संग्रहीत किये जाने लगे हैं, यह एक शुभ लक्षण है। इन लोकगीतों में सीता के करुण-जीवन की ऐसी दिव्य झाँकी देखने को मिलती है, जो न तो समस्त संस्कृत वाङ्मय में प्राप्त होता है और न तो अद्यावधि किसी भाषा साहित्य में।

(क) वैदिक साहित्य में सीता का मूल संकेत और उसकी आलोचना

वैदिक साहित्य से हमारा तात्पर्य 'संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्' ग्रन्थों से है, किन्तु सूत्र साहित्य वैदिक साहित्य के साथ इतना अनुस्यूत है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, अतः प्रस्तुतविवेचन में हम संहिता ग्रन्थों से लेकर सूत्र ग्रन्थों तक की सामग्री का आलोडन एवं प्रत्यालोचन करेंगे।

वैदिक साहित्य में ऋग्वेद का मूर्धन्य स्थान है। इसमें सीता शब्द का प्रयोग निम्नलिखित मन्त्र में 'मार्ग' अर्थ में उपलब्ध होता है :

मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः॥ १।१४०४

सायण के अनुसार इसका अर्थ है : इनके (अग्नि के) घोड़े स्वच्छन्दगति के अभिलाषी, कृष्णपथ वाले, वेगशील, भिन्नवर्ण वाले तथा तीव्रगामी है और वायु की प्रेरणा से युक्त होते है ।

उक्त मन्त्र मे 'कृष्ण सीतासः', शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसे लोक में संस्कृत भाषा में (कृष्ण सीता) कह सकते है, क्योकि 'आज्ज से' सुक्र (पाणिनिसूत्र) की सहायता से प्रथमा विभक्ति के बहुवचनीय प्रत्यय, 'जस्' के स्थान पर वेद में 'असुक् = अस्' प्रत्यय हो जाता है, जिससे देवाः = देवासः, ब्राह्मणाः = ब्राह्मणासः, इन शब्दो की भाँति सीताः = सीतासः शब्द बना हुआ है । उपर्युक्त कृष्णसीतासः (कृष्ण सीताः) में बहुव्रीहि समास है, जिसका विग्रह है : कृष्णाः सीतासः (सीताः) यस्या सः अर्थात् काली है सीताएँ जिसकी, उस अग्नि की लपटों से जो धूम निकलता है उससे काला मार्ग-सा बन जाता है, अतः अग्नि को कृष्ण सीतासः कहना उचित है । उक्त विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि उक्त मन्त्र मे सीता शब्द का मार्ग या पथ अर्थ लिया गया है ।

इस उल्लेख के पश्चात् ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ५७वे सूक्त में छठवे तथा सातवें मन्त्र मे कृषि की अधिष्ठात्री देवी (हल का अग्रभाग 'कुसिया' = सिया = सीता) के रूप में सीता की प्रार्थना की गयी है । इस सूक्त के समस्त मन्त्रों की सख्या ८ है, जिसमें प्रथम तीन मन्त्रो मे क्षेत्रपति की स्तुति की गयी है, चतुर्थ मन्त्र मे शुभ देवता की स्तुति की गयी है जो हलसंचालनादि क्रिया मे सौविध्यकारक माना गया है । पचम मन्त्र में शुनासीरो नामक दो देवो की वन्दना की गयी है । शौनक की व्याख्यानुसार ये क्रमशः इन्द्र तथा वायु है । यही व्याख्या संगत प्रतीत होती है, क्योकि परवर्ती साहित्य तथा भक्ति साहित्य मे भी शुनासीर का अर्थ इन्द्र किया गया है । इसमे एक तर्क यह भी है कि पाणिनि ने 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' (पा० सू०) मे श्वन् तथा मघवत् (इन्द्र) का एक साथ ही प्रयोग किया है । आचार्य तुलसी ने तो स्पष्टतः साम्य मिलाया है :

सरिस स्वान मघवान युवानू ।—रामचरित मानस

इस प्रकार उक्त मन्त्र में शुन से इन्द्र का ही तात्पर्य संगत प्रतीत होता है । इसी प्रकार सीर का सम्बन्ध शील से जोडकर गुण के आधार पर वायु अर्थ भी संगत प्रतीत होता है । यास्क का मत है कि इनका अर्थ वायु तथा आदित्य है, जिसकी सगति में मुझे सन्देह लगता है । एक टीकाकार ने शुन का तात्पर्य हलचालक पशु और सीर का तात्पर्य कृषक से लिया है । इस अर्थ मे किसी प्रकार का प्रमाण या तर्क नही प्रस्तुत किया गया ।

षष्ठ तथा सप्तम मन्त्रों मे सीता की वन्दना की गयी है, जिसका विश्लेषण

करना शेप है। अष्टममन्त्र के देवता भी शुनासीर ही है। सीता की वन्दना के उक्त दोनों मन्त्र इस प्रकार हैं :

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगासससि यथा न. सुफलाससि। ऋक् ४।५७।६।।
इन्द्र : सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सानः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां सुमाम् ।। ऋक्० ४।५७।७।।

अर्थात् हे सौभाग्यवती सीते ! हम तुम्हारी वन्दना करते हैं। तुम हमारी ओर अभिमुख हो, जिससे तुम हमारे लिये उत्तम ऐश्वर्य तथा उत्तम फल प्रदान करने वाली हो (वनो) ।।६।। इन्द्र सीता को ग्रहण करे, पूषा उसका संचालन करे, वह जल से पूर्ण (सीता) प्रतिवर्ष हमारे लिए समृद्धिदायिनी वने।

मन्त्र रामायण में उक्त दोनों मन्त्रों में रामपत्नी सीता की ही व्याख्या सिद्ध की गयी है। इसमें इन्द्र = राम, पूपा = जनक (पुष्णाति, इति पूपा) माने गये है, परन्तु यह अर्थ चिंत्य है।[1] इसका कारण यह है कि पूरे सूक्त मे कृपि से सम्वद्ध देवताओं से ही प्रार्थना की गयी है अतः उक्त मन्त्रों में सीता को कृपि की अधिष्ठात्री देवी ही मानना संगत होगा।

यजुर्वेदीय संहिताओ में 'सीरा युजन्ति' मन्त्र के अंशस्वरूप सीता का उल्लेख आया है, किन्तु वहाँ कृपि का प्रसंग नही है, अपितु याज्ञिक प्रसंग है। वेदी के क्षेत्र को संस्कृत करने के लिए लांगल द्वारा जो रेखाएँ खीची जाती थी, वस्तुतः वही सीतायें कहलाती थी।[2]

---

१. हे सुभगे ! = हे सीते ! (स्यति सर्वेषां रक्षसामन्त करोतीति सीता, कर्तरिक्तः) लांगल पद्धतौतु मुख्यस्यावयवार्थस्याभावात् सीतोत्पत्तिस्थानत्वेन गौणं, हे सीते ! त्वां वन्दामहे, यथा नोऽस्माकं सुभगा = ऐश्वर्यदानेन सुफला प्रतिपक्षनाशनेन असमि = दीप्यसे तथावर्चाची = अनुकूला भव ।। (मन्त्र रामायण पृ० ६४) इन्द्रो = रामः सीतां निगृह्णातु = वीर्यशुल्का तां स्वायत्तां करोतु। पुष्णातीति पूपा, जनकश्च तां अनु = पश्चात् रामाय यच्छतु ददातु। सा सीता नोऽस्माक दुहां = द्रोग्ध्रीणा मध्ये उत्तरामुत्तरां समाम् = उत्तरोत्तरवर्षेपु 'अत्यन्त सयोगे द्वितीया' पयस्वनी वह्वन्न प्रदा भूयादिति शेपः। (वही, पृ० ६५) सम्वत् १९६७ वेंकटेश्वर प्रेस, वम्वई।

२. मैत्रायणि संहिता : २,७१२। तैत्तिरीय सं० : ४, २, ५, ५-६, काठक सं० : १६, १२ ।।

अथर्ववेद मे (३,१७) 'सारा युञ्जन्ति' के प्रसंग में तीन वार सीता शब्द का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ५७वे सूक्त के छठवे तथा सातवे मन्त्र इस अथर्ववेद के (३, १७) मन्त्र मे भी उल्लिखित है, केवल घृतेन सीता मधुना० (६) मन्त्र नवीन है। सुविधा के लिए पूर्ण सूक्त और उसके अर्थ का उपादान आवश्यक है :

सीरा युञ्जन्ति कवेयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुश्नयौ ॥१॥

हलों को जोतने वाले जानकार व्यक्ति देवात्मक हवि रूप अन्न की प्राप्ति के निमित्त वृषभों के कन्धो पर जुओ को रखते है ॥१॥

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ व पतेइ वीजम् ।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत सृण्यः पक्वमा यवन् ॥२॥

हे कृषको ! हलो को जुओं में जोड़कर जुओं को वृषभ स्कन्ध पर स्थापित करो। इस जुते हुए खेत में बीज (यवादि) वो दो। हमारे यहाँ शीघ्र ही अन्न उत्पन्न हों और पक कर हँसिये से स्पर्श करने योग्य हों ॥२॥

लाङ्गल पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु ।
उदिदवपतु गामर्ति प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरी च प्रफर्व्यम् ॥३॥

कृषि योग्य खेत को लोहे के शल्य वाला हल सुखद होता है। यह धान्यादि का उत्पादक होने से सोमयाग का कर्ता है। इसका अवयव भूमि में रहता हुआ गतिशील होता है। यह हल गवादि पशुओ की समृद्धि का कारण बने ॥३॥

इन्द्रः सीता निगृह्णातु ता पूषाभिरक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥४॥

खेत की रेखा (सीता) को इन्द्र ग्रहण करे, पूषा उसकी रक्षा करे। वह जलपूर्ण सीता हमें प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर समृद्धि प्रदान करे ॥४॥

शुनं सुफला वितुदन्तु भूमि शुनं कीनाशा अनुयन्तु वाहान् ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥५॥

सुन्दर शल्य भूमि खोदते हुए बैलों के पीछे चले। हे सूर्य तथा वायु हमारी हवियो से तृप्त हुए तुम अन्नादि को सुन्दर फलमय वनाओ ॥५॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलम् ।
शुनं वरत्रा वध्यंतां शुनमष्ट्रामुदिगय ॥६॥

कृषक सुखपूर्वक खेत जोते, वृषभ उन्हें सुख देने वाले हों। हल तथा रस्सियाँ अनुकूल हो, हे शुनः देव ! तुम अंकुश (कुसिया या चाबुक) में भी सुख भर दो ॥६॥

शुनासीरेह स्मम मे जुषेथाम् ।
यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ।।७।।

हे सूर्य तथा वायु ! मेरी हवि को ग्रहण करो । आकशस्थ जल के देवता, इस जुती हुई भूमि को वृष्टिजल से सीचें ।।७।।

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ।।८।।

धृत तथा मधु से सिक्त सीता विश्वेदेवों एवं मरुतों द्वारा अनुमोदित हो । हे सीते ! ओजवती तथा घृतसिंचित तू जल सहित हमारे पास विद्यमान रह ।।८।।

उपर्युक्त सूक्त के विश्लेपण से यही सिद्ध होता है कि यहाँ पर लांगलपद्धति के अर्थ में सीता शव्द का प्रयोग हुआ है । इसी को बुन्देलखण्डी भाषा में 'कुड' कहते है । इस स्थल में सीता में शक्ति का आरोप हुआ है, अतः हम उसे कृपि की अधिप्ठात्री देवी के रूप मे भी मान्यता देते हैं । सम्भवतः भूमिजा सीता का वीज इसी कृपि अधिप्ठात्री देवी में ही मानना उचित होगा । सीता के पिता जनक को सीरध्वज कहते थे । सीर शव्द उसी सूक्त की ओर इंगित करता हुआ प्रतीत होता है । वैदिक साहित्य में व्यापक रूप से उक्त सीता का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है :

तैत्तिरीय आरण्यक के पितृमेध प्रकरण में यह उल्लेख मिलता है कि श्मशान पर हल से अनेक रेखाएँ (सीतायें) खीची जाती थी और सीरा युजन्ति० मन्त्रों का पाठ भी हुआ करता था । इसी प्रकार गृह्यसूत्रों में भी सीता शव्द इसी अर्थ में अनेक वार प्रयुक्त हुआ है ।

वोधायनगृह सूत्र (१, १८) तथा आग्निवेश्यगृह्य सूत्र (३, ८) में भी श्मशान में सीताएँ खीचने का उल्लेख किया गया है जैसा कि पितृमेध प्रकरण में तैत्तिरीय ब्रा० मे उल्लिखित है । कण्ठकगृह्य सूत्र (७१,१-६) में नव प्रसूता गौवों के क्षेमार्थ सीरायुजन्ति मन्त्रपाठसहित हल से दो रेखाओ के खीचने का उल्लेख है । पुष्टि हेतु उन रेखाओं को घृताभिपिक्त करने का भी विधान है ।

पारस्करगृह्यसूत्र (२,१७,४) एव गोभिल गृ० सू० (४,४,३०) मे सीतायज्ञ का उल्लेख पाया जाता है । यहाँ उसे इन्द्रपत्नी के रूप मे सम्वोधित किया गया है । ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र में इन्द्र को उर्वरापति कहा गया है, अतः उर्वराभूमि होने के कारण सीता (लाँगलपद्धति) भी इन्द्रपत्नी कही जा सकती है :

आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिन । ऋक्० ।८।२१।३ : पृष्ठ ११८२

हे इन्द्र ! तुम सोम के अधिपति हो, यहाँ आकर सोमपान करो। तुम गौओ के पालक, उर्वर भूमि के स्वामी तथा अश्वो के भी स्वामी हो।

कौशिक सूत्र मे सीता का विशिष्ट उल्लेख हुआ है। रामायण मे जहाँ सीता मे लक्ष्मी का आरोप किया गया है (वाल्मीकि० युद्धका० ११७।२७) सम्भवतः वह स्थल इसी सूत्र से प्रभावित है, क्योकि विद्वान उसे प्रक्षिप्त मानने के कारण परवर्ती सिद्ध करते है। लक्ष्मी के अनेक विशेषण जो कि श्रीसूक्त में प्राप्त है, वे इस कौशिक सूत्र की सीता के लिए भी प्रयुक्त हुए है। यथा :

कुमुद्वती पुष्करिणी सीता सर्वांग शोभनी।
कृपिः सहस्रप्रकारा प्रत्यष्टा श्रीरियं मयि ॥ कौशिक सू० अ० १३-२

हे कुमुदो तथा कमिलिनियो से सुशोभित सर्वांगविभूपिते सीते ! यह सहस्रों प्रकार की कृषि की श्री (सम्पत्ति) मेरे साथ सदैव बनी रहे।

उक्त उद्धरण में पुष्करिणी तथा कुमुद्वती शब्द मननीय है। श्री सूक्त में लक्ष्मी को पद्मिनी नाम दिया गया है। यथा :

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्ती श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनी मां शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मी मे नश्यता त्वा वृर्णे ॥
श्री सूक्त : मन्त्र, ५।

इसके अतिरिक्त कौशिक सूत्र के उपर्युक्त उद्धरण में भी सीता से श्री प्राप्ति की कामना की गयी है, अतः यहाँ श्री देवी तथा सीता देवी का एकीकरण मानना संगत है। श्री सूक्त मे लक्ष्मी के लिए हिरण्मयी विशेषण भी दिया गया है[1] और यही विशेषण कौशिक सूत्र की सीता के लिए भी आया है :

पर्जन्य पत्नि हरिण्यभिजितास्यभि नो वेद।
कालनेत्रे हविषा नो जुपस्व तृप्ति नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ कौ० सू० १३,४

हे विजयिनी हिरश्यमयी पर्जन्यपत्नी। हमें जानो। हे कालनेत्रवाली ! हवि द्वारा हमसे प्रसन्न हो जाओ और द्विपदो (सन्तानों, परिजनों) तथा चौपायों से हमे तृप्त करो। श्री सूक्त के इस अंश—'यस्यां हिरण्यंविन्देयं गामश्व पुरुषानहम्' में भी द्विपद तथा चतुष्पद प्रदात्री लक्ष्मी से प्रार्थना की गयी हैं। उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है

१. हिरण्यवर्णा हरिणी सुवर्णरजतस्रजाम्। चन्द्रा हिरण्यमयी लक्ष्मी जातवेदो म आवह ॥श्री सूक्त–१

कि ऋग्वेद के श्री सूक्त की लक्ष्मी का पूर्णप्रभाव कौशिक सूक्त की उक्त सीता पर पड़ा है। अनेक विशेषण तथा पद श्री सूक्त से लेकर इस सूत्र की रचना की गयी है, परन्तु कौशिक सूत्र की सीता मे लांगलपद्धति गौण तथा शक्तितत्व मुख्य प्रतीत होता है। रामायण की सीता मे लक्ष्मीत्व के आरोप का यह मुख्य एवं मूल रहस्य प्रतीत होता है।

वैदिक साहित्य में एक सीतासावित्री का भी उल्लेख पाया जाता है। यह राजा सोम को विवाही हुई थी। प्रजापति की दो पुत्रियाँ सीता तथा श्रद्धा नाम से विख्यात थी। राजा सोम श्रद्धा से प्रेम करते थे। सीता ने प्रजापति से उक्त रहस्य बतलाया और सोम को वशीकृत करने के लिए एक अंगराग का प्रयोग किया। फलतः राजा सोम का विवाह सीता से हो गया।[1] इस प्रसग के अतिरिक्त अन्यत्र यह कथानक इस रूप में नही मिलता।

आलोचना

वैदिक साहित्य में सीताविषयक सामग्री का इतना विवेचन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि सीता शब्द वैदिकसाहित्य में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। उसका मुख्य सम्बन्ध कृषि से मिलता है। कही पर उसमें व्यक्तित्व का आरोप मिलता है और कही पर नही। सीता शब्द कही पर हल के फाल (अग्रभाग) के लिए, कही लांगलपद्धति के लिए प्रयुक्त हुआ है। सूर्य की पुत्री सूर्या भी सीतासावित्री के रूप मे स्वीकृत हुई है, किन्तु इसका विस्तार नही हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता और सीतासावित्री इन दोनो का ऐक्य हो गया होगा। तैत्तिरीय ब्राह्मण का रचनाकाल ही इस ऐक्य का समय हो सकता है, क्योंकि परवर्ती साहित्य मे सीतासावित्री का उल्लेख नही मिलता। तैत्तिरीय ब्राह्मण का रचनाकाल तो विवादास्पद है, किन्तु इतना तो निश्चित है कि संहिता ग्रन्थों के निर्माण पश्चात् ही व्याख्या हेतु ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई होगी। यह काल १००० वर्ष ई० पू० से कम किसी भी दशा में स्वीकार नही किया जा सकता, क्योकि यास्क का निरुक्त ८०० ई० पू० निर्मित हो चुका था और ब्राह्मण ग्रन्थ इससे बहुत पूर्व निर्मित हो चुके होगे।

यद्यपि रामकथा के प्रमुख पात्र 'राम, जनक' आदि का वैदिक साहित्य में अनेक बार उल्लेख मिलता है, किन्तु कही पर ऐसा उल्लेख नही मिलता, जिसके आधार पर जनक और सीता का पिता पुत्री सम्बन्ध माना जा सके। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह

---

१. तैत्तिरीय ब्राह्मण (२,३,१०)

कहना उचित प्रतीत होता है कि सीता का मूलसकेत तो वैदिक साहित्य मे विद्यमान है, किन्तु रामपत्नी सीता अथवा जनक पुत्री सीता के रूप में उनका उल्लेख नही मिलता। केवल सीता नाम वैदिक साहित्य मे प्रचलित रहा है और जब कभी सीता जी की उत्पत्ति हुई होगी, तब उन्हें उस नाम से विभूषित कर दिया गया होगा।

(ख) रामायण तथा महाभारत में सीता तत्व का तुलनात्मक अध्ययन

रामायण तथा महाभारत हमारी संस्कृति के गौरव ग्रन्थ है। इनका आश्रय लेकर भारत में ही नही अपितु विदेशो मे भी विपुल साहित्य की सृष्टि हुई है। दिनकर जी ने इनकी महत्ता पर इस प्रकार विचार प्रकट किया है :[१]

"भारतीय एकता की सेवा भी सबसे अधिक इन्हीं दो महाकाव्यों ने की। लंका, पम्पापुर और अयोध्या, देश के इन तीन भूभागों की कथाओ को एक ही राष्ट्रीय महाकाव्य मे गूँथकर वाल्मीक ने भारत की सास्कृतिक एकता ही नही, भौगोलिक एकता को भी अक्षय तत्व बना दिया है। उसी प्रकार महाभारत ने भी देश के विभिन्न भागो मे फैली हुई विचारधाराओ एवं संस्कृतियों को एक स्थान पर लाकर इस प्रकार गुम्फित कर दिया कि महाभारत सारे देश की जनता का कंठहार हो गया। कोई आश्चर्य नही कि कालिदास से लेकर आज तक के सभी भारतीय भाषाओं के कवि रामायण और महाभारत की कथाओ पर काव्य रचना करते रहे है। सारे देश का साहित्य आज भी रामायण और महाभारत का क्षीर पानकर बलिष्ठ हो रहा है, जिससे आप से आप यह सत्य ध्वनित हो उठता है कि भारत की विचारधारा एक है, भारत की मानसिकता एक है एवं भारत की एक ही सस्कृति है, जिसकी सेवा विभिन्न भाषाओं में की जा रही है।"

रामायण तथा महाभारत इन दोनों रचनाओं मे सीता वृत्तान्त प्राप्त है। वैसे तो इन दोनों ग्रन्थो में कौन पूर्व है और कौन पर है, यह प्रश्न विद्वानों की मीमांसा का प्रिय विषय रहा है। किन्तु वर्तमान समय मे रामायण को महाभारत का पूर्ववर्ती ग्रन्थ मानने की धारणा पुष्ट हो गयी है।

यहाँ पर इन दोनो ग्रन्थों के रचना काल पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण के मूल रूप से लेकर वर्तमान रामायण के रचनाकाल की एक लम्बी अवधि मानी जाती है, उसी प्रकार महाभारत के मूलरूप से लेकर वर्तमान रूप तक की एक लम्बी अवधि मानी जाती है। विभिन्न विद्वानों के विचार इस प्रकार है :

---

१ संस्कृति के चार अध्याय, पृ० १६१-६२ : दिनकर

१. प्रो० याकोवी के अनुसार रामायण का रचनाकाल पष्ठ एवं अष्टम शतक ई० पू० के मध्य का है।[१]

२. प्रो० कीथ के अनुसार रामायण की मूल रचनाचतुर्थ शतक ई० पू० हुई होगी।[२]

३. एम० विंटरनित्स प्रचलित रामायण का रचनाकाल ईसा की द्वितीय शताब्दी मानते हैं।[३]

४. सी० वी० वैद्य के अनुसार रामायण का रचनाकाल द्वितीय शतक ई० पू० तथा ईसा की द्वितीय शताब्दी के मध्य मानना संगत है।[४]

५. मैकडोनल के अनुसार बौद्ध धर्म के पूर्व अर्थात् ६०० ई० पू० रामायण का उत्पत्ति काल मानना चाहिए।[५]

इसी प्रकार महाभारत के रचनाकाल पर भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है यथा :

१. सी० वी० वैद्य के अनुसार मूल महाभारत का रचनाकाल ३१०० ई० पू० और वर्तमान रूप २००० ई० पू० का है।[६]

२. पं० बलदेव उपाध्याय जी के अनुसार मूल महाभारत की रचना ६०० ई० पू० अवश्य हुई होगी।[७]

३. विंटरनित्स के अनुसार ई० पू० चतुर्थ शतक से ईसा के चतुर्थ शतक के मध्य महाभारत का रचनाकाल हो सकता है।[८]

४. हापकिंस के अनुसार महाभारत का वर्तमान रूप ४०० ई० तक स्थिर हो चुका था।[९]

---

१. एच० याकोवी—डस रामायण पृ० १०१।
२. ए० वी० कीथ—जर्नल रायल एसियाटिक सोसाइटी सन् १९१५ पृ० ३२०।
३. एच० याकोवी—डस रामायण पृ० १००।
४. सी० वी० वैद्य—दि रिडिल आफ रामायण पृ० २०।
५. ए० ए० मेकडोनल—संस्कृत लिट्रेचर (लन्दन १९२८) पृ० ३०७
६. संस्कृत वाङ्मयचा त्रोटक इतिहास पृ० १०६
७. संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ पृ० ३४
८. संस्कृतसाहित्य की प्रवृत्तियाँ पृ० ३४ (डॉ० जयकिशन प्रसाद खन्डेलवाल) प्र० संस्करण १९६९
९. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग १ पृ० २५८ (हापकिंस)

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि रामायण का वर्तमान रूप २०० ई० तक स्थिर हो चुका था और महाभारत का अन्तिम रूप ४०० ई० तक स्थिर हो सका था।

उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों की आन्तरिक समीक्षा करने पर भी रामायण की प्राचीनता सिद्ध होती है, क्योंकि रामायण में कही पर महाभारत के वीरों का उल्लेख नही मिलता जब कि महाभारत मे राम कथा के अनेक अंश मिलते है। अधिकांश विद्वानों की यह धारणा है कि रामायण का रचनाकाल भारत तथा महाभारत के बीच मानना चाहिए।

रामायण की तुलना मे महाभारत मे राम कथा संक्षिप्त रूप मे वर्णित है, किन्तु उसका मूलस्रोत रामायण ही है। उक्त दोनों ग्रन्थों में सीता विषयक सामग्री प्राप्त है। दोनों की तुलनात्मक समीक्षा करने के पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों की सीताकथा के सूत्र स्वतन्त्र रूप से विश्लिष्ट कर लिए जाएँ, तत्पश्चात् दोनो की तुलना करना समीचीन होगा। यहाँ सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण में सीता के स्वरूप का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

वाल्मीकि रामायण मे सीता

वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड, ६६वे सर्ग में सर्वप्रथम जनक जी विश्वामित्र जी से सीता जी की उत्पत्ति की कहानी भूमि से बतलाते है।

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता। वाल्मीकि। अ० ६६।१३-१४
भूतलादुत्थिता सातु व्यवर्धता ममात्मजा।
वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा।

अर्थात् खेत जोतते समय यह कन्या हल से निकली है और भूतल से प्रकट हुई है। सीता नाम से विख्यात है। इस प्रकार यह अयोनिजा कन्या मेरी पुत्री हुई और मेरे यहाँ समृद्ध हुई। पराक्रम ही इसके वरण का शुल्क है।

सीता जन्म का ऐसा ही कथानक वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड। सर्ग ११८ श्लोक २७, ३१) में आया है। सीता जी अत्रि आश्रम में अनसूया जी से अपनी उत्पत्ति बतलाती है :

मिथिलाधिपति र्वीरो जनको नाम धर्मवित्।
क्षत्र कर्मण्यभिरतो न्यायतः शास्ति मेदिनीम् ॥२७॥
तथ्य लांगलहस्तस्य कृषतः क्षेत्रमण्डलम्।
अहं किलोत्थित भिवा जगती नृपतेः सुता ॥२८॥

अर्थात् वीर तथा धार्मिक मैथिलेश जनक जी क्षत्रिय कर्मरत एवं न्यायत: पृथ्वी के शासक थे। वे एक वार हल से खेत जोत रहे थे, तभी मै पृथ्वी फोड़ कर उत्पन्न हुई और उनकी पुत्री हुई।

हमारे विचार से सीता के इस उत्पत्ति का सम्वन्ध वैदिकसाहित्य में वर्णित कृपि अधिष्ठात्री देवी सीता से हो सकता है। नाम तो पूर्व भी प्रचलित हो सकता है। कालान्तर में उसी नाम के अनेक व्यक्ति होते भी है। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के उक्त दो स्थलों में ही सीता के जन्म का उल्लेख मिलता है। वालकाण्ड के अन्त में कवि ने राम तथा सीता की उपमा विष्णु तथा श्री से दी है।[1] इससे सीता जी की महिमा के अतिरिक्त उनका लक्ष्मी रूप भी संकेतित प्रतीत होता है। उनमें रूप तथा गुणों का अद्भुतसमन्वय था, अत: वे राम को अतिशय प्रिय थी।[2]

वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में सीता के चरित्र का विकास देखने को मिलता है। जिस समय राम वनवास के लिए उद्यत होते है और सीता को इस दु:खद सूचना की सूचना नही मिलती, उस समय लज्जा के कारण कुछ मौनभाव से आगत राम को देखकर विकम्पित हो जाती है और राम भी प्रिया की यह दशा देखकर मनोगत व्यथा को दवाने में असमर्थ हो जाते हैं।[3]

राम के स्विन्नगात्रों को देखकर सीता प्रश्न करती है "आज आप उदास क्यों है ? आपके ऊपर छत्र सुशोभित नही हो रहा, व्यजनो द्वारा आपके मुखमण्डल पर वायु क्यों नही डुलाया जाता ? वन्दीजन आपकी स्तुति क्यो नही करते ? वेदपाठी विद्वानों ने दधि-मधु से आपका तिलक क्यों नही किया ? आज जनता के प्रतिनिधि आपका अनुगमन क्यों नही करते ? आपके आगे पुष्प रथ क्यो नही चलता ? आपके आगे सर्वलक्षण सम्पन्न हस्ती क्यो नही दिखाई पड़ता ? आपका स्वर्ण चित्र भी नहीं दिखाई पड़ता। यदि अभिषेक हो गया है तो आपके मुखमण्डल पर यह अपूर्व उदासीनता क्यो है ?[4]

उपर्युक्त प्रश्नों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सीता जी राम के प्रति अत्यन्त प्रेम करती थी। राम के राज्याभिषेक के लिए उनके चित्त में भी उत्सुकता थी। वे मनोविज्ञान के आधार पर व्यक्तित्व की वाह्य छाया और आन्तरिक स्थिति

---

१. अतीव राम: शुशुभे मुदान्वितो विभु: श्रिया विष्णुरिवामरेश्वर: ॥
(वा० रा०, सर्ग ७७ श्लोक, ३० उ०)

२. वा० रा० ।७७।२६, २८

३. वाल्मीकि रामायण : अयो० २६।३-७

४. वाल्मीकि रामायण : अयो० । २६।६-१८

को परखने में सक्षम थीं। विशेष रूप से मूर्धाभिषिक्त राजा के क्या लक्षण होते हैं, इनका उन्हें विशिष्ट ज्ञान था।

जब राम अपनी उदासीनता का कारण वनवासाज्ञा बतलाते हैं और उन्हे अयोध्या मे ही रहने के लिए परामर्श देते है, तब सीता प्रणय कुपित होकर कहती हैं।

किमिदं भाषसे राम वाक्यं लघुतया ध्रुवम्।
त्वया यदपहास्यं मे श्रुत्वा नरवरोत्तम्॥

वा० रा०, सर्ग २७, श्लोक २-३

वीराणां राजपुत्राणां शस्त्रास्त्र विदुषां नृप।
अनर्हमयशस्य च न श्रोतव्यं त्वयेरितम्॥

हे राम। निश्चित रूप से तुच्छता के कारण मेरे उपहासकारक वचन आप क्यो कहते है? राजन्! शस्त्रास्त्र के विद्वान और राजपुत्रों के लिए ऐसे वचन अनुचित एवं अयशकारक होते है। आप द्वारा कहे गये वचन सुनने योग्य नही है।

सीता के उपर्युक्त कथन से प्रतीत होता है कि वे एक स्वाभिमानिनी, विदुषी एवं वीरबाला थी। उनमें निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता के साथ ही साथ व्यंग्य एवं वाक्पटुता की अद्वितीय क्षमता थी। सीता अपने लिए भी वनवास का तर्क उपस्थित करती हुई कहती है कि हे आर्य पुत्र! पिता, माता, भाई, पुत्र, पतोहू ये भी अपने-अपने पुण्य का भोग करते हैं और अपने-अपने भाग्याधीन निर्वाह करते है, किन्तु एक मात्र नारी ही ऐसी है, जो पति के भाग्याधीन होती है, अतः मुझे भी वनवास की आज्ञा दीजिये।[1]

कविवर वाल्मीकि ने प्रस्तुत प्रसंग अत्यन्त रोचक एवं सरस बनाने की चेष्टा की है। २२ श्लोकों द्वारा सीता से राम के साथ चलने के लिए निवेदन कराया है। सीता कहती है कि स्त्री के लिए पितापुत्रादि कोई नहीं, केवल पति ही गति है। सीता जी को कष्टों की चिन्ता नही, वे राम के आगे-आगे कुशकन्टकों का मर्दन करती हुई चलने को प्रस्तुत हो जाती है। वे कहती हैं कि पत्नी तो पति के पैरों की छाया है। मै निर्जनवन में पातिव्रत्य का पालन करती हुई सुखपूर्वक रहूँगी, मुझे हिसक जीवों की भी चिन्ता नही है :—

---

१. आर्यपुत्र! पिता माता भ्राता पुत्रस्तथास्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुंजानाः स्वंयम्स्वंभाग्यमुपासते॥
भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुर्षभ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि॥ वा० रा० अयो० २७।४-५

मुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः।
अचिन्तयन्ती त्रींल्लोकांश्चिन्तयन्तीपतिव्रतम् ॥ वा० रा०। अयो० २७।१२

इतना ही नहीं वे राम की शुश्रूषा करती हुई, नियतब्रह्मचारिणी वन कर रहेंगी। सीता कहती हैं कि आप तो इतने शक्तिमान् हैं कि अन्य की भी रक्षा कर सकते हैं, मेरी तो बात ही क्या है। इस प्रकार निश्चित रूप से मैं आपके (राम) साथ आज वन प्रस्थान करूँगी, उद्यत हो जाने पर मुझे रोक सकना कठिन है।

साहं त्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः।
नाहं शक्या महाभाग निवर्तयितुमुद्यता ॥ वा० रा०। अ० २६।१५

सीता जी तर्क देती हुई कहती हैं कि मैं आपके साथ आपको बिना कष्ट दिये केवल कन्दमूल फल खाकर निर्वाह कर लूँगी और आपके भोजन कर लेने के पश्चात् ही भोजन करूँगी। हे वीर ! आपके साथ निर्भीक होकर सरित्, शैल, सरोवरादि देखने की इच्छा है, मैं उनमें स्नान करूँगी और आपके साथ सुख प्राप्त करूँगी। इस प्रकार मैं आपके साथ सैकड़ों तथा सहस्रों वर्षों तक रह सकती हूँ, मुझे स्वर्ग की भी इच्छा न होगी। मैं भीषणवन में पितृगृहवत् निवास करूँगी और आपकी चरणसेवा से प्रमुदित रहूँगी।

पराकाष्ठा तो सीता के इस अन्तिम कथन से ज्ञात होती है:- —हे नाथ ! अनन्य भावानुरागिणी मुझको आप साथ ले चलें, क्योंकि आपसे वियुक्त होने पर मैंने मरण का निश्चय कर लिया है, अतः आप मुझे साथ ले चलें, मेरी याचना को सफल बनावें, मुझे ले चलने पर आपको भार न प्रतीत होगा।[1]

सीता के उपर्युक्त वचनों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि प्रथम तो वे कठोर होकर आदर्शवाद प्रस्तुत करती हैं, तत्पश्चात् नारी जीवन में पति के सर्वस्व होने की धार्मिक भावना की शरण लेती हैं। इसके पश्चात् अपनी सहिष्णुता, सत्यव्रता, अनुरक्तता एवं निर्भीकता का परिचय देती हैं। इसके पश्चात् प्रभु की सेवा एवं सामर्थ्य का ध्यान दिलाती हुई प्रणय हठ प्रस्तुत करती हैं। पुनः अपनी कष्ट सहिष्णुता का परिचय देकर प्राकृतिक दृश्यों के अवलोकन की कामना व्यक्त करती हैं और अन्ततः अपने अनन्य प्रेम का परिचय देती हुई मृत्यु तक का आतंक

१. अनन्यभावामनुरक्तचेतसं त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम्।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां न ते मयातो गुरुता भविष्यति ॥
(वा० रा० अयो०।२७।२३)

दिखलाती हैं। इसके पश्चात् अत्यन्त विनत होकर यात्रा सफल करने की प्रार्थना करती है।[1]

अयोध्याकाण्ड के २९ वें अध्याय में वाल्मीकि जी ने पुनः सीता द्वारा वन प्रस्थान का आग्रह कराया है। २१ श्लोको मे (१, २१) सीता की करुणा, प्रेम, दैन्यादि का मार्मिक चित्रण इतना साकार हो उठा है, जिससे करुणामयी सीता का एक बिम्ब ही पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाता है। राम वन के अनेक कष्ट वतलाते हैं, सीता उन्हे दोष न मानकर गुण ही मानती हैं। उनका तर्क यह है कि वन्य हिंसक जीव आपके अपूर्व दृष्ट रूप को देख कर स्वतः दूर भाग जायेगे, अतः इनसे भय नही हो सकता। इसके अतिरिक्त आपकी समीपवर्तिनी मुझको इन्द्र भी नही धर्षित कर सकता, अन्य की बात ही क्या है। सच तो यह है कि पतिहीना नारी जीवित नही रह सकती।

पतिहीना तु या नारी न सा शक्ष्यति जीवितुम्। वा० रा० अ०। २९।७

सीता जी एक अकाट्य तर्क प्रस्तुत करती हैं कि मैने अपने पिता जी (जनक) के घर मे रहते हुए यह भविष्यवाणी ज्योर्तिविद् ब्राह्मणो से सुनी थी कि सीता का वनवास होगा। अतः मैं वन चलूँगी।

अथापि च महाप्राज्ञ ब्राह्मणानां मयाश्रुतम्।
पुरापितृगृहे सत्यं वस्तव्यं किल मे बने॥ वा० अयो०। २९।८

इसके अतिरिक्त मेरी माता (सुनयना) के समक्ष एक सिद्ध भिक्षुणी ने भी मेरे वनवास की भविष्यवाणी की थी :

कन्यया च पितुर्गेहे वनवासः श्रुतो मया।
भिक्षुण्याः शमवृत्ताया मम मातुरिहाग्रतः॥ वा० रा० अयो०। २९।१३

उक्त दो तर्को द्वारा सीता जी ने ज्योतिपियों एव सिद्ध भिक्षुणियो पर विश्वास व्यक्त किया है। सीता जी स्वयं अपने मुख से अपनी भक्ति, पातिव्रत्य आदि को बतलाकर जीवनसंगिनी सिद्ध होने के लिए निवेदन करती है कि यदि आप मुझे साथ न ले चलेगे तो मै विष, अग्नि अथवा जल द्वारा शरीर त्याग दूंगी :

यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि।
विषमग्निं जलं वाहमस्थास्ये मृत्युकारणात्॥ वा० अयो०। २९।२१

अयोध्या काण्ड के ३० वें सर्ग में सीता जी राम द्वारा वार-वार अवज्ञा करने पर कुपित होकर राम के लिए कठोर शब्दों का भी प्रयोग करती है। कवि ने इन

---

१. वा० रा० अयो०। २७।२-२३

आक्षेपों के दो कारण बतलाये हैं—प्रथम प्रणय और द्वितीय अभिमान।[1] सीता कहती है कि मेरे पिता ने पुरुष शरीर धारी स्त्री को दामाद समझा।[2] हे राम, तुम मुझे जो पथ्य बता रहे हो अथवा जिसके लिए मुझे रोक रहे हो, तुम उसके वशीभूत एवं दास बनो :—

यस्य पथ्यं च रामात्थ यस्य चार्थेऽवरुध्यसे।
त्वं तस्य भव वश्यश्च विधेयश्च सदानघ॥ वा० अयो० ।३०।९

यहाँ पर कवि ने सीता जी को प्रेम के कारण ही उग्र सिद्ध किया है, क्योंकि यदि राम उन्हें साथ न ले जाते तो अयोध्या भी उनके लिए नरक के समान कष्टप्रद होती :—

यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना।
इति जानन्परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह। वा० अयो०। ३०।१८

यहाँ पर कवि ने 'मया सह' प्रयोग द्वारा इस बात की व्यंजना की है कि सीता जी राम की अपेक्षा अपना वनवास मुख्य मानती है। प्रेम की यह व्यंजना सराहनीय है। सीता जी प्रेम एवं करुणा के अतिरेक से निरन्तर अश्रु बरसाती हुई राम का आलिंगन कर रोने लगती हैं, अतः राम उनके प्रेम की पराकाष्ठा का ज्ञानकर उन्हें साथ ले चलने की सहर्ष आज्ञा प्रदान कर देते हैं।

श्री राम के वनगमन के समय कैकेयी वल्कलवस्त्र लाकर रख देती है। सीता जी उनको देखकर संत्रस्त हो जाती हैं, उनका चित्त उदास हो जाता है, नेत्रों में अश्रुभर आते है और राम से पूँछती हैं :—

वनवासी मुनि किस प्रकार चीर धारण करते हैं? वस्त्रों (वल्कल) के धारण करने में अनभिज्ञ सीता बार-बार परेशान होती है, किन्तु वे वल्कल पहनते नहीं बनते :

कथ नु चीर बन्धन्ति मुनयो वनवासिनः।
इति ह्यकुशला सीता सा मुमोह मुहुर्मुहुः। वा० अयो० ।३७।१२

सीता एक चीर को लेकर कण्ठ तक ले जाती हैं, किन्तु वह पहनते नही बनता, अतः खड़ी रह जाती हैं और अपनी अनभिज्ञता पर लज्जित भी होती हैं, यह देखकर राम स्वयं उन्हें चीर पहना देते हैं। इस प्रसंग से यह सिद्ध होता है कि सीता कितनी भोलीभाली थी, उनमें समयोचित विवेक पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था, फिर

१. प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम्। वा० रा० अयो० ।३०।२ उत्त०
२. किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम्॥ वा० अयो०। ३०।३

भी वे नारी थी, उनका हृदय सम्वेदनशील था, अतः इस आपत्ति मे भी उनके अश्रु भर आये।

जब सीता जी चलने को उद्यत होती है, तब माता कौशल्या जी उन्हे पातिव्रत्यादि का उपदेश देती है। सीता उनका उत्तर देती हुई कहती है :—आर्या जो शिक्षा दे रही हैं, मैं उनका पालन करूँगी। पति के साथ किस प्रकार वर्त्ताव करना चाहिए मै इसे जानती हूँ और मैंने सुना भी है। मैं धर्म से विचलित नही हो सकती जैसे कि चन्द्र की प्रभा चन्द्र से विलग नही हो सकती। जैसे विना तन्त्री के वीणा नही वज सकती, विना चक्र का रथ नही चल सकता, उसी प्रकार बिना पति के नारी सुख नही प्राप्त कर सकती, चाहे उसके सौ पुत्र क्यों न हों।

नातन्त्री वाद्यते वीणा ना चक्रो विद्यते रथः।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥ वा० अयो० ।३६।२६

पिता, भ्राता, पुत्र तो सीमित ही देते है, किन्तु असीमित देने वाले पति की पूजा कौन (स्त्री) न करेगी।

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥ वा० अयो० ३६।३०

उक्त वाक्यों से सीता के पाण्डित्य, वाक्चातुर्य, आज्ञाकारिता, शील एव पातिव्रत्य का परिचय मिलता है। वे वहुश्रुत थी और लौकिकधर्म का उन्हे यथोचित ज्ञान था।

जिस समय राम अत्रि ऋषि के आश्रम में उपस्थित होते हैं, वहाँ अनुसूया जी सीता जी को अपना पतिव्रत धर्म का उपदेश देती है। सीता उनके वचनों का अभिनन्दन करती हुई कहती है कि आर्या मुझसे जो कुछ कह रही है, उसमे कोई आश्चर्य नहीं। मैं भी जानती हूँ कि पति नारी के लिए सर्वपूज्य होता है :

नैतदाश्चर्यमार्याया यन्मां त्वमनुभाषसे।
विदितं तु ममाप्येत यथा नार्याः पतिर्गुरुः। वा० अयो०। ११८।२

इससे सिद्ध होता है कि सीता जी को अपनी धर्मज्ञता पर स्वाभिमान था। वे इतना ही नही कहती; अपितु अनुसूया ने पतिव्रत धर्म की जिन बातो का उपदेश नही दिया था, वे उनकी भी चर्चा करती हुई अपनी विद्वत्ता का परिचय देती है। यथा— यदि पति अनार्य या दुश्चरित्र भी हो तब भी नारी को उसके साथ द्वैध का वर्ताव नही करना चाहिए :

यद्यप्येष भवेद्भर्ता अनार्यो वृत्तवर्जितः।
अद्वैधमत्र वर्तव्यं तथाप्येष मया भवेत् ॥ वा० अयो०। ११८।३

अनुसूया सीता से अत्यन्त प्रसन्न होकर माल्य, वस्त्र, आभूषण तथा दिव्य आभरण प्रदान करती हैं, सीता कृताञ्जलि लेकर उन्हें प्रीतिदान के रूप मे स्वीकार करती हैं। उसके पश्चात् अनुसूया जी का परिचय पूँछती है और सीता जी अपनी उत्पत्ति से लेकर विवाह तक का संक्षिप्त वृत्तान्त वतलाती हैं। सन्ध्या होते ही उन अलंकारों को धारण कर मुनिपत्नी को प्रणाम कर राम के समीप लौट आती है ।

उक्त वृत्तान्त के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सीता जी विनम्र, शिष्ट, अलंकार प्रिय, मृदुभाषिणी, वाक्पटु एवं पतिप्राणा धर्मज्ञ पत्नी थी।

अरण्यकाण्ड में 'विराध' नामक राक्षस सीता का हरण करता है और कहता है कि सीता मेरी भार्या होगी और मैं तुम दोनों (राम, लक्ष्मण) का रक्तपान करूँगा। सीता राक्षस के इन वचनों से भयभीत होकर विकम्पित होने लगती है। जब विराध राम-लक्ष्मण का भी अपहरण कर वनपथ में दौड़ता है तब सीता उच्च स्वर से रोती हुई कहती है : ये सत्यवान्, शीलवान् तथा पवित्र दशरथ सुत राम है, जिन्हें रौद्ररूप यह राक्षस लक्ष्मण सहित लिये जा रहा है। हे राक्षसोत्तम ! यहाँ मुझे ऋक्ष, शार्दूल तथा वनगज नष्ट कर देगे, अतः तुम राम-लक्ष्मण को छोड़ दो, मेरा हरण करो, तुम्हें नमस्कार है :

> एष दाशरथी रामः सत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ।
> रक्षसा रौद्ररूपेण ह्रियते सह लक्ष्मणः ॥
> मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति शार्दूलद्वीपिनस्तथा ।
> मां हरोत्सृज का कुत्स्थौ नमस्ते रक्षसोत्तम ॥ वा० अर०।४।२-३

उक्त कथन में सीता का राम के प्रति अनन्य प्रेम तथा उनकी चतुरता व्यक्त हुई है। वे राक्षस को प्रलोभन देती है कि राम लक्ष्मण को छोड़कर मेरा अपहरण करे, जिससे वे मुक्त होकर राक्षस पर प्रहार कर सके ।

सीता जी स्वभावतः अत्यन्त दयालु एवं भीरु थी। उन्हे धर्मभीरु कहना अधिक संगत होगा। वे राम से निवेदन करती हुई कहती हैं कि काम से उत्पन्न होने वाले तीन व्यसन होते हैं—मिथ्याभाषण, परदार सेवन, तथा निर्वैरहिंसा। इनमें दो तो आपके लिए सम्भव है ही नही किन्तु तृतीय सम्भव है।

> तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम् ।
> निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम् ॥ वा० अर०।९।९

वस्तुतः शस्त्र धारण करने से हिंसाबुद्धि उत्पन्न होती है, इस पर भी वे एक तपस्वी का दृष्टान्त सुनाती हैं, जिसे इन्द्र एक खड्ग धरोहर के रूप में रख गया था और

उसका आन्तरिक उद्देश्य मुनि को हिंसक वना कर उसके तप में विघ्न करना था। अन्त में शस्त्रसंगति से वह मुनि शनैः शनैः हिंसक वन गया।[1]

शस्त्र का संयोग अग्नि के समान है :

अग्निसंयोगवद्धेतुः शस्त्रसंयोग उच्चयते।
स्नेहाच्च वहुमानाच्च स्मारये त्वां नशिक्षये ।। वा० अर०। ६।२४

इस वाक्य द्वारा सीता जी राम से शस्त्रन्यास को धर्मसम्मत वतलाती है, किन्तु यह भी कहती जाती है कि यह मेरा सुझाव है, शिक्षा नही। इस कथन में उनकी विनम्रता एवं अहिंसा भावना का कितना सुन्दर प्रतिपादन मिलता है। अन्त में वे यह भी कहती है कि स्त्रीचापल्य के कारण मैने आपसे यह निवेदन किया है, वस्तुतः आपको धर्मोपदेश दे ही कौन सकता है? आप लक्ष्मण सहित स्वयं बुद्धि से सोचे और जैसा उचित हो, शीघ्र ही वैसा करें।

स्त्रीचापलादेतदुपाहृतं मे धर्मंच वक्तुं तवकः समर्थः।
विचार्य वुद्धया तु सहानुजेन यद्रोचते तत्कुरु माचिरेण ।। वा० अर०। ६।३३

उक्त कथन में सीता कितनी विनम्र है, वे स्त्रियो के चांचल्यदोष से अपने को परे नही मानती और न उनके समक्ष अपनी धर्मज्ञता का ही मान व्यक्त करती है। वे नीति तथा प्रीति का ध्यान देकर लक्ष्मण से भी परामर्श करने का निवेदन करती है और अन्ततः बुद्धिसम्मत निर्णय लेने के लिए ही बल देती है।

पंचवटी मे कांचनमृग को देख कर सीता मुग्ध हो जाती है और राम से प्रार्थना करती है कि हे महाबाहो, मेरी क्रीड़ा के लिए इस मृग को ले आइये। इसका रूप, लक्ष्मी, स्वर, दीप्ति, क्षमा तथा तेज अद्भुत है, अतः जीवित या मृत किसी रूप मे सही इसे लाना है, यह मेरा मन हरण कर रहा है।

अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसम्मच्च शोभना।
मृगोऽद्भुतो विचित्रांगो हृदय हरतीव मे ।। वा० अर०। ४३।१५

सीता के उक्त कथन में नारी चापल्य, औत्सुक्य एवं विस्मय का कित ा सुन्दर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। यदि ४३वे सर्ग के प्रथम श्लोक से २१वें श्लोक तक के सीता के कथन का विश्लेषण किया जाये तो सर्वोपरि 'विस्मय' का ही महत्व मिलेगा। वस्तुतः नारी जाति में कुतूहल की मात्रा सम्भवतः बहुत अधिक होती है।

जव राम मायामृग का वध करते है और वह 'हा लक्ष्मण' वाक्य उच्चारण कर प्राण त्यागता है, सीता उस वाक्य को सुन कर यह आशंका करती है कि राम पर

---

१. वा० रा० अरण्य०। ६।१६-२३

विपत्ति पड़ गई है, अतः लक्ष्मण को शीघ्र ही उनकी सहायता हेतु जाने की आज्ञा देती हैं। जब लक्ष्मण राम के आदेश का ध्यान रखते हुए कुटी से जाना नही चाहते, तब सीता कठोर वचनों का प्रयोग करती है—लक्ष्मण तुम मित्ररूप में भाई राम के शत्रु हो, क्योंकि इस अवस्था में भी भाई की सहायता नही करते। तुम चाहते हो कि राम नष्ट हो जाएँ और सीता मुझे प्राप्त हो सके, इसी हेतु तुम राम के पीछे-पीछे वन में आये हुए हो। वस्तुतः तुम्हें व्यसन (काम) प्रिय है, बन्धु नही, इसी हेतु उन तेजस्वी राम की अनुपस्थिति में निश्चिन्त बैठे हो। राम की संशयास्पद स्थिति में यहाँ रहती हुई मेरा क्या कर्तव्य है? क्योंकि तुम मुख्य बनना चाहते हो।

सौमित्रे ! मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्।
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपत्स्यसे ॥
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते।
लोभान्मम कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम् ॥
व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते।
तेन तिष्ठसि विस्रब्ध स्तमपश्यन्महाद्युतिम् ॥
किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत्।
कर्तव्य मिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः ॥ वा० रा० अर०।४५।५-८

सीता के उक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि वे कटुभाषिणी भी थी, मानवीय सन्देहग्रन्थि उन्हें भी विचलित कर देती थी। वस्तुतः इन बातों के मूल में पतिप्रेम ही प्रधान प्रतीत होता है। नारीचित्त की दुर्बलता इन्ही क्षणों में वशवती हो जाती है, विवेकशक्ति प्रसुप्त-सी हो जाती है। वाल्मीकि जी ने सीता की इस कटुभाषिता का जो मार्मिक चित्रण किया है, वह किसी अन्य कवि से सम्भव नही हो सका। लक्ष्मण जी इन कठोर वचनों को सुन कर सहन कर लेते है और राम की सामर्थ्य बतला कर उन्हें शान्त करने का प्रयास करते है, किन्तु इससे सीता का क्रोध और भड़कता है और वे पूर्वापेक्षया कठोर अपशब्दों का प्रयोग करने लगती है, जिन शब्दो को अशिष्टता का भी सूचक कहना अनुचित न होगा—"अनार्य, निर्दय, नृशंस, कुलकलंक, मैं समझती हूँ कि मैं तुम्हें प्रिय हूँ, राम पर आपत्ति पड़ी है, तुम मुझे उपदेश देते हो। तुम जैसे गुप्ताचरणकर्ता सौतेले भाई पापी होते हैं, आश्चर्य की बात नही है। तुम बड़े दुष्ट हो, एकाकी राम के पीछे मेरे लिए आये हो, अथवा गुप्त रूप से भरत ने तुम्हें भेजा है। वह तुम्हारा अथवा भरत का मनोरथ सिद्ध न होगा। मैं कमल-लोचन राम को छोड़ कर तुच्छ व्यक्ति की कामना नहीं करती। हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारे समक्ष प्राण त्याग दूँगी, पर एक क्षण भी राम के बिना जीवित न रहूँगी।"

अनार्यकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन ।
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत् ॥
रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे ।
नैवं चित्रं सपत्नेषु पाप लक्ष्मण यद्भवेत् ।
त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु ।
सुदुष्टस्त्व वने राममेकमे कोऽनुगच्छसि ।
ममहेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥
तन्न सिध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा ।
कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम् ॥
उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम् ॥
समक्षं तव सौमित्र ! प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ।
रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले ॥ वा० रा० अर०।४५।२१-२६

सीता जी के इन मर्मभेदी वचनों को सुनकर लक्ष्मण भी विनतभाव से कुछ यथार्थमिश्रित कटु शब्दो को संयतरूप मे कह कर जाने के लिए उद्यत होते है और यह भी कहते है कि शायद राम के साथ लौट कर मैं पुनः आपके दर्शन कर सकूँ। लक्ष्मण के इन शब्दों को सुनकर सीता जी और अधिक अश्रुपात करती हुई रोने लगती है और कहती है :

गोदावरी प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण ।
आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्येविषमे देहमात्मनः ॥
पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ॥ वही, ४५ सर्ग, ३६-३७

इतना कहकर शोकव्याकुल सीता रोती हुई दोनों हाथो से अपना पेट कूटने लगती हैं, यह देख लक्ष्मण प्रणामकर बार-बार सीता की ओर देखते हुए राम के पास चल देते है ।

उक्त स्थान मे कवि ने सीता को एक साधारण स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है। वे अशिष्ट बचनों का भी प्रयोग करती हैं, लक्ष्मण के चरित्र पर भी अविश्वास व्यक्त करती है, उनका सन्देह भरत तक को नही छोड़ता, वे आत्महत्या का भय भी दिखलाती है, रुदन आदि उद्वेजक क्रियाएँ भी करती है। हाँ उनके पक्ष से केवल यह कहा जा सकता है कि पति प्रेम की अनन्यता ही इन सबका कारण है।

'सीताहरण' के प्रसंग मे कवि ने सीता के चरित्र एवं स्वभाव पर विशेष प्रकाश डाला है। वे परिव्राजकरूप रावण का सत्कार करती है, इससे उनकी 'आतिथ्य भावना'

का पता चलता है। वे रावण से अपना विस्तृत परिचय देती है। जब रावण सीता जी से प्रणय प्रस्ताव करता है, तब वे क्रुद्ध होती है और अपने पति राम की प्रशंसा करती हुई, रावण को जम्बुक (सियार) आदि अपशब्द कह कर उसे भय दिखलाती हैं। यथा :

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंही मामिहेच्छसि दुर्लभाम् ।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ।। वा० रा० अर० । ४७।३६

विविध प्रकार का राम रावण में यह अन्तर प्रदर्शन करना सीता के प्रेम का परिचायक है।[1] वे राम के अतिरिक्त किसी परपुरुष का स्पर्श तक नही करना चाहतीं। जब रावण अपना आतंक बताकर उन्हे भयभीत करना चाहता है, तब वे उसकी भर्त्सना करती हुई कहती है : तुम अपने को कुबेर का भाई बतलाकर यह अशुभ कार्य क्यों करते हो ? हे रावण ! जिन राक्षसों का तुम जैसा दुर्बुद्धि एवं अजितेन्द्रिय राजा है, वह राक्षसकुल अवश्य नष्ट हो जायेगा। तुम इन्द्र की पत्नी शची का अपहरण कर जीवित रह सकते हो, किन्तु राम की पत्नी (सीता) का अपहरण कर जीवित नही रह सकते।

अपहृत्य शची भार्या शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम् ।
नहि रामस्य भार्यां मामपनीयास्ति जीवितम् ।। वा० रा० अ० । २३

रावण पर इस भर्त्सना का कोई प्रभाव नही पड़ता और वह राम का नाम ले लेकर रोती हुई सीता का अपहरण करता है। वे लक्ष्मण का भी स्मरण करती है और कैकेयी के सफल मनोरथ होने की भी स्मृति करती है। वे वहाँ की वनस्पतियों, पक्षियो एवं विविध सत्वो से निवेदन करती है कि आप श्री राम से बता दें कि रावण ने विवशा सीता का हरण किया है।[2]

जब पथ मे अवरोधक जटायु का भी वध कर रावण सीता जी को ले चलता है, तब वे रावण को धिक्कारती एव भयभीत करती हुई आक्रोश व्यक्त करती है : हे नीच ! मुझ एकाकिनी का अपहरण करते हुए तुम्हे लज्जा नही आती। हे दुष्ट ! तुमने ही छलपूर्वक मृगरूप धारण कर मेरे पति को दूर कर दिया था। मेरे रक्षक जटायु को तुमने मौत के घाट उतार दिया, वस्तुतः तुम बड़े पराक्रमी प्रतीत होते हो। नीच ! स्त्री अपहरण जैसा नीच कार्य करने पर तुम्हें लज्जा नही आती। तुम वीर मानी हो, लोक तुम्हारे इस कुकर्म की निन्दा करेगा। तुमने हरण के

---

१. वा० रा० अर० ४७ । ४५, ४० ।।
२. वा० रा० अर० । ४९ ।२१, ३५ ।।

पूर्व जिस शौर्य एवं सत्व का वर्णन किया था उसे भी धिक्कार है और कुल कलंक देने वाले तुम्हारे इस चरित्र को भी धिक्कार है। यदि तुम मुहूर्तमात्र ठहर जाओ, तो जीवित नही वच सकते। यदि राम लक्ष्मण के नेत्रों को दिख जाओ तो सेना सहित भी मुहूर्तमात्र जीवित नही रह सकते।[१]

कवि ने सीता के उक्त कथन में भय एवं शोक को ही कारण बतलाया है?[२] वस्तुतः सीता जी राम लक्ष्मण के पराक्रम मे पूर्णविश्वास रखती थी, वे जटायु के प्रति भी कृतज्ञ है, क्रुद्ध होकर अपशव्द भी कहती है। वे रावण की निन्दा तो करती है, कभी-कभी प्रशंसा भी कर देती हैं। इसका अभिप्राय सम्भवतः यही होगा कि प्रशंसा से प्रसन्न होकर रावण मुझे मेरे आश्रम में छोड जायगा। इस प्रकार सीता को लेकर रावण अशोकवाटिका में स्थान देता है और सीता विवश होकर जीवित रहती है।

वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड में कवि ने सीता विषयक विविध विशेषताओं का उल्लेख किया है (सर्ग १९)। सीता जी वस्तुतः उपवास, शोक, ध्यान, भय से परिक्षीण हो गयी थी। दैन्य ने उनके शरीर को कृश कर दिया था, वे स्वल्पाहार पर ही जीवित थी।

उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम्॥ वा० रा० सुन्द०।१९।२१

रावण वहाँ आकर विविध प्रलोभनों द्वारा उन्हें वश में करना चाहता है। किन्तु सीता जी तृण की ओट से, पुनः पृष्ठ ओट से रावण से कहती हैं—रावण मेरी ओर से मन हटाकर अपने अन्तःपुर में मन लगाओ। मै पतिव्रता होकर यह अनर्थ कैसे करूँगी! मैं उत्तम कुल की कन्या हूँ। परदारा का संग व्यक्ति का विनाश करता है। क्या यहाँ सन्त नही हैं, जो तुम्हारी विपरीत बुद्धि को शुद्ध करें।[३] राजन्! तुम अनीति करते हो, इससे तुम्हारा तथा राष्ट्र का विनाश निश्चित है। पापकर्म से लोक में तुम्हारी निन्दा होगी। तुम मुझे अपने ऐश्वर्य तथा धन से नही लुभा सकते:

शक्या लोभयितु नाहमैश्वर्येण धनेन वा।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा॥ वा० रा० सुन्द०।२१।१५

इस प्रकार विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि सीता जी रावण को असत्प्रवृत्ति से दूर रहने के लिए धर्म, नीति, भयप्रदर्शन तथा अपनी चारित्रिक दृढता का

---

१. वा० रा० अरण्य०। ५३।३-११
२. एतच्चान्यच्च परुष वैदेही रावणांकगा।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललापह॥ वा० रा० अरण्य०। ५३।२५
३. रा० सु०। २१।९॥

कथन करती है। इससे यही सिद्ध होता है कि वे आदर्श पतिपरायणा, सच्चरित्र, प्रतिभाशील, धर्मपरायण एवं निर्लोभ थीं।

जब राक्षसियाँ सीता को भय दिखलाती हैं, तब वे स्पष्ट रूप में कहती हैं कि मैं मानुषी होकर राक्षस की पत्नी नही हो सकती, भले ही मुझे खालो, पर मैं तुम्हारे वचन नहीं मानूंगी।

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः॥ वा० रा० सुन्द०। २५।३

इससे भी सीता की निर्भीकता एवं पतिपरायणता सिद्ध होती है, वे अपने निश्चय पर पूर्णतया दृढ़ हैं। अन्ततः अधिक पीड़ित होकर अपनी वेणी एक शाखा में बाँधकर आत्महत्या का भी विचार करती हैं, किन्तु शुभशकुन होने पर विरम जाती हैं (सर्ग २६ सुन्दर काण्ड)। हनुमान जी से परिचय प्राप्त होने पर उनकी परीक्षा करती हैं कि वस्तुतः यह रामदूत है या नहीं, क्योंकि उन्हें छद्मवेशी रावण होने की शंका थी। वे राम तथा लक्ष्मण के चिन्ह पूँछती हैं और यथार्थ उत्तर पाने पर ही सन्तुष्ट होती हैं। जब हनुमान जी राम प्रदत्त मुद्रिका अर्पित करते हैं, तब वे हनुमान के बलवीर्य की प्रशंसा करती हैं। यथा :

नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ।
यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि संभ्रमः॥ वा० रा० सुन्द०। ३६।६

इसके पश्चात् वे राम लक्ष्मण की कुशल पूँछ कर राम की नीति के विषय में भी विविध प्रश्न करती हैं, जिनसे सीता जी के बुद्धिकौशल एवं शास्त्रपांडित्य का विशिष्ट प्रमाण मिलता है।[1]

जब हनुमान सीता को अत्यन्त दुःखित देखकर यह प्रस्ताव करते है कि आप मेरी पीठ पर बैठ जाएँ और मैं आपकी तो बात ही क्या है सरावण लंका को भी लेकर समुद्र पार जा सकता हूँ :

त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा सतरिष्यामि सागरम्।
शक्ति रस्ति हि मे वोढुं लंकामपि सरावणाम्॥ वा० रा० सु०। ३७।२२

इस प्रस्ताव को सुन कर सामान्य नारी की भाँति सीता उतावली नहीं हो जातीं। यद्यपि उन्हें प्रसन्नता होती है किन्तु वे विवेकपूर्वक हनुमान से तर्क करती हैं—

१. वा० रा० सुन्द०। ३६।१५-२६

हनुमान ! दूर पथ है, तुम मुझे कैसे ले जा सकोगे ? सम्भवतः तुमने वानरचापल्य के कारण ऐसा कहा है।

> हनूमन् दूरमध्वानं कथं मां नेतुमिच्छसि।
> तदैव खलु ते मन्ये कपित्वं हरि यूथप ॥ वा० रा० सुन्द०।३७।३

जब हनुमान अपना विशालकाय रूप प्रदर्शित करते है, तब सीता जी उनकी शक्ति की प्रशंसा करती हुई औचित्य विधान की शरण लेती हैं। यथा, मैं जानती हूँ कि तुम मुझे पार ले जा सकते हो किन्तु बुद्धिमान को कार्य सिद्धि पर विशेष ध्यान देना चाहिए। तुम वायुवेग से चलोगे, हो सकता है कि मैं संज्ञाहीन हो जाऊँ, अथवा तुम्हारी पृष्ठ से सागर मे गिर पड़ूँ। यह भी सम्भव है कि रावण के वीर तुम्हारा अनुधावन करे और तुम मेरे कारण संशय मे पड़ जाओ, मेरी रक्षा कैसे कर सकोगे ? मैं राक्षसो के भय से वहीं गिर न पड़ूँ। हो सकता है कि वीर राक्षस युद्ध में जीत ही जाएँ, क्योंकि जय पराजय तो अनिश्चित होते हैं। यदि तुम राक्षसों के मारने में समर्थ भी हो, तब भी तुम्हारे द्वारा मेरा उद्धार होने पर राम का यश क्षीण होगा। हो सकता है कि राक्षस तुमसे छीन कर मुझे किसी अज्ञात स्थान पर छिपा दे, तब पता भी न चलेगा। मैं सती नारी हूँ, स्वेच्छा से पति को छोड़कर अन्य का स्पर्श करना धर्मविरुद्ध होगा।[1]

सीता के उपर्युक्त तर्कों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि वे असाधारण प्रतिभाशील थी, उनमे उचित अनुचित का विवेक था, देश काल तथा परिस्थिति के विरुद्ध वे कोई कार्य नहीं करना चाहती थी। उनमें स्त्री चांचल्य नही, एक गम्भीरता एवं दूरदर्शिता का दुर्लभ गुण विद्यमान है। वे किसी बात के परिणाम तक विचार करके कार्य करना जानती है, भले ही उन्हें कष्ट सहना पड़े। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने पति श्री राम की शक्ति पर विश्वास है, वे हनुमान के पराक्रम से अपना उद्धार नहीं चाहती, इसमे उनके पति गौरव को ठेस लगती और परपति का स्पर्श करना तो सर्वथा शास्त्र विरुद्ध माना जाता है, अतः वे हनुमान की पीठ पर बैठकर कैसे जा सकती थी। निष्कर्ष यह कि सीता जी बुद्धिमतापूर्वक हनुमान के प्रस्ताव को ठुकराती है जिससे हनुमान को भी बुरा न लगे और मर्यादा का भी उल्लघन न हो। सभी तर्कों से सबल तर्क पतिव्रता की मर्यादा एवं राम की प्रतिज्ञा का है। सीता के लिए उक्त दोनों बातें अपरिहार्य थी। इनकी रक्षा करने मे ही तो उनकी प्राणों की आ पड़ी थी। अस्तु प्राण कण्ठगत होने पर भी सीता जी ऐसा प्रस्ताव स्वीकार क्यों कर सकती थी। धन्य है भारतीय ललना का यह अद्भुत आदर्श।

---

१. वा० रा० सुन्द०। ३७।४४-६१

जब हनुमान जी सीता से अभिज्ञान स्वरूप कुछ वस्तु माँगते है, तब सीता जी उनसे जयन्त काक का वृत्तान्त बतलाती हुई उसे श्रेष्ठ अभिज्ञान कहती हैं। इन्द्र पुत्र जयन्त ने काक का रूप धारण कर मुझे चित्रकूट में कष्ट दिया था, उसने स्तनो के मध्य में चोंच मार कर विदीर्ण कर दिया था।

ततः सुप्तप्रबुद्धां मां राघवाङ्कात्समुत्थिताम्।
वायसः सहसागम्य विददार स्तनान्तरे॥ वा० रा० सुन्द०। ३८।३२

राम ने इस उत्पाती काक पर सीक का ब्रह्मास्त्र चलाया था और अन्ततः उसके द्वारा क्षमा प्रार्थना करने पर उसकी दाहिनी आँख समाप्त कर उसे प्राणदान दिया था।

सीता कहती हैं कि राम से कहना कि हे राजन! मेरे लिए काक के ऊपर आपने ब्रह्मास्त्र चलाया था और आज मेरे अपहरणकर्त्ता की उपेक्षा कर रहे हैं क्यों उसे क्षमा कर रहे हैं :

मत्कृते काकमात्रेऽपि ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम्।
कस्माद्यो मां हरत्त्वत्तः क्षमसे तं महीपते। वा० रा० सुन्द०। ३८।३९

इस प्रकार सीता जी अपनी विपत्ति का विविध प्रकार से निवेदन करती है और राम लक्ष्मण से संदेश देने के लिए कहती है कि मैं एक मास तक जीवित रहूँगी यह सत्य है :

जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज।
ऊर्ध्वं मामान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमिते॥ वा० रा० सुन्दर० ३८।६७

अन्त में सीता जी अभिज्ञान स्वरूप अपना चूड़ामणि उतार कर हनुमान् जी को देती हैं और कहती हैं कि यह श्री राम को दे देना।[1] इस मणि को देखकर राम अपनी जननी कौशल्या, महाराज दशरथ तथा मेरा स्मरण करेंगे। यह चूड़ामणि जनक जी को इन्द्र से प्राप्त हुई थी, उन्होंने विवाह के समय सीता को दी थी। हनुमान के चलते समय सीता जी आमात्यों सहित सुग्रीव के लिए भी अनामय होने का सन्देश देती हैं और अन्ततः हनुमान को आशीर्वाद देती है कि तुम्हारा पथ मंगलमय हो।[2]

इस अभिज्ञान वृत्तान्त से भी सीता जी की बुद्धिमत्ता एवं दूरदर्शिता का ज्ञान होता है। वे दो प्रकार के अभिज्ञान इसलिए देती हैं कि हो सकता है कि 'चूड़ामणि'

---

१. ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूड़ामणिं शुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ॥ वा० रा० सुन्द०। ३८।६९
२. वा० रा० सुन्द०। ४०।२३

कही खो जाये, अतः 'काक वृत्तान्त' तो सुरक्षित रहेगा। इसके अतिरिक्त यह राम के पराक्रम का स्मारक एवं उद्दीपक भी होगा। वे नीतिज्ञ की भाँति अपरिचित सुग्रीवादि को भी कुशल प्रेषित करती है, क्योंकि सुग्रीव राम का सखा था और अभी उसकी सहायता से सीता जी के उद्धार की आशा है।

रावण एक बार माया द्वारा राम का सिर एवं धनुष बनवा कर सीता जी को दिखलाता है कि राम का तो विनाश हो गया और तू मेरे आधीन हो जा, फिर भी सीता जी विचलित नही होती अपितु प्रार्थना करती है कि तू मेरे शरीर को भी मार कर राम से मिला दे :

साधु घातय मा क्षिप्र रामस्योपरि रावण।
समानय पति पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥
शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय।
रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तु र्महात्मनः। वा० युद्ध०। ३२।३१-३२

पतिव्रता नारी का यह आदर्श कितना महत्वपूर्ण है। इस प्रसंग मे सीता जी जो विलाप करती है उससे उनकी राम विषयक प्रीति का सच्चा प्रमाण मिलता है। वे कैकेयी के प्रति अधिक असन्तुष्ट है।[1] अन्ततः सरमा द्वारा यह जानकर कि यह माया थी, उनका भ्रम दूर हो जाता है।

इसी प्रकार जब इन्द्रजित् राम लक्ष्मण को नागपाश द्वारा आबद्ध कर लेता है, उस समय रावण पुष्पक में बैठा कर दूर से राम लक्ष्मण की स्थिति का दर्शन कराता है। इस समय सीता जी जो विलाप करती हैं, उसमें केवल शोक ही नहीं, अपितु उनकी बहुज्ञता के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं।

सीता विलाप करती हुई कहती हैं कि सामुद्रिकशास्त्र विशेषज्ञों ने मुझे अविधवा तथा पुत्रिणी घोषित किया था, क्या वे असत्यवादी थे? ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की थी कि सीता राज्याभिषिक्त नरेन्द्र की पत्नी होगी, क्या वे भी असत्य-भाषी थे? वैधव्य के जो लक्षण होते है, वे भी मुझमें नही है। मेरे चरणों में पद्म के चिह्न, सूक्ष्मनीलकेश, विरल भ्रू, अलोमजंघा, घनीदन्तावलि, विशालनेत्र, गोलनख, सम अंगुलियाँ, घने पीन स्तन, मृदुअंगावलि, समग्रयव चिह्न आदि निष्फल है।[2]

सीता के उक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि वे राम की मृत्यु पर विश्वास नहीं करतीं। उन्हें ज्योतिष एवं सामुद्रिकशास्त्र का विशेष ज्ञान था और इन पर उनकी

१. सकामा भव कैकेयि ! हतोऽय कुलनन्दनः।
कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया ॥ वा० युद्ध०। ३२।४

२. वा० रा० युद्ध०। ४८।२-१३ ॥

दृढ़ आस्था भी थी। सीता जी यहाँ भी यह स्पष्ट कहती है कि मुझे राम लक्ष्मण जननी तथा अपने विषय में इतना शोक नहीं है, जितना कि श्वश्रू कौशल्या जी का है, क्योंकि वे नित्यप्रति वनवासावधि समाप्त कर आने वाले रामादि का मुख देखने के लिए लालायित रहती है।[1] इस विलाप में कवि ने सीता जी का कौशल्या माता पर इतना अधिक प्रेम प्रदर्शित किया है, जो राम के स्नेह से भी अधिक प्रतीत होता है। इससे सीता जी के चरित्र पर यह नवीन प्रकाश पड़ता है कि उन्हें सर्वाधिक चिन्ता कौशल्या जी की थी।

युद्धकाण्ड के ११३वे सर्ग में रावणवध के पश्चात् हनुमान सीता जी के पास जाते है और उनसे राम विजय का वृत्तान्त बतलाते है। सीता जी इस सन्देश को सुनकर अतिशय मोदमयी होकर हनुमान का ऋण स्वीकार करती हुई कहती है कि मैं अपने पति की विजय को सुनकर क्षण भर के लिए गद्गद हो गयी हूँ। इसके बदले मे तुम्हे कौन-सी वस्तु दूँ, कोई ऐसी वस्तु ही नही है। सोना रत्नादि यहाँ तक कि त्रैलोक्य का राज्य भी तो न्यून है।

हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु नैतदर्हति भाषितुम् ॥ रा० युद्ध० । ११३।२१

इससे सिद्ध होता है कि सीता जी हनुमान के प्रति विशेष कृतज्ञ थी। पति विजय का यह असाधारण आनन्द उनकी आन्तरिक प्रीति का पुष्ट प्रमाण है। वे हनुमान की कथनशैली, उनकी बुद्धिमत्ता, धार्मिकता, बल, शौर्य, श्रुत, सत्व, विक्रम, दाक्षिण्य, तेज क्षमा, धृति, धैर्य, विनम्रता आदि गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है।[2] वस्तुतः सीता जी में इन गुणों के परिचय प्राप्त करने की अद्वितीय क्षमता थी। वे इतनी दयालु थीं कि हनुमान द्वारा राक्षसियों के दण्ड देने के प्रस्ताव का विरोध करती है। वे भाग्यवाद पर विश्वास करती है और राक्षसियो को दासी समझ कर उन्हें दोष नही देती, क्योंकि वे तो आज्ञा पालिका होती है।[3]

जब राम की आज्ञा होती है कि वैदेही को शिरःस्नाता एवं दिव्यांगराग भूषित करके हमारे पास लाया जाये, तब सीता 'अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि' कहकर अपनी रुचि

---

१. न शोचामि तथा रामं लक्ष्मणं च महारथम्।
नात्मानं जननीं चापि यथा श्वश्रूं तपस्विनीम् ॥ वा० युद्ध० । ४८।२०-२१
सा तु चिन्तयते नित्यं समाप्तव्रत मागतम्।
कदा द्रक्ष्यामि सीतां च लक्ष्मणं च राघवम् ॥

२. वा० रा० युद्ध० । ११३।२५-२७।

३. वा० रा० युद्ध० । ११३।३७-३६।

प्रदर्शित करती है कि मैं बिना स्नान किये हुए वास्तविक रूप में चलना चाहती हूँ। इससे सीता जी का यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि राम जान लें कि मेरी क्या दशा है और किस स्थिति में मैंने जीवन बिताया है। इतने पर भी जब विभीषण प्रभु की आज्ञा वैसी ही बतलाते है तब वे दुराग्रह भी नही करती।

जिस समय वे राम के समक्ष प्रस्तुत होती है, लज्जा का आतंक उनके अंगो को संकुचित कर देता है। वे जनसभा मे वस्त्र से अपना मुख ढँक लेती है और 'हा आर्यपुत्र' यह कह कर रोने लगती है।

सा वस्त्रसंरुद्धमुखी लज्जया जनसंसदि।
रुरोदासाद्य भर्तारमार्यपुत्रेति भाषिणी ॥ वा० रा० युद्ध० ।११४। ३५

वे विस्मय, प्रहर्ष तथा स्नेह से अपने पतिदेव का सौम्यमुखमण्डल अवलोकन करने लगती है। यहाँ पर कवि ने सीता के हृदय का मनोवैज्ञानिक निरीक्षण किया है। उन्हें विस्मय राम के कृश शरीर को देखकर, प्रहर्ष मिलन घड़ी को प्राप्त कर और स्नेह उनके दर्शनजन्य अतिरेक से होना स्वाभाविक था।[1] सम्भवतः राम के मुखमण्डल में ही इन तीनो भावों के बीज विद्यमान थे, जो सीता के चित्त में व्यापक होकर अनुभूत हुए।

जब राम लोकापवाद के भय से सीता जी को दुर्वाक्य कहते है कि तुम्हारे चरित्र में सन्देह है, कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो परगृह मे स्थित स्त्री को पुनः रख ले, अतः तुम कही भी जा सकती हो, चाहे लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव अथवा विभीषण किसी में भी तुम अपना मन लगा सकती हो।[2] तब सीता जी पति के घोर वचनों को सुनकर प्रथम तो लज्जा से संकुचित होकर नीचे देखने लगती है, पुनः अश्रु बहाती हुई गद्गद् वाणी से बोलती है—

"वीर ! आप प्राकृत पुरुष की तरह रुद्रवाणी क्यों बोलते है ? मै चरित्र की शपथ करके कहती हूँ कि आप मेरे ऊपर विश्वास करे, जैसी आप समझते है, मैं वैसी नही हूँ। सामान्य स्त्री जाति की भाँति मेरे ऊपर शंका न करें, आपने तो मेरी परीक्षा भी ली है। यदि मैने विवश होकर रावण का स्पर्श किया है, तो इसमें भाग्य का ही अपराध है। हृदय मेरे आधीन है, वह तो आपके पास था, शरीर पर मेरा क्या वश ? जब आपने लका में हनुमान को मुझे देखने के लिए भेजा था, तभी मेरा

---

१. विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता।
उदैक्षत मुखंभर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥ वा० रा० युद्ध० ।११४।३६

२. वा० रा० युद्ध० ।११५।५। २३ ॥

त्याग क्यों नही किया ? यदि तभी मेरा त्याग कर देते तो मैं प्राण त्याग देती। आपको व्यर्थ परिश्रम न करना पड़ता और न मित्रों को कष्ठ उठाना पड़ता।[१] हे नृपतिवर ! आपने क्रोध के कारण लघुमानव की भाँति स्त्रीत्व काही प्रदर्शन किया है :

त्वया तु नृपशार्दूल ! रोषमेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्। वा० रा० युद्ध०।११६।१४

क्या आपने मेरा पाणिग्रहण नही किया ? मेरी भक्ति तथा शील को आपने भुला दिया ? इस प्रकार रोती हुई सीता जी लक्ष्मण को आज्ञा देती है कि हे लक्ष्मण ! इस व्यसन की औषधि चिता है, उसे तैयार करो। मिथ्यापवाद से पीड़ित मैं जीवित रहने के लिए उत्साहित नही हूँ।

चितां मे कुरु सौमित्र ! व्यसनस्यास्य भेषजम्।
मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ वा० रा० युद्ध० ११६।१८

राम की मूक अनुमति से लक्ष्मण द्वारा शीघ्र ही चिता प्रज्वलित की जाती है और सीता जी राम की प्रिक्रमा करके देवताओं तथा ब्राह्मणो को करबद्ध प्रणाम कर अग्नि के सपीप, इस प्रकार निवेदन करती हैं :

यदि मेरा हृदय राघव (राम) से कभी न हटता हो, तो लोकसाक्षी अग्नि मेरी रक्षा करे। मुझ शुद्धचरित्रा सीता को राम अपवित्र समझते हैं, यदि मैं शुद्ध हूँ तो लोकसाक्षी अग्नि सर्वतः मेरी रक्षा करे।

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥
यदा मां शुद्धचरित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥

वा० रा० युद्ध०। ११६।२५-२६

सीता जी के उक्त वचनों में निर्भीकता, पवित्रता, आत्मविश्वास एवं पतिप्रेम बोलता है। राम के प्रति तीक्ष्ण व्यंग भी है, अपने को प्राकृत नारी नही समझतीं, उन्हें अपनी भक्ति तथा शील पर स्वाभिमान था।

इस प्रकार सीता की अग्नि जी परिक्रमा कर अन्तरात्मा से निःशंक होकर अग्नि में प्रवेश करती हैं। यह पूर्णाहुति देख कर देव, ऋषि तथा मनुष्य सभी आक्रोष व्यक्त करते हैं। राम के भी अश्रुप्रवाह उत्पन्न हो जाता है और महादेव प्रभृति देवगण आकर राम के इस कार्य की निन्दा करते हैं। ब्रह्मा जी स्तुति करते हुए कहते

---

१. वा० रा० युद्ध०। ११६।५। १३

है : सीता जी लक्ष्मी है, आप विष्णु हैं, आप ही कृष्ण तथा प्रजापति है, आपने मृत्युलोक में रावण के वध हेतु मनुष्य का अवतार लिया है :

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ।
बधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषी तनुम् ।। वा० युद्ध० ११७।२६

पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि यह सर्ग प्रक्षिप्त है क्योंकि युद्ध काण्ड के सर्ग १२४ तथा १२६ में जहाँ संक्षेप में समस्त रामकथा का वर्णन है वहाँ अग्नि परीक्षा का उल्लेख नही मिलता । इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि संक्षिप्त रामकथा में तो अनेक अंश छूट गये हैं, उदाहरणार्थ हनुमान द्वारा रावण के महलों एवं सुन्दरियों के दर्शन का उल्लेख नही है तो क्या इससे उक्त स्थल प्रक्षिप्त मान लिया जाये ?

देवों की स्तुति के पश्चात् स्वयं अग्नि सीता को अंक में लेकर प्रकट होते है और कहते हैं : हे राम ! तुम्हारी यह वैदेही है, इसमें पाप नही है ।

एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते । वा० यु० ।११८।६

राम सीता को सहर्ष स्वीकार करते है : मै जानता हूँ कि सीता परम पवित्र है किन्तु लोक के विश्वास हेतु अग्नि मे प्रविष्ट होती हुई सीता की मैने भी उपेक्षा की थी ।

प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः ।
उपेक्षे चापि वैदेही प्रविशन्ती हुताशनम् ।। वा० रा० युद्ध० ११८।१७

मैथिली सीता त्रिलोकी में शुद्ध है, मै कीर्ति की भाँति इसका भी त्याग करने मे असमर्थ हूँ ।

लोक विजय के पश्चात् राम अयोध्या लौटते है और राज्याभिषेक काल में सीता जी महारानी पद को विभूषित करती है ।

उत्तरकाण्ड जिसे प्रक्षिप्त मानने की परम्परा चल पड़ी है उसमें सीता त्याग का कथानक सीता के चरित्र का एक विशिष्ट अंश उपस्थित करता है । दस सहस्र वर्ष राज्य करने के पश्चात जब सीता गर्भवती होती है और राम उनके दोहद के बारे में प्रश्न करते हैं कि तुम क्या चाहती हो, इस पर सीता जी तपोवन दर्शन तथा वहाँ एक रात्रि विश्राम करने की इच्छा प्रकट करती हैं ।

एष मे परमः कामो यन्मूलफलभोजिनाम् ।
अप्येकरात्रिं काकुत्स्थ निवसेयं तपोवने ।। वा० उत्तर० ४२।३४

द्वितीय दिवस राम को सीता विषयक लोकापवाद सुनने को मिलता है और वे अपने बन्धुओं से परामर्श कर लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं कि गंगापार तमसातट पर

वाल्मीकि ऋषि का आश्रम है, कल प्रातः वहाँ सीता को त्याग कर शीघ्र लौट आओ ।[1] लक्ष्मण राम की आज्ञा से तपोवनदर्शन के व्याज से सीता को जाह्नवी तट तक ले जाते हैं और पार होते ही उनके त्याग का रहस्य बतलाते है । यथा :

सा त्वं त्यक्ता नृपतिना निर्दोषा ममसन्निधौ ।

पौरापवादभीतेन ग्राह्यं देवि न ते ऽन्यथा ॥ वा० रा० उत्तर० ।४७।१३

सीता अपने दुर्भाग्य पर अत्यन्त व्यथित होती है और लक्ष्मण से कहती है कि मेरा यह शरीर दुःख के लिए ही निर्मित हुआ है । दुर्भाग्य के कारण मुझे यह लोकापवाद लगा है । मैं गंगाजल में अपने को विसर्जित कर दूँगी । लक्ष्मण ! राम से कह देना कि आप धैर्य का पालन करें और भाइयों की ही भाँति पुरवासियों से व्यवहार करें । उन्हें मेरे विषय में शोच नहीं करना चाहिए ।[2]

लक्ष्मण के चले जाने पर सीता जी बहुशः विलाप करती है और वाल्मीकि जी उन्हें शुचि तथा पतिव्रता मानकर आश्रम में शरण देते है । वही पर सीता के कुश तथा लव नामक दो युगलपुत्रों का जन्म होता है । एक बार कुश लव राम की सभा में रामायण का गान करते हैं और यह ज्ञात होने पर कि दोनों राम के पुत्र है, वाल्मीकि बुलाये जाते हैं और वे उन्हें राम पुत्र प्रमाणित करते है । राम की इच्छा से सीता भी सभा में उपस्थित होती है और काषायवसिनी अधोदृष्टि सीता पुनः शपथ करती है : 'यदि मै राम के अतिरिक्त मन से भी किसी का चिन्तन नही करती, तो पृथ्वी मुझे विवर दे दे । यदि मै मनसा, वाचा, कर्मणा राम की अर्चना करती हूँ, तो पृथ्वी मुझे विवर द्रे दे, यदि मैं राम को छोड़कर और किसी को नही जानती तो पृथ्वी मुझे विवर दे दे ।'[3]

सब के देखते-देखते पृथ्वी विदीर्ण होती है और दिव्य सिंहासन में पृथ्वी देवी स्वतः अपने हाथो से सीता को प्रतिष्ठित करती है, आकाश से उपलवृष्टि होती है और सीता सदैव के लिए अयोध्या ही नही कलंकलोक से ही मुख मोड़ लेती है ।

---

१. वा० रा० उत्तर० ।४५।१६, १८ ।

२. वा० रा० उत्तर० ।४८।३, १५ ।

३. यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ।
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मिरामात्परं न च ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ वा० रा० उत्तर० ।९७।१५–१७

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण की सीता मुख्यतः एक आदर्श मानवी है, किन्तु असाधारण। उनमें राम के प्रति अनन्य अनुराग है, कष्टों से भिड़ने की अप्रतिम शक्ति है। वे असाधारण प्रतिभाशील, देशकालाभिरत, वाग्मिनी, मानिनी, शुचि, दक्ष एवं कार्यकुशल हैं। वे भाग्यवादिनी नारी है, उनमें दया, करुणा, उदारता आदि दिव्यगुण वर्तमान है, प्रकृति के प्रति उनके चित्त में अतीव आकर्षण है। वे परुष एवं अरुन्तुद वचनों को भी यथार्थ की सीमा में प्रयुक्त करती है। शौर्य होते हुए भी सयम एवं तप की ओर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। वे अहिंसा को विशेष कार्य मानती है। आतिथ्य उनका वंशानुक्रमजनित गुण है। सरल, सरस एवं सौम्यमूर्ति सीता अभिशापो की बलिवेदी पर पति की आज्ञा अथवा इच्छा को पुरस्कृत करती हुई जीवनोत्सर्ग करती हैं। इस प्रकार सीता एक आदर्श भारतीय नारी है, जिन्होने दुःख की प्रचण्ड लपटो मे अपना तन, मन, जीवन अथवा सर्वस्व समर्पित कर दिया।

महाभारत में सीता का स्वरूप

महाभारत भारतीय संस्कृति का आकर ग्रन्थ है। व्यास जी ने इस ग्रन्थ मे राम चरित का उल्लेख मुख्यतया तीन पर्वो में किया है (१) वनपर्व, (२) द्रोण पर्व, (३) शान्ति पर्व। वनपर्व के अन्तर्गत स्वतन्त्र रूप से रामकथा का उल्लेख दो बार हुआ है। प्रथम उल्लेख भीम हनुमान सम्वाद के अन्तर्गत है, जिसमे २० श्लोकों मे राम चरित का वर्णन किया गया है किन्तु द्वितीय उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विस्तृत है, इसे रामोपाख्यान के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है। गीताप्रेस गोरखपुर के प्रामाणिक संस्करण के अनुसार रामोपाख्यान १८ अध्याय एव ७३६ श्लोकों मे वर्णित है।

द्रोण पर्व की रामकथा भी संक्षिप्त है। इसमें कुल २५ श्लोको मे अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड की संक्षिप्त कथावस्तु का उल्लेख हुआ है। षोण राजोपाख्यान के अन्तर्गत इस कथा का उल्लेख हुआ है।

शान्ति पर्व में कृष्ण युधिष्ठिर संवाद के अन्तर्गत षोडश राजोपाख्यान प्रसंग मे श्लोकों में राम कथा वर्णित है। कथावस्तु अति संक्षिप्त है। जिससे कोई महत्वपूर्ण सामग्री नही प्राप्त होती। इसके अतिरिक्त कई स्थलो पर रामकथा के संकेत मिलते है किन्तु सीताचरित्र की दृष्टि से उनका मूल्य नही है।

वन पर्व की कथा

वनपर्व की प्रथम रामकथा हनुमद्भीम सम्वाद के अन्तर्गत आती है। अध्याय १४७ के अन्तिम ४ श्लोक तथा अध्याय १४८ के १६ श्लोक राम कथा से सम्बद्ध है। कथानक वनवास वर्णन से प्रारम्भ होता है और राम के राज्याभिषेक वर्णन से समाप्त

होता है। इसमें सुवर्णमृग मारीच के छल से रावण द्वारा सीता जी का अपहरण, सुग्रीव मैत्री तथा वालिवध, सीतान्वेषण तथा सम्पाति से भेंट, हनुमान द्वारा समुद्र सन्तरण तथा रावण निवेश में सीता के दर्शन, लंकादहन, सेतुबन्ध, सपरिवार रावण संहार तथा विभीषण का राज्याभिषेक, सीता प्रत्यानयन, अयोध्या प्रत्यागमन एवं अयोध्या में राज्याभिषेक प्रभृति कथाओं का क्रमशः उल्लेख मिलता है। सीता जी की अग्नि परीक्षा के अतिरिक्त कई और कथानक उपेक्षित रहे हैं। उदाहरणार्थ जटायु की चर्चा भी नहीं है। इसी प्रकार चित्रकूट वास जैसी महत्वपूर्ण स्थिति का भी उल्लेख नहीं किया गया।

प्रस्तुत कथानक के आधार पर राम मनुष्य शरीर धारी विष्णु हैं। सीता जनक राज सुता हैं, वे सुरसुतोपमा भी कही गयी हैं, जिससे उनके देवी रूप का आभास होता है।

सुतां जनकराजस्य सीतां सुरसुतोपमाम्। महा० वन० १४८।७

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संक्षिप्त कथानक के कारण अग्नि परीक्षा का उल्लेख तो नहीं मिलता, किन्तु सीता जी के लंका से लौटने के प्रसंग में कवि ने सीता की उपमा वेदश्रुति से दी है[1] और उन्हें साध्वी विशेषण भी दिया है। इससे सिद्ध होता है कि कवि की सीता विषयक धारणा अत्यन्त पवित्र रही है यथा :

ततः प्रत्याहृता भार्या नष्टा वेदश्रुतिर्यथा।
तयैव सहितः साध्व्या पत्न्या रामो महायशाः॥ महा० वन० १४८।१४

इस प्रकार इस कथानक में सीता त्याग की कथा का समावेश नहीं मिलता। सीता के चरित्र की दृष्टि से केवल इतना ज्ञात होता है कि वे विष्णु रूप राम की साध्वी पत्नी थीं, वे विदेह पुत्री होते हुई भी देवी थीं।

वन पर्व की द्वितीय कथा विस्तृत है। कवि ने अष्टादश अध्यायों (२७४+२९१) में क्रमशः १७+४०+१६+५६+४३+४८+७४+३१+५४+४१+१५+२९+२८+२६+३३+३३+७० = ७२६ श्लोकों में रामकथा का वर्णन किया है। अधिकांश कथा वाल्मीकि रामायण के ही आधार पर वर्णित है। यहाँ पर हमारा प्रतिपाद्य विषय सीताकथानक है, अतः तत्सम्बन्धी सामग्री पर ही विचार किया जायेगा।

इस कथा में भी पूर्व कथा की भाँति सीता जी विदेहराज जनक की आत्मजा मानी गयी हैं, अन्तर केवल यह है कि इसमें सीता जी का निर्माता त्वष्टा माना गया है यथा :

---

१. महा० वन। १४८।१४

विदेहराजो जनक: सीता तस्यात्मजा विभो।
यां चकार स्वयं त्वष्टा रामस्य महिषी प्रियाम् ।। महा० वन० ।२७४।६

यद्यपि इस स्थल पर भी भूमिजा सीता का उल्लेख नही मिलता किन्तु त्वष्टा द्वारा सीता जी के निर्माण की बात उनकी अलौकिकता की ओर इंगित करती हुई प्रतीत होती है।

इस कथानक मे सीता जी के विवाह एव पूर्व प्रसंग का विवरण नही दिया गया, केवल विवाह का संकेत मात्र आया है। वस्तुतः कथावस्तु रामवनवास से ही आरम्भ होती है। वनगमन के प्रसंग मे भी कवि ने सीता की उपेक्षा की है, केवल इतना उल्लेख किया है कि जनकात्मजा वैदेही सीता (भार्या) भी राम के पीछे गयी।

सीता च भार्या भद्रं ते वैदेही जनकात्मजा। (महा० वन० ।२७७।२ ६)

आगे चल कर सीताहरण प्रसंग मे कवि ने सीता द्वारा कनकमृग मारने की प्रेरणा दिलाकर राम को मारीच के पीछे जाने का निर्देश दिया है, किन्तु यहाँ पर भी सीता की वाक्यावली का उल्लेख नही किया। जब मारीच 'हा सीते, हा लक्ष्मण' कह कर प्राण त्यागता है तब करुणवाणी सुन कर सीता द्रवित हो जाती है और लक्ष्मण के समझाने पर भी रुदन करती है और स्त्रीस्वभाववश लक्ष्मण पर आक्षेप करती है।

हे मूढ़ ! तुम जो चाहते हो, वह कार्य नही होगा। मै शस्त्र लेकर आत्मघात कर लूँगी, पर्वतशिखर से कूदकर प्राण दे दूँगी अथवा अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगी, किन्तु पति राम को छोडकर तुम्हें कभी न स्वीकार करूँगी। क्या सिंहनी कभी श्रृगाल का वरण कर सकती है।[1]

नैष कामो भवेन्मूढ यं त्वं प्रार्थयसे हृदा।
अप्यहं शस्त्रमादाय हन्यामात्मानमात्मना ।।
पतेय गिरिश्रृंगाद्वा विशेयं वा हुताशनम्।
रामं भर्तारमुत्सृज्य न त्वहं त्वां कथंचन ।। महा० वन० ०।२७।२७,२८

सीता के उक्त कथन में कवि ने स्त्रीस्वभाव को ही मुख्य कारण बतलाया है।[1] हमारे विचार से इन वाक्यों द्वारा सीता का दृढपातिव्रत्य अधिक व्यक्त हो रहा है, किन्तु लक्ष्मण जैसे ब्रह्मचारी एवं आदर्शसेवक को क्रोष्टुक (श्रृगाल-सियार) जैसा अपशब्द कहना सीता जी के व्यक्तित्व के सर्वथा प्रतिकूल है। जब रावण ने उनका अपहरण किया था, तब वे गिरिश्रृंग से कूद कर अथवा अग्नि में प्रविष्ट होकर क्यों नही समाप्त

---

१. हतानै स्त्रीस्वभावेन शुक्लचारित्रभूषणा। महा० वन० ।२७८।२६ पूर्वा०

हो गयी ? अस्तु कवि का यह कथन कि स्त्रीस्वभाववश सीता ने ऐसा कहा, सर्वथा न्याय्य एवं संगत है।

सीता जी के कटुवचनो से विचलित लक्ष्मण अपने कान बन्द कर राघव के पास प्रस्थान करते है। यहाँ लक्ष्मण रेखा आदि कथाओं का कोई उल्लेख नही किया गया।

इसी बीच यतिवेश मे रावण उपस्थित होता है, धर्मज्ञा जानकी फलमूलादि द्वारा उसका आतिथ्य करना चाहती है, किन्तु वह आतिथ्य की अवहेलना करता है रावण के परिचय एव प्रस्ताव से सीता कर्ण वन्द करती है कि ऐसा मत कहो। आकाश गिर जायँ, सनक्षत्रा पृथ्वी खण्डशः हो जाये, अग्नि शीतल हो जाये, किन्तु मै रघुनन्दन का परित्याग नही कर सकती। यह कैसे सम्भव है कि महामत्त गजराज को छोड़ कर हस्तिनी शूकर का स्पर्श करे।

> प्रपतेद् द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकली भवेत्।
> शैत्यमग्निर्रियान्नाहं त्यजेयं रघुनन्दनम्॥
> कथं हि भिन्नकरटं पद्मिनं वनगोचरम्।
> उपस्थाय महानागं करेणुः सूकरं स्पृशेत्॥ महा० वन० २७८।३८-३९

इतना कहती हुई सीता के ओष्ठ क्रोधाधिक्य से फड़कने लगते है, वे अपने हाथ पैर पटकती है। रावण आश्रम मे प्रविष्ट उस सीता को मना करता है, उसकी भर्त्सना से सीता चेतनाशून्य हो जाती है। रावण राम राम कहकर रोती हुई सीता का अपहरण करके आकाश मार्ग से लंका की ओर प्रस्थान करता है। सीता पथ में जहाँ सर, सरित अथवा आश्रम देखती है, अपने आभूषण फेंकती जाती है।

रावण सीता को लेकर तपस्वियो के आश्रम की भाँति अशोकवाटिका मे रख देता है। सीता पति के स्मरण से दुर्बल हो गयी थी। उन्होने तपस्विनी का तेज धारण कर लिया था, वे उपवास एव तप करके समय बिता रही थी, कन्दमूल फल उनका भोजन था।[1]

सीता जी के उक्त आचरण से यह सिद्ध होता है कि वे आदर्श पतिपरायणा नारी थी। उनमें एक महती सहिष्णुता, संयम एव धर्म के प्रति अक्षय अनुराग था।

---

१. सीतां निवेशयामास भवने नन्दनोपमे।
अशोकवनिकाभ्याशे तापसाश्रमसन्निभे॥
भर्तृस्मरण तन्वगी तापसीवेषधारिणी।
उपवास तपःशीला तत्रास पृथुलेक्षणा।
उवास दुःखवसति फलमूल कृताशना॥ महा० वन० ।२८०।४१–४३

जव उनसे राक्षसी कहती है कि तुम हमारे स्वामी रावण की अवहेलना करोगी तो हम तुम्हे तिलश : वाँट कर खा जायगी, तव भी सीता क्रोध नही करती। अपने पतिव्रत पर दृढ़ होकर कहती है : आर्या ! मुझे जीवन का लोभ नही है, आप मेरा भक्षण कर लें, मुझे तो राम प्रिय है। मैं निराहार रह कर अपने अंगो को सुखा डालूँगी, किन्तु राघव के अतिरिक्त अन्य पुरुष का संग नही करूँगी।[1]

सीता जी के उक्त कथन में निर्भीकता, दृढ़ता एवं आदर्श पतिप्रेम व्यक्त होता है। कष्ट सहिष्णुता की मात्रा तो इतनी अधिक प्रतीत होती है, जो सीता जैसी आदर्श पत्नी के लिए उचित एवं सम्भव है।

जव पतिशोकपीड़िता, मलिनवसना, दीना सीता के पास जाकर रावण उनसे अपनी पत्नी वनने का प्रस्ताव करता है, तव वह तृण की ओट से रावण को उत्तर देती हैं : हे रावण ! मुझ अभागिनी ने तुम्हारे मुख से इस प्रकार के विषादयुक्त वचन अनेक वार सुने। भद्र ! तुम अपना मन परिवर्तन करो। मैं सतत पतिव्रता परदारा हूँ, तुम्हे अलभ्य हूँ। तुम मुझे विवश कर मेरा घर्षण करोगे, इससे तुम्हे कौन सी प्रीति प्राप्त होगी ? तुम लोकपाल तुल्य पराक्रमी हो, प्रजापतिब्रह्मा के समान विप्र हो, तुम्हारे पिता ब्रह्मा की सन्तान है, तुम कुबेर के भाई हो, जो इन्द्र का मित्र है। क्या तुम कुबेर का परिचय देते हुए लज्जित नही होते।[2]

सीता के उक्त कथन मे उपदेश प्रवृत्ति की झलक है। वे प्रशंसात्मक नीति द्वारा रावण को आदर्श मार्ग पर लाना चाहती है, जिसमें व्यक्तिगत आपत्ति से मुक्ति पाना प्रधान लक्ष्य है। यहाँ सीता न तो अपशव्दों का प्रयोग करती है न उतना क्रोध ही प्रदर्शित करती है, अपितु सर्वाधिक जिस भाव की अभिव्यक्ति करती है वह अपना पातिव्रत्य जिसकी रक्षा में वे प्राणपण से तत्पर है। उनके कन्ठ से परवशता एवं निरीहता खुल कर वोलती है।

महाभारत मे सीता हनुमान से परिचय प्राप्त कर सन्देह नही करती, क्योंकि उन्होंने अविन्ध्य नामक रामपक्षीय राक्षस से सुग्रीव का परिचय एवं हनुमत्कथा के साथ राम परिचय सुना था :

अवैमि त्वां हनूमन्तमविन्ध्य वचनादहम्।
अविन्ध्यो हि महावाहो राक्षसों वृद्ध सम्मतः॥ महा० वन० ।२८२।६७

---

१. आर्याः खादत मां शीघ्रं न मे लोभोऽस्ति जीविते।
बिना तं पुण्डरीकाक्षं नीलकुंचित मूर्धजम्॥ महा० वन० ।२८०।५०-५२

२. महा० वन० ।२८१।१७-२४

सीताजी हनुमान जी को अभिज्ञान स्वरूप मणि (चिन्तामणि) प्रदान करती हैं और चित्रकूट में घटित जयन्तवृत्तान्त को भी अभिज्ञान के रूप में बतलाती हैं। इससे उनकी बुद्धिमता एवं प्रीति दोनों का आदर्श प्रतीत होता है। कवि ने यहाँ सीता के क्लेशों का अधिक चित्रण नहीं किया।

जब रावण वध हो जाता है और अविन्ध्य नामक वृद्धामात्य विभीषण को साथ लेकर सीताजी को प्रस्तुत करता हुआ राम से कहता है कि हे काकुत्स्य। इन सच्चरित्रा जानकी देवी को स्वीकार करें। उस समय अश्रुपूर्णा, जटिला, मलिनवासना वैदेही को देखकर राम उनकी भर्त्सना करते हुए कहते हैं :

वैदेही! तुम मुक्त हो, जाओ। मैं धर्मज्ञ होता हुआ निशाचर के गृह में स्थित तुमको कैसे स्वीकार करूँ? तुम सच्चरित्र हो अथवा दुश्चरित्र मैं श्वानोच्छिष्ट हविवत्[१] तुम्हें कैसे स्वीकार कर सकता हूँ।

गच्छ वैदेहि मुक्ता त्वं यत्कार्यं तन्मयाकृतम्।
कथं ह्यस्मद् विधो जातु जानन् धर्मविनिश्चयम्।
परहस्तगतानारीं मुहूर्तमपि धारयत्॥ महा० वन० २९१।१०-१२

सीता जी राम के इन कठोर वचनों को श्रवण कर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं, हर्ष समाप्त हो जाता है। यहाँ कवि ने सीता जी को कुछ उत्तर देने के लिए अवसर ही नहीं दिया। सीताजी के भूमि पर गिरते ही ब्रह्मा प्रभृति देव आ जाते हैं और सीता की शुद्धि की साक्षी देते हैं।[१]

इन देव कथनों में ब्रह्मा का कथन विशेष उल्लेखनीय है। इस दुष्ट रावण ने अपने वध के लिए ही सीता का अपहरण किया था। रावण को शाप था कि यदि किसी अकामा स्त्री को भोग करोगे तो तुम्हारा सिर शतधा विदीर्ण हो जायगा, अतः सीता की पवित्रता पर शंका न करते हुए तुम (राम) इसे स्वीकार करो।

वधार्यमात्मन स्तेन हृता सीता दुरात्मना।
नलकूबरशापेन रक्षा चास्याः कृता मया॥
यदि ह्यकामां सेवेत स्त्रियमन्यामपि ध्रुवम्।
शतधास्य फलेन्मूर्धा इत्युक्तः सोऽभवत् पुरा॥
नात्रशंका त्वया कार्या प्रतीच्छेमां महाद्युते।
कृतं त्वया महत् कार्यं देवानाममरप्रभ॥ महा० वन०।२९१।३३-३५

---

१. सुवृत्तामसुवृत्तां वाप्यहं त्वामद्य मैथिलि।
नोत्सहे परिभोगाय श्वावलीढं हविर्यथा॥ महा० वन० ।२९१।१३

इसके पश्चात् राम सीता जी को स्वीकार कर लेते है, परमानन्द से राम पक्ष आनन्दित हो जाता है। सीता जी हनुमान जी को आशीर्वाद देती हैं कि हे पुत्र राम की कीर्तिपर्यन्त तुम्हारा जीवन अमर है। मेरे प्रसाद से तुम्हें दिव्य उपभोग प्राप्त होगे। यथा :

> सीता चापि महाभागा वरं हनुमते ददौ।
> रामकीर्त्या समं पुत्र ! जीवितं ते भविष्यति ।।
> दिव्यास्त्वामुपभोगाश्च मत्प्रसादकृताः सदा । महा० वन०।२९१।४४-४५

इस प्रकार राम सीतादि सहित पुष्पक विमान मे वैठकर अयोध्या आते है, वहाँ राज्याभिषेक होता है और राम दस अश्वमेध यज्ञ करते है।

उक्त रामोपाख्यान मे सीता त्याग का अभाव है। लवकुश कथा एवं सीता-निर्याण ये प्रसग अछूते रह गये है।

द्रोण पर्व की कथा

प्रस्तुत कथानक दोणपर्व के ५९वे अध्याय मे षोडश राजोपाख्यान के अन्तर्गत २५ श्लोको मे वर्णित है। कथाश्रावक श्री नारद जी हैं, संजय कथा के श्रोता है। वस्तुतः उक्त कथानक मे रामकथा तो कुल १० श्लोकों में वर्णित है, (रामं दाशरथि··· बहुगुणैर्नृपः), किन्तु शेष मे रामराज्य की महत्ता, एकादश सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्यकाल तथा चतुर्विधा प्रजा सहित राम का स्वर्गगमन वर्णित है। मूलकथा वस्तु राम वनवास से प्रारम्भ होती है और राज्याभिषेक के अनन्तर राजसूय तथा अश्वमेधयज्ञ के उल्लेख के पश्चात् समाप्त होती है। इस सक्षिप्त कथावस्तु से सीता के जन्म अथवा चरित्र पर कुछ भी प्रकाश नही पड़ता। इस प्रकार सीता विषयक सामग्री की दृष्टि से उक्त कथानक का कोई महत्व नही प्रतीत होता।

शान्ति पर्व की कथा

प्रस्तुत सर्ग के २९वें अध्याय में षोडशराजोपाख्यान के अन्तर्गत श्लोक ५१ से ६२ पर्यन्त १२ श्लोको के द्वारा रामराज्य की महत्ता का उल्लेख किया गया है। इसमें यदि कथावस्तु का अभाव-सा कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। इसमें राम के चतुर्दश वर्ष वनवास तथा राम द्वारा १० अश्वमेधयज्ञो के करने का उल्लेख किया गया है।

> स चतुर्दशवर्षाणि वने प्रोष्य महातपाः।
> दशाश्वमेधान् जारुथ्यानाजहार निरर्गलान् ।। महा० शान्ति० ।२९।५९

इसके अतिरिक्त राम द्वारा एकादश सहस्र वर्षपर्यन्त राज्य करने का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकार इस पर्व से भी सीता के विषय में कोई सूचना नहीं प्राप्त होती।

रामायण तथा महाभारत की सीता की तुलना

महाभारत की पूर्ववर्णित चार राम कथाओं के विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि वन पर्व का रामोपाख्यान ही अन्य वर्णनों की अपेक्षा सीता चरित्र पर अधिक प्रकाश डालता है, अतः रामायण की सीता के साथ तुलना करने में हमें रामोपाख्यान का ही विशेष आधार लेना समीचीन प्रतीत होता है। प्राचीन धारणा यह थी कि यही रामोपाख्यान वाल्मीकि की रचना का मूलाधार है, किन्तु अब यह धारणा भ्रान्त सिद्ध हो चुकी है।

दोनों ग्रन्थों में सीता जी के तुलनात्मक चरित्र एवं परिचय के प्रस्तुतीकरण हेतु सीता के जीवन को हम निम्नलिखित अंशों में विभाजित कर सकते हैं :

(क) सीता जन्म तथा परिवार
(ख) सीता विवाह
(ग) वनयात्रा
(घ) सीता हरण
(च) लंकावास
(छ) अग्निपरीक्षा
(ज) सीता त्याग
(झ) सीता निर्याण

१. सीता का जन्म तथा परिवार

वाल्मीकि रामायण के अनुसार (सर्ग ११८।२७-३१ अयो०) मिथिलाधिप धर्मात्मा वीर जनक ने हल से पृथ्वीकर्षण करते समय भूमि से एक पुत्री प्राप्त की थी। जनक के कोई सन्तान नहीं थी, अतः तनयाभाव से उन्होंने सीता पर स्नेह किया और लालन-पालन में निरत हुए। इस प्रकार रामायण की सीता अयोनिजा है, किन्तु महाभारत के अनुसार सीता विदेहराज जनक की आत्मजा है। इसके अतिरिक्त स्वयं त्वष्टा ने उनकी रचना की थी (वन०।२७४।९)। रामायण की सीता के पिता के किसी अन्य पारिवारिक सदस्य का परिचय उक्त स्थान पर नहीं मिलता न तो महाभारत में ही ऐसा है। रामायण का सीता जन्म अपेक्षाकृत विस्तृत है जब कि महाभारत का सीता जन्म एक ही श्लोक में है।

ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण के रचनाकाल में ही अयोनिजा सीता जनक-तनया के रूप में प्रसिद्ध हो गयी थीं। तनया शब्द रामायण में ही उल्लिखित है, अस्तु महाभारत में उसी मान्यता के आधार पर सीता को जनक अथवा विदेह की आत्मजा

के रूप में प्रस्तुत किया है। प्राय: ऐसा लोक मे भी देखा जाता है कि दत्तक पुत्र भी कालान्तर में आत्मज कहे जाने लगते है।

२. सीता विवाह

रामायण के अनुसार जनक सीता को वीर्यशुल्का घोपित करते है, जिसमें शैव धनुप का अधिज्य करना अनिवार्य था। असमर्थ राजा मिलकर जनक पर आक्रमण करते है, किन्तु एक वर्प निरन्तर युद्ध के पश्चात् देवप्रसाद से जनक चतुरगबल प्राप्त करते है और उसकी सहायता से राजाओ को पराजित कर देते है। वही धनुप कालान्तर में राम लक्ष्मण के समीप उपस्थित किया जाता है (रा० वा०।६६)। राम उस धनुप को विश्वामित्र की आज्ञा से अनेक राजाओं की उपस्थिति में आकृष्ट करते है, इतने में वह भग हो जाता है। इस प्रकार दशरथ जी की उपस्थिति में चारो वन्धुओ का विवाह सम्पन्न हो जाता है (रा० वा० ६७-७३)।

महाभारत के केवल एक श्लोक (वन०।२७७।५) मे इतना सकेत मिलता है कि दशरथ के ब्रह्मचारी पुत्रों का विवाह सम्पन्न हुआ (कृतदाराश्च); इसके अतिरिक्त कोई विशेप विवरण प्राप्त नही होता।

३. वनयात्रा

रामायण में यह प्रकरण अत्यन्त विस्तृत है और सीता की भूमिका तो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जव सीता जी के समक्ष चिन्ताकुल राम प्रविष्ट होते है (उसी दिन राज्याभिषेक होना था, पर नही हो सका) तव सीता जी सन्देह के कारण प्रश्नो की झड़ी लगा देती है (सर्ग २६।८-१०) जिससे उनकी वहुज्ञता का प्रमाण मिलता है। महाभारत में इसके लिए कोई अवकाश नही निकाला गया। रामायण की सीता तो राम के साथ वन जाने के लिए अतिशय आग्रह करती है (अयो० सर्ग २७।२-२३) (सर्ग २९।२-२१)। उनके आग्रह मे प्रेम, विरह, रोष एव आक्षेप भी स्थान पा जाते है (अयो० सर्ग ३०।३-२५), उनमें प्रणय के साथ अभिमान भी व्यक्त होता है, किन्तु महाभारत मे केवल एक श्लोक (वन०।२७७।२९) मे इतना सूचित किया गया है कि राम के पीछे लक्ष्मीवान् धनुष्पाणि लक्ष्मण गये और राम की भार्या जनकात्मजा-वैदेही भी साथ गयी।

इस प्रकार रामायण की सीता का चरित्र एवं उनके गुण-दोषों का विवरण रामायण मे तो प्राप्त होते है, किन्तु सूक्ष्म कथानक के कारण महाभारत मे सीता के इस जीवन प्रकरण पर कोई प्रकाश नही डाला गया। वाल्मीकि रामायण के (सर्ग ११७-११८) अनुसार श्री राम अत्रि के आश्रम जाते है, वहाँ उनकी पत्नी अनसूया जी सीता को

पतिव्रतधर्म का उपदेश देती है और दिव्यांगराग तथा वस्त्रमाल्याभूषण भी प्रदान करती हैं। सीता अपने जन्म से विवाह तक का वृत्तान्त उनसे वतलाती है। किन्तु महाभारत की सीता के लिए यह प्रकरण भी मौन है, वहाँ तो चित्रकूट से सीधे सरभंग आश्रम मे जाकर राम गोदावरी तट पर वस जाते हैं।

वाल्मीकि की सीता अहिंसा को विशेष गुण मानती हैं, वे श्री राम से भी धनुप त्यागने का आग्रह करती हैं (अरण्य सर्ग ९-१०) किन्तु महाभारत मे सीता की इस दयालु प्रवृत्ति के लिए संकेत भी नही मिलता।

४. सीता हरण

वाल्मीकि की सीता (सर्ग ४३ अरण्य) स्वर्णमृग को देख कर कुतूहलवश राम लक्ष्मण को मृग दिखाकर राम से जीवित अथवा मृत किसी भी रूप मे लाने का आग्रह करती है किन्तु महाभारत की सीता केवल अर्द्धश्लोक (वन० । २७८ । १८) में राम को मृग लाने की प्रेरणामात्र देती है। वाल्मीकि जी ने सीता के लोभ के कारणो पर भी प्रकाश डाला है, वे मृग के तेज, क्षमा, दीप्ति, रूप, लक्ष्मी तथा स्वरसंपत् से मुग्ध थी। इस प्रकार वाल्मीकि की सीता में स्त्री सुलभ स्वाभाविक दुर्बलताओ का भी संकेत किया गया है।

वाल्मीकि की सीता मारीच के 'हा लक्ष्मण' शब्द को सुनकर लक्ष्मण से राम की सहायतार्थ जाने का अनुरोध करती है, किन्तु प्रथम अनुरोध पर लक्ष्मण भ्रातृभक्ति के कारण सीता को एकाकिनी छोड़कर नहीं जाते, इस पर सीता जी लक्ष्मण को कटुशब्द अथवा लांछन द्वारा व्यथित करती है, फिर भी लक्ष्मण उन्हें राम की वलवीर्यवत्ता वतला कर शान्त करने की चेष्टा करते हैं, किन्तु अब की वार सीता अत्यन्त क्रुद्ध होकर लक्ष्मण को अनार्य, अकरुण, नृशंस, कुलपांसन जैसे दुर्वचन कहती हुई कामुक घोषित करती है और भरत द्वारा प्रेपित छद्मकर्त्ता भी समझती है। इसके अतिरिक्त लक्ष्मण के न जाने पर आत्महत्या करने का भय दिखलाती हैं। इस वार लक्ष्मण भी तिलमिला उठते है और जाने के लिए उद्यत होते हैं किन्तु जाने के पूर्व सीता पुन: रोदन एवं आक्रोशन प्रारम्भ कर देती हैं, फलत: लक्ष्मण सीता का अभिवादन कर राम के पास प्रस्थान करते हैं (अरण्य० । ४५ । ४)।

इस प्रकार वाल्मीकि की सीता इस प्रसंग में अत्यन्त परुप, क्रोधनशीला, शंकालु, पतिपरायण एवं सामान्य रुदनशीला नारी है, वे जाते लक्ष्मण को तीन वार खरी खोटी सुनाती हैं। परन्तु महाभारत की 'सीता, हा सीता हा लक्ष्मण' शब्द सुनकर द्रवित हो जाती है लक्ष्मण के समझाने पर वे भी रोदन करने लगती है और लक्ष्मण के प्रति शंकालु हो जाती है (वन० । सर्ग २७८ । २५-२९)। वे साध्वी एवं पतिव्रता

हैं, अतः लक्ष्मण को मूढ़ कहकर कामी सिद्ध करती हैं, वे भी आत्महत्या की धमकी देती है और व्यंग द्वारा लक्ष्मण को श्रृगाल (क्रोष्टुक) तक कह डालती है। अन्तर यह है कि महाभारत की सीता को एक बार ही वचनवज्र चलाने पर सफलता मिल जाती है जब कि रामायण की सीता को तीन बार उक्त शस्त्र का प्रयोग करना पड़ा था। इस प्रकार रामायण की सीता महाभारत की सीता की तुलना मे अधिक परुषा एवं सशंक हैं। महाभारत की सीता भरत की अभिसन्धि की शंका नही करती, जैसी शंका रामायण की सीता करती है।

वाल्मीकि की सीता परिव्राजक-से वेषधारी रावण का अतिथि सत्कार करती है (अरण्य० । ४६ । ३२) और रावण आतिथ्य स्वीकार भी करता है, महाभारत की सीता यतिवेषप्रतिच्छन्न रावण का कन्दमूलफल आदि से सत्कार करती है (वन० २७८ । ३३)। अन्तर यह है कि रामायण की सीता रावण से अपना पूर्ण परिचय देती है, महाभारत की सीता ऐसा कुछ नही करती। रामायण की सीता रावण से कुल गोत्रादि का परिचय पूंछती है किन्तु महाभारत की सीता नही पूँछती, स्वतः रावण ही अपना परिचय प्रस्तुत करता है।

वाल्मीकि की सीता रावण के प्रस्ताव से क्षुब्ध होकर उसे जम्बुक आदि अपशब्द कह कर उससे राम की महत्ता एवं अपने पातिव्रत्य का निर्भीकता पूर्वक प्रतिपादन करती है (अरण्य० सर्ग ४७) किन्तु महाभारत की सीता रावण के प्रस्ताव को सुनकर कान बन्द कर लेती है (पिधाय कर्णौ) और रावण से ऐसा करने के लिए निषेध करती है। वे भी अपने पातिव्रत्य का स्पष्ट चित्रण करती है, उनमें भी क्रोध एव क्षोभ है। वे भी राम की तुलना मे रावण को तुच्छ एवं हेय मानती है। उनकी दृष्टि मे राम यदि गजेन्द्र है तो रावण सूकर है (अरण्य० । २७८)। वाल्मीकि की सीता रावण को लज्जित करती है और सर्वनाश का भय भी दिखलाती है किन्तु महाभारत की सीता ऐसा नही करती, वे वाल्मीकि की सीता की तुलना में अधिक भीरु है अधिक नीतिज्ञ भी नही, सौम्य है। रावण द्वारा बलपूर्वक हरण करने पर वे राम का नाम लेकर आक्रोश करती है, यह चित्रण दोनो ग्रन्थो में एक-सा है। हरण के समय वाल्मीकि की सीता लक्ष्मण को भी पुकारती है कैकेयी पर दोषारोपण करती है, गोदावरी, वनलता तथा पशुपक्षियों से रावण द्वारा अपने हृत होने के समाचार को राम के कर्णो तक पहुँचा देने की प्रार्थना करती है, पर महाभारत की सीता ऐसा कुछ नही करती। इस प्रकार रामायण की सीता अधिक विकल एवं मुखर है, जब कि महाभारत की सीता विकल होती हुई भी संयत एवं गम्भीर है।

रामायण की सीता हितैषी गृद्धराज के विनाश पर भी विलाप करती हैं, किन्तु महाभारत की सीता के लिए यह घटना सर्वथा उपेक्षणीय है। कथा की सूक्ष्मता

के कारण ही यह न्यूनता प्रतीत होती है। रामायण की सीता मार्ग मे भी रावण को कटुशब्द सुना कर कोसती जाती हैं (अरण्य० ५३ सर्ग) किन्तु महाभारत की सीता विवश होकर शान्त रहती है, अन्तर्वेदना भले ही कितनी अधिक क्यो न हो। रामायण की सीता पथ मे गिरश्रृंग में स्थित पंच वानरो को देखकर कौशेयवस्त्र तथा आभरण छोड़ देती हैं (अरण्य० ५४ सर्ग)। उद्देश्य यह था कि सम्भवतः ये राम को मेरा पता बता देगे, महाभारत की सीता भी गिरिप्रस्थ में स्थित पंच वानरों को देख कर महद्दिव्य वस्त्र फेंक देती है (वन० २७८। ६)। यहाँ आभूषणों के फेकने का उल्लेख नही किया गया।

५. लंकावास

वाल्मीकि रामायण में जिस समय अशोकवाटिका में रावण उपस्थित होता है और सीता जी से प्रणय प्रस्ताव रखता है, उस समन सीता तृण की ओट से रावण से वार्ता प्रारम्भ करती हैं। वे रावण को सदाचार की शिक्षा देती है, स्वयं को दृढ़ पतिव्रता बताकर उसे विरक्त करना चाहती हैं और थोड़ी ही देर में मुख फेर कर उससे उपेक्षाभाव से वार्ता करती है। वे रावण तथा उसके राष्ट्र के विनाश का भी भय दिखाती हे। वे रावण को यह भी शिक्षा देती है कि तुम राम से सन्धि कर लो और उनकी शरण में जाकर क्षमायाचना करो। अन्ततः वे राम की तुलना में रावण को कुत्ता (शुना) तक कह कर उसका तिरस्कार करती है (सुन्द०। २१ सर्ग)।

महाभारत की सीता भी लंका में अशोकवन मे तपस्विनी के वेष में रहती हैं। जब रावण वहाँ जाकर उनसे प्रणय निवेदन करता है (वन०। २८१) उस समय सीता तृण की ओट से (तृणमन्तरतः कृत्वा) ही वार्ता प्रारम्भ करती है। यहाँ सीता जी को मुख फेरकर वार्ता करने का उल्लेख नही मिलता। यहाँ पर सीता रावण को सच्च-रित्रता का उपदेश देती है, उसके कुल की प्रशंसा करती है, उसे लज्जित भी करती हे। दोनो ग्रन्थों की सीताओं मे मुख्य अन्तर यह है कि महाभारत की सीता रामायण की सीता की तुलना मे अधिक दीन है, उनमे यह प्रवृत्ति नही कि देश या राष्ट्र के नाश का भय दिखला कर रावण को विरत कर सके। रामायण की सीता राम से सन्धि का प्रस्ताव करने का सुझाव देकर रावण को राजनीति दाँवपेंच में उलझाना चाहती हैं, किन्तु महाभारत की सीता को राजनीति से कोई रुचि नहीं। वे एकदम पतिव्रता, धीर एवं गम्भीर है।

रामायण की सीता के लिए रावण केवल दो मास की अवधि देता है (सुन्दर० ।२२ सर्ग) किन्तु महाभारत की सीता के समक्ष कोई ऐसी अवधि नही थी। राक्षसियों की तर्जना पर रामायण की सीता मौन-सी है किन्तु महाभारत की सीता उन्हें आर्या

सम्बोधन देकर (२८०सर्ग, वन०।५०-५१) उनसे निवेदन करती हैं कि आप लोग मुझे खा लें, मुझे प्राणो का मोह नही है, मैं राम को त्याग कर पर पुरुष का वरण नही करूँगी। इस प्रकार रामायण की सीता राक्षसियों की उपेक्षा करती है, वे अधिक निर्भीक है पर महाभारत की सीता दैन्यग्रस्त हैं। रामायण की सीता केवल इतना ही उत्तर देती हैं कि मैं मानुषी होकर राक्षस की पत्नी नहीं हो सकती तुम लोग चाहे खा लो, पर मैं तुम्हारे वचनों को नही मानूँगी रामा० सु०।२५ सर्ग ३। इसके अनन्तर रामायण की सीता आत्महत्या करने की वात सोचती है (सु०। २६ सर्ग) महाभारत की सीता यह नही सोचती ।

रामायण की सीता को त्रिजटा राक्षसी राम की विजय का स्वप्न वतला कर आश्वस्त करती है (सु०।२७ सर्ग)। महाभारत की सीता को भी त्रिजटा आश्वासन देती है, किन्तु वह स्वप्न वृत्तान्त न वतला कर अविन्ध्य नामक वृद्धामात्यराक्षस का सन्देश सुन कर सीता को सान्त्वना प्रदान करती है और यह भी कहती है कि उसने वतलाया है कि रावण नलकूवर के शाप के कारण किसी अकामा नारी को वलपूर्वक उपभुक्त नही कर सकता, अतः तुम सुरक्षित हो (वन ०।२८०।५९)। इस प्रकार रामायण की सीता अपने पातिव्रत्य की सुरक्षा के लिए आश्वस्त नही, किन्तु महाभारत की सीता आश्वस्त है। इसके अतिरिक्त महाभारत की त्रिजटा रावण के विनाश के दुःस्वप्न सुनाकर सीता को आश्वस्त करती है, जव कि रामायण की त्रिजटा सीता पक्ष के लिए शुभ और रावण पक्ष के लिए अशुभ स्वप्नों का वर्णन कर उन्हें पूर्ण आश्वस्त करती है। रामायण की सीता के लिए एक प्रत्यक्ष आश्वासन वामवाहु का स्फुरण तथा शकुन सूचक पक्षी का कलशब्द भी था (सुन्दर०।२७।५९–६१), ये आश्वासन महाभारत की सीता को कहाँ थे ?

वाल्मीकि की सीता हनुमान के प्रकट होने के पूर्व एक बार अपनी वेणी को एक वृक्ष की शाखा में वाँधकर आत्महत्या का द्वितीय प्रयास करती है (सुन्दर ०।२८), किन्तु शुभ शकुनों को देख कर इस कार्य से वे स्वतः विरत हो जाती हैं। महाभारत की सीता ऐसा कुछ नही करती। इससे केवल इतना प्रकाश मिलता है कि रामायण की सीता शकुनशास्त्र से विशेष परिचित थी, महाभारत की सीता की यह विशेषता नहीं प्रतीत होती। इसके अतिरिक्त रामायण की सीता में भावुकता अधिक थी और महाभारत की सीता मे गम्भीरता।

जव हनुमान जी सीता के दर्शन करते है, तव रामायण की सीता मे सौन्दर्य और असौन्दर्य का अद्भुत समन्वय पाते हैं (सुन्दर०।१५)। सौन्दर्य में तो वे पूर्ण चन्द्रमुखी, सुभ्रू, चारुवृत्तपयोधरा, पद्मपलाशाक्षी, रतिवत् सुन्दरी प्रतीत होती है और

असौन्दर्य में वे उच्छ्‌वसित, शोकपूर्ण, व्यथित, अप्रसन्न, मलिन, दीन एवं अश्रुमुखी हैं। इसकी तुलना में महाभारत की सीता तपस्विनी के रूप में उपवासतपःशीला, पति-दर्शनाभिलाषिणी, जटिला, मलिना, कृश, दीना एक सती के रूप में दृष्टिगोचर होती ह। (महा० वन० ।२८२।६०-६१)

रामायण की सीता वानररूप हनुमान को रावण समझ कर प्रथम विश्वास नही करती, जब हनुमान् राम का पूर्ण वृत्तान्त बतलाते है, राम लक्ष्मण के अंगलक्षणों का निरूपण करते है और अन्ततः राम प्रदत्त अंगुलीयक प्रदान करते है, तभी सीता उन्हें रामदूत समझती है। महाभारत की सीता हनुमान के इस कथन से ही उनका विश्वास कर लेती हैं कि यह राम दूत है, कि मैं मारुतात्मज रामदूत हूँ, राम लक्ष्मण सुग्रीव द्वारा पालित एवं सकुशल हैं। राम लक्ष्मण तथा सुग्रीव ने आपकी कुशलता पूंछी है (वन०।२८२ सर्ग)। इसका कारण यह था कि उन्हें अविन्ध्य नामक राक्षस ने हनुमान का परिचय और सुग्रीव की मैत्री का वृत्तान्त बतला रखा था। (वन०२८२ ६७) इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि महाभारत की सीता को राम की अँगूठी नहीं प्राप्त हुई। वे रामायण की सीता की तुलना मे कम शंकालु है। यही कारण है कि रामायण के हनुमान को पूर्ण वृत्तान्त बतलाने पर भी राम की अगुलीयक देने पर ही सीता उन्हे 'रामदूत' मानती है।

रामायण की सीता हनुमान की परीक्षा लेती है और हनुमान द्वारा यह प्रस्ताव करने पर कि आप मेरी पीठ पर बैठ कर चलें, अनेक तर्क देकर निरस्त कर देती है, किन्तु इस वार्तालाप मे न तो कही अशिष्टता है, न दर्प, अपितु उचित तर्क है और सर्वोपरि बात है 'पतिव्रता का दिव्य आदर्श' जिसका अनुसरण करना हनुमान भी उचित समझते हैं। महाभारत की सीता के लिए हनुमान की ओर से ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं था। इस प्रकार इस स्थल मे वाल्मीकि की सीता तर्कशील, देशकाल परिस्थिति की सुपरिचिता, विवेकशील एवं आदर्श पतिव्रता है। उनमे स्पष्ट-वादिता का भी अपूर्वगुण प्रतीत होता है।

वाल्मीकि की सीता राम को सन्देश प्रेषित करती है कि केवल दो मास की अवधि के अन्तर्गत राम मुझे ले जायँ, अन्यथा मैं जीवित नही मिलूंगी, (सुन्दर०।३७ १७-८) किन्तु महाभारत की सीता कोई सन्देश नही देती। वे शान्तभाव से हनुमान को चलते समय मणि (चूडामणि) प्रदान करती है और प्रत्यभिज्ञान हेतु (जयन्त) काक-वृत्तान्त का भी वर्णन करती ह (वन०।२८२।६८-७०)। वाल्मीकि की सीता प्रथम तो प्रत्यभिज्ञान के रूप में काकवृत्तान्त बतलाती है, तदनन्तर चूडामणि प्रस्तुत करती है (सुन्द०।३८।६९)। इसके अनन्तर राम 'लक्ष्मण' सुग्रीव एव राम के मित्रों से अपना

कुशलवृतान्त बतलाने का आदेश देती हैं। हनुमान उन्हें आश्वासन देते हैं कि शीघ्र ही राम आकर रावण का वध करेंगे और आपका उद्धार होगा (सु०।३९।१७)। महाभारत की सीता के लिए हनुमान की ओर से कोई आश्वासन नही मिला और न सीता ने ही चलते समय कुछ कहा।

रामायण के युद्धकाण्ड में (सर्ग ३१-३३) राम के मायामय सिर को दिखला कर रावण सीता को निराश करना चाहता है, सीता उसे देख कर बहुत विलाप करती हैं, परन्तु महाभारत की सीता के समक्ष रावण ऐसी कोई चाल नही खेलता। इससे सीता के सतीत्व की विशिष्ट पुष्टि हुई है। इसी प्रकार रामायण की सीता को राम लक्ष्मण शरपाश-बद्ध दिखलाये जाते है, (युद्ध०।४२-४५) जिन्हें देख कर सीता बहुत विलाप करती है किन्तु महाभारत की सीता के समक्ष यह दृश्य नही आता। रामलक्ष्मण शरबन्धन-बद्ध अवश्य दिखाये जाते है किन्तु विभीषण उन्हें 'प्रज्ञास्त्र' से प्रबुद्ध करता है और सुग्रीव उन्हें क्षणमात्र में विशल्य कर देता है (२८९।५-६)।

रामायण में इन्द्रजित एक मायामयी सीता लेकर वानरसैन्य के समक्ष उसका वध करता है, (युद्ध०। सर्ग ८०) जिससे रामादि व्यथित होते है, महाभारत में माया-सीता का यह वृत्तान्त नही है। रामायण में इन्द्रजित के वध के पश्चात् शोकार्त रावण सीता के वध के लिए उद्यत होता है,[1] किन्तु 'सुपार्श्व' के परामर्श से सीता का वध नही करता, महाभारत में भी (वन०।२८९।२६-२८) रावण सीता पर प्रहार करने के लिए खंड्ग उठाता है, पर अविन्ध्य नामक अमात्य उसे हत्या से विरत कर देता है।

६. अग्नि परीक्षा

वाल्मीकि रामायण मे रावण की मृत्यु के पश्चात राम की आज्ञा से सीता जी दिव्यांगराग से विभूषित कर विभीषण द्वारा राम के पास प्रस्तुत की जाती है, वे विस्मय, हर्ष एवं स्नेह से राम के मुख का अवलोकन करने लगती है, किन्तु राम के परुष वचनो को सुनकर वे लक्ष्मण से चिता तैयार कराकर अग्नि में प्रवेश करती है। उन्हें राम के वचनों से आन्तरिक असन्तोष ही नहीं हुआ, अपितु रोष के कारण उन्होंने राम पर आक्षेप भी किये। अग्नि प्रवेश के पश्चात् महादेवादिदेवगण आकर राम के इस कार्य की निन्दास्तुति करते है। यहाँ सीता जी को स्पष्ट रूप में 'लक्ष्मी' और राम को 'विष्णु' कहा गया है (सर्ग ११७-२९)। अन्त में अग्निदेव अपने अंक में

---

१. वा० रा० युद्ध०।९२ सर्ग। ३८-६६ ॥

सीता को लेकर प्रगट होते हैं और उनकी शुद्धि का प्रमाण देते है, तव राम उन्हें स्वीकार करते है।

डॉ० वुल्के के अनुसार रामायण के १२४वे सर्ग मे जहाँ भारद्वाज आश्रम में भरद्वाज जी वनवास से लेकर देवसमागम (रावणवध पश्चात्) तक का संक्षिप्त कथानक प्रस्तुत करते हैं, उसमें अग्नि परीक्षा का उल्लेख नही है। मेरे विचार से निम्नलिखित श्लोक में इसका संकेत है :

तथा विनिहतः संख्ये रावण वलदार्पितः।
समागमश्च त्रिदशैर्यथादत्तश्च ते वरः॥ वा०रा०युद्ध०।१२४।१५

क्योंकि विस्तृत कथा में सीता के अग्नि प्रवेश के पश्चात ही देवसमागम का वर्णन है और उनके द्वारा राम को वर दिये जाने का उल्लेख है। इस प्रकार त्रिदशैः समागमः, इस वाक्य में ही उक्त कथा का सांकेतिक अर्न्तभाव मानना चाहिए। संक्षिप्त कथावस्तु प्रामाणिक होती है और विस्तृत अप्रामाणिक, ऐसा तो कोई मान्य नियम भी नही हे। इसी प्रकार युद्धकाण्ड के १२६वें सर्ग मे भी हनुमान जी भरत जी से संक्षिप्त रामचरित प्रस्तुत करते है, किन्तु उसमें भी अग्निपरीक्षा का उल्लेख स्पष्ट रूप में नही किया गया। रावण वध के पश्चात् इन्द्र, यम, वरुण, महेश्वर तथा दशरथ के आने एवं इनके द्वारा वर देने का उल्लेख किया गया है। डॉ० वुल्के इस वर्णन को तो प्रामाणिक मानते है कि यहाँ अग्नि परीक्षा का उल्लेख नही है। इसी आधार पर सर्ग ११६ के अग्नि परीक्षा वाले सर्ग को प्रक्षिप्त मानते है। यहाँ के उल्लेख के विपय में भी हमारा निवेदन यह हे कि सम्भवतः अत्यन्त दुःखद कथा समझ कर सीता के अनन्य भक्त हनुमान ने भरत जी से इस वृत्तान्त का स्पप्ट कथन नही किया, किन्तु देवों के आशीर्वाद मात्र का उल्लेख किया है, जो कि सीता की अग्नि परीक्षा के पश्चात् सीता की शुद्धि का साक्ष्य देने के लिए उपस्थित हुए थे।[1]

वालकाण्ड के प्रारम्भ में जो कथा दी हुई है (सर्ग १) उसमे स्पष्ट उल्लेख है कि राम के परुष वचनों को न सहन करती हुई सीता सती अग्नि में प्रविष्ट हुई और अग्नि के वचनों से सीता को निष्पाप समझ कर राम ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

---

१. प्रहस्तमवधीन्नीलः कुम्भकर्णं तु राघवः।
लक्ष्मणो रावणसुत स्वयं रामस्तु रावणम्॥
सशक्रेण समागम्य यमेन वरुणेन च।
महेश्वरः स्वयंभूभ्यां दशा दशरथेन च॥
तैश्च दत्तवरः श्रीमानृपिभिश्च समागतः।
सुर्रापभिश्च काकुत्स्थो वरांल्लेभे परन्तपः॥ वा० रा० युद्ध० ।१२६।५१-५३

तमुवाच ततो रामः परुष जनसंसदि।
अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती॥
ततोऽग्निवचनात्सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम्।
कर्मणा तेन महता त्र्यैलोक्यं सचराचरम्॥
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः।
बभौ रामः संप्रहृष्टः पूजितः सर्वदैवतैः॥ वा० रा० बाल०। १।८२-८४

सम्भवतः डॉ० बुल्के इस उल्लेख को भी क्षेपक मानते हों। वैसे तो बालकाण्ड के तृतीय सर्ग में जहाँ संक्षिप्त रामकथा वर्णित है वहाँ भी रावण की मृत्यु के पश्चात् सीता की प्राप्ति मात्र का उल्लेख है। तदनन्तर विभीषण के अभिषेक का वर्णन है। इस प्रकार यहाँ अग्नि परीक्षा का उल्लेख नही है। डॉ० बुल्के इस सर्ग को प्रामाणिक कहेंगे ? यदि चौखम्बा, वाराणसी (१९५७) का प्रकाशित संस्करण प्रामाणिक है तो प्रथम सर्ग की अग्नि परीक्षा भी प्रामाणिक मानी जाय और यदि इसे अप्रामाणिक मानते हों, तो तृतीय सर्ग के अग्नि परीक्षा में मौन रहने वाले सर्ग को भी अप्रामाणिक कहना चाहिए।

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के ४५वें सर्ग में अग्नि परीक्षा का उल्लेख है, डॉ० बुल्के को यह उल्लेख नही मिला—

प्रत्ययार्थं ततः सीता विवेश ज्वलनं तदा।
प्रत्यक्षं तव सौमित्रे ! देवानां हव्यवाहनः॥
अपापां मैथिलीमाह वायुश्चाकाशगोचरः। उत्तर० ।४५ सर्ग।७ श्लोक

(राम सीता के परित्याग के समय चारों भाइयों की उपस्थिति में कहते हैं कि सीता की शुद्धि के विश्वास हेतु उसने अग्नि में प्रवेश किया, लक्ष्मण ! तुम्हारे तो सामने की घटना है अग्नि तथा वायु ने सीता को निष्पाप घोषित किया था।)

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के ९७ सर्ग में राम वाल्मीकि जी से कहते हैं कि पहले (लंका में रावण की मृत्यु के पश्चात्) देवों के सान्निध्य में सीता की शुद्धि का विश्वास हुआ था और सीता ने शपथ की थी, तब उसे मेरे घर में प्रवेश मिला था—

प्रत्ययश्च पुरा वृत्तो वैदेह्याः सुरसन्निधौ।
शपथश्च कृतस्तत्र तेन वेश्म प्रवेशिता॥ उत्तर०। ९७।३

श्लोक को समझने से ज्ञात होता है कि यहाँ पर सीता की शुद्धि में दो प्रमाणों का उल्लेख किया गया है, प्रथम तो देवों के सान्निध्य में (अग्नि परीक्षा, जिसका स्पष्ट नाम नही लिया गया) और द्वितीय प्रमाण सीता द्वारा शपथ करना। शपथश्च इस शब्द

में 'च' समुच्चय बोधक अव्यय प्रयुक्त है। यदि व्याकरण की यह सामान्य बात कोई विद्वान् जान-बूझ कर नहीं मानता, तो यह दुराग्रह ही कहा जायगा।

इस प्रकार डॉ० बुल्के ने उत्तरकाण्ड के जिन उपर्युक्त दो स्थलों में सीता की अग्निपरीक्षा के अनुल्लेख की बात कही है, वह तो स्पष्टतः कट जाती है। प्रथम स्थल में स्पष्ट उल्लेख है और द्वितीय स्थल में विद्वत्तापूर्ण ढंग से सांकेतिक उल्लेख है।[1]

अस्तु, उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि रामायण में सीता की अग्निपरीक्षा का उल्लेख है और वह प्रामाणिक भी है। महाभारत के रामोपाख्यान में अग्निपरीक्षा का उल्लेख नहीं किया गया। इतना उल्लेख मिलता है कि अविन्ध्य नामक राक्षस विभीषण के साथ सीता को लेकर राम के समक्ष उपस्थित होता है (२९१।६), राम सीता को कटु शब्द कहते हैं, वे पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं, इतने में ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण आदि देवगण, सप्तर्षि तथा राजा दशरथ उपस्थित होते हैं। इन सब के समक्ष सीता अपनी शुद्धि की शपथ करती हैं। इतना ही नहीं, देवगण भी उनकी शुद्धि की पुष्टि करते हैं। स्वयं अग्नि का कथन है।

अहमन्तः शरीरस्थो भूतानां रघुनन्दन।
सुसूक्ष्ममपि काकुत्स्थ मैथिली नापराध्यति॥ वन०।२९१ सर्ग। २७ श्लोक

(हे राम ! मैं प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित रहता हूँ। मैथिली का अति-सूक्ष्म भी अपराध नहीं है।)

७. सीता त्याग

वाल्मीकि रामायण में युद्धकाण्ड मे एक प्रकार से रामकथा की समाप्ति है, यहाँ सीता त्याग की कथा का अभाव है परन्तु उत्तरकाण्ड में (सर्ग ४२-४९) में उक्त कथानक विस्तृत रुप मे वर्णित है। सीता गर्भवती होती हैं तपोवन दर्शन के 'दौहद' को समझकर राम लोक प्रचलित लोकापवाद के भय के व्याज से लक्ष्मण द्वारा उन्हें वाल्मीकि के आश्रम के समीप प्रेषित करा देते हैं। वाल्मीकि उन्हें आश्रम में स्थान देते है। महाभारत में सीता के इस चरित्र का सर्वथा अभाव है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार सीता के कुश तथा लव दो पुत्र होते हैं जो रामायण कथा का गान करने में दक्ष थे। वाल्मीकि की आज्ञा से वे राम संसद में भी कथा का गान करते हैं। वहाँ लोग इन पुत्रों को सीता के पुत्र समझते हैं और वाल्मीकि जी भी आकर इस बात की पुष्टि कर देते हैं। वाल्मीकि जी पुष्टि के हेतु

---

१. रामकथा, डॉ० बुल्के पृ०, ५३४ द्वि० सं०, १९६२ ई०

सीता को भी सभा में उपस्थित करते है। सीता जी सभा में अपनी शुद्धि की साक्ष्य देती हैं, उनकी प्रार्थना से पृथ्वी विदीर्ण होती है और वे उसी में प्रविष्ट हो जाती हैं। राम पृथ्वी पर कोप करते है, किन्तु निष्फल।

८. सीता निर्याण

रामायण के उत्तरकाण्ड (९७ सर्ग) मे काषायवस्त्रधारिणी सीता सभा मे प्रार्थना करती हैं कि हे माधवी (पृथ्वी) यदि मै राघव के अतिरिक्त मन से भी किसी का चिन्तन नही करती, तो तू मुझे विवर दे दे। सीता की इस प्रार्थना पर पृथ्वी फटती है और पृथ्वी से दिव्य सिंहासन निकलता है, सीता उसी में बैठ कर इस लोक से सदैव के लिए विदा हो जाती है।

महाभारत में सीता के निर्याण का कोई उल्लेख नही मिलता। अधिकांश विद्वान उत्तरकाण्ड के वर्तमान रूप को प्रक्षिप्त मानते है, क्योकि हरिवंश, वायु तथा विष्णु आदि प्राचीन पुराणों की रामकथा में सीतात्याग का कथानक नही प्राप्त होता। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त कथानक की सृष्टि पश्चात् हुई है, मूल वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख नही रहा होगा। वर्तमान रामायण के बालकाण्ड में भी सीता त्याग एव सीता निर्याण का कोई उल्लेख नही मिलता।

इस प्रकार रामायण तथा महाभारत इन दोनों ग्रन्थों में विद्यमान सीता-सामग्री के आधार पर दोनों की तुलना का सूत्ररूप इस प्रकार हो सकता है—

१. रामायण की सीता भूमिजा है और महाभारत की सीता जनकजा हैं।
२. दोनों ग्रन्थों में सीता सुन्दरी एवं सच्चरित्रा है।
३. रामायण की सीता आदर्शमानवी एवं लक्ष्मी का अवतार हैं, महाभारत की सीता आदर्शमानवी है।
४. रामायण की सीता में विद्वत्ता, निर्भीकता, वाग्मिता एवं राजनीतिज्ञता भी है, किन्तु महाभारत की सीता शान्त एवं सरल स्वभाव की हैं, उनमें गाम्भीर्य अधिक है।
५. रामायण की सीता क्रोधशीला तथा परुषभाषिणी भी है, उनमें शंकालुता भी अधिक है, पर महाभारत की सीता में ये अवगुण अपेक्षाकृत कम है।
६. दोनों ग्रन्थो में सीता का पतिप्रेम 'प्राणपण' पर विश्राम करता है।
७. वाल्मीकि की सीता मे विलाप, रुदन एव आक्रोश अधिक है, महाभारत की सीता में न्यूनमात्रा में है।
८. वाल्मीकि सीता को वन चलने के लिए राम से दुराग्रह करना पड़ता है, महाभारत की सीता को नही।

९. पतिसेवा का आदर्श वाल्मीकि की सीता में महाभारत की सीता से कुछ अधिक है।

१०. वाल्मीकि की सीता को आभूषणों से भी प्रेम है, महाभारत की सीता भी कुछ ऐसी ही प्रतीत होती हैं।

११. दोनों ग्रन्थों में सीता जी रावण जैसे छली का भी अतिथिसत्कार करती हैं।

१२, वाल्मीकि की सीता को भरत तथा कैकेयी के प्रति अरुचि थी, महाभारत की सीता में यह लक्षित नहीं होता।

१३. वाल्मीकि की सीता ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र, शकुनशास्त्र आदि से सुपरिचित हैं और उन्हें इन पर विश्वास भी है, किन्तु महाभारत की सीता उक्त शास्त्रों से अनभिज्ञ प्रतीत होती हैं।

१४. वाल्मीकि की सीता रावण को बारम्बार खरी खोटी सुनाती हैं, विनत नहीं होती, पर महाभारत की सीता दैन्य से विनत होती हैं, रावण को कम से कम कटु शब्द कहती हैं।

१५. दोनों ग्रन्थों में सीता जी राम की श्लाघा करती हैं और प्रगाढ़ स्नेह प्रदर्शित करती हैं।

१६. वाल्मीकि की सीता स्पष्टतः हिंसा विरोधिनी थी, महाभारत की सीता में अहिंसा स्पष्ट पक्ष नहीं मिलता।

१७. वाल्मीकि की सीता मानिनी आभिजात्यरक्षिका हैं, महाभारत की सीता में अभिमान नहीं है।

१८. वाल्मीकि की सीता में प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग है, महाभारत की सीता में उक्त भाव दर्शित नहीं हो सका।

१९. वाल्मीकि की सीता बहुत अधिक कष्ट पाती हैं, पर महाभारत की सीता इतना कष्ट नहीं पातीं।

२०. वाल्मीकि की सीता तपस्विनी हैं, महाभारत की सीता भी तपस्विनी हैं।

२१. वाल्मीकि की सीता की अग्निपरीक्षा होती है, महाभारत की सीता की ऐसी परीक्षा नहीं होती है।

२२. वाल्मीकि की सीता का त्याग होता है, महाभारत की सीता का त्याग नही होता।

२३. वाल्मीकि की सीता की संतति का उल्लेख है, महाभारत में कोई उल्लेख नहीं है।

२४. वाल्मीकि की सीता अन्ततः सतीत्व का प्रमाण देकर पृथ्वी के अन्तराल में प्रविष्ट हो जाती हैं, महाभारत की सीता के विषय में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है।

(ग) पुराण साहित्य में सीता का स्वरूप और उसका मूल्यांकन

पुराण साहित्य मे वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत के आधार पर सीता जी के जीवन चरित्र का विविध प्रकार से उल्लेख किया गया है। सामयिक मान्यताओ के आधार पर सामान्य परिवर्तन भी किये गये है। उदाहरणार्थ सीता कही पर तो लक्ष्मी या लक्ष्मी के अंश के रूप मे वर्णित है, कही आद्या शक्ति या मूल प्रकृति के रूप में चर्चित है। भक्ति के विकास के कारण माया सीता का उल्लेख भी परवर्ती पुराणों मे प्राप्त होता है। इसी प्रकार अन्य अन्तरों को भी समझा जा सकता है।

प्राचीन प्रमुख पुराणों में मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वायु, मत्स्य, श्रीमद्भागवत तथा कूर्मपुराण का विशेष महत्व माना जाता है। इन पुराणो में से केवल विष्णु, वायु, श्रीमद्भागवत एवं कूर्मपुराण में रामसीता का कथानक प्राप्त होता है। यद्यपि हरिवंश पुराण (४००ई०) मे भी रामचरित्र की कथा का उल्लेख मिलता है, किन्तु उसमें सीता विषयक कोई महत्वपूर्ण सामग्री नही मिलती। केवल इतनी बात अवश्य मिलती है कि सीता के पृथ्वी से जन्म होने का वृत्तान्त सर्वथा उपेक्षित एवं अप्राप्य है।

विष्णु पुराण

प्रस्तुत महापुराण (४००ई०) के आधार पर सीता के विषय में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते है :

(क) मैथिल राजाओ की वंश परम्परा में ह्रस्वरोमा के पुत्र सीरध्वज (जनक) पुत्र की कामना से यज्ञभूमि को हल से जोत रहे थे। उसी समय हल के अग्रभाग मे सीता नाम की कन्या उत्पन्न हुई।[1]

(ख) अयोनिजा सीता वीर्यशुल्का थी, जिन्हें राम ने माहेश्वर चाप के भंग करने पर प्राप्त किया था।[2]

(ग) राम रावण द्वारा अपहृत तथा उसके वध से कलंकहीना होने पर भी अग्नि प्रवेश से शुद्ध हुई समस्त देवगणो से प्रशंसित शीलवाली जनकराज की कन्या सीता को अयोध्या में लाये।[3]

---

१. ह्रस्वरोम्णस्सीरध्वजो ऽभवत्। तस्य पुत्रार्थं यजनभुवं कृषतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्ना। (विष्णु पुराण, ४।५।२७-२८)

२. जनकगृहे च माहेश्वरं चापमनायासेन बभञ्ज।
सीतामयोनिजां जनकराजतनयां वीर्यशुल्कां लेभे॥ विष्णु पु०।४।४।९२-९३

३. बद्ध्वाचाम्बोधिनिधि मशेषराक्षसकुलक्षयं कृत्वा दशाननापहृतां भार्यां तद्वधादपहृतकलंका मप्यनलप्रवेशशुद्धा मशेषदेवसघैः स्तूयमानशीलां जनकराजकन्यामयोध्यामानिन्ये॥ (विष्णु पुराण। ४।४।९७)

(ग) सीता जी पति के हृदयगत भाव को जानती थी। वे प्रेम से, सेवा से, शील से, अत्यन्त विनय से तथा अपनी बुद्धि एवं लज्जाशीलता से अपने पति श्री राम का मनहरण करती रहती थी।[१] उक्त वर्णन से सीता के आन्तरिक एवं वाह्य व्यक्तित्व पर कितना सूक्ष्म एवं महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

(घ) इस ग्रन्थ में सीता की अग्निपरीक्षा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। पुराणों में हरिवंश, विष्णु, वायु, भागवत तथा नृसिंहपुराण (७वी शताब्दी) मे भी अग्नि परीक्षा का उल्लेख नही किया गया। सम्भवतः पुराण साहित्य में अग्नि परीक्षा का उल्लेख सर्वप्रथम स्कन्ध पुराण (८ वी शताब्दी) के ब्राह्मखण्ड के अन्तर्गत २२ वें अध्याय में मिलता है, वहाँ अग्नि द्वारा सीता के सतीत्व की प्रशंसा का भी उल्लेख है।

(ङ) भागवत में श्री राम स्वयं किसी व्यक्ति के द्वारा सीता के लोकापवाद की वात कहते हुए सुनते हैं, फलतः लोकभय से सीता का परित्याग करते हैं।[२] सीता वाल्मीकि के आश्रम में दो पुत्रों को जन्म देकर, उन्हे मुनि को सौप कर स्वयं राम चरणों का ध्यान करती हुई विवर में प्रवेश करती है।[३] इस प्रकार भागवत की सीता में हमें उनके चरित एवं चरित्र की एक प्रामाणिक एवं व्यवस्थित झाँकी देखने को मिलती है।

कर्म पुराण

(७वी शताब्दी) के अनुसार माया सीता का अपहरण हुआ था (उ० वि० अ० ३४)। इसके अतिरिक्त शेष सीता वृत्तान्त श्रीमद्भागवत के अनुसार ही वर्णित है। वामन पुराण (८वीं शताब्दी) में सीता जी को पूर्वजन्म में वेदवती बतलाकर इस जन्म में रावणसंहार की योजना की संगति वैठायी गयी है। इस प्रकार यह ग्रन्थ सीता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में नूतन प्रकाश डालता है। सम्भवतः इसी उल्लेख के आधार पर देवी भागवत प्रभृति ग्रन्थों में भी वेदवती की चर्चा की गयी है। पद्मपुराण

---

१. प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती।
धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः॥ श्री मद्भागवत ।९।१०।५६

२. नाहं विभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम्।
स्त्रीलोभी विभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः॥ श्रीमद्भागवत ।९।११।९

३. मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता।
ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह॥ श्रीमद्भागवत ।९।११।१५

(अध्याय ५५-५८) में धोबी द्वारा अपनी पत्नी का अपवाद सुनकर राम सीता का निर्वासन करते हैं। इसमें लवकुश नामक सीता के दो पुत्रों का भी विस्तृत उल्लेख किया गया है (अध्याय ५६, ६६)। इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि इसमें सीता के भू-प्रवेश की करुण कथा का उल्लेख नहीं किया गया। इस ग्रन्थ की द्वितीय विशेषता यह है कि इसमें राम विष्णु के अवतार और सीता लक्ष्मी का अवतार मानी गयी है (अध्याय २६९-२७१)। वैसे तो श्रीमद्भागवत (९।१०।७) में भी सीता के इस अलौकिक अवतार का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः उसी का प्रभाव पद्म पुराण में भी है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी सीता का कथानक प्राप्त होता है। इसके अनुसार सीता जी पूर्वजन्म की वेदवती हैं, जो कि अयोनिजा रूप में रावणवधार्थ उत्पन्न हुई है (प्रकृतिखड। अ० १४)।

महापुराणों के अतिरिक्त उप पुराणों में भी सीता विषयक सामग्री प्राप्त होती है। नृसिंह पुराण (४००-५०० ई०) के अनुसार रावण सीता के अपहरण करते समय उनका स्पर्श नहीं करता (अध्याय ४९)। वह अपने को भरतद्वारा प्रेषित बतलाकर सीता को स्वतः रथ में चढ़ जाने की चाल करता है। इस पुराण में सीता त्याग की घटना का वर्णन नहीं मिलता। शिव पुराण धर्मसंहिता (१३-१४) के अनुसार सीता जी दशरथ के लिए पिण्डदान करती हुई चित्रित की गयी है। महाभागवत (अध्याय ४२, ६४) में सीता जी मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न मानी गयी हैं। सौर पुराण के अनुसार गौरी को प्रसन्न करके श्री जनक जी ने उन्हें पुत्री के रूप में प्राप्त किया था (अध्याय ३०)। कालिका पुराण में सीता जी पृथ्वी से उत्पन्न मानी गयी है। उनके साथ जनक को दो पुत्र भी प्राप्त हुए थे (अध्याय ३६८)। कल्किपुराण में राम और सीता के पूर्वानुराग का भी उल्लेख मिलता है।

उप पुराणों में देवी भागवत की महत्ता अक्षुण्ण है, अतः उसकी सामग्री पर अपेक्षाकृत कुछ विस्तार से चर्चा की जायेगी।

पुराणों एवं उप पुराणो की सामग्री का निरीक्षण करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सर्वप्रथम सीता जी मानुषी के रूप में, परतः लक्ष्मी के अंश के रूप में, तदनु लक्ष्मी के रूप मे, तत्पश्चात् आद्याशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होती चली गयी है।

देवी भागवत

प्रस्तुत उप पुराण मे सीता का कथानक दो स्थलों में आया है। प्रथमस्थल (तृतीय स्कन्ध, अध्याय २८-३० तक) में सक्षिप्त रामकथा का वर्णन है। इसके

अतिरिक्त ग्रन्थ के नवम स्कन्ध, अध्याय १६ में सीता के पूर्वजन्म का आख्यान वर्णित है। उक्त दोनों स्थलों का समीक्षात्मक परिचय इस प्रकार है :

इस ग्रन्थ की सीता रमा के अंश से उत्पन्न हैं।[1] इसका कुल निष्कर्ष यह प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ के रचनाकाल (११वीं शताब्दी तक) सीता की मान्यता आदि शक्ति के रूप में नहीं हो पायी थी, जैसी मान्यता अध्यात्म रामायण (१४वीं शताब्दी) में देखने को मिलती है। इस ग्रन्थ की सीता की उपमा स्वाधीनपतिका के रूप में दी गयी है।[2] इससे यह सिद्ध होता है कि देवी भागवत की सीता राम को अपने वश में किए हुए थीं। कनकमृग को देख कर सीता के आग्रह पर राम बिना विचारे उसके पीछे चल देते हैं।

इस ग्रन्थ की सीता मारीच की 'हा लक्ष्मण' पुकार को सुन कर लक्ष्मण को जाने की प्रेरणा देती हैं। यद्यपि लक्ष्मण उनको बहुत समझाते हैं, किन्तु सीता उन्हें क्रूर वचन कहती हैं : उनका प्रथम आरोप तो अपने प्रति लक्ष्मण का अनुराग है, द्वितीय आरोप भरत द्वारा प्रेषित होने की शंका है। सीता अपने पातिव्रत्य की प्रशस्ति भी करती हैं और राम के बिना प्राण त्याग देने की धमकी देती हैं।[3]

देवी भागवत की सीता रावण को यति समझ कर उसका सत्कार करती हैं और रावण द्वारा पूछी जाने पर अपना परिचय भी देती हैं।[4] सीता को यह शंका हो जाती है कि राक्षसों के इस स्थान में एकाकी यह यति कैसे रहता है, अतः वे उसका परिचय पूछती हैं।[5] उक्त प्रसंग के आधार पर सीता धर्मशील और जागरूक प्रतीत होती है। इस ग्रन्थ की सीता की एक अन्य विशेषता यह है कि वे रावण के कुत्सित विचार को समझ कर पर्णशाला में अग्नि के सान्निध्य में स्थित होकर रावण को जाने का आदेश देती है।[6] इससे उनकी निर्भीकता, साहस एवं सतीत्व की भी पुष्टि

---

१. उपयेमे ततः सीतां जानकीं च रमांशजाम् ॥देवी भाग० ।३।२८।१३

२. तं दृष्ट्वा जानकी प्राह राघवं दैवनोदिता ।
चर्मानयस्व कान्तेति स्वाधीनपतिका यथा ॥ देवी भाग० ।३।२८।२६

३. देवी भागवत ।३।२८।४०-४४

४. देवी भागवत ।३।२८।४६-५८

५. यतिर्विष्णु स्वरूपोऽसि तस्मात्त्वं पूजितो मया ।
आश्रमो विपिने घोरे कुतो ऽस्ति राक्षसां कुले ॥ देवी भाग० ।३।२८।६०

६. इत्युक्त्वा पर्णशालायां गता सा वह्निसन्निधौ ।
गच्छ गच्छेति वदती रावणं लोकरावणम् ॥ देवी भाग०।३।२९।४

होती है। इस ग्रन्थ के (३।३०।६-१३) अनुसार नारद जी राम से बतलाते हैं कि सीता पूर्व जन्म में एक तपस्विनी मुनि पुत्री थी। रावण ने बलात् उसके केश पकड़े थे, जिससे उसने कुपित होकर रावण के नाशार्थ स्वयं अयोनिजा रूप में अवतरित होने की बात कही थी। वही तपस्विनी रमा के अंश से सीता रूप में अवतरित हुई हैं। वाल्मीकि या अध्यात्म में सीता के पूर्व जन्म के उक्त वृत्तान्त का उल्लेख नहीं मिलता। देवी भागवत की सीता को इन्द्र ने कामधेनु का दुग्ध भेजा था, जिसके पान करने से उन्हें भूख प्यास नहीं लगती थी।

कामधेनुपयः पात्रे कृत्वा मघवता स्वयम्।
पानार्थं प्रेपितं तस्यः पीतं चैवामृतं यथा॥
सुरभीदुग्ध पानात्सा क्षुत्तृड्दुःखवर्जिता।
जाता कमलपत्राक्षी वर्तते वीक्षिता मया॥ देवी भागवत्०तृ०स्कं०।३०।१६-१७

इस तथ्य का भी उल्लेख वाल्मीकि या अध्यात्म में नहीं मिलता। यहाँ तक कि कविवर तुलसी ने भी मानस में इसकी कोई चर्चा नहीं की, क्षेपकों की बात पृथक है।

देवी भागवत (९।१६) में सीता को पूर्व जन्म की वेदवती बतलाया गया है। राजा कुशध्वज की पत्नी मालावती से लक्ष्मी के अंशरूप में पुत्री ने जन्म लिया और जन्म लेते ही वेदध्वनि करने के कारण उसका वेदवती नामकरण किया गया। वह तुरन्त ही तप करने चली गयी और गन्धमादन पर्वत में बहुत दिनों तक तप करने के पश्चात् एक दिन उसके समक्ष रावण आया और उसे देख कर काम के कारण मूर्च्छित हो गया। सती तपस्विनी ने कोप कर उसे स्तम्भित कर दिया। तदनन्तर रावण के गिड़गिड़ाने पर देवी ने कहा—मेरे निमित्त तुम्हारा सपरिवार संहार हो जायेगा। इतना कहकर उस सती ने योगाग्नि में शरीर त्याग दिया। वही कालान्तर में जनकात्मजा सीता के रूप में प्रख्यात हुई।[1]

मानस में भी सीता के इस पूर्व जन्म का उल्लेख नहीं मिलता। उक्त सन्दर्भ से सीता की अलौकिकता पर विशिष्ट प्रकाश पड़ता है। अन्य संस्कृत ग्रन्थों में भी इस की चर्चा मिलती है।[2] देवी भागवत में सीता जी को अग्निदेव ने आत्मसात कर

---

१. सा च कालान्तरे साध्वी बभूव जनकात्मजा।
सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः॥ देवी भागवत।९।१६।२१

२. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग १७, ब्रह्मवैवर्त० प्रकृतिखं० अध्याय १४॥

लिया था। अग्नि ने ब्राह्म वेश धारण कर राम को सीता हरण का रहस्य बतलाया था, फलतः राम की आज्ञा से सीता को अग्नि ने छिपा लिया और माया सीता शेष रह गयी।[1]

इस प्रकार देवीभागवत की सीता रमा के अंश से उत्पन्न हुई थी। उन्हें जगत्प्रसू अर्थात संसार को उत्पन्न करने वाली शक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त थी। वे अयोनिजा के रूप में ही विख्यात थी। वे पूर्व जन्म मे वेदवती है। उनका वास्तविक हरण नही हुआ, अपितु उनकी छाया सीता का ही अपहरण हुआ है। सीता रूप गुण एवं सौन्दर्य मे अद्वितीय है। वे पतिपरायणः, सती, साध्वी, अतिथि सेविका एवं आदर्श की मूर्ति थी।

१. संस्कृत काव्यों तथा नाटकों में सीता के स्वरूप का विवेचनात्मक अध्ययन

संस्कृत के विशाल वाङ्मय में सीता साहित्य की भी एक पुष्कलराशि है, जिसमे सीता के बहुमुखी व्यक्तित्व पर व्यापक ढग से प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत प्रकरण में हम काव्यो के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य, धार्मिककाव्य एवं स्फुट-काव्य (श्लेषकाव्य, चित्रकाव्य, विलोमकाव्य, सन्देशकाव्य, चम्पूकाव्य तथा गद्यकाव्य) की परिधि में सीता के स्वरूप का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेगे। उपर्युक्त विधाएँ श्रव्यकाव्य की है, दृश्यकाव्य की श्रेणी में नाट्यसाहित्य आता है, उस पर भी इसी अध्याय के अन्तर्गत विचार किया जायेगा।

महाकाव्य

महाकाव्य जीवन की विस्तृत आलोचना प्रस्तुत करता है। उसका औदात्य ही उसे महनीय पद पर प्रतिष्ठित करता है। जो महाकाव्य किसी व्यापक सन्देश द्वारा मानव जीवन का कल्याणकारी नही सिद्ध होता, विद्वान लोग उसे वास्तविक महाकाव्य नही मानते। संस्कृत महाकाव्यों में वस्तुतः महती प्रेरणा एवं महदुद्देश्य के के दर्शन होते है। यहाँ कालक्रमानुसार महाकाव्यों में सीता के स्वरूप पर आलोचना-त्मक विचार किया जा रहा है। यद्यपि रामायण एवं महाभारत परिवर्द्धनशील महा-काव्य माने जाते है, किन्तु उक्त दोनों महाकाव्य आदर्श माने जाते हैं, प्रथम के प्रणेता आदि

---

१. जगत्प्रसूं मयि न्यस्य छायां रक्षान्तिकेऽधुना।
दास्यामि सीतां तुभ्यं च परीक्षा समये पुनः॥
देवैः प्रस्थापितोऽहं च न च विप्रो हुताशनः॥ देवी० ।९।३ १-३२

कवि महर्षि वाल्मीकि और द्वितीय के प्रणेता महर्षि वेदव्यास माने जाते हैं। इन दोनों महाकाव्यों पर इसी प्रथम अध्याय के (ख) भाग में विचार विमर्श हो चुका है, अतः परिशेषात् इस प्रकरण में नरकाव्य की परम्परा का अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा। नरकाव्य प्रणेताओं में इतिहास की दृष्टि से प्रथम महाकाव्य प्रणेता कविवर कालिदास का स्थान अक्षुण्ण है। उन्होंने रघुवंश महाकाव्य में सर्ग १० से १५ सर्ग तक षट्सर्गों में रामकथा का उल्लेख किया है।

रघुवंश (कालिदास, १०० वर्ष ई० पू०)

यद्यपि कविवर कालिदास के स्थितिकाल के विषय में पर्याप्त मतभेद है, किन्तु डॉ० राजवली पाण्डेय, प्रो० चट्टोपाध्याय एवं रायबहादुर चिन्तामणि प्रभृति विद्वानों ने ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ही इनका रचना काल निर्णीत किया है।[1] कालिदास के रघुवंश में दशरथ जी पुत्रेष्टि यज्ञ से लेकर राम के स्वर्गारोहण तक का कथानक उपलब्ध होता है।

इस काव्य के आधार पर यह ज्ञात होता है कि कवि ने सीता को अयोनिजा के रूप में ही मान्यता दी है। वे श्री के समान रूपवती थीं, जनक जी ने वीर्यशुल्का के रूप में धनुर्भंग करने पर ही राघव के हाथ उन्हें समर्पित किया था।

दृष्टसारमथ रुद्रकार्मुके वीर्यशुल्कमभिवन्द्य मैथिलः।
राघवाय तनयामयोनिजां रूपिणीं श्रियमिव न्यवेदयत् ॥रघु० ।११।४७

इस कथन पर वाल्मीकि रामायण की छाप स्पष्ट है, वहाँ भी सीता अयोनिजा एवं वीर्यशुल्का मानी गयी हैं।[2]

रघुवंश में पुष्पवाटिका प्रसंग एवं सीता के विवाह का विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता इसी प्रकार वनवास प्रसंग में किसी प्रकार के सीताग्रह से सम्बद्ध कथानक का उल्लेख नहीं मिलता। सर्ग १२।६ में केवल इतना ही उल्लेख किया गया है कि राम ने सीता लक्ष्मण सहित दण्डकारण्य में प्रवेश किया।

रघुवंश में केवल तीन श्लोकों द्वारा यह उल्लेख किया गया है कि किसी समय रामचन्द्र जी श्रान्त होकर सीता जी के अंक में सो रहे थे। इतने में इन्द्र पुत्र जयन्त ने

---

१. संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ (पृष्ठ ६०) डॉ० जयकिशन खण्डेलवाल १९६९ ई०

२. भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा।
वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेय मयोनिजा ॥
वा० रा० बाल० ।६६ सर्ग, १४ श्लोक

नखों द्वारा सीता जी के दोनो स्तनों को विदीर्ण कर दिया । सीता द्वारा जगाये जाने पर राम ने काक पर इषीकास्त्र चलाया । जयन्त ने अपनी एक आँख गवाँकर अपने को मुक्त किया ।

प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः स बनस्पतिम् ।
कदाचिदङ्के सीतायाः शिश्ये किञ्चिदिव श्रमात् ॥
ऐन्द्रिः किल नखैः तस्याविददार स्तनौद्विजः ।
प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन् ॥
तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रं रामो रामाववोधितः ।
आत्मानं मुमुचे तस्मादेकनेत्रव्ययेन सः ॥ रघु० ।१२।२१-२३

उपर्युक्त वर्णन भी वाल्मीकि रामायण के (सुन्दर० सर्ग ३८) काकासुर वृत्तान्त से प्रभावित है ।

रघुवंश में भी वाल्मीकि रामायण (सर्ग ११८।१८, १९, २०, २१) के आधार पर अनसूया द्वारा अंगराग देने का उल्लेख किया गया है, (१२।२७) परन्तु सीता को पतिव्रत धर्म की शिक्षा नहीं दिलायी गयी । आगे चलकर वानपथ में विराध सीता का अपहरण करता है, (१२।२९) राम लक्ष्मण उसका विनाश करते है ।

शूर्पणखा के प्रसंग में रघुवंश में यह उल्लेख मिलता है कि सीता जी शूर्पणखा की चेष्टा को देख कर हँसती है, जिसे बुरा मान कर शूर्पणखा सीता को इसका शीघ्र फल पाने की चेतावनी देती है ।

संरम्भं मैथिलीहासः क्षण सौम्यां निनायताम् ।
निवातस्तिमितां वेलां चन्द्रोदय इवोदधेः ॥
फलमस्योपहासस्य सद्यः प्राप्स्यसि पश्य माम् ।
मृग्यः परिभवो व्याघ्र्यामित्यवेहि त्वया कृतम् ॥ रघु० १२।३७-३८

वाल्मीकि रामायण में सीता जी के इस हास तथा शूर्पणखा के उक्त उत्तर का उल्लेख नही मिलता । यह कविवर कालिदास की स्वयं की सूझ-बूझ है । उन्होंने सीता जी को भी विनोद प्रिया वना दिया है । परिस्थिति को देखते हुए ऐसा चित्रण मनोविज्ञान के सर्वथा अनुकूल है ।

रघुवंश में कवि ने सीताहरण का प्रसंग भी केवल १ श्लोक (१२।५३) में प्रदर्शित किया है, जिससे सीता जी के मनोवृत्ति पर-कोई प्रकाश नही पड़ता ।

इसी प्रकार रघुवंश में अशोक वाटिका का प्रसंग भी अतिसंक्षिप्त रूप मे वर्णित है । हनुमान राम द्वारा प्रदत्त आंगुलीयक सीता जी को देते हैं और राम का

सन्देश कहते हैं, सीता भी वदले में एकरत्न (चूड़ामणि) प्रत्यभिज्ञानस्वरूप हनुमान को देती है (१२ सर्ग, ६२-६४)। इस उल्लेख से भी सीता के चरित्र पर व्यापक प्रकाश नहीं पड़ता। वीच के अनेक वर्णनों की उपेक्षा कर कालिदास जी ने रावणवध के पश्चात् सीता की अग्नि परीक्षा होने की सूचना दी है। श्लोक इस प्रकार है :

रघुपति रपि जातवेदो विशुद्धां प्रगृह्य प्रियां
प्रियसुहृदि विभीषणे संगमय्य श्रियं वैरिणः।
रविसुत सहितेन तेनानुयातः ससौमित्रिणा
भुजविजितविमानरत्नाधिरूढ़ः प्रतस्थे पुरीम् ॥ रघु०।१२।१०४

(राम ने भी अग्नि द्वारा शुद्ध प्रिया सीता को लेकर, रावण की श्री प्रियमित्र विभीषण को देकर, लक्ष्मण एवं सुग्रीव सहित पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।)

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के आधार पर यह सिद्ध होता है कि उन्हें प्रकृति के प्रति अपार प्रेम था। श्री राम ने इसी हेतु उन्हें समुद्र की विशेष छटाओं का अवलोकन कराया है। प्रस्तुत सर्ग में कवि ने राम द्वारा सीता के लिए जो सम्बोधन शब्द प्रयुक्त कराये है, उनके आधार पर सीता के रूप, लावण्य एवं अन्य अनेक विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। करभोरु, मृगप्रेक्षिणि (१८ श्लोक), चण्डि (२१ श्लोक), भीरु (२४ श्लोक), मानिनि (३८ श्लोक), वन्धुर गात्रि (४७ श्लोक), अनवद्यांगि (५७ श्लोक) ये सम्बोधन इस त्रयोदश सर्ग मे प्रयुक्त हुए हैं। इनके अनुसार क्रमशः यह प्रतीत होता है कि कवि की मानसी सीता के उरु 'करभ' (मणिवन्ध से कनिष्ठिका पर्यन्त कर का वाह्यभाग) के समान थे, उनके नेत्र मृगतुल्य थे, वे कोपशीला थीं, नारीस्वभावात् भीत भी थीं, उन्हें स्वाभिमान था, उनके अंग प्रत्यंग सुडौल थे और कोई अंग दूषित नहीं था।

अयोध्या लौटने पर कवि सीता जी द्वारा दो पटरानियों को प्रणाम करवाता है, स्पष्टनामोल्लेख नहो है, किन्तु कौशल्या तथा सुमित्रा मान्य प्रतीत होती है। कैकेयी के प्रति सीता जी को श्रद्धा नही रह गयी थी। यह उल्लेख वाल्मीकि रामायण तथा रघुवंश दोनो में ही मिलता है।[1] सीता कहती है : पति को क्लेश देने वाली अलक्षणा सीता (स्वर्गगत श्वसुर की दोनों पटरानियों को) प्रणाम करती है।[2]

उक्त कथन में सीता की आत्मग्लानि, दैन्य, विनम्रता एवं शिष्टता के दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त कैकेयी के प्रति घृणाभाव की भी कुछ सूचना प्राप्त होती है।

---

१. वा० रा० अरण्य० ।४६।२६
२. रघुवंश : १४ सर्ग, ५ श्लोक

उत्तर में दोनों सासें सीता को शुचिव्रता कहती हैं और राम तथा लक्ष्मण को कष्ट मुक्त कराने में सीता को ही श्रेय देती हैं।[1] सीता जी सुग्रीव तथा विभीषण की अतिशय कृतज्ञ है। जब वे दोनों १५ दिवस अयोध्या में वसने के पश्चात् विदा होने लगते हैं, तब सीता जी स्वयं अपने हाथों से उनका स्वागत करती हैं।[2] इससे उनके अतिथिसत्कारगुण की व्यंजना होती है।

रघुवंश में सीता त्याग के पूर्व यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि राम ने सीता जी के पीतमुख को देखकर उनके गर्भवती होने की वात समझ कर उनसे दोहद के विषय में प्रश्न किया। सीता जी ने उनसे गंगातीर के तपोवन को देखने की अभिलाषा प्रकट की। राम उन्हें उक्त दोहद प्रदान करने का आश्वासन देते है।[3] प्रस्तुत उल्लेख वाल्मीकि रामायण की उत्तरकाण्ड की कथा के आधार पर विरचित प्रतीत होता है।[4] दोनों में अन्तर यह है कि वाल्मीकि जी ने केवल यही उल्लेख किया है कि सीता जी ने एकरात्रि उक्त तपोवन में वसने की इच्छा प्रकट की थी, किन्तु कालिदास ने समय का कोई ऐसा प्रतिवन्ध नहीं लगाया।

कालिदास ने वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड (४३।७) के आधार पर ही यह उल्लेख किया है कि भद्र नामक गुप्तचर ने राम से आकर सीता के लोकापवाद की सूचना दी थी।[5] इसे सुनकर श्री राम अपने चारों भाइयों को बुलाकर पत्नी-त्याग का निश्चय करते हैं। यद्यपि राम जानते हैं कि सीता निष्पाप हैं, किन्तु फिर भी वे लोक-निन्दा को वलवती समझकर उसे दूर करना उचित मानते हैं।

अवैमि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादो वलवान्मतो मे।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्त्वे नारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः॥ रघु० ।१४।४०

राम के इस निश्चय का निषेध करने की क्षमता कोई वन्धु नही प्रदर्शित करता और न कोई उनके वचनों का अनुमोदन ही करता है।[6] रघुवंश में राम लक्ष्मण से स्पष्ट वतलाते हैं कि तुम्हारी भाभी सीता गर्भवती है, वे वनदर्शन के लिए दोहदवती भी हैं, अतः तुम रथारूढ़ होकर इन्हें वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आओ।

---

१. रघुवंश १४ सर्ग ६ श्लोक
२. रघुवंश १४ सर्ग १९ श्लोक
३. रघुवंश १४ सर्ग २६-२९ श्लोक
४. वा० रा० उत्तर० ।४२।३०-३५
५. रघुवंश १४ सर्ग ३१-३२ श्लोक
६. वा० रा० उत्तर० ।४५।१६-१८

प्रजावती दोहृदशंसिनी ते तपोवनेषु स्पृहयालुरेव ।
सत्वं रथी तद् व्यपदेशनेयां प्रापय्यवाल्मीकिपदंत्यजैनाम् ॥ रघु० ।१४।५४

वाल्मीकि रामायण में भी राम लक्ष्मण से वाल्मीकि आश्रम में त्याग आने का आदेश देते हैं, किन्तु यह नहीं बतलाते कि यह गर्भवती है ।[1] यह कालिदास की स्वयं-कृत उद्भावना है । इसी प्रकार वन प्रस्थान करते समय सीता के सव्येतर नेत्र फड़कने का उल्लेख भी वाल्मीकि रामायण में नही है ।

जब लक्ष्मण जी सीता से उनके त्याग की वार्ता बतलाते हैं, तब सीता मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती है, किन्तु लक्ष्मण के यत्नों से उन्हें पुनः प्रबोध प्राप्त होता है ।[2] वाल्मीकि की सीता भी उक्त बात सुनकर मूर्च्छित होती है, किन्तु वहाँ उन्हें स्वयं चेतना आ जाती है (उत्तर०।४८ सर्ग) । वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण जी वाल्मीकि आश्रम का पथ नहीं दिखलाते, किन्तु रघुवंश में वे सीता को वाल्मीकि आश्रम का पथ भी बतलाते हैं और सीता जी से उक्त कठोर वचनों के लिए क्षमायाचना भी करते हैं ।[3]

रघुवंश की सीता लक्ष्मण से कहती है कि तुम कौशल्यादि माताओं से मेरा प्रणाम कहना और कहना कि मेरी गर्भ स्थिति का हृदय से स्मरण बनाये रहें (रघु० १४।६०) । वाल्मीकि रामायण में सीता उक्त सन्देश देती है, किन्तु अपने गर्भवती होने का सन्देश नही देती, केवल लक्ष्मण से ही यह सूचना देती हैं कि मुझे ऋतुकाला-तिवर्तिनी अर्थात् गर्भवती देख कर तुम आज न जाओ ।

निरीक्ष्य माद्य गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम् । वा० रा० उत्तर०।४८।१८

इस आधार पर हम कह सकते है कि रघुवंश में सीता अपने गर्भ के प्रति अधिक सतर्क प्रतीत होती है । रघुवंश में सीता जी लक्ष्मण से संदेश देती हुई राम के प्रति हार्दिक क्षोभ व्यक्त करती हुई कहती हैं कि मेरी ओर से तुम राजा (राम) से कह देना कि यद्यपि मेरी अग्नि शुद्धि आपके समक्ष हो चुकी है किन्तु तुमने लोकापवाद के डर से त्यागा, क्या यह प्रसिद्ध कुल के लिए उचित है ?[4] इससे यह सिद्ध होता है

---

१. वा० रा० । उत्तर० ।१४।४९-५०

२. सा लुप्तसंज्ञा न विवेददुःखं प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः ।
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः ॥ रघुवंश०।१४।५६

३. रघुवंश ।१४।५८

४. वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।
मां लोकवाद श्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ॥रघु० ।१४।६१

कि सीता जी को राम का यह व्यवहार अतिशय असन्तोषप्रद प्रतीत हुआ। वे राम के लिए राजा शब्द का प्रयोग करती है, जो शासक होता है, कठोर होता है, लोक रंजन का पक्षपाती होता है। कालिदास के उक्त वर्णन में भी वाल्मीकि की छाप दृष्टिगोचर होती है।[1] अन्तर यह है कि रघुवंश में सीता जी अपने ही जन्मान्तर कर्म का विपाक मानकर सन्तोष कर लेती हैं।[2] वाल्मीकि की सीता पति को देवता मान कर उनकी इस कठोर आज्ञा को भी शिरोधार्य करती है।[3]

रघुवंश की सीता कहती हैं कि यदि मुझ में तुम्हारा (राम का) रक्षणीय तेज न होता, तो इस विघ्न के अभाव में मैं आत्महत्या कर लेती :

किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेस्मिन्।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः॥ रघु० ।१४।६५

वाल्मीकि की सीता इतनी विकल नही हैं, वे लक्ष्मण से राम को जो भी सन्देश देती हैं, उसमें मातृत्व की इस झलक का अभाव है। इसके अतिरिक्त कालिदास की एक सर्वोच्च उद्भावना यह है कि सीता कहती हैं कि श्री राम से कहना कि मैं सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् सूर्य की ओर देखती हुई ऐसा तप करूँगी कि जन्मान्तर में भी तुम मुझे पतिरूप में प्राप्त हो सको, मुझसे तुम्हारा वियोग न हो।[4]

इस कथन में सीता के हृदय में वसी हुई तीव्रतम प्रीति वरसती हुई प्रतीत होती है, उन्हें अपनी साधना पर कितना अटूट विश्वास है, इसके अतिरिक्त यह भी प्रकट होता है कि सूर्य के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। सम्भवतः कुलदेव मान कर ही सीता ने सूर्य की आराधना करने का निश्चय किया था, अन्यथा पति के प्राप्ति के लिए तो गौरी की उपासना मान्य है। वाल्मीकि ने इस प्रकार का उल्लेख नहीं किया। कालिदास की सीता कितनी निरीह हैं। वे सन्देश में कहती हैं कि राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा की रक्षा करे। मैंने माना कि मैं परित्यक्ता हूँ, पर क्या मैं राम की प्रजा भी नही रही ? इस नाते तो वे मेरी रक्षा का ध्यान रक्खें।

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।
निर्वासिता प्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया॥ रघु०। १४।६७

---

१. वा० रा० उत्तर०।४८।६-१५

२. रघु० १४।६२

३. वा० रा० उत्तर० ।४८।१७

४. साह तपः सूर्यनिविष्ट दृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरे पि त्वमेवभर्ता न च विप्रयोगः॥ रघुवंश ।१४।६६

ऐसा उल्लेख तो वाल्मीकि ने भी नहीं किया। कवि ने सीता के दैन्य को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है।

रघुवंश में सीता को त्यागकर लक्ष्मण चले जाते हैं, वाल्मीकि जी उनके आर्तस्वर को श्रवण कर समीप आते और दशरथ तथा जनक से अपना परिचय वतला कर उन्हें अपने आश्रम में शरण देते हैं। सीता उस आश्रम में नियम पूर्वक तपस्विनी के वेष में रहती हुई समय बिताती हैं। यद्यपि उनकी अनुपस्थिति में भी राम ने द्वितीय विवाह नही किया, किन्तु स्वर्णमयी सीता की प्रतिमा वनवा कर यज्ञ करते रहे। यह सुनकर सीता को दुःख तो अधिक होता है, किन्तु फिर भी वे उसे सहन करती हैं :

सीतां हित्वा दशमुखरिपु र्नोपयेमे यदन्यां।
तस्या एव प्रतिकृति सखो यत्क्रतूनाजहार ॥
वृत्तान्तेन श्रवणविषय प्रापिणा तेन भर्तुः।
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे ॥ रघु० ।१४।८७

रघुवंश (सर्ग १५।१३) के अनुसार सीता के कुश तथा लव नामक युग्मपुत्र उत्पन्न होते हैं, वे सयाने होने पर वाल्मीकिकृत रामायण का मधुरगान करने लगते हैं। लोगों के निवेदन करने पर राम भी उनसे रामायण का गान श्रवण करते हैं और उन्हीं से पूँछने पर जानते हैं कि ये वाल्मीकि के शिष्य हैं। राम स्वतः वाल्मीकि जी को बुलाते हैं और वाल्मीकि उन दोनों को सीता के पुत्र बतला कर सीता को अंगीकार करने की प्रार्थना करते हैं :

स तावाख्याय रामाय मैथिलेयौ तदात्मजौ।
कविः कारुणिको वव्रे सीतायाः सम्परिग्रहम् ॥ रघु० । १५।७१

राम उत्तर देते हैं कि हे तात ! यद्यपि आपकी बधू सीता मेरे समक्ष अग्नि में शुद्ध हुई है, किन्तु यहाँ की प्रजा ने राक्षस रावण की दुष्टता से अग्नि शुद्धि पर विश्वास नही किया :

तात ! शुद्धा समक्षं नः स्नुषा ते जातवेदसि।
दौरात्म्याद्रक्षसस्तां तु नात्रत्याः श्रद्दधुः प्रजाः ॥ रघु० ।१५।७२

अतः आप मैथिली द्वारा अपने चरित्र की शुद्धि का प्रमाण दिला कर जनता को विश्वास दिला दें, तब मैं आपकी आज्ञा से पुत्रों सहित सीता को स्वीकार कर लूँगा।[1] इसके अनन्तर द्वितीय दिन मुनि वाल्मीकि सीता तथा कुमारों सहित सभा में उपस्थित होते है, सीता जी वाल्मीकि के शिष्य द्वारा प्रदत्त जल से आचमन करके इस

---

१. रघुवंश । १५।७३

प्रकार सत्य वचन कहती है : हे विश्वम्भरे ! (पृथ्वी) यदि मैं वचन, मन तथा कर्म से पति के विषय में स्खलित नही हुई तो हे देवि ! तुम मुझे अन्तर्निहित कर लो ।

वाङ्मनः कर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे ।
तथा विश्वम्भरे देवि ! मामन्तर्धातुमर्हसि ।। रघु० १५।८१

कितनी दृढ़ प्रतिज्ञा है ? सती का जीवन वस्तुतः बड़ा विलक्षण होता है । वाल्मीकि रामायण में तीन श्लोको द्वारा यही शपथ करायी गयी है (उत्तर० ।९७।१५ १७)। इस प्रकार कालिदास पर रामायण का प्रभाव सुस्पष्ट है ।

सीता की इस शपथ के पश्चात् ही वसुन्धरा विदीर्ण होती है और प्रभासमूह में सर्प के फण पर स्थित पृथ्वी प्रकट होती है और वह पति की ओर देखती हुई सीता को अंक में बैठाकर राम के द्वारा निषेध करने पर भी पाताल चली जाती है ।

सा सीता मंकमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम् ।
मा मेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात् । रघु० ।१५।८४

यही कथानक वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड सर्ग-९७-९८ में वर्णित है । इससे यह ज्ञात होता है कि कविवर कालिदास ने वाल्मीकि रामायण को ही अपना आधार ग्रन्थ माना है ।

रावण वध (भट्टि ५००-६५० ई०)

संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा में सीता विषयक महाकाव्यों में रघुवंश के पश्चात् रावणबध अथवा भट्टिकाव्य का विशेष महत्व है । इसमें २२ सर्गों में १६२४ श्लोकों में रामजन्म से लेकर राम के राज्याभिषेक तक का रोचक वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ का भी मूलाधार वाल्मीकि रामायण है । इसमें सीता विषयक सामग्री का विवेचन इस प्रकार है ।

इस काव्य में सीता जी के जन्म पर प्रकाश नहीं डाला गया । ग्रन्थ में द्वितीय सर्ग में सीता विवाह का उल्लेख मिलता है । इस प्रसंग में कवि ने सीता के सौन्दर्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है :

जनक ने स्वर्णमयी संचारिणी वृक्षलता के समान, आकाश पतित विद्युत के समान तथा चन्द्रकान्ति की अधिष्ठात्री देवी के समान पुत्री सीता को राम के लिए प्रदान किया ।[1] इसके अतिरिक्त इस प्रसंग में भी सीता के चरित्र पर कोई उल्लेख नही

---

१. हिरण्मयी शाललतेव जंगमा च्युता दिवः स्थानुरिवाऽचिरप्रभा ।
शशांककान्तेरधिदेवताऽकृतिः सुता ददे तस्य सुताय मैथिली ।। भट्टि० ।२।४७

किया गया। इसी प्रकार तृतीय सर्ग में वनगमन प्रसंग में भी कवि ने सीता को बोलने का अवसर नहीं दिया। अत्रि के आश्रम में भी अनुसूया जी से सीता के मिलन का उल्लेख नहीं किया गया।

वन में विराध राक्षस द्वारा राम सीता तथा लक्ष्मण के अपहरण करने का उल्लेख मिलता है, किन्तु वहाँ भी सीता जी मौन हैं। राम लक्ष्मण विराध की भुजाओं का भंजन करके उसे भूमि में गाड़ देते हैं।[1] आगे चल कर सूर्पणखा रावण से सीता के रूप की प्रशंसा करती हुई कहती है।[2] उस राम की स्त्री हंसगामिनी, कृशांगी, यौवनमध्यस्था तथा वटपत्रतुल्य वर्तुलाकार उदर वाली है। रूप में उसके समक्ष इन्द्राणी, रुद्राणी, मनावी, रोहिणी, वरुणानी तथा अग्निपत्नी भी नहीं है।

नैवेन्द्राणी न रुद्राणी न मनावी न रोहिणी।
वरुणानी न नाग्नायी तस्याः सीमन्तिनीसमा॥ भट्टि० ।५।२२

कपट मृग के प्रसंग में कवि ने सीता की मृगचर्मपरिधानेच्छा को व्यक्त किया है और उन्हीं की प्रेरणा से राम को मृगवध करने में प्रवृत्त दिखलाया है (भट्टि ।५।४६)। जब मारीच मरण के पूर्व अत्यन्त तीव्रस्वर से शब्द करता है, यहाँ (हा लक्ष्मण ! यह सम्बोधन नहीं दिया गया, मल्लिनाथ ने यह अर्थ किया है) जिसे सुनकर सीता भयभीत होती है और लक्ष्मण से रोती हुई राम की सहायतार्थ जाने का आग्रह करती हैं :

एष प्रावृषिजाम्भोदनादी भ्राता विरौति ते।
ज्ञातेयं कुरु सौमित्रे ! भयात्त्रायस्व राघवम्॥ भट्टि० । ५।५४

यद्यपि लक्ष्मण उन्हें राम का पराक्रम बतला कर सान्त्वना देते हैं किन्तु सीता नहीं मानतीं वे दुराग्रह करती हुई कहती है : मेरी इच्छा है कि तुम जाओ, यदि नहीं जाना चाहते तो तुम मुझे पत्नी बनाना चाहते हो।[3] सीता के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण क्रुद्ध होकर सीता को शाप देते हुए कुटी से निकल जाते हैं कि तुम शत्रु के हाथ पड़ोगी।

मृषो ऽद्यं प्रवदन्ती तां सत्यवद्यो रघूत्तमः।
निरगाच्छत्रुहस्तं त्वं यास्यसीति शपन्वशी॥ भट्टि० ।५।६०

---

१. भट्टि० । ४।२-३

२. भट्टि० । ५।१८-२२

३. यायास्त्वमिति कामो मे गन्तुमुत्सहसे न च।
इच्छुः कामयितुं त्वं मामित्यसौ जगदे तया॥ भट्टि० ।५।५६

यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि भट्टि ने लक्ष्मण द्वारा सीता को शाप दिला कर नवीन कल्पना प्रस्तुत की है। वाल्मीकि रामायण मे लक्ष्मण असन्तुष्ट अवश्य होते है, किन्तु स्पष्ट रूप से शाप नहीं देते।

जब परिब्राजकवेषधारी रावण उनके समक्ष उपस्थित होकर सीता के रूप की प्रशंसा करता हुआ उनका परिचय पूँछता है, तब वे ओजायमान होकर उसका सत्कार करती हैं और भय अथवा लज्जा से गद्‌गदकण्ठ होकर बोलती हैं कि तुम महान पराक्रमी राम को नही जानते हो, जो दशरथ पुत्र है तथा जिन्होने तपस्वियों के कल्याण करने एव निशाचरो के नाश करने का व्रत लिया है। वे बन्धु लक्ष्मण की रक्षा में मुझे छोड़ कर मृगया खेलने गये हैं, उन्ही को खोजने के लिए मैंने लक्ष्मण को भेजा है।[1]

सीता के उक्त कथन में भट्टि ने यह प्रदर्शित किया है कि वह मानिनी थी, उन्हें अपने पति पर गर्व था। सम्वाद मे ऐसी सजीवता तो वाल्मीकि जी ने भी नही प्रस्तुत की।

इस प्रकार सीता के वचनों को सुनकर रावण राम की निन्दा करता हुआ अपना पराक्रम प्रदर्शित करता है और अनिच्छावती सीता को पकड़कर उनका अपहरण करता है। सीता ऊँचे स्वर से राम लक्ष्मण का नाम लेकर रोती हुई रह जाती है।[2] पथ में जटायु का वध कर रावण सीता को लंका ले जाने में सफल हो जाता है।

ग्रन्थ में षष्ठ सर्ग नें कवि ने सीता के वियोग मे राम का विलाप दिखाया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि सीता के प्रति राम के चित्त में अपार स्नेह विद्यमान था।

ग्रन्थ के अष्टम सर्ग में उल्लेख मिलता है कि जब हनुमान जी अशोक वाटिका में पहुँचते है, उस समय सीता जी रावण से भयभीत होकर एक पेड़ से दूसरे पेड़ की ओर जा रही थी (७० श्लोक)। उनका शरीर मलिन था और केश भी मलिन थे। वे शोक पीड़ित, हास्यरहित होती हुई भी तेजस्विनी प्रतीत होती थीं (७२, ७३)।

रावण के प्रणय वचनो को सुनकर वे विचलित नही होती। कवि ने सात श्लोकां (८६-९२) द्वारा रावण को सीता जी द्वारा लज्जित एवं घर्षित कराया है। यथा : यदि तुम शूर हो, तो मुझे छल कर क्यों लाये ? छिप कर लंका द्वीप में क्यों बसते हो। जब तक तुम्हें राम के दर्शन नही होते तभी तक तुम परस्त्री घर्षण पर गर्व कर लो। विष्णु तुल्य पराक्रमी राम के समक्ष आते ही तुम्हारा विनाश अवश्यम्भावी

---

१. भट्टि० ७६, ८२

२. उच्चैरारस्यमाना तां कृपणां राम लक्ष्मणौ। भट्टि० ५।९६ पूर्वार्द्ध

है। तुम्हारा तो नाम भी शेष नहीं रहेगा, राम तो रुद्र को भी जीतने में समर्थ हैं। तुम चाहे मेरी प्रशंसा करो अथवा निन्दा करो, मैंने सत्य बात कही है। तू मुझ पर भी काम वासना रखता है? पराक्रमी राम तेरा नाश अवश्य करेंगे।

उक्त कथन से सिद्ध होता है कि सीता जी को राम के पराक्रम पर दृढ़ विश्वास था, वे प्रलोभनों में आने वाली सामान्य नारी नहीं थीं, उन्हें प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने सतीत्व की रक्षा प्रिय थी। उनकी दृष्टि में रावण एक छली, चोर, व्यभिचारी एवं मिथ्या शूर था। सीता जी की निर्भीकता एवं स्पष्ट वादिता प्रशंसनीय है।

जब हनुमान बानर रूप में एक वृक्ष पर बैठे हुए रामकथा कहते हैं, तब भी सीता उन पर विश्वास नहीं करतीं, वे रावण ही समझती हैं। जब हनुमान जी उन्हें रामप्रदत्त आंगुलीयक प्रदान करते हैं, तब उन्हें विश्वास होता है।

> अयं मैथिल्यभिज्ञानं काकुत्स्थस्यांगुलीयकम्।
> भवत्याः स्मरताऽत्यर्थमर्पितः सादरं मम॥ भट्टि० ८।११८

अन्ततः राम के कुशल प्रश्न को पूछकर प्रत्यभिज्ञानरूप में चूड़ामणि देकर सीता हनुमान जी को विदा करती हैं। यहाँ पर कवि ने काकवृत्तान्त को अभिज्ञान स्वरूप प्रस्तुत नहीं कराया, जब कि वाल्मीकि ने ऐसा ही किया है।

ग्रन्थ के १४वें सर्ग में रावण सीता जी को एक बार निराश करता है। प्रसंग इस प्रकार है कि इन्द्रजित द्वारा संग्राम में रामलक्ष्मण के बद्ध हो जाने पर राक्षस सीता को पुष्पक में चढ़ा कर राम लक्ष्मण के दर्शन कराते हैं, जिन्हें देखकर सीता विलाप करती हुई मूर्च्छित हो जाती हैं। यथा :

> दर्शयाञ्चक्रिरे रामं सीतां गत्वा च शासनात्।
> तस्या मिमीलतुर्नेत्रे लुलुठे पुष्पकोदरे॥ भट्टि० १४।५४

उनके विलाप में आत्मग्लानि मुखर है, वे अपने हृदय को वज्रनिर्मित कठोर मानती हैं और अपने निमित्त राम की दशा से स्वयं को धिक्कारती हैं। वे प्राणों की निन्दा करती हैं, शरीरस्थ सौभाग्य चिन्हों को भी व्यर्थ समझती हैं और केशोत्पाटन करने लगती हैं।[1] इस प्रकार यहाँ कवि ने सीता की मनोदशा का सुन्दर चित्रण किया है, सब के मूल में उनका पतिप्रेम ही प्रतिष्ठित हुआ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के बीसवें सर्ग में रावण की मृत्यु के पश्चात् हनुमान जी सीता जी के पास जाकर उनसे राक्षसियों को दण्ड देने का प्रस्ताव करते हैं, किन्तु सीता जी तो अत्यन्त दयालु थीं, वे हनुमान को ऐसा करने से मना करती हैं और कहती हैं :

---

१. साजुगुप्सान् प्रचक्रेऽसून् जगर्हे लक्षणानि च।
देहभांजि ततः केशान् लुलुञ्च लुलुठे मुहुः॥ भट्टि०। १४।५६

हे हनूमन्; इन भृत्यवृत्ति पर आश्रित क्षुद्रजन्तुओं पर तुम्हारी बुद्धि शान्त हो जाये, यह दोष तो जिसका था, वह नष्ट हो गया।

उपशाम्यतु ते बुद्धिः पिण्डनिर्वेशकारिषु।
लघुसत्त्वेषु दोषोऽयं यत्कृतो निहतोऽसकौ ॥ भट्टि०।२०।५

यह है एक आदर्श महापुरुष की आदर्श पत्नी श्री सीता की महत्ता, उदारता एवं महतीकृपा तथा क्षमाशीलता का दिव्यभाव, जो सामान्य व्यक्ति के लिए सर्वथा दुर्लभ होता है। सीता जी के चित्त में तो श्री राम के ही दर्शन की कामना थी, अतः वे हनुमान जी से राम के दर्शन की कामना कर अपना सन्देश राम के पास भेजती हैं।

बाल्मीकि रामायण के आधार पर ही कवि ने यह उल्लेख किया है कि राम की आज्ञा से विभीषण शिरस्नाता एवं अलंकृता सीता को शिविका में बैठा कर राम के पास प्रस्तुत करते हैं। उस समय सीता जी लज्जा से अवनत थीं, वियोग स्मरण जन्य दुःख से दुःखित थीं, अश्रु भर कर राम के समक्ष रोने लगी :

लज्जानता विसंयोगदुःखस्मरणविह्वला।
सास्रा गत्वान्तिकं पत्युर्दाना रुदितवत्यसौ ॥ भट्टि० ।२०।२०

राम निष्ठुरता पूर्वक सीता चरित्र में सन्देह के कारण उनसे कह देते हैं कि तुम स्वेच्छा से जहाँ जाना चाहो, चली जाओ, अथवा सुग्रीव, विभीषण, भरत, लक्ष्मण में से किसी को स्वीकार करो। राम के विषय में आशा का परित्याग करो। कहाँ तो विख्यात रघुवंश और कहाँ तुम परगृहोसितनारी। अस्तु तुम अपना हृदय किसी अन्य पुरुष को सौंपो, हम लोग अनभीष्ट विषय में नही प्रवृत्त होते। तुम स्वेच्छा से आचरण करो। हे वैदेहि ! तुम्हारा पथ कल्याणप्रद हो, तुम मेरा भय त्यागो और अन्य पुरुषों के प्रति अभिलाषा करो।[1]

उक्त प्रकरण में कवि ने वाल्मीकि का ही अनुसरण किया है, किन्तु वहाँ कवि ने राम द्वारा क्रमशः लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव तथा विभीषण को अपनाने का परामर्श दिलाया है।[2] सीता जी अपनी शुद्धि हेतु देवों को, वायु, जल, पृथ्वी, सूर्य, आकाश आदि तत्वों को पुकारती हुई अपनी शुद्धि प्रमाणित करने की प्रार्थना करती हैं[3] और अन्ततः लक्ष्मण से चिता की रचना की प्रार्थना करती हैं।[4] यह प्रसंग

---

१. भट्टि० ।२०।२१-२५
२. वा० रा० युद्ध० ।११५।२२-२३
३. भट्टि० ।२०।२८-३३
४. चितां कुरु च सौमित्रे ! व्यसनस्यास्य भेषजम्।
रामस्तुष्यतु मेवाऽद्य पापां प्लुष्णातु पावकः ॥

ही नहीं, अपितु श्लोक का पूर्वार्द्ध भी वाल्मीकि रामायण से उद्धृत कर लिया गया है।[१]

अन्त में अग्नि में सीता जी प्रविष्ट होती हैं और अग्नि राम के इस कार्य की निन्दा करता हुआ सीता जी को शुद्ध सिद्ध करता है।[२] ब्रह्मा जी राम के इस कार्य की प्रशंसा करते हैं, शंकर जी उन्हें नारायण बता कर अभिनन्दन करते हैं।[३] इस प्रकार भट्टि ने रामसीता में विष्णु एवं लक्ष्मी की भावना की पुष्टि की है।

जानकीहरण (कुमारदास ६५०-७५० ई०)

प्रस्तुत महाकाव्य कालिदास की रचनाओं से प्रभावित है। इसके २५ सर्गों में से वर्तमान समय में केवल १५ सर्ग उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थ में वाल्मीकि रामायण के आधार पर अयोध्या वर्णन से लेकर रामराज्याभिषेक तक का कथानक वर्णित है। यह काव्य रघुवंश महाकाव्य का प्रतिस्पर्धी माना जाता है। यथा :

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कवि : कुमारदासश्च रावणश्च यदिक्षमः ॥[४]

इस ग्रन्थ में श्रृंगार का प्राधान्य है, फलतः इसका सीता वर्णन भी श्रृंगाररस से ओत-प्रोत है। कवि ने राम के मुख से सीता के अंग प्रत्यंग का वर्णन विवाह होने के पूर्व ही करा दिया है।[५] इसी प्रकार इसके सप्तम सर्ग में ही राम तथा सीता के पूर्वानुराग का विशिष्ट चित्रण किया है, राम सीता के विरह में अत्यन्त व्याकुल प्रतीत होते हैं।[६] इसी प्रकार समस्त अष्टम सर्ग में सीता राम के सम्भोग का वर्णन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि कुमारसम्भव के शंकर पार्वती सम्भोग वर्णन से विशेष प्रभावित होकर ही सीताराम को श्रृंगाररस के सरोवर में निमग्न कराने के लिए कटिबद्ध हुआ है।

दशम सर्ग में कवि ने अति संक्षिप्त रूप में राम वनवास का कथानक प्रस्तुत किया है, जिसमें न तो सीता के आग्रह की ही चर्चा है और न किसी के व्यक्तित्व का

---

१. वा० रा० युद्ध० ।११६ सर्ग।१८
२. भट्टि० ।२१।१-१३
३. भट्टि० ।२१।१४-१८
४. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा पृ० ७० (पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय १९६७ ई०)
५. जानकी हरण ।७।३-१८
६. वही ७।२३-३३

स्पष्ट निरूपण है। केवल एक या दो श्लोकों में सूचनामात्र है। इसी प्रकार काकासुर वृत्तान्त (१०।५६) भी सूक्ष्मरूप से वर्णित है। जयन्त सीता जी के सौन्दर्य पर लुब्ध होकर उनके मुखमण्डल पर चक्कर काटने लगता है, फलतः राम उसे एकाक्ष बना देते हैं।

वनपथ में विराध सीता जी का अपहरण करता है, राम उसका वध कर सीता को मुक्त करते है।[1] इसी दशम सर्ग के अन्त में कवि ने जानकीहरण का वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। इसमें सीता जी को विनीत, पतिव्रता, अतिथि सेवारत एवं विदुषी के रूप में चित्रित किया है। यह वृत्तान्त रघुवंश के सीताहरण से पर्याप्त साम्य रखता है। शेष कथावस्तु रामायण तथा रघुवंश पर आधारित है।

निष्कर्ष यह कि जानकीहरण की सीता में शृंगाररस का आवरण चढ़ गया है। राम से उनका प्रेम विवाह से पूर्व ही सूचित होता है। वे शृंगारप्रिया है, सती साध्वी, कर्त्तव्यपरायण होती हुई भी कष्ट भोगती है। उनकी करुणमूर्ति, हरण को समझकर साकार हो जाती है। वे राम की अनिन्द्य सुन्दरी हैं। उनका जीवन लक्ष्मण जैसे विश्वासी देवर को भी पातिव्रत्य में तिरस्कृत कर सकता है। संक्षेप में जानकी हरण की सीता भोग और त्याग, प्रेम और कष्ट, धर्म एवं काम के समन्वय का उदाहरण है।

राम चरित (अभिनन्द ९वीं शतक)

प्रस्तुत महाकाव्य ३६ सर्गों में उपनिबद्ध है। यद्यपि इसकी कथावस्तु मुख्यतया वाल्मीकि रामायण पर ही आधृत है, किन्तु कवि ने यथास्थान परिवर्तन एवं परिवर्द्धन भी किया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ प्रस्रवण गिरि में राम के प्रवास से होता है, इसके पूर्व सीता के जन्मादि का कोई परिचय नही दिया गया। जब राम हनुमान को सन्देश देते हैं और हनुमान सीता से आकर वह सन्देश सुनाते हैं, वहाँ पूर्वकथा का संकेत है।

जब हनुमान सीता की खोज में लंका जाने के लिए उद्यत होते है, तब श्रीराम उन्हें अभिज्ञानस्वरूप आंगुलीयक के अतिरिक्त मणिनूपुर तथा स्तनआवरक भी प्रदान करते हैं।

विससर्ज विभूषणं च हैमं निज नामांक मनामिका निविष्टम्।
मणिनूपुर मुद्धरार्ति मुक्तश्वसितम्लापित नायकांशुजलम्॥
अभिकाम सुगन्धि सान्द्र सार्द्रस्तनविच्छिति कलंक मुत्तरीयम्॥ रा०च० ८।१९-२१

उक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि सीता जी शृंगार प्रिया थी और राम उन पर विशेप मुग्ध थे। वाल्मीकि रामायण की सीता की भाँति इस ग्रन्थ में भी सीता जी

---

१. वही।१०।६९-७०

अशोकवाटिका में लतापाश से अपने गले को बाँधकर आत्महत्या करना चाहतीं हैं किन्तु हनुमान उस पाश को मुक्तकर सीता से अपना परिचय देते हैं ।[1] वाल्मीकि रामायण में सीता शकुनों के कारण स्वतः विरत हो जाती है ।

वाल्मीकि रामायण, महाभारत, रघुवंश, भट्टिकाव्य, इन ग्रन्थों में सीता रावण को शाप नहीं देती किन्तु इस ग्रन्थ की सीता अशोक वाटिका में रावण के प्रणय प्रस्ताव पर उसे समूल नष्ट हो जाने का शाप देती हैं ।[2] इससे उनकी निर्भीकता, क्रोधनशीलता एवं सतीत्व का सुन्दर प्रमाण उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में मायासीता का भी उल्लेख है। मेघनाद उसे लेकर राम लक्ष्मण के समक्ष ही संग्राम भूमि में वध करता है, जिससे राम अत्यन्त विकल होकर सीता के लिए विलाप करते हैं ।[3] इस कथानक से भी सीता जी के प्रति राम का अपार स्नेह लक्षित होता है । यह कथानक भी वाल्मीकि का अनुकरणमात्र है। जब इन्द्रजित लक्ष्मण द्वारा मृत्युगत होता है, तब रावण सीता का वध करने के लिए उद्यत होता है, किन्तु मन्दोदरी सीता की रक्षा करती है ।[4] इस कथानक से सीता के चरित्र पर यह प्रकाश पड़ता है कि रावण की दृष्टि में सीता अक्षम्य अपराधिनी थीं, अन्यथा मेघनाद का संहार न होता ।

इस ग्रन्थ में रावण वध पश्चात् राम अपने अनेक सहयोगियों को लेकर अशोक वन में सीता के दर्शनार्थ पहुँचते हैं, सीता उनकी शंका को समझकर स्वयमेव अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं ।[5] इस प्रकार कवि ने नवीन उद्भावना कर सीता के सतीत्व की परीक्षा तो करा ही दी है साथ ही राम की शंकालुता अथवा उत्सुकता का भी संकेत किया है । इस घटना से देवादि आश्चर्यचकित होते हैं और सब के द्वारा सीता की शुद्धि प्रमाणित होने पर वे सीता को स्वीकार करते हैं ।[6] इसी स्थान पर सीता का कथानक समाप्त हो जाता है ।

---

१. लतिकाभिरातविटपाभिरन्तिकात् करगोचरे शिरसि शिंशपा तरोः ।
   घट्याञ्चकार गलपाशमात्मस्तरलं मनो हनुमतः प्रकुर्वती ।।
   स चमत्कृतिर्द्रुतममोचयत् कपिः समुपेत्य पाशमणुतातिरोहितः ।।

   रा० च० । २०।२-३

२. रा० च०।१६

३. रा० च०।३७।४१-५८

४. रा० च०।३८।३-६

५. रा० च०।४०।३३-४२ (यह कथानक ३६ सर्ग के पश्चात् ४ सर्ग के परिशिष्ट में दिया गया है ।

६. रा० च० । ४०।४३-४६

रामायण मंजरी (क्षेमेन्द्र १०३७ ई०)

प्रस्तुत महाकाव्य में ५३८६ श्लोकों के माध्यम से वाल्मीकि रामायण के कथानक का संक्षिप्तरूप प्रस्तुत किया गया है। इसमें सीता जी के पुष्पवाटिका मिलन का कोई उल्लेख नही मिलता। जयन्तवृत्तान्त मे कवि ने परिवर्तन इस प्रकार किया है कि जब सीता जी एक मृग के मांस की रक्षा करती हुई उसे रोकती है तब वह पंख, चोंच तथा नख के आघात से सीता को उद्वेजित करता है।[1] वाल्मीकि रामायण में 'विददार स्तनान्तरे' लिख कर स्पष्टीयकरण किया है, किन्तु यहाँ कवि ने ऐसा उल्लेख नही किया।

इस ग्रन्थ में भी विराध सीताहरण के अपराध में राम द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है। यथा :

राक्षसोपि भृशं क्रुद्धः शब्देनापूरयन् दिशः।
दोर्भ्यामादाय वैदेही राघवामिमुखोऽवदत् ॥ रा० मं० अरण्य० ।२६७

जिस प्रकार महाभारत के रामोपाख्यान में सीता जी को अविन्ध्य नामक राक्षस यह समाचार बतला देता है कि राम तथा सुग्रीव में मैत्री हुई है, फलतः हनुमान पर सीता जी को तुरन्त विश्वास हो जाता है, उसी प्रकार इस ग्रन्थ मे भी सीता हनुमान का विश्वास कर लेती है।[2]

नागपाश वृत्तान्त को दिखलाने के लिए इस ग्रन्थ में भी रावण सीता को युद्ध-स्थल तक पहुँचाता है, सीता इस दृश्य को देख कर विलाप करती और अपने को धिक्कारती है।[3] इसी प्रकार मेघनाद हनुमान जी के समक्ष मायासीता का बध कर यह प्रदर्शित करता है कि तुम्हारा समस्त प्रयास व्यर्थ है।[4]

वाल्मीकि रामायण की भाँति इस ग्रन्थ में भी रावण की मृत्यु के पश्चात् सीताजी राम के समक्ष उपस्थित की जाती है और राम उन्हें अस्वीकार करते हुए भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सुग्रीव तथा विभीषण में से किसी एक को अपनाने का परामर्श देते है। यथा :

अधुना गच्छ वैदेहि ! स्वाधीनास्ते दिशो दश।
देवराणां गृहं वा त्वं सुग्रीवस्य गृहेऽथवा ॥
पुरे वा राक्षसेन्द्रस्य वस देशान्तरेषु वा ॥ रा० मं० लंकोत्तर०।८७-९०

---

१. मांसशेषस्य रक्षार्थं समादिष्टा प्रियेण सा।
पक्षतुण्डनखाघातैः काकेनोद्वेजिता भृशम् ॥ रा० मं०। अरण्य०। १४३

२. रा० मं० सुन्दर०।३४०

३. रा०मं० लका० ४७३-४७४

४. रा० मं०। १०५६-११०२

अन्त में सीता अग्नि में प्रवेश करती है और ब्रह्मादिक देव आकर सीता की शुद्धि की साक्ष्य देते हैं। अग्नि ने भी सीता की निर्दोषता सिद्ध की। इस प्रकार देवगण राम को विष्णु तथा सीता को लक्ष्मी की संज्ञा देते हैं।[1]

इस महाकाव्य की मुख्य वात यही है कि इसमें सीता लक्ष्मी का अवतार मानी गयी हैं और शेष विशेषताएँ वाल्मीकि रामायण की सीता के ही समान है।

उदारराघव (साकल्यमल्ल १४वीं शतक)

प्रस्तुत महाकाव्य भी वाल्मीकि रामायण का ऋणी है। इसकी अष्टादश सर्गावली में से केवल ९ सर्ग ही प्रकाशित एवं प्राप्त है। इनमें रामजन्म से लेकर शूर्पणखावृत्तान्त तक कथावस्तु का विस्तार है। इसके अनुसार अहल्या ने अपने उद्धार पर भविष्यवाणी की थी कि राम का विवाह सीता से होगा :

अचिरेण मैथिलसुतां परिणेता सुचिरं सुखान्यनुभविष्यति.रामः। ३।३४

इस काव्य में सीता स्वयम्वर का कोई उल्लेख नही मिलता।

वाल्मीकि रामायण की भाँति इस ग्रन्थ में भी सीता राम के साथ वन जाने के लिए विशेष आग्रह करती है। उनका तर्क है कि मैंने किसी रामायण में नही सुना कि विना सीता के राम वन गये हों, पुनः आप मुझे गृह में त्यागकर अकेले क्यों वन जा रहे हैं।

रामायणानीह पुरातनानि पुरातनेभ्यो वहुशः श्रुतानि।
न क्वापि वैदेहसुतां विहाय रामो वनं यात इतिश्रुतं मे ॥ सर्ग।५।४८

इतना ही नहीं सीता जी कहती है कि यदि आप मुझे वन न ले जायेंगे तो मैं विष, अनशन, रज्जुवन्धन से आत्महत्या कर लूँगी।[2]

इस प्रकार यहाँ सीता अत्यन्त व्यथित, विवेकहीन एवं पतिपरायण प्रतीत होती है। वन पथ में वधूटियाँ सीता जी से नीलमेघवर्ण राम का परिचय पूँछती है कि ये तुम्हारे कौन है, शवरियों के प्रश्न को सुन कर सीता हँस कर उत्तर देती हैं।[3] इससे सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ की सीता अधिक मुखर है, उनमें लज्जा का उतना पर्यावरण नही, जो रामचरितमानस में मिलता है।

---

१. रा० मं०। लंकोत्तर०।१०५, १२७

२. मां नानुजानासि वनायगन्तुं त्वां नाथमन्वेष्यति जीव एषः।
विषेण यद्वानशनेन यद्वा रज्ज्वाथवा राघव वर्ष्मजह्याम् ॥ उदार०।५।५१

३. नीलमेघ इव जाति पुरस्तादेष कस्तव घनस्तनि धन्वी।
पृच्छतीषु शवरीस्विति तन्वी व्यक्तमुत्तरमददात् हसन्ती ॥ उदार०।८।२६

इस प्रकार इस ग्रन्थ की सीता पतिव्रता, आग्रहशील, मुखर, तर्क प्रधान एवं राम की आदर्श सेविका है। वे स्वभावतः हास-परिहास प्रिय भी है।

आधुनिक महाकाव्य

संस्कृत साहित्य में उत्कृष्ट महाकाव्यों का युग श्री हर्ष के नैषधीयचरित की रचना के पश्चात् ही समाप्त माना जाता है, फिर भी यत्र-तत्र स्फुट महाकाव्यो की रचना होती रही है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल (१३७५-१७००) से ही संस्कृत साहित्य के आधुनिककाल का प्रारम्भ मानना संगत है। इस काल में रामचरित से सम्बद्ध कतिपय महाकाव्यों का पता चला है, जिनमें अधिकांश अप्रकाशित अथवा अप्राप्य हैं। अतः प्रायः सन्दर्भ ग्रन्थों के आधार पर उनके विषय में जितना ज्ञात हो सका है वह प्रस्तुत है।

राम विजय (रूपनाथ उपाध्याय १८वी शतक)

यह महाकाव्य ६ सर्गो में उपनिबद्ध किया गया है, जिसमें दशरथ राज्य महिमा से लेकर रामराज्याभिषेक तक का कथानक वर्णित है। इसके आधार पर सीता जी के विषय में इस प्रकार सूचनाएँ प्राप्त होती है :

इस ग्रन्थ में सीता की उत्पत्ति, पुष्पवाटिका प्रसंग एवं सीता स्वयम्वर का उल्लेख नही किया गया, केवल राम द्वारा धनुर्भंग करने एवं सीता के साथ विवाह मात्र का उल्लेख है। रामविजय (७।३४) में जब सीता जी के विशेष आग्रह से लक्ष्मण जी कुटी छोड़कर बन्धु राम का पता लगाने जाते है तब वे एक धनुरेखा खीच देते है। इससे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ के लक्ष्मण सीता जी की सुरक्षा के प्रति विशेष सजग थे। शेष वर्णन में कोई मौलिकता नही है परम्परा प्राप्त सीता चरित्र ही इसमें भी प्राप्त होता है।

जानकी परिणय (१६वीं शतक)

प्रस्तुत ग्रन्थ ८ सर्गो में विभाजित है, जिसमें दशरथ यज्ञ से लेकर परशुराम सम्वाद तक का कथानक वर्णित है। इस ग्रन्थ के अनुसार जानकी का राम के प्रति पूर्वानुराग था। वे सखियों के प्रति सलज्ज है और धनुर्भंग के अवसर पर भी राम द्वारा धनुर्भंग किये जाने की कामना करती है।

राम लिंगामृत (१७वी शतक)

इसकी कथावस्तु १७ सर्गो मे विभक्त है वैसे इसमें कुल १८ सर्ग हैं। इस ग्रन्थ के तृतीय सर्ग में सीता स्वयम्वर का विस्तृत उल्लेख मिलता है। सीता जी अपनी सखियों

द्वारा राम के सुन्दर रूप का वर्णन सुनकर राम के प्रति अनुरागवती चित्रित की गयी हैं। चतुर्थ सर्ग में सीता जी के विवाह का वैभवपूर्ण वर्णन है एवं लक्ष्मी उपस्थित होकर सीता जी से रामावतार का रहस्य बतलाती हैं।

वनवास प्रसंग में सीता जी वाल्मीकि की सीता की भाँति ही प्रस्तुत की गयी हैं। शूर्पणखा के विरूपण पश्चात् स्वयं नारद जी रावण के पास जाकर सीता जी के अद्वितीय रूप का वर्णन करते हैं। सीता हरण का प्रसंग भी परम्परायुक्त है। इसमें सीता जी की प्राप्ति के लिए श्रीराम शिवलिंग की पूजा करते हैं, जिससे शंकर की कृपा हुई थी।

अशोकवाटिका के प्रसंग में हनुमान जी राम की अँगूठी के अतिरिक्त उनका एक पत्र भी सीता को देते हैं। यह कवि की नवीन उद्भावना है। इस ग्रन्थ में सीता की अग्नि परीक्षा का उल्लेख नही किया गया। ग्रन्थ के त्रयोदश सर्ग में राम सीता के सम्भोग का विस्तृत वर्णन किया गया है, जिससे इस ग्रन्थ की सीता में रागात्मकता का प्रदर्शन अधिक हो गया है। यद्यपि इस ग्रन्थ में सीता-त्याग का उल्लेख नहीं है, किन्तु लवकुश का जन्म वाल्मीकि के आश्रम में ही प्रदर्शित किया गया है। राम स्वयं सेना लेकर जाते हैं और सीता के साथ दोनों राजकुमारों को लाते हैं (१४ सर्ग)। पंचदश सर्ग में सीता द्वारा कुम्भकर्ण नामक राक्षस के वध का उल्लेख किया गया है, यह एक नवीन कल्पना है, जिससे सीता के भैरवरूप का भी पता चलता है। १७वें सर्ग में कवि ने रामाश्वमेध के वर्णन के पश्चात् सीताराम के परलोकवास का चित्रण किया है।

सारांश यह कि रामलिंगामृत की सीता साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा हैं, वे शक्ति में दुर्गा हैं, विलास में रमा हैं। वे वीरप्रसविनी माता भी हैं और राम की अनन्य-प्रिया, पतिव्रता, शीलमयी भारतीय नारी है।

खण्डकाव्य

संस्कृत में खण्डकाव्यों के अन्तर्गत भी सीता विषयक सामग्री प्राप्त होती है जो कि परम्परागत है। जहाँ उसमें हमारे अध्ययन से सम्बद्ध कुछ नवीनता है, यहाँ केवल उसी का उल्लेख किया जायगा।

१. श्री रामाभ्युदय

इस ग्रन्थ के प्रणेता अन्नदाचरण माने जाते है, इन्होंने १९ सर्गों में अयोध्या वर्णन से राम विवाह तक की कथावस्तु छन्दोबद्ध की है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें राम सीता मिलन का शृंगार प्रधान वर्णन समस्त १८वें सर्ग में अत्यन्त

विस्तार के साथ किया गया है, जिसमें राम ही नहीं अपितु सीता भी शृंगार रस निष्णातनायिकावत् चित्रित की गयी है।

२. सीता स्वयम्बर

इस काव्य के प्रणेता हरिकृष्ण भट्ट माने जाते हैं, उन्होने १२७ श्लोको में सीता सौन्दर्य वर्णन से लेकर राम विवाह तक का अत्यन्त सरस चित्रण किया है। इस काव्य के आधार पर केवल यह ज्ञात होता है कि सीता जी अद्वितीय सुन्दरी थीं इनके स्वयम्वर में रावण भी आया था, पर धनुप नहीं उठा सका।

इसके अतिरिक्त राम विपयक अनेक खण्डकाव्य उपलब्ध है, जिनका वर्णन 'संदेशकाव्य' शीर्षक के अन्तर्गत किया जायगा।

धार्मिक काव्य

वैसे तो प्राय: समस्त पुराण, रामायण एवं महाभारत भी धार्मिक काव्यों के अन्तर्गत आते है, किन्तु पुराणों का स्वतन्त्र विवेचन कर चुकने के पश्चात् इस अंश में हम रामकथा के उन्ही ग्रन्थों का उल्लेख करेंगे जो सम्प्रदाय-साहित्य के अन्तर्गत आते है। इन ग्रन्थों में भी हमारे विवेच्च ग्रन्थ वे ही हैं, जिसमें सीता चरित्र से साक्षात् सम्वन्ध रखने वाली सामग्री प्राप्त होती है।

अध्यात्म रामायण

यह ग्रन्थ कब रचा गया और इसका प्रणेता कौन है, यह अभी तक निर्णीत नही हो सका है किन्तु तुलसी के रामचरित मानस में इसके प्रणेता के विषय में दो स्थानों पर यह उल्लेख मिलता है कि इसके प्रणेता श्री शंकर जी है। यथा :

रचि महेस निज मानस राखा। पाय समय सिवा सन भाषा॥ बाल काण्ड
इसके अतिरिक्त

यत्पूर्व प्रमुणाकृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्।
भाषाबद्धमिदंचकार तुलसीदास तथा मानसम्॥ उत्तरकाण्ड अन्त १

किन्तु इस ग्रन्थ की सामग्री अवतारवाद, सीता जी के व्यापकरूप से आदिशक्ति के रूप में प्रतिष्ठा आदि के आधार पर पाश्चात्य विद्वान इस ग्रन्थ को अर्वाचीन रचना मानते हैं। डॉ० बुल्के के अनुसार बहुत कुछ सम्भव है कि इसकी रचना १४वी अथवा १५वी शताव्दी में हुई थी।[1] इस प्रकार इस ग्रन्थ का प्रणेता भी कोई वैष्णव सिद्ध होता है।

---

१. डॉ० बुल्के (रामकथा) पृ० १७१

इस ग्रन्थ में श्री सीता जी से सम्बद्ध-सामग्री का विवेचन इस प्रकार है—

इस ग्रन्थ में बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में ही सीता जी हनुमान जी से बतलाती हैं कि मुझे संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा अन्त करने वाली मूल प्रकृति समझो। मैं ही आलस्यरहित होकर इनके सान्निध्यमात्र से इस विश्व की रचना करती हूँ।[1] इस प्रथम सर्ग में राम की संक्षिप्त कथा में सीता ने अपनी अग्निपरीक्षा का वर्णन नहीं किया, सीधे विभीषण को राज्य देने के पश्चात् पुष्पक से अयोध्या प्रत्यागमन सूचित किया गया है।

इस ग्रन्थ के अनुसार सीता जी जनकात्मजा है। स्वयं जनक ही विश्वामित्र से कहते हैं कि यदि राम धनुष को उठाकर उसकी कोटियों पर रोदा चढ़ा देंगे तो निश्चय ही मैं उन्हें अपनी आत्मजा सीता विवाह दूँगा। यथा :

यदि रामो धनुर्धृत्वा कोट्यामारोपयेद् गुणम्।
तदा मयात्मजा सीता दीयते राघवाय हि॥ अध्या०।बा०।६।१९-२०

इस प्रकार इस ग्रन्थ में श्री राम स्वयम्वर में धनुष नहीं तोड़ते और न तो पुष्पवाटिका में ही सीता से पूर्वानुराग प्राप्त करते। धनुर्भंग होने पर सीता जी सर्वालंकार विभूषिता होकर अपने हाथ में स्वर्णमयी माला लेकर मन्द-मन्द मुस्कराती हुई वहाँ आती हैं और राम के गले में जय माल डाल देती हैं।[2] इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि सीता जी में मानस जैसी लज्जाशीलता या गाम्भीर्य नहीं था।

जिस समय विवाह के पश्चात् सीता जी विदा होने लगती हैं, उस समय उनकी माताएँ उन्हें गले लगा कर रोती हुई उपदेश देती हैं : वत्से ! तुम सास की सेवा करती हुई सदैव राम की अनुगामिनी रह कर पतिव्रत धर्म का अवलम्बन कर सुख से रहना।[3] अन्य रामायणों में ऐसा नहीं मिलता।

अध्यात्म की सीता वाल्मीकि रामायण की ही सीता की भाँति राम के राज्याभिषेक के दिन एकाकी राम को देख कर आश्चर्य पूर्वक प्रश्न करती हैं कि आप बिना सेना के आये हैं? श्वेतछत्र कहाँ है? वाद्य क्यों नहीं बजते?[4]

---

१. माँ विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य सन्निधि मात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥ अध्यात्म०।१।३४

२. अध्या०।बा०।६।२९-३१

३. अध्या०।बा०।६।८०-८१

४. अध्या०।अयो०।४।५४-५५

समस्त कारण बतलाने पर सीता जी वनवास के लिए उद्यत होती हैं और कहती हैं : मै आगे वन जाऊँगी, आप मेरे पश्चात् आयेंगे, मेरे विना आपका जाना सर्वथा अनुचित है।

अहमग्रे गमिष्यामि बनं पश्चात्त्वमेस्यसि ।
इत्याह मां बिना गन्तु तव राघव नोचितम् ॥ अध्या०। अयो०।४।६३

वाल्मीकि रामायण के आधार पर यहाँ भी कवि ने राम मुख से वन के दोष गिनाये हैं और सीता द्वारा ६ श्लोको में (४।७१-७६) पुनराग्रह चित्रित किया है, किन्तु इसमें कवि ने केवल एक नवीन तर्क प्रस्तुत किया है कि मैने अनेक रामायणे सुनी है, किन्तु किसी में यह नही सुना कि सीता को छोड़ कर अकेले राम वन गये, अतः आप मुझे भी साथ ले ले।[१]

इस प्रकार इस रामायण की सीता पतिव्रता, विवेकशीला, कर्तव्य परायण, वहुश्रुत, तर्कशीला, सेविका, धर्मपरायण, निर्भीक, संतुप्टा, सहिष्णु एवं मृदुभाषिणी है। वे राम को कटु शब्द नही कहती। वनवास की यात्रा के समय वामदेव जी सीता जी को योगमाया लक्ष्मी और राम को विष्णु वतलाते है :

एष रामः परोविष्णु रादिनारायणः स्मृतः ।
एषा सा जानकी लक्ष्मी र्योगमायेति विश्रुता ॥ अध्या० । अयो० । ५।११

इस रामायण मे सीता जी वल्कल वस्त्र पहनना नहीं जानती, यह देखकर जनता रोने लगती है, अन्त मे वशिष्ठ जी की आज्ञा से सीता जी सर्वाभरणभूषित रूप में ही वन जाती हैं (५।४०)।

जव राम अत्रि के आश्रम में पहुँचते है, तव उनकी पत्नी अनसूया उन्हें सादर आलिगन करती है और विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दो कुण्डल, दो रेशमी वस्त्र तथा दिव्यांगराग प्रदान करती है।[२] वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही यह वृत्तान्त है, किन्तु इसमे कुण्डलों का उल्लेख अतिरिक्त है। इस रामायण के अनुसार जनस्थान में राक्षसो को युद्ध मे मारने के लिए राम की आज्ञा से लक्ष्मण सीता को लेकर एक गुहा में छिपा देते है और जब राम निशाचरों का नाश कर देते है, तव सीता के साथ

---

१. रामायणानि वहुशः श्रुतानि वहुभिर्द्विजैः ।
सीता विना वन रामो गतः किं कुत्रचिद् वद ।
अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी ॥
अध्या० । अयो० ।४।७७-७८

२. अध्यात्म० । अयो०।६।८७-८६

लक्ष्मण आते हैं और सीता प्रसन्न होकर अपने करकमलों से राम के शरीर में शस्त्राघात पीड़ित स्थानों पर हाथ फेरती हैं।[1]

इस उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि रामचन्द्र जी लक्ष्मण तथा सीता दोनों के चरित्रों पर दृढ़ विश्वास करते थे और सीता जी भी लक्ष्मण पर बिल्कुल विश्वस्त थीं।

इस रामायण में माया सीता का हरण हुआ है, वास्तविक सीता तो राम की आज्ञा से एक वर्ष के लिए अग्नि में बस गयी थीं। राम ने उन्हें बतलाया था कि रावण तुम्हारा अपहरण करेगा।

> रावणो भिक्षु रूपेण आगमिष्यति तेऽन्तिकम्।
> त्वं तु छायां त्वदाकारां स्थापयित्वोटजे विश ॥
> अग्नावदृश्यरूपेण वर्षं तिष्ठ ममाज्ञया ॥ अध्या० । अर० ।७।२-३

उक्त माया सीता का उल्लेख वाल्मीकि ने नहीं किया और न तो कालिदास ने ही किया। सर्वप्रथम कूर्मपुराण (उत्तर विभाग अध्याय ३४) में माया सीता का उल्लेख मिलता है। इस पुराण का रचनाकाल डॉ० हाजरा के अनुसार ७वीं ई० माना जाता है।

इस ग्रन्थ के अनुसार राम जानते हैं कि वह कपट मृग मारीच राक्षस है किन्तु फिर भी प्रिया सीता के अनुरोध पर मृग के पीछे-पीछे जाते हैं।[2] वन में मायामृग राम-शरविद्ध होकर जैसे ही 'हा लक्ष्मण' का शब्द करता है, सीता लक्ष्मण से साहाय्य हेतु जाने का आग्रह करती हैं और न जाने पर कहती हैं :

हे लक्ष्मण ! क्या तू अपने भाई को विपत्ति में देखना चाहता है ? अथवा राम के नाश की कामना से भरत ने तुमको भेजा है। तुम मुझे लेना चाहते हो, किन्तु न पा सकोगे। मैं तुम्हारे ही समक्ष प्राण त्याग दूँगी।[3]

लक्ष्मण जी इन वचनों को सुन कर कहते हैं कि हे चण्डि ! तुम मुझे ऐसा कहती हो, तुम नष्ट हो जाओगी।[4] वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण इतने कटु नहीं हैं, वे सीता

---

1. अध्यात्म० । अर० ।५।३०-३७
2. अध्यात्म० । अरण्य० ।७।१४-१५
3. आह लक्ष्मण दुर्बुद्धे ! भ्रातुर्व्यसनमिच्छसि ।
   प्रेषितो भरतेनैव रामनाशाभिकांक्षिणा ॥
   मां नेतुमागतोऽसि त्वं रामनाश उपस्थिते ।
   न प्राप्स्यसे त्वं मामद्य पश्यप्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ अध्या० । अर० । ७।३२-३३
4. अध्यात्म० । अरण्य० ।७।-६

को शाप नही देते। यह तो यहाँ शाप का ही एक रूप है। इस रामायण के अनुसार सीता शंकालु एवं क्रोधनशीला प्रतीत होती हैं।

अध्यात्म० में भी सीता जी यति वेषधारी रावण को नमस्कार करती है और भक्ति से उसकी पूजा करती है, मूलफलादि से स्वागत करती है। इस वर्णन के आधार पर वे अतिथि सत्कार परायण, आस्तिक, धार्मिक एवं विनम्र सिद्ध होती हैं।

इस ग्रन्थ की यह विशेपता है कि इसमें रावण सीता के पैरो के नीचे की भूमि को नखों से खोद कर हाथों से उठा लेता है और रथ मे फेंक कर आकाशमार्ग से चल देता है।

ततो विदार्य धरणीं नखैरुद्धृत्य वहुभिः।
तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौक्षिप्रंविहायसा ॥ अध्या० । अर० ।७।५१-५२

इस नवीन उद्भावना का दृष्टिकोण सीता का साक्षात स्पर्श न होने देना ही प्रतीत होता है। नृसिहपुराण (अध्याय ४९) में तो सीता स्वयं रथ में चढ़ जाती है, क्योंकि रावण सन्यासी के रूप में जाकर यह कहता है कि भरत ने मुझे वुलाने को आपके पास भेजा है और राम भी अयोध्या जा रहे हैं।

इस ग्रन्थ में सीता जी रावण द्वारा अपहृत होने पर राम तथा लक्ष्मण दोनों का नाम लेकर विलाप करती हैं। इससे सिद्ध होता है कि लक्ष्मण के प्रति उनकी भावना दूषित नही थी।[1] वे अपने इस विलाप में लक्ष्मण से क्षमा याचना भी करती है, जो उन्होंने अपशब्द कहे थे :

हा लक्ष्मण महाभाग त्राहि मामपराधिनीम्।
वाक्शरेण हतस्त्वं मे क्षन्तुमर्हसि देवर ॥ अध्या० । अर० ।७।६०-६१

इस प्रकार कवि ने क्षमा मँगवा कर सीता जी के कुवचनों का प्रायश्चित कराया है, जो वाल्मीकि रामायण में नही किया गया।

वाल्मीकि रामायण की भाँति इस ग्रन्थ में भी जव रावण अशोक वाटिका में जाकर सीता जी से वार्ता करता है, उस समय वे तृण की ओट से वात करती हैं :

उवाचाधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे। अध्यात्म० । सुन्द० ।२।३१

इससे कवि ने सीता की मर्यादा शीलता की सुरक्षा की है। सीता रावण का तिरस्कार करती है, उसे वीर्यहीन चोर कहकर सवंश नष्ट होने का भय भी प्रदर्शित करती है।[2]

---

१. अध्यात्म० । अर० । ७।५२
२. अध्यात्म० । सुन्दर० । २।३२-३६

इससे सीता जी की निर्भीकता, सच्चरित्रता एवं राम विषयक अनन्य प्रीति का प्रमाण मिलता है।

राक्षसियों की तर्जना से पीड़ित सीता अपनी वेणी को वृक्ष की शाखा में बाँधकर मरने का निश्चय करती हैं, इतने में ही हनुमान् रामकथा सुनाने लगते है और प्रगट होकर सीता को राम प्रदत्त आंगुलीय देते हैं तथा जयन्त का वृत्तान्त भी सुनाते हैं।[1]

इस वृत्तान्त की विशेषता यह कि काक सीता जी के पैर के अँगूठे में ही चोंच मारता है न कि स्तनों में, जैसा कि वाल्मीकि ने लिखा है। यहाँ चोंच मारने का उद्देश्य केवल मांसभक्षण ही माना गया है न कि कामवासना। यथा :

ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत्।
मत्पादांगुष्ठमारक्तं विददारामिपाशया ॥ अध्या०। सुन्द०।३।५४

इस ग्रन्थ में भी सीता जी प्रत्यभिज्ञानस्वरूप हनुमान को चूड़ामणि प्रदान करती हैं और कहती हैं कि राम इससे विश्वास कर लेंगे।[2] इसके अतिरिक्त जयन्त वृत्तान्त भी बतलाती है।

युद्धकाण्ड में विभीषण के राज्याभिषेक पश्चात् राम हनुमान को आज्ञा देते हैं कि तुम सीता के पास जाकर रावण वध का समाचार सुनाओ और उनका कथन मुझसे सुनाओ। हनुमान जाते हैं और सीता को राम का कुशल वृत्तान्त सुनाते हैं, सीता अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमान् का ऋण स्वीकार करतीं हैं और कहती हैं कि मैं शीघ्र ही राम के दर्शन चाहती हूं, वे मुझे आज्ञा दें।[3]

यह सुनकर राम विभीपण तथा हनुमान द्वारा सीता को बुला भेजते हैं, राम की अनुमति से ही स्नाता एवं सद्वस्त्रालंकृता माया सीता उपस्थित होती है। राम उन्हें अनेक अवाच्य शब्द कहते हैं, फलतः लक्ष्मण द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित कराकर सीता उसमें यह कहकर प्रवेश करती हैं : यदि मेरा चित्त राम को छोड़कर कही अन्यत्र नही जाता, तो लोकसाक्षी पावक मेरी सर्वतः रक्षा करे :

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ अध्यात्म०। युद्ध।१२।८१-८२

---

१. अध्यात्म०। सुन्दर०।३।१-६१

२. विमुच्य केशपाशान्ते स्थितं चूड़ामणिं ददौ।
अनेन विश्वसेद्राम स्त्वां कपीन्द्र सलक्ष्मणः ॥ अध्यात्म०। सुन्द०।३।५२

३. अध्या०। युद्ध।१२ सर्ग

इस घटना के घटते ही इन्द्रादि देव उपस्थित होते है और राम की स्तुति करते है, अन्तत: अग्नि देव अपने अंक मे सीता को लेकर प्रकट होते हैं और कहते है पहले तपोवन मे सौपी हुई जानकी को अब ग्रहण कीजिये ।

प्रोवाच साक्षी जगतां रघूत्तमं प्रपन्नसर्वार्तिहरं हुताशनः ।
गृहाण देवी रघुनाथ जानकी पुरा त्वया मय्यवरोपितां वने ॥

अध्या० । यु०।१३।२०

इस रामायण से सीता त्याग के विषय मे कुछ परिवर्तन किया गया है । सीता एक दिन एकान्त मे राम से निवेदन करती है कि देवगण चाहते है कि हम लोग स्वर्ग चले, फलत: राम उन्हें युक्ति बतलाते है कि मैं लोकापवाद के व्याज से तुम्हें वाल्मीकि के आश्रम मे निर्वासित कर दूंगा । तुम इस समय गर्भवती हो, वहाँ तुम्हारे दो पुत्र होंगे । मैं लोक विश्वास के लिए तुमसे शपथ लूंगा और तुम पृथ्वी के फट जाने पर छिद्र द्वारा वैकुण्ठ चली जाओगी पश्चात् मै भी आ जाऊँगा ।[1] पूर्व योजना का यह उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नही मिलता । सम्भवत: कवि ने भक्तिभाव से प्रेरित होकर ऐसा किया है ।

उत्तरकाण्ड के षष्ठ सर्ग मे परित्यक्ता सीता के दो पुत्रों के उत्पन्न होने का उल्लेख किया गया है । इधर राम स्वर्णमयी सीता का निर्माण कराकर अनेक अश्वमेधादि यज्ञ करते हैं, विवाह नहीं करते ।[2] एक दिन कुश तथा लव राम के दरबार में रामायण का गान करते है, पता लगाने पर उनके सीतापुत्र होने की बात पुष्ट होती है । वाल्मीकि जी बुलाये जाते है और वाल्मीकि रामायण (उत्तर० ।९७ सर्ग) की ही भाँति सीता भी आती है और वे कहती हैं कि यदि मै राम को छोड़कर मन से भी किसी का चिन्तन नही करती, तो पृथ्वी मुझे विवर दे दें ।[3] पृथ्वी के विदीर्ण होते ही सीता अपनी माता की गोद में बैठकर रसातल मे प्रविष्ट हो जाती हैं ।[4]

अद्भुत रामायण

इस ग्रन्थ में भी सीता का विशिष्ट उल्लेख किया गया है । इसमें सीता जी के पूर्व जन्म के विषय में द्वितीय से चतुर्थ सर्ग पर्यन्त यह कथानक प्रस्तुत किया गया है कि अम्बरीप की पुत्री श्रीमती को शाप मिला था कि तुम जानकी का अवतार लोगी

---

१. अध्यात्म० । उत्तर० ।४।३५-४४
२. अध्यात्म० ।उत्तर० ।६।३४
३. अध्यात्म० । उत्तर० ।७।४०
४. अध्यात्म० । उत्तर० ।७।४३

और राक्षस द्वारा तुम्हारा अपहरण होगा। इस प्रकार श्रीमती विष्णु की पत्नी थी, वही रामावतार में सीता हुई। सम्भवतः अवतारवाद एवं रामभक्ति के प्रचार के कारण सीता के इस पूर्वजन्म की कथा इसलिए कल्पित की गयी, जिससे विष्णु पत्नी के रूप से पूर्वजन्म से ही प्रतिष्ठित मानी जाये।

इसी ग्रन्थ के षष्ठ सर्ग के अनुसार एक बार लक्ष्मी ने नारद का अपमान किया था फलतः नारद ने उन्हे शाप दी कि तुम राक्षस के यहाँ अवतार लोगी। इस कारण लक्ष्मी जी मन्दोदरी की पुत्री के रूप में अवतरित हुईं, वही जनक के यहाँ सीता नाम से प्रसिद्ध हुई।

सीता जी के विशिष्ट महत्व को सूचित करने के लिए इस ग्रन्थ के कवि ने (सर्ग १७-२७) यह उल्लेख किया है कि देवी का रूप धारण कर सीता जी ने सहस्रमुख रावण का वध किया था। इस वृत्तान्त के अनुसार एक दिन विश्वामित्र प्रभृति राम की प्रशंसा कर रहे थे कि आपने वीर रावण का वध किया। इस बात पर मुसकराती हुई सीता ने पुष्करद्वीपवासी सहस्रमुख रावण का प्रताप सबको सुनाया। सुनकर राम उस पर आक्रमण करते और पराजित होते है। अन्त में सीता जी शक्ति के रूप में प्रकट होकर उसका वध करती है और समस्त देव उनकी स्तुति करते है। उन्हीं के अनुरोध पर ब्रह्मा श्री राम को पुनः जिला देते है।

इस प्रकार इस रामायण में सीता राम से भी अधिक सशक्त आदिशक्ति है, उनमे दिव्यशक्ति है। उनका अवतार लोककल्याण की भावना से ही हुआ था।

आनन्द रामायण

प्रस्तुत ग्रन्थ मे ९ काण्ड, १०९ सर्ग एवं १२२५२ श्लोको में राम कथा का चित्रण किया गया है। इसके रचयिता के विषय में इतिहास मौन है। प्रत्येक अध्याय के अन्त मे इसे शतकोटिरामचरित के अन्तर्गत वाल्मीकि की रचना होने का उल्लेख किया गया है। ग्रन्थ की सामग्री के आधार पर यह माना जाता है कि यह ग्रन्थ १५वी शताब्दी के आस-पास लिखा गया होगा। इसमे अध्यात्म० के श्लोकों का भी उद्धरण किया गया है, अतः यह रचना उससे अर्वाचीन ही प्रतीत होती है। संक्षिप्त रूप से इस ग्रन्थ की सीता विषयक विशेषताएँ इस प्रकार है :

(क) इस ग्रन्थ के अनुसार सीता जी अग्निजा है। सर्वप्रथम पद्मा नामक राजा ने लक्ष्मी, को पुत्री के रूप मे पाने के लिए तप किया। लक्ष्मी पुत्री के रूप में स्वयंवर योग्य हुई, किन्तु कोई राजा उसके पिता की इच्छा के अनुरूप आकाशवत नीलवर्ण न हो सका। अन्त में सब राजाओं के सामूहिक आक्रमण से राजा की मृत्यु

हुई और पुत्री पद्मा अग्नि में प्रविष्ट हो गयी। एक दिन रावण उसे देखता है और वह पुनः अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है। उस अग्निकुण्ड को खोज कर रावण वहाँ से पंचरत्न प्राप्त करता है और मंजूषा में भरकर लंका में मन्दोदरी को दिखलाता है। मंजूषा खोलते ही एक दिव्य कन्या दिखायी देती है, जो रावण के सपरिवार नाश करने का भविष्य बतलाती है। मन्दोदरी की इच्छा से वह पेटिका जनक राज्य में गाड़ दी जाती है, वहीं पर हलकर्षण से वह कन्या एक कृषक को मिलती है, उससे जनक प्राप्त करते है और अपनी पुत्री के रूप मे पालन-पोषण करते है।

अग्निवासादग्निगर्भा तथा रत्नावलीति च।
रत्नान्तर निवासाच्च प्रोच्यते जगती तले।
धरण्या निर्गता यस्मात्तस्माद्धरणिजेति च।
जनकेनाविता यस्माज्जानकीति प्रकीर्त्यते ॥
सीराग्रान्निर्गता यस्मात्सीते त्यत्र प्रगीयते।
पद्माक्षनृपतेः कन्या तस्मात्पद्मेति सा स्मृता ॥

आनन्द०। सार०।३।२७२-२७४

अग्निवास के कारण यह कन्या अग्निगर्भा एवं रत्नो के मध्य रहने के कारण रत्नावली, धरणी से निकलने के कारण धरणिजा और जनक से रक्षित होने के कारण जानकी कही जाती है। सीर (हल) के अग्रभाग से निकलने के कारण इसे सीता एवं राजा पद्माक्ष की कन्या होने के कारण इसे पद्मा कहते है।

इस उल्लेख का कुल तात्पर्य यह है कि सीता जी लक्ष्मी का अपर अवतार है। यह मान्यता अवतारवाद के प्रतिष्ठित होने पर विशेषतः सामुदायिक उपासना की मुख्य देन है।

(ख) इस ग्रन्थ के अनुसार सीता जी राम को देख कर मुग्ध हो जाती हैं, व धनुर्भंग करने का प्रामण करने वाले पिता जनक को शत्रु तक कह डालती है :

किं पणऽत्र कृतः पित्रा मम शत्रुस्वरूपिणा। आनन्द० ।सार०।३।११३

वे अनेक देवी-देवताओं से प्रार्थना करती है कि राम से धनुष टूट जाये। 'यदि राम धनुष तोड़ देंगे तो मैं चतुर्दशवर्ष मुनिवृत्तिके अनुसार वन में निवास करूँगी'[1] सीता के इस कथन का उल्लेख कर कवि ने वनवास की पूर्व पाठिका का कैसा अच्छा निर्माण किया है।

---

१. चतुर्दश वत्सराणि मुनिवृत्यानुवर्तिनी।
विचरामि वने चाहं धनुः सज्जं करोत्वयम् ॥ आनन्द०। सार०।३।१२०

(ग) सीता हरण के समय जव मारीच कपटमृग वनता है और मृत्यु के पूर्व 'हे लक्ष्मण' कहकर प्राण त्यागता है, उस समय अध्यात्म की भाँति इस ग्रन्थ मे भी सीता कहती है : तुम भरत के उपदेश से राम की मृत्यु चाहते हो, अथवा मुझे चाहते हो, तो मैं प्राण त्याग दूँगी।

भरतस्योपदेशेन मृति रामस्य वाञ्छसि।
अथवा मेऽभिलापोऽस्ति तर्हि प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ आ० । सार०।७।९५

इसमें विशेपता यह है कि लक्ष्मण जी चलते समय कुटी के वाहर धनुप कोटि से एक रेखा वना देते हैं और सीता को प्रणाम कर यह शिक्षा देकर जाते हैं कि उल्लंघन मृत्युदशा में भी न कीजियेगा।[1]

(घ) सीता हनुमत्सम्वाद में कोई नवीनता नही है। हनुमान राम की अँगूठी देते हैं और प्रत्यभिज्ञान रूप सीता उन्हें चूड़ामणि देती हुई जयन्त वृत्तान्त वतलाती है।[2]

(ङ) जयन्त वृत्तान्त में इस ग्रन्थ में भी काक द्वारा सीता के रक्तवर्ण अंगुष्ठ में माँस की इच्छा से प्रहार कराया है, जो कि अध्यात्म रामायण के ही आधार पर लिखित प्रतीत होता है।

सीतांगुष्ठं मृदुं रक्तं विददारामिषाशया।
निद्राभंगभयाद् भर्तुः सीतया न निवारितः ॥ आ० रा० सार० ।६।८७

(च) इस ग्रन्थ में इन्द्र द्वारा सीता को पायस खिलाने का उल्लेख है, जिससे एक वर्ष तक भूख प्यास नहीं लगती थी। सीता उस पायस में से राम, लक्ष्मण, देव, गो, पक्षी तथा त्रिजय को देती हैं, शेप स्वयं खाती हैं। इससे उनकी महत्ता एवं धार्मिकता सिद्ध होती है।[3]

(छ) मेघनाथ वध के पश्चात् रावण सीता को राम का कृत्रिम सिर दिखलाकर भयभीत करता है, किन्तु ब्रह्मा गुप्तरूप में आकर सीता को वास्तविकता वतलाकर सांत्वना देते हैं।[4] इसी प्रकार सीता के सिर को राम के समक्ष दिखला कर राम को दुःखी करता है किन्तु वहाँ भी ब्रह्मा जी पहुँच कर राम को वास्तविकता वतलाते हैं।[5] यहाँ पर ब्रह्मा द्वारा सांत्वना दिलाना नवीन उद्भावना है।

---

१. आनन्द० । सार ।७।६८-६९
२. आनन्द० । सार० ।९।११४-१२०
३. आनन्द० । सार० ।७।११७-११९
४. आनन्द० । सार० ।११।२२०-२२१
५. आनन्द० । सार० ।११।२४८-२५०

(ज) जब रावण की मृत्यु के पश्चात् सीता जी लायी जाती हैं, तब कवि ने एक ही वाक्य द्वारा राम से यह कहलाया है कि तुम परगृह में रही, अतः स्वेच्छा से जा सकती हो। इस बात को सुन कर सीता कुछ भी आक्रोश नहीं करती, सीधे लक्ष्मण द्वारा चिता बनवा कर अग्नि में प्रवेश करते समय शपथ करती हैं :

रामादन्यं चेतसाऽपि नाहं जानाऽमि पावक।
यदिदं मेस्ति सत्यं हि तर्हि त्वं शीतलो भव॥ आनन्द०। सार०। १२।७

हे अग्ने ! यदि मैं राम को छोड़ किसी अन्य का मन से भी स्मरण नहीं करती, तो तुम शीतल हो जाओ। अन्त में अग्निदेव सीता जी को अपने अंक में लेकर प्रकट होते हैं और उनकी शुद्धि प्रमाणित करते हैं।

(झ) विलासकाण्ड के अन्तर्गत (९ सर्ग) में कवि ने सीता जी के नख शिख का वर्णन किया है और पिंगला वैश्या के कारण सीता राम पर कोप प्रकट करती हैं।[1]

(ञ) इस रामायण में सीता त्याग का वृत्तान्त राम एकान्त में सीता को बतला देते हैं और भी यह भी बतलाते हैं कि तुम्हारे कुश पुत्र होगा तथा वाल्मीकि की कृपा से लव द्वितीय पुत्र होगा। अन्त में छाया सीता का ही निर्वासन होता है और वास्तविक सीता राम के वामांग में लय हो जाती है।[2]

(ट) इस रामायण में कैकेयी छल से रावण का चित्र सीता से बनवाती हैं[3] और राम से निवेदन करती है कि सीता ने यह चित्र बनाया है। राम स्त्री हत्या न करके सीता का केवल एक हाथ काट देने के लिए लक्ष्मण से कहते हैं। छित्त्वा सीताभुजं लोकप्रत्ययार्थं समानय (आनन्द०। जन्म०।३।३६)। बाद में राम को ज्ञात हो जाता है कि कैकेयी की दुष्टता से यह कार्य हुआ है। इसके अतिरिक्त रजकवृत्तान्त भी सीता के त्याग का कारण बतलाया गया है (आनन्द०। जन्म०। ३।२८-३५)।

(ठ) अध्यात्म रामायण की तरह इस ग्रन्थ में भी सीता का निर्याण वर्णित है। वे राम की सभा में वाल्मीकि आदि के समक्ष शपथ करती हैं कि यदि मैं राम के सिवा किसी अन्य का मन से भी चिन्तन नहीं करती तो पृथ्वी मुझे विवर दे दे :

रामादन्यं चेद्धि मनसाऽपि न चिन्तये।
तर्हि मे धरिणी देवि ! विवरं दातुमर्हसि॥ (आनन्द०। जन्म०।८।४८)

---

१. आनन्द०। विलास०। अष्टम सर्ग

२. श्री राघवस्य वामांगे सत्त्वरूपा लयं ययौ। आनन्द०। जन्म०।३।१८

३. आनन्द०। जन्म०।३८-४८

पृथ्वी विदीर्ण होती है और सीता उसमें प्रविष्ट होती हैं किन्तु इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि राम पृथ्वी पर कोप करते हैं। राम के शरसन्धान करते ही पृथ्वी सीता को लेकर राम को समर्पित कर देती है :

करांभ्यां जानकीं धृत्वा रामस्यांके न्यवेशयत्।
श्री रामपादयोः पृथ्वी शिरसा नमनं व्यधात्॥ आनन्द०। जन्म०।८।७३

कथावस्तु का यह नवीन परिवर्द्धन इस ग्रन्थ की अर्वाचीनता सिद्ध करता है। इसके पूर्व यह घटना अन्यत्र नहीं वर्णित है। साम्प्रदायिक उपासना के प्रभाव से यह परिवर्द्धन किया गया प्रतीत होता है।

(ड) राज्यकाण्ड के षष्ठ सर्ग में सीता (छाया) कुम्भकर्ण के पुत्र मूलकासुर का वध करती हैं। इसमें कवि ने सीता की वीरता और उनके चण्डी रूप का संकेत किया है।[1]

(ढ) इस रामायण की सीता राम से अन्य सन्तानों की और पुत्री की भी कामना करती हैं, राम उन्हें परिवार नियोजन की महत्ता बतलाते हैं और कृष्णावतार में उनकी इच्छापूर्ति का वर देते हैं।[2]

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आनन्द रामायण की सीता साक्षात् लक्ष्मी का अवतार ही नहीं, अपितु वे सर्वोपरि आद्याशक्ति हैं। उन्हें अपने चरित्र की प्रत्येक घटना का पूर्वज्ञान था। वे केवल सुन्दरी सीता ही नहीं, अपितु संहारिका चण्डी भी हैं। उनका मानवी रूप केवल प्रदर्शन है, वस्तुतः उनका दैवीरूप ही वास्तविक है।

तत्त्व संग्रह रामायण

इस ग्रन्थ में राम की अद्वैत उपासना पर बल दिया गया है। सीता चरित्र विषयक विशेषताएँ इस ग्रन्थ में भी विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ सीता हरण के प्रसंग में सीता रावण को अपनी हस्तरेखा दिखलाने के लिए लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन करती हैं, तभी रावण उनका हरण करता है। मायासीता का उल्लेख इस ग्रन्थ में है, वास्तविक सीता तो राम के अंक में विलीन हो जाती हैं (३, १३)।

इसके अतिरिक्त सीता जी शतानन रावण का वध करती हैं, जिसके समक्ष राम भी नहीं टिक पाते।[3] निष्कर्ष यह कि इस ग्रन्थ में भी सीता का आदिशक्ति

---

१. आनन्द० राज्य० ।६।६-२५
२. आनन्द० । राज्य० । १९ सर्ग
३. तत्व संग्रह रामायण ।७।१-२

स्वरूप प्रतिष्ठित है, वे सौम्य तथा भैरव दोनो प्रकार की है। वास्तविक सीता का कुछ नहीं हुआ। मायासीता का ही हरण हुआ है, उन्ही की अग्निपरीक्षा हुई है।

संस्कृत में रामायण ग्रन्थो की पृथुल संख्या है, इनमें बहुत कुछ अप्राप्य है। आनन्दरामायण में निम्नलिखित रामायणे शतकोटि रामायण के आधार पर निर्मित बतलायी गयी है :

वाल्मीकि रामायण, योगवासिष्ठ, अध्यात्म रामायण, हनुमद्रामायण, नारद-रामायण, लघुरामायण, वृहद्रामायण, सार रामायण (अगस्त्यकृत), देहरामायण, वृत्त-रामायण, भारद्वाज रामायण, ब्रह्मरामायण, शिवरामायण, क्रौञ्चरामायण, जेमिनि-भारत, आत्मधर्मरामायण, श्वेतकेतुरामायण, जटायुरामायण, पुलस्त्य रामायण, देवी-रामायण, गुह्यरामायण, मंगलरामायण, गाधिरामायण, सुतीक्ष्णरामायण, सुग्रीवरामा-यण, तथा विभीषणरामायण, (आनन्द०। मनो०। सर्ग ८। ६२-६६)।

उक्त ग्रन्थों में नारद रामायण संवृत रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार सुतीक्ष्ण रामायण मंजुल रामायण के नाम से विख्यात है। इसी प्रकार देह-रामायण ही सम्भवतः देव रामायण है। इनमें अधिकांश अप्राप्य अथवा अप्रकाशित है, अतः इनके बारे में विशेप कुछ नहीं कहा जा सकता।

भुशुण्डि रामायण अप्रकाशित है। इसके विपय मे यह सूचना प्राप्त है कि राम विवाह के पूर्व अयोध्या के प्रमोदवन में देवावतार गोपियों तथा अपनी पराशक्ति सीता के साथ रासलीला करते है। वे मिथिला जाकर एक पक्षी द्वारा सीता के पास अपना एक चित्र प्रेषित करते है, जिससे सीता जी राम को प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो जाती है। सीता के अतिरिक्त राम की एक सहजा सखी पत्नी के रूप मे चित्रित है। सीता को कवि ने ज्ञानपरकभक्ति के रूप में मान्यता दी है।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि रामभक्ति मे मधुरोपासना का विशेष प्रचलन होने पर सीता के शृंगारपरक एवं अलौकिकशक्तिपरकरूप की प्रतिष्ठा करने के लिए किसी अर्वाचीन कवि ने इसकी रचना की है।

मन्त्र रामायण

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणेता नीलकण्ठ ने वेदो से १५७ मन्त्रो का चयन किया है, जिनसे वम्रऋषि को वाल्मीकि और इन्द्र को राम की सज्ञा दी गयी है। इस ग्रन्थ मे सूक्ष्मरूप से उक्त वेदमन्त्रों का रामायणपरक अर्थ कर समस्त रामकथा का प्रदर्शन

---

१. डॉ० भगवती प्रसाद सिंह : रामभक्ति में मधुरोपासना (पृ० ६७)

वेदमूलक मानकर किया गया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ 'कं नश्चित्रमिषण्यसि०' मन्त्र से प्रारम्भ होता है और 'नावान क्षोद: प्रदिश:' इस मन्त्र से समाप्त होता है। इस प्रकार कथावस्तु राम वनवास से लेकर राम निर्याण तक संगत की गयी है।

एक उदाहरण द्वारा इस ग्रन्थ की पद्धति का स्पष्टीकरण इस प्रकार देखा जा सकता है :

सहिद्युता विद्युतावेति सानपृथ्वं योनिमनुरत्वाससाद।

स सनीलेभि: प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्यमाया: ॥ मन्त्र २ रा० पृ० ३७

स=वह, हि=प्रसिद्ध, द्युता=दीप्तिशक्ति, विद्युता=विद्युतवत् पृथक शरीरवाली के साथ, सरम=द्रोहरहित, वेति=जाता है। (देशान्तर) वहाँ उसकी पृथुयोनि= पृथ्वी से उत्पन्न जाया सीता को, अनुरत्व=चौर्यधर्मवाला रावण, आससाद=ले गया, स=वह राम, सनीडेभि:=स्वलोकवासी पार्षद हनुमानादि के साथ, प्रसहान:=नाग-पाशादि कष्टों को सहन करता हुआ रहा। सप्तथस्य=रावण की (विष्णु, कश्यप, मरीचि, ब्रह्म, पुलस्त्य, विश्रवा तथा सप्तम रावण) अस्य=इसकी, माया:=छल-युक्तियाँ, भ्रातु:=भागहरणकर्ता की, ऋतेन=सत्यरूप राम में नहीं चल सकीं। इस प्रकार यह अर्थ बुद्धिमता से लगाया गया है, वास्तविक नहीं है।[1]

जैमिनिभारत

इस ग्रन्थ के २५ वें अध्याय से ३६ वें अध्याय तक लवोपाख्यान के अन्तर्गत रामकथा का उल्लेख मिलता है। इसकी मुख्य उल्लेखनीय बात, जो कि सीता से सम्बद्ध है, वह यह है कि रजक के कहने से सीता जी का निर्वासन हुआ है। वाल्मीकि आश्रम में यज्ञाश्व हरण करने के कारण राम की सेना से लवकुश का युद्ध होता है, अन्त में वाल्मीकि हस्तक्षेप से सीता जी पहुँचती हैं और युद्ध विराम होते ही सबका मिलाप हो जाता है।

सत्योपाख्यान

इसमें राम की बाललीला से लेकर सीताविवाह एवं विहार पर्यन्त कथानक प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में सीता चरित्र पाया जाता है। सीता स्वयम्वर में यहाँ पर सीता विशेष उत्कण्ठिता दिखलायी गयी हैं। विवाह होते ही वे राम के साथ तीर्थ यात्रा करती हैं। आनन्द रामायण की सीता की भाँति वे भी जल विहार, वनविहार आदि में अनुराग रखती हैं। वे सामान्य शृंगार प्रधान नायिका की भाँति

---

१. नीलकंठ मन्त्ररामायण पृ० ३७-३८, सम्वत् १९६७ वेंकट प्रेस, बम्बई

मानलीला भी करती है। होली आदि पर्वो में उनकी विनोद प्रियता का भी उल्लेख किया गया है।

धर्मकाण्ड

इस ग्रन्थ की सीता पार्वती की परम उपासिका है, उन्ही की कृपा से राम धनुष तोड़ने में समर्थ हुए थे। जब रावण अशोक वाटिका में सीता को धमकाता है, तब हनुमान जी प्रकट होकर रावण को हटा देते है (अध्याय ८१)। इस ग्रन्थ में भी माया सीता का उल्लेख किया गया है।

हनुमत्संहिता

इस ग्रन्थ की सीता आद्याशक्ति है, वे अपने शरीर से ही अनेक स्त्रियों की सृष्टि कर राम के साथ रामलीला करती हैं, यहाँ सीता जी का भक्ति शृङ्गार परक रूप अधिक स्फुट हुआ है।

ब्रह्मरामायण

इस ग्रन्थ में १५ अध्यायो में रामकथा वर्णित है। इस ग्रन्थ में अध्याय ६-७ में सीता जी के विवाह का उल्लेख किया गया है। इसमे अष्टवर्षीया सीता किसी भिक्षुणी से राम का सौन्दर्य सुनकर विरह पीड़ित हो जाती है। इधर भगवान शंकर के स्वप्निक आदेश से जनक स्वयवर रचते है। उसमे पराजित राजागण अपनी कन्याएँ सीता के पास प्रेषित करते है। सीता जी राम का रूप बना कर उनसे क्रीड़ा करती है। अन्त में नारद द्वारा सीता को वियोगपीड़िता सुन कर राम उनके साथ विवाह करते है और साथ में वे सभी कन्याएँ भी ले आते हैं।

इस प्रकार मधुरोपासना के कारण इस ग्रन्थकार ने सीता जी के उज्ज्वल रूप को कलुषित किया है। कृष्णभक्तिधारा का यह प्रभाव रामभक्ति मे प्रविष्ट होकर सबसे बड़ा अनर्थ यह कर सका है कि उसमें मर्यादापरायणा सती सीता को पुरुप स्वरूप बना कर उनसे भी रासलीला करवा दी है।

उक्त रामायणों एवं साम्प्रदायिक रचनाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक रचनाएँ है, जिनका उल्लेख एवं विवरण यहाँ सम्भव नही है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जो सीता आदर्शमानवी थी, वही धार्मिक साहित्य मे लक्ष्मी, आद्याशक्ति या पराशक्ति हो गयी और मधुरोपासना मे शृंगार के घोरगर्त मे डुबा दी गयी, यह बात दूसरी है कि उन पर आध्यात्मिक चश्मा भी लगाया गया, किन्तु वह सब व्यर्थ रहा।

स्फुटकाव्य

सीता तथा राम को लेकर अनेक स्फुट काव्यों की रचना हुई है, जिनसे सीता के व्यक्तित्व पर कुछ न कुछ प्रकाश पड़ता है। प्रस्तुत प्रकरण में सामान्यतया जो रचनायें विशेष महत्वपूर्ण हैं, केवल उन्ही का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जायगा। विलोम काव्यों में प्रसिद्ध काव्य रामकृष्ण विलोमकाव्य, राघवयादवीय और यादवराघवीय हैं। इनमें चमत्कार-प्रदर्शन के अतिरिक्त सीता के चरित्र पर कोई नवीन सामग्री नही प्राप्त होती। चित्रकाव्यों में रामलीलामृत तथा चित्रवन्धरामायण की सूचना प्राप्त है, किन्तु इनका कथानक परम्परामुक्त है। इसी प्रकार श्लेपकाव्यों में राघवपांडवीय राघवनैषधीय तथा राघवपांडवयादवीय भी कला-प्रधान काव्य हैं। इनमें सीता के चरित्र के सम्वन्ध में कोई नवीनता नही प्राप्त होती।

सन्देशकाव्यों में हंसदूत, भ्रमरदूत, वातदूत, कपिदूत, कोकिलसन्देश, चन्द्रदूत आदि ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। ये सभी ग्रन्थ मेघदूत के आधार पर लिखे गये हैं। इनमें प्राय: सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार प्राप्त होती हैं :

(क) इन सव में विरही राम सीताजी के पास सन्देश भेजते है, भेजने का माध्यम पृथक्-पृथक् है।

(ख) उक्त सभी ग्रन्थों में सीता का विरहिणी एवं पतिपरायणा सुन्दरी के रूप में चित्रण हुआ है।

(ग) सभी ग्रन्थों में राम द्वारा सीता के परिचयात्मक रूप-चित्रण पर विशेप ध्यान दिया गया है।

(घ) वातदूत ग्रन्थ में सीताजी की ओर से राम को सन्देश दिलाया गया है।

चम्पू काव्यों में चम्पूरामायण (भोजराजकृत), उत्तररामचरित चम्पू (वेंकटकृत), रघुनाथविजय चम्पू (कृष्णकविकृत) का रामकथा से विशेप सम्वन्ध है। चम्पूरामायण में रामायण की समस्त कथावस्तु का क्रमवद्ध वर्णन किया गया है। सीताचरित्र की विशेपता यह है कि इस ग्रन्थ मे रावण सीता के समक्ष जाकर कुछ नही कहता, सीता ही मुख में तिनका धारणकर रावण को फटकारती है, साथ ही उसको अनेक प्रकार से उपदेश देकर सद्बुद्धि सिखाने का प्रयास करती है (५।२०,२१ पश्चात्)। इसके अतिरिक्त सीताजी हनुमानजी से वतलाती है कि यहाँ विभीपण की स्त्री सरमा तथा उसकी पुत्री अनला मेरे प्रति सद्व्यवहार करती है।[1] इस ग्रन्थ में भी मेघनाद माया सीता का वधकर राम-लक्ष्मण को निराश करता है, किन्तु विभीपण रहस्य का उद्घाटन कर देते हैं।[2] तीसरी विशेपता यह है कि इसमें रावण-वध के पश्चात् प्रत्यागता

१. चम्पूरामायण (भोजराज), ५।३० के पश्चात्

२. वही, ६।६८, ७० के पश्चात्

सीता को राम दुर्वाक्य नही कहते, सीता स्वयं अपनी शुद्धि प्रदर्शित करने के लिए अग्नि में प्रवेश करती हैं और अन्ततः राम उन्हें स्वीकार करते है। यथा :

विशुद्धशीलामनलेन संगाद् विदेहजां तत्र विलोक्य सीताम्।
प्रभौ पुनः प्रत्युषसीव पूषा प्रत्यग्रहीत् सोऽग्रसरोरघूणाम्॥[1]

शेष चम्पू काव्यो मे भी सीता के चरित्र मे कोई नवीनता नही प्राप्त होती।

गद्य साहित्य में कथा साहित्य के अन्तर्गत कतिपय ग्रन्थों मे रामकथा का उल्लेख हुआ है। कथासरित्सागर में अलकारवती नामक नवम परिच्छेद मे ५५ श्लोकों में रामकथा का उल्लेख हुआ है। इसमे सीता-वनवास तथा उनके ग्रहण करने की सक्षिप्त कथा का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त इसी ग्रन्थ के १४वें लम्बक की १०७वी तरंग में १५ श्लोकों में संक्षिप्त कथा सुग्रीव मैत्री से लेकर रावण-वध तक वर्णित है।

इस ग्रन्थ में सीता-त्याग के विषय में रजक का नाम नही लिया गया है। एक साधारण व्यक्ति अपनी पत्नी को विना पूँछे चली जाने पर और लौटकर आने पर पीटता है। राम गुप्त वेष में उनकी बात सुनते है। स्त्री कहती है कि राम ने तो रावण के गृह रही हुई अपनी पत्नी को त्यागा नहीं, तुम ऐसा क्यों करते हो ? यह सुनकर राम दुःखी होते हैं और गर्भवती सीता का परित्याग करते हैं।[2]

इसी प्रकार सीता की परीक्षा वाल्मीकिजी के ही आश्रम में होती है। सीता जी अपने सतीत्व की शपथ लेती हुई टिट्टिभसरोवर के जल में प्रवेश करती है, तदनन्तर पृथ्वीदेवी प्रकट होकर उन्हे सरोवर के पार पहुँचा देती है।[3]

इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि लवकुश-युद्ध के पश्चात् जब राम से सीता जी का मिलन होता है उसके पश्चात् सीताजी अयोध्या लौट जाती है, उनकी अन्तिम परीक्षा नही होती, अर्थात् पृथ्वी में प्रवेश होने की घटना का उल्लेख न कर कवि ने रामकथा सुखान्त वना दी है।

इसके अतिरिक्त इसमें सीता के एक पुत्र लव का ही उल्लेख मिलता है। कुश के वारे में यह प्रसिद्ध है कि एक दिन सीताजी पुत्र लव को लेकर स्नान करने गई, इतने मे वाल्मीकिजी को भ्रम हो गया कि पुत्र को कोई हिंसक जीव खा गया, फलतः उन्होने कुश से वालक का निर्माण किया और सीता के लौटने पर उन्होने उनकी प्रार्थना पर उसको नष्ट नही किया।[4]

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त वृहत्कथामजरी एव रामकथा (वासुदेवकृत) ग्रन्थो मे

---

१. चम्पू रामायण (भोजराज), ६।६८
२. कथासरित्सागर (सोमदेवकृत), ९।१, ६६
३. वही, ९।५१
४. वही, ९। १,८३, ९३

भी संक्षिप्त रामकथा का वर्णन है। सीता-चरित्र की दृष्टि से इनमें कोई नवीनता नही प्राप्त होती।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में सीता-राम की कथा अत्यन्त प्रचलित रही है। अगले पृष्ठों में संस्कृत-नाट्य-साहित्य के अन्तर्गत सीता-चरित्र के वैविध्य का प्रदर्शन किया जायगा। काव्य ग्रन्थों की तुलना में नाट्यग्रन्थों की कथावस्तु अधिक विकसित होती है। अतः यह भी निश्चित है कि इसमें सीता के जीवन एवं उनके चरित्र पर विभिन्नतायें और विचित्रतायें अधिक मिलती है, जैसाकि विवेचन से स्पप्ट हो सकेगा।

संस्कृत नाटकों में सीता का स्वरूप

संस्कृत साहित्य में रामकथा विशेष व्यापक रूप में अपनाई गई है। इसका नाट्य साहित्य भी विशेष धनी है, जिसके अध्ययन से सीताजी के विभिन्न रूपों का रोचक परिचय प्राप्त होता है। इस दृष्टि से प्रतिमानाटक, अभिषेकनाटक, महावीर चरित, उत्तररामचरित, कुन्दमाला, अनर्घराघव, बालरामायण, हनुमन्नाटक, आश्चर्य-चूड़ामणि, अद्‌भुतदर्पण, मैथिलीकल्याण, उन्मत्तराघव, दूतांगद तथा कुशलवोदय विशेष प्रसिद्ध है। यहाँ पर केवल प्रमुख ग्रन्थों में प्राप्त सीता-सामग्री पर आलोचना-त्मक प्रकाश डाला जायेगा।

प्रतिमानाटक

प्रस्तुत नाटक महाकवि भास प्रणीत माना जाता है। इसमें राम के राज्या-भिषेक की तैयारी से लेकर वनवास पश्चात् राम के राज्याभिषेक तक का कथानक ७ अंकों में वर्णित है। प्रस्तुत ग्रन्थ की सीता का चरित्र एक आदर्श पतिव्रता का चरित्र है। प्रथम अंक में अवदातिका नामक दासी वल्कलवस्त्र की चोरी करती है। सीताजी कहती है : पाप किया, जा लौटा दे।[1] जब अवदातिका कहती है कि मैं इसे हँसी में लाई हूँ तब पुनः सीता जी कहती है : पगली ! इसी प्रकार बुराई बढ़ती है। जा लौटा दे, लौटा दे।[2]

सीताजी के उक्त वचनों से सिद्ध होता है कि वे आदर्शवादिनी थी, उन्हें चौर कर्म बिल्कुल अरुचिकर लगता था, भले ही वह हँसी मे क्यों न किया गया हो। वे कितनी व्यवहार-कुशल है ? वे जानती है कि हँसी करने से भी चित्त में वैमनस्य आ जाता है। सीता जी विनोदप्रिया भी है, वे स्वयं वल्कल वस्त्र पहनकर दर्पण देखती है।[3] वे अपने भृत्यों एवं दासियों पर भी सुन्दर ढंग से व्यवहार करती है। जब चेरी उनसे

---

१. पावश्चैकिदम्। गच्छ णिय्यादेहि॥ (अंक १, पृ० ११) प्रतिमा०। चौखम्बा० सं० सी० वाराणसी

२. उन्मत्तिके। एवं दोषो वर्धते। गच्छ निर्यातय, निर्यातय। (वही पृ० १२)

३. वही, पृ० १४

राम के राज्याभिषेक का समाचार वतलाती है, तव वे उसे पुरस्कार भी देना चाहती हैं।[1]

सीताजी को राज्य के प्रति भी कोई आकर्षण नहीं था। जव राम के राज्याभिषेक का समाचार मिला और फिर यह ज्ञात हुआ कि राम राजा नहीं हुये, तव वे कहती हैं, अच्छा हुआ, महाराज महाराज ही रहे और आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहे।[2] जव वनवास के समय लक्ष्मण क्रोध करते हैं और सारे विश्व को युवतीशून्य करने की वात कहते हैं, तव सीताजी उसे अनुचित समझकर कहती हैं : आर्यपुत्र ! रोने के समय लक्ष्मण ने धनुष उठाया है, इनका इतना क्षोभ तो कभी देखा नहीं गया।[3]

इस नाटक की सीता एक आदर्श नारी हैं। जव राम वनवास के लिए तैयार होते हैं और सीता से कहते हैं कि मैं वन जाऊँगा, तुम नहीं, क्योंकि वहाँ वन मे रहना होगा। सीताजी कहती हैं : तत् खलु मे प्रासादः (पृ० ४०) अर्थात् वह तो मेरे लिए प्रासाद (राजमहल) होगा। जव राम सास-ससुर की सेवा हेतु गृह में रहने की वात कहते हैं, तव वड़ी चतुरता से अस्वीकृति देती हुई कहती हैं, एनामुद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते। अर्थात् इसके लिए मैं देवताओं को प्रणाम करती हूँ (पृ० ४०)। तात्पर्य यह कि मैं ऐसी सेवा करने में लाचार हूँ, जिस सेवा में पतिसेवा से दूर रहना पड़े। इस लाचारी के लिए मैं देवताओं से क्षमाप्रार्थिनी हूँ। उक्त कथन में वचनवक्रता का कितना सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। सीताजी पतिसेवा की तुलना में अन्य सेवायें तुच्छ समझती हैं। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ की सीता राम को किसी प्रकार के कटु शव्द नहीं कहती, वे परमशालीन प्रतीत होती हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के चतुर्थ अंक (श्लोक १४) में सीताजी की उत्पत्ति के विषय में भरतजी कहते हैं कि यह वही स्त्रीमय तेज है, जो खेत जोतते समय हल द्वारा पृथ्वी के गर्भ से निकला था और महाराज जनक के तप का उत्तम उदाहरण है।

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात्।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम्।। (प्रतिमा० ४।१४)

इस ग्रन्थ की सीता में नारी के करुण रूप की स्वाभाविक झलक मिलती है। जव भरतजी राम को मनाने के लिए चित्रकूट पहुँचकर श्रीराम से अपने ऊपर दयादृष्टि करने की प्रार्थना करते हैं, उस समय उनका हृदय द्रवित हो जाता है और

---

१. यदेवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम्। विशालतरमुत्सर्गं कुरु। वही, पृ० १५
२. प्रियं मे महाराज एवं महाराजः आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः।। वही, पृ० २३
३. आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम्। अपूर्वः खल्वस्यायासः।। (वही, अंक १, पृ० ३५)

वे राम से कहती हैं : आर्यपुत्र ! भरत की बातें अत्यन्त करुणाजनक हैं, इस समय आप क्या सोच रहे हैं ?[१] इससे उनकी करुणालु प्रवृत्ति पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है।

सीताजी स्वच्छताप्रिय हैं, वे वनवास के समय अपने आश्रम की स्वच्छता स्वयं करती हैं और देवपूजा के प्रति भी उनकी आस्था है, वे नित्यप्रति देवाराधन भी करती हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें प्राकृतिक पेड़-पौधों से बड़ा प्रेम है, वे उन्हें स्वयं जल देती है।[२] इस प्रकार उनकी पारिश्रमिक क्षमता भी सिद्ध होती है।

सीताजी परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार करने की पक्षपातिनी थीं। जब राम पिता के श्राद्ध हेतु वैभव की बात उठाते हैं तब सीता कहती हैं : वैभवपूर्ण श्राद्ध तो भरत करेंगे ही किन्तु आप भी अपनी अवस्थानुसार श्राद्ध करें। पिताजी इसे ही पर्याप्त मान लेंगे।[३] इससे सीता जी की बुद्धिमत्ता का एवं कर्मकाण्ड विषयक मान्यताओं के परिचय का ज्ञान भी सिद्ध होता है।

इस ग्रन्थ की सीता कांचनमृग को मारने के लिए राम से आग्रह नहीं करतीं, राम स्वयमेव पिता के श्राद्ध के लिए उसका वध करने जाते हैं। इस नाटक की सीता रावण को देखकर भयभीत हो जाती हैं, उन्होंने लक्ष्मण को बाहर नहीं भेजा था और न उन्होंने उन्हें कटु वचन कहे। वे तो राम के समक्ष ही तीर्थयात्रा से लौटे हुये कुलपति अत्रि की अगवानी करने चले गए थे (पृ० १४०, १४१)। जब रावण सीता का बलपूर्वक हरण करता है, तब वे उसे शाप देने का भय भी दिखाती हैं, शप्तोसि (पृ० १४५)।

इस ग्रन्थ में सीताजी की अग्निपरीक्षा का संकेत मिलता है।

जगति गुणसमग्रां प्राप्य सीतां विशुद्धाम्। (अंक ७, श्लो० २)

टीकाकार ने विशुद्धाम् पद का अग्निप्रवेश परीक्षा प्रमाणित निष्कलंकचरित्राम् अर्थात् अग्निप्रवेश की परीक्षा से प्रमाणित हो गई है निष्कलंकता जिसकी (सीता)—यह अर्थ लगाया है।

इस प्रकार प्रतिमानाटक की सीता भूमिजा हैं। वे आदर्श पतिव्रता, विनोदप्रिय तथा मृदुवचनी हैं। वे राम के सुख में सुखी और दुःख में दुःखित रहती हैं। कठोर परिश्रम एवं सहिष्णुता भी उनकी विशेषतायें है। उनमें देश काल तथा परिस्थिति के अनुकूल कार्य करने की क्षमता है। उनमें धर्म के प्रति आस्था है। वे एक करुण एवं सरलहृदया निश्छल नारी हैं। उनका चरित्र एक आदर्श भारतीय नारी का आदर्श है।

---

१. आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः किमिदानीमार्यपुत्रेण चिन्त्यते।
(प्रतिमा० अंक ४ पृ० ११७)

२. वही, अंक ५ का प्रथम वाक्य

३. वही, अंक ५ पृ० १३०

अभिषेकनाटक

प्रस्तुत नाटक में ६ अंकों में राम-सुग्रीव-मैत्री से लेकर राम-राज्याभिषेक तक की रामकथा का वर्णन है। इस ग्रन्थ में सीताजी के विषय में भी अनेक विचार मिलते हैं। द्वितीय अंक में विष्कम्भक में सीता कहती हैं : मुझे धिक्कार है। मैं अभागिनी अति कठोर हूँ, जिससे प्रियतम से विमुक्त होकर लंका आने को विवश हुई। मुझे अप्रिय, अनुचित एवं यथेच्छकथित वचन कहे गये। फिर भी मैं जीवित हूँ। अथवा प्रियतम के वाणों पर विश्वास करके किसी प्रकार जीवित रही हूँ।

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि सीता को मानसिक व्यथा का भार वहन करना पड़ रहा है, वे एक वियोगिनी की सच्ची मूर्ति हैं। उन्हें राक्षस परिधि में रहने एवं अवाच्य वचनों के श्रवण का अत्यन्त क्षोभ है। उन्हें इस विपत्ति में भी अपने प्रियतम श्रीराम की शक्ति एवं शौर्य पर दृढ़ विश्वास है।

इसी अंक के श्लोक ८ में कवि ने सीता को कृश, एकवेणीधरा, दीप्तिमती, प्रियानुरक्ता, अश्रुमुखी एवं कोमलांगी के रूप में हनुमान को दर्शन दिलाया है।[1] सीता जी सम्भाषण में शिष्टाचार का विशेष ध्यान देती हैं। जब रावण अशोकवाटिका में आकर राम की निन्दा करता हुआ अपने को स्वीकार करने के लिए आग्रह करता है, तब सीता कहती हैं—(हास्यः खलु रावणकः, यो वचनगतसिद्धिमपि न जानाति।[2] अर्थात् निश्चित रूप से रावण उपहासास्पद है, जोकि संगत वचन बोलना भी नहीं जानता। रावण सीता के इन शाप के वचनों से भी नहीं डरता 'शप्तोसि'। ग्रन्थकार ने सीता से केवल शाप की धमकी दिलाई है, शाप नही। इससे सीता की शाप-शक्ति पर सन्देह के लिए अवकाश हो गया है।

रावण के चले जाने पर जब हनुमान वानर रूप में उपस्थित होकर रामकथा सुनाते हुए स्वयं को रामदूत कहते हैं, तब प्रथम तो सीताजी को शंका होती है, किन्तु पश्चात् वह यह सोचकर उनसे बात करने का निश्चय करती हैं कि कोई भी सही, आर्यपुत्र का नाम ले रहा है, अतः मैं इससे बात करूँगी।[3] सीताजी के उक्त कथन से प्रिय-प्रेम की प्रगाढता एवं औत्सुक्य सिद्ध होता है।

सीताजी अपने कष्टों से उतनी व्यथित नही, जितनी व्यथित राम के कष्टों से हैं। वे हनुमानजी से भी कहती हैं कि तुम मेरी बात इस प्रकार कहना, जिससे

---

१. असित भुजगकल्पां धारयन्त्येकवेणीं करपरिमितमध्यां कान्तसंसक्तचित्तां।
अनशनकृशदेहा बाष्पसंसिक्तवस्त्रा सरसिज वनमालेवातये विप्रविद्धा॥
(अभिषेक० २।८)   २. वही, २।१४ के बाद

३. योवा को वा भवतु। आर्यपुत्रनाम संकीर्तनेनाहमेतेनाभिभाषिष्ये। (वही, २।२० के बाद)

राम शोकाकुल न हों।[1] जब रावण मायामय राम-लक्ष्मण के सिर लाकर सीताजी को दिखाकर अपने वश में करना चाहता है, उस समय सीता बहुत विलाप करती है और रावण से कहती हैं : हे भाई ! जिस खड्ग से तुमने आर्यपुत्र का वध किया है, उसी से तुम मुझे भी मार डालो।

येनासिनार्यपुत्रस्यासदृशं कृतं तेन मामपि मारय। (अंक ५, श्लो० १० से पूर्व) उक्त वाक्य सीता के सतीत्व, दैन्य एवं कारुण्य का कितना सुन्दर निदर्शन है ? इसी प्रकार इन्द्रजित की मृत्यु होने पर रावण एक बार सीता को ही मारने के लिए उद्यत हो जाता है, किन्तु एक राक्षस यह कहकर उसे मना कर देता है कि अवश्यंमेव स्त्री-वधो न कर्तव्यः। अवश्य, स्त्री वध नही करना चाहिए।

इस ग्रन्थ में भी रावण-वध के पश्चात् सीताजी राम के समक्ष प्रस्तुत की जाती हैं, किन्तु राम की इच्छा से सीताजी अग्नि में प्रविष्ट होती हैं।[2] अग्निदेव उज्ज्वल सीता को अंक में लेकर प्रकट होते है और सीताजी को अर्पित करते हुए कहते है : हे राजेन्द्र ! हे पुरुषोत्तम ! आप सर्वलोकवन्दिता, निष्पापा, अक्षता तथा शुद्धा अपनी इस सीता को स्वीकार करें।

इमां गृह्णीष्व राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृताम्।
अपापामक्षतां शुद्धां जानकी पुरुषोत्तम ॥ (अभि० ६।२७)

इतना ही नही, अग्निदेव सीता को भगवती लक्ष्मी का स्वरूप कहते है और राम से निवेदन करते है कि ये मानुषी रूप में आपको प्राप्त हुई थी।[3] इससे सीता जी का अलौकिक स्वरूप भी प्रमाणित होता है। राम भी स्वीकार करते हैं कि मैं सीता की पवित्रता जानता था, किन्तु लोकविश्वास के लिए ही मैंने उनकी यह परीक्षा ली है :

जानतापि च वैदेह्याः शुचितां धूमकेतन।
प्रत्ययार्थं हि लोकानामेव मया कृतम् ॥ (अभि० ५।२९)

इस प्रकार इस ग्रन्थ की सीता लक्ष्मी का अवतार हैं, वे साध्वी, पतिव्रता, सहिष्णु, मानिनी, वियोगिनी, दक्ष एवं दृढव्रता है। वे विपत्ति में भी अपूर्व धैर्य धारण करने वाली आदर्श साम्राज्ञी हैं।

महावीरचरित

भवभूति विरचित यह नाटक सप्त अंकों में विभक्त है। इसमें विश्वामित्र के आगमन से लेकर राम-राज्याभिषेक तक का संक्षिप्त कथानक प्राप्त होता है।

---

१. वही (२।२५ के बाद) २. वही (अंक ६।२४)
३. इमां भगवती लक्ष्मी जानाहि जनकात्मजाम्।
सा भगवन्तमनुप्राप्ता मानुषी तनुमास्थिता ॥ वही, ६।२८।

इस ग्रन्थ के अनुसार विश्वामित्रजी के आश्रम में ही राम धनुर्भंग करते है और सीताजी का विवाह सम्पन्न हो जाता है।[१] पुष्पवाटिका तथा स्वयंवर-प्रसंग की आवश्यकता ही नही समझी गयी। इसी प्रकार रावण का पुरोहित सर्वपाय जनक के बन्धु कुशध्वज से सीता की याचना करता है और न देने पर सीताहरण की भविष्य-वाणी करता है।[२] इस प्रकार इस ग्रन्थ में सीता का चरित्र नगण्य है।

उत्तररामचरित

प्रस्तुत ग्रन्थ में ७ अंकों के माध्यम से कवि ने सीता-त्याग के कथानक को विशेष प्रभावशील पद्धति द्वारा चित्रित किया है। इस ग्रन्थ की सीता अत्यन्त करुणा-मयी, पतिव्रता एवं वत्सला है। उनके त्याग का कारण, लोकापवाद ही है, क्योंकि लंका की शुद्धि पर अयोध्या की जनता को विश्वास नही हुआ :

देव्या अपि हि वैदेह्याः सापवादो यतो जनः।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः॥ (उत्तर० १।६)

सीताजी अपने पिता जनक के प्रति भी अत्यन्त स्नेहमयी थीं। राम-राज्या-भिषेक महोत्सव मे आये हुए पिता जनक जब पर्याप्त दिन व्यतीत करने के पश्चात् अपने जनपद के लिए प्रस्थान करते है, तब वे उदास हो जाती है और उनके प्रियतम श्रीराम उन्हे सान्त्वना देने के लिए न्यायालय से वासगृह पहुँचते है।[३] इस ग्रन्थ के अनुसार सीता भगवती वसुन्धरा की पुत्री है और प्रजापति के समान प्रतापी जनकजी उनके पिता हैं।[४] गर्भवती सीता राम के जीवन से सम्बद्ध चित्र को देखकर मनोविनोद करती हैं, इससे उनकी कलाप्रियता का प्रमाण मिलता है।[५]

सीताजी के रूपगत सौन्दर्य पर भी एक स्थल पर कवि ने राम द्वारा कुछ कहलाया है। उनके अनुसार सीताजी के केश सूक्ष्म एव विरल थे, जो उनके कपोलों पर फैले रहते थे। वे अपनी अल्पवय मे अत्यन्त गौरांग एवं कोमलागी तथा सुन्दर दन्त-पंक्ति वाली थी।[६] इस नाटक की सीता प्रकृति के प्रति अत्यन्त अनुरागवती थी। उनके चित्त में पुनः वन-दर्शन एवं गंगा-स्नान करने का दोहद उत्पन्न हुआ था।[७] उनके निर्वासन का एक आन्तरिक कारण यह भी था।

वस्तुतः सीताजी राम को अतिशय प्रिय थीं। वे उन्हें गृहलक्ष्मी मानते थे, सीता नेत्रों की अमृतशलाका थी। उनका स्पर्श इन्हे चन्दन के रस के समान सुखद प्रतीत

---

१. महावीर० १।५३, ५५　　२. वही, १।५९
३. उत्तर०, १।७
४. विश्वम्भरा भगवती, भवतीमसूत राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते। वही, १।९
५. वही, अंक १। १६ से पूर्व　　६. वही, १।२०
७. वही, १। ३३ के पश्चात्

होता था और उनके हाथ शीतल तथा कोमल मुक्ताहार प्रतीत होते थे। उनका वियोग भर असहनीय था, अन्यथा सीता की प्रत्येक वस्तु राम को प्रिय लगती थी।[१] राम की दृष्टि में सीता परम पवित्र थी। वसिष्ठादि मुनि भी उनके चरित्र की प्रशंसा करते थे, किन्तु लोकापवाद के कारण वे उन्हें त्यागने के लिए विवश हो जाते है। उन्हें अपनी इस विवशता पर विशेष दुःख है।[२] सीता निर्वासित होकर वाल्मीकिजी के आश्रम में शरण पाती हैं, वहीं लव तथा कुश नामक उनके दो पुत्र होते है और ११ वर्ष की अवस्था तक वे उसी आश्रम में पलते हैं। इधर राम हिरण्यमयी सीता बनवाकर अश्वमेध यज्ञ करते हैं।[३]

इस ग्रन्थ के तृतीत अंक में कवि ने सीता जी से राम का मिलन तो कराया है किन्तु रामजी के दर्शन नहीं कर पाते। दोनों का स्नेह इस संयोग या वियोग में विचित्र ही प्रतीत होता है। राम उस दण्डक वन में सीता की स्मृति से विकल होते हैं, सीता तमसा नदी से उनकी रक्षा हेतु प्रार्थना करती हुई कहती है :

भगवति तमसे ! परित्रायस्व, परित्रायस्व। जीवयार्यपुत्रम् ॥ (२।९ के बाद)

उक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि सीताजी में राम के प्रति कितना परिपुष्ट अनुराग था। सीताजी का प्रकृति के प्रति भी असाधारण अनुराग था। उन्होने वन-वास के समय एक करिकलभ को वात्सल्यभाव से पाला था (अंक ३, ६)। सीताजी को निरन्तर यह चिन्ता रहती थी कि मेरे पुत्र लव तथा कुश को मेरे पति श्रीराम अब तक देख न सके, उनके कोमल मुखों का चुम्बन नहीं कर सके। (अंक ३। १७ के पूर्व)। उन्होंने एक कदम्ब लगाया था, जो अब पूर्ण वृक्ष हो गया है। मयूर पाला था जो उसी वृक्ष पर बैठा करता था। श्रीराम उन दोनों को पहचानते हैं और सीता के इस प्रकृतिप्रेमी स्वभाव की स्निग्ध स्मृति में मग्न हो जाते हैं (·।२०)

इस ग्रन्थ में सीताजी पर जनकजी का अपार वात्सल्य दिखलाया गया है। वे सीताजी को अग्नि से भी अधिक शुद्ध एवं पूज्य मानते है। चतुर्थ अंक में कवि ने जनक से इस प्रकार विलाप कराया है : तुम मेरी वेटी हो वा शिष्या हो। जो सम्वन्ध है, वह वैसा ही रहे, परन्तु तुम में जो पवित्रता का आधिक्य है, वह मेरी भक्ति को दृढ़ करता है। तुम में बाल भाव हो या स्त्री भाव, तुम संसार की वन्दनीया हो। गुणी व्यक्तियों में गुण ही पूजा के स्थान होते है, स्त्रीत्व, शिशुत्व अथवा जटादि चिह्न विशेष तथा आयु पूजा के स्थान नहीं होते हैं।

---

१. इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोरसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः। अयं बाहुःकण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः किमस्या न प्रेयो यदिपरमसह्य-स्तुविरहः ॥ (१। ३८)

२. वही, १। ४५, ४८ ३. वही, अंक २। १७ के पूर्व

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा ।
विशुद्धे सत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं दृढ़यति ।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वंद्यासि जगतां ।। (उत्तर० ४ । ११)
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ।।

ग्रन्थ के मप्तम अंक में रामकथा का अभिनय होता है। वहाँ गंगा तथा पृथ्वी दोनों देवियाँ प्रकट होकर सीता की पवित्रता को प्रमाणित करती हुई राम को अर्पित करती है।

अरुन्धति ! जगद्वन्द्ये गंगा पृथ्व्यौ जुषस्वनौ ।
अर्पितेयं तवावाभ्या सीता पुण्यव्रता वधूः ।। (उत्तर० ७ । १८)

इस प्रकार अन्त में सीताजी अपने दोनों पुत्रों सहित श्रीराम से मिलकर कृतकृत्य हो जाती हैं।

निष्कर्ष यह कि इस ग्रन्थ की मीता देवयजनसम्भवा है। वे भगवती वसुन्धरा की पुत्री है। गर्भवती होने पर उनके चित्त मे वनदर्शनविषयक दोहद उत्पन्न होता है, अतः लोकापवाद के व्याज से राम उन्हें लक्ष्मण द्वारा वाल्मीकि आश्रम में त्याग आते है। प्रसववेदना से सीता गंगा में कूद पड़ती है और वही उनके युग्म पुत्र उत्पन्न होते है। उन्हें पृथ्वी और गंगा पाताल पहुँचा देती है और दुग्ध छूटने पर गगा देवी उन्हें वाल्मीकिजी को सौंपती है, वही उनकी शिक्षा-दीक्षा होती है। उसी आश्रम मे अश्वमेधीय अश्व के विषय मे राम की सेना और लव से युद्ध होता है। राम के पहुँचने पर युद्ध-विराम होता है। अन्त में वाल्मीकिजी द्वारा रामकथा के अभिनय से सीता का राम के साथ पुनः मिलन होता है। इस प्रकार इस ग्रन्थ की सीता आदर्श पतिव्रता, पुत्रवत्सला, प्रकृतिप्रिया, सरल एवं करुणहृदया, परमपवित्र देवी है।

कुन्दमाला

इन नाटक के प्रणेता दिङ्नाग माने जाते है। इसमें भी सीता-त्याग से लेकर राम द्वारा उनकी पुनः प्राप्तिपर्यन्त कथानक प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ प्रायः भवभूति के उत्तररामचरित से पर्याप्त साम्य रखता है। इसके अनुसार सीता एक परित्यक्ता कुलवधू है। उन्हें वाल्मीकि जी के आश्रम में शरण मिलती है। वही पर लव तथा कुश दो पुत्र होते है और वाल्मीकि की शिक्षा-दीक्षा पाकर सम्पन्न होते है। सीता के प्रियतम राम गौतमी तट पर सीता के हाथ की गुही हुई एक कुन्दमाला देखते हैं, जिससे उन्हें सीता के कौशल की स्मृति आ जाती है।

वाल्मीकि आश्रम में मुनि के प्रभाव से सीता अदृश्य हो जाती हैं, केवल जल में उनकी छाया के दर्शन कर राम पर्याप्त विलाप करते है। इससे सीता राम के दाम्पत्य स्नेह का प्रमाण मिलता है। अन्त में लव-कुश की रामायण सुनने के पश्चात्

सभा में सीताजी शपथ लेती हैं, फलतः पृथ्वी प्रकट होकर सीता की शुद्धता प्रमाणित करती है और राम सीता को स्वीकार कर लेते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ की सीता अभिशापग्रस्त एवं पतिपरित्यक्ता हैं। वे सहिष्णु एवं वात्सल्यपूर्ण जननी हैं। उनका पातिव्रत आदर्श है। वे निष्कासित होने पर भी राम के प्रति स्नेहिल हैं। वे अपने पवित्र आचरण द्वारा लोक को विश्वास दिलाने में सफल होती हैं। वस्तुतः वे एक तपस्विनी है।

अनर्घराघव

प्रस्तुत नाटक में सप्त अंकों में विश्वामित्र के आगमन से लेकर रामराज्याभिषेक पर्यन्त रामकथा वर्णित है। इसमें सीता-चरित्र पर अतिस्वल्प प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ के द्वितीय अंक में कवि ने राम के मुख से सीता की अलौकिक उत्पत्ति भूमिजा रूप का वर्णन कराया है।

लांगलमुखोल्लिखित विश्वम्भराप्रसूतिरगर्भसंभवा मानुषी। (२।८६ के पश्चात्) इसी प्रसंग में सीताजी के पिता सीरध्वज (जनक) का भी विशिष्ट उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ के तृतीय अंक में कवि ने सीता को विवाह के पूर्व विवाहोत्कण्ठिता एवं वयःसन्धिप्राप्ता के रूप से चित्रित किया है। वे कठपुतली के खेल द्वारा मनोरंजन करती है। रावण की ओर से असंगत विवाह-प्रस्ताव उन्हें अरुचिकर था।[1]

इस ग्रन्थ के चतुर्थ अंक में धनुर्भंगादि होने के पश्चात् मिथिला में ही कैकेयी का पत्र आता है, जिसके अनुसार वहीं से राम, लक्ष्मण तथा सीता वन के लिए प्रस्थान करते हैं। इस प्रकार कवि ने सीता के वनगमनाग्रह के प्रसंग की सर्वथा अवहेलना कर दी है। इस सम्बन्ध में जनकजी अपनी पुत्री सीता के दुर्भाग्य और कैकेयी द्वारा प्रदत्त इस नवीन पुरस्कार पर दुःख प्रकट करते हुए कहते हैं: साधु, सखि कैकेयि ! साधु। पृथ्वी की पुत्री इस सीता को तुमने पति का अनुगमन ही उपहार में दिया।[2] यह प्रसंग अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता।

इस ग्रन्थ में जयन्त काक के स्थान पर धाराधर नामक काक अगस्त्य ऋषि के साथ राम के वनपथ में विचरण करते समय वैदेही के साथ उपद्रव करता हुआ चित्रित किया गया है। फलतः श्रीराम ने सीता देवी के स्तनों को विदीर्ण करने वाले काक को एषीक अस्त्र से काणा बना दिया था।

---

१. अनर्घराघव, अंक ३ (कलहंसिका कंचुकी संवाद) श्लोक ४,६

२. साधु सखि कैकेयी ! साधु ! यदस्या विश्वम्भरादुहितुर्मे वत्सायाः पत्युरनुवृत्तिरेव प्रसादीकृता ॥ (अंक ४।६८ के पश्चात्) १९६०, चौखम्बा, वाराणसी।

रक्षोभिचारचरुमाण्डमिव स्तनं यो देव्या विदेहदुहितुर्विददार काकः ।
एपीकमस्त्रमधिकृत्य तदा तमक्ष्णा काणीचकार चरमो रघुराजपुत्रः ॥
(अनर्घ०,५।३)

इस घटना में भी कवि ने सीता द्वारा एक भी वाक्य नहीं कहलाया, जिससे उनकी मनोवृत्ति पर प्रकाश पड़ता। सीताहरण के वृत्तान्त को भी कवि ने परोक्षता से सूचित किया है, जिससे केवल इतना ही संकेत मिलता है कि हरण के समय सीताजी हा आर्यपुत्र कहकर विलाप कर रही थी। (५।८)

सप्तम अंक में कवि ने केवल एक श्लोक द्वारा यह सूचना दी है कि समस्त दिग्पालों के समक्ष सूर्य को साक्षी देकर राक्षस गृहवास रूपी निन्दावचनो से मुक्ति प्राप्त करने के लिए वैदेही ने अग्नि में प्रवेश किया और शुद्ध होकर निकल आईं। अग्नि-परीक्षा में सीता ने अपने को शुद्ध प्रमाणित कर दिया कि उनके प्रति प्रचारित कलंक की बात केवल कल्पना थी :

तमिस्रा मूर्च्छाल त्रिजगदगदंकारकिरणे
रघूणां गोत्रस्य प्रसवितरि देवे सतिरि।
पुरःस्थे दिग्पालैः सह परगृहावासवचनात्
प्रविष्टा वैदेही दहनमथ शुद्धाचनिरगात् ॥ (अनर्घ० ।७।१)

इस स्थल से परम्परा प्राप्त सीता-चरित्र की शुद्धि पर ही प्रकाश पड़ता है। यहाँ भी कवि ने सीता के मुख से उनकी मनोवृत्ति-परिचायक वाक्य नहीं कहलाये।

जब श्रीराम अयोध्या के लिए प्रस्थान करते है, उस समय कवि ने रघुवंश के १३वें सर्ग की भाँति सीताजी के प्राकृतिक प्रेम एवं कुतूहल को दृश्यदर्शन के माध्यम से व्यक्त किया है। इस प्रसंग के आधार पर यह ज्ञात होता है कि सीताजी बहुश्रुत थीं। वे तीर्थों एवं पवित्र स्थानों तथा सरिताओं को प्रणाम करती हुई चलती है। इससे उनकी आस्तिकता एवं धार्मिकता का भी प्रमाण मिलता है। इसी सप्तम अंक में कवि ने अयोध्या लौटने पर कुलगुरु वसिष्ठ जी द्वारा सीता को परोक्ष रूप में एवं राम को प्रत्यक्ष रूप में सूर्य चन्द्र के समान दो पुत्रो की प्राप्ति का आशीर्वाद दिया है।

जगदालोकधारेयो सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुत्रौ गोत्रस्य गोप्तारौ जनयस्वभुजाविव ॥ (अनर्घ० ७।१३९)

इसीके अनन्तर सीताजी प्रणाम करती है। उत्तर में वसिष्ठजी कहते है कि मैंने जो आशीर्वाद दिया है, उसमें तुम्हारा भी समान भाग है।[1] उत्तर में सीता कहती है : अम्भो, निःसापत्न्यं मे आर्यपुत्रस्य गृहिणीत्वं भविष्यति। अर्थात् अहा ! तब तो में

१. अनर्घ० ७।१३९ के बाद

आर्यपुत्र की अकेली रानी रहूँगी। इससे सीताजी की बुद्धिमत्ता एवं एकाकिनी रानी होने की इच्छा भी प्रकट होती है।

वालरामायण

प्रस्तुत ग्रन्थ कविवर राजशेखर की अमर कृति है। इसकी रचना दशम शताब्दी में हुई थी। इसमें १० अंकों के माध्यम से सीतास्वयंवर से लेकर राम के राज्याभिषेक तक का कथानक प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ की सीता का स्वरूप इस प्रकार प्रतीत होता है।

रावण सीतास्वयंवर में स्वयं उपस्थित होकर धनुष उठा लेता है, किन्तु उसे भंग करना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझकर उसे फेंक देता है।[1] इस संकेत से सीता-विषयक रावण की इच्छा प्रमाणित होती है। इतना ही नही, रावण सीता के वरणकर्त्ता को अपना शत्रु घोषित करता हुआ लंका प्रस्थान करता है।[2] इससे भी इस वात की पुष्टि होती है कि वह सीता की प्राप्ति हेतु मानसिक संकल्प कर चुका था। लंका जाने पर भी वह जानकी के विरह में अशान्त रहता है और उसके मनोविनोद के लिए कृत्रिम सीता वनाकर प्रेमालाप करवाया जाता है।[3] जव युद्ध होता है तव रावण इसी माया सीता का शिरच्छेद करता है, जिससे राम विकल होकर विलाप करते हैं।[4] लका में त्रिजटा सीता की परम प्रिय सखी प्रतीत होती है। वह सीताजी के साथ अयोध्या भी आती है (अंक १०)।

इस प्रकार इस नाटक की सीता जनक की पुत्री एवं राम की परम प्रेयसी तथा अद्भुत सुन्दरी हैं। उनमें सच्चरित्रता, उत्तम शील एवं व्यवहारकुशलता प्रतीत होती है।

प्रसन्नराघव

कविवर जयदेव के इस नाटक में सप्त अंकों के माध्यम से सीता-स्वयंवर से लेकर अयोध्या-प्रत्यागमन तक का कथानक वर्णित है। इसमे सीताजी के जीवन पर विशद प्रकाश डाला गया है।

इस ग्रन्थ की सीता विवाह के पूर्व ही राम के प्रेम मे निमग्न चित्रित की गई हैं। उनका स्वभाव अत्यन्त कोमल, मृदु एवं सरस प्रतीत होता है। उनमें अधीरता करुणा एवं भीरुता जैसे नारी सुलभ अवगुण भी प्रतीत होते है। इस ग्रन्थ के द्वितीय अंक में श्रीराम सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करते है और उन पर मुग्ध होते है।[5] वे

---

१. वाल रामा० १।५१
२. वही, १।६१
३. वही, अंक ५
४. वही, ७।७१, ७९
५. प्रसन्न०, २।७, ९

सीताजी से मिलने के लिये पुष्पवाटिका में जाते है। मानस के कवि ने इसी प्रसंग से प्रेरणा ली है। इसमें सीताजी लक्ष्मण को देखकर अपनी भगिनी उर्मिला का स्मरण करती है।[1] इससे यह सिद्ध होता है कि वे तो श्रीराम पर अनुरक्त थी और अपनी भगिनी उर्मिला के लिए लक्ष्मण को वर रूप मे उचित समझती थी।

इधर रावण स्वयंवर में आकर भी धनुर्भंग करने में असफल होता है, किन्तु सीता के प्रति उसकी कामुकता स्पष्ट है। ग्रन्थ के सप्तम अंक मे रावण सीता के विशिष्ट विरही के रूप में चित्रित किया गया है।

धनुर्भंग प्रसंग में सीता-राम के प्रति अत्यन्त उत्कण्ठित चित्रित की गयी है। इस प्रकार नाटक के तीन अंकों में सीता का प्रणय विशेप रूप से पल्लवित किया गया है और राम एक कामुक के रूप में प्रस्तुत किए गए है। पंचम अंक में सीताजी राम के साथ वनगमन का आग्रह करती है, जिससे उनके पतिप्रेम की प्रगाढ़ता का प्रमाण मिलता है। इस ग्रन्थ की सीता अशोकवाटिका में राम-विजय का स्वप्न देखती है, मानस में वही स्वप्न त्रिजटा देखती है। इस ग्रन्थ में सीता की अग्निपरीक्षा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस प्रकार इस ग्रन्थ की सीता सरस, वाचाल एवं सुन्दरी हैं। उनमें सच्चरित्रता, शालीनता एवं कोमलता के साथ ही साथ अद्भुत माधुर्य भी विद्यमान मिलता है।

हनुमन्नाटक

प्रस्तुत नाटक महानाटक के नाम से भी विख्यात है। इसमें १४ अंको मे सीता स्वयंवर से लेकर श्रीराम-विजय पर्यन्त रामकथा प्रस्तुत की गयी है। इसमे सीताजी के जीवन-चरित्र पर विशेष सामग्री प्राप्त होती है, जिसका विवरण इस प्रकार है।

प्रथम अंक में स्वयंवर के समय सीताजी श्रीराम की कोमलमूर्ति को देखकर और धनुष की कठोरता को समझकर विशेष चिन्तित होती है। उन्हें अपने पिता के प्रण पर भी क्षोभ होता है।

> कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दनः।
> कथमधिज्यमनेन विधीयतामहह तात प्रणस्तवदारुणः॥ (हनु० १।६)

इस श्लोक के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सीताजी श्रीराम के प्रति विशेप अनुरक्त थी। जब जनक श्रीराम को विवाहोत्सव के समय कन्या प्रदान करते है और राम सीता का पाणिग्रहण करते हैं, उस समय सीताजी को सच्चिदानन्द अनुभव होता है और वे कामवाण से विद्ध योगनिद्रा की भाँति सात्विकभाव का अनुभव करती

---

१. वही, २।१४ के पश्चात्

हुई प्रतीत होती हैं।[1] मनोविज्ञान की दृष्टि से कामचेतना की यह सरणि स्वाभाविक ही है।

द्वितीय अंक में कवि ने राम और सीता की संभोगलीलाओं का विस्तृत वर्णन किया है, जो कहीं-कहीं पर अश्लीलता के शिखर तक पहुँच गया है। श्लोक संख्या १०, १२, १८, २०, २१ तो निश्चित रूप से केवल सीता को ही नही, अपितु राम को भी रतिशास्त्र में पारंगत घोर विलासी सिद्ध करते है। इस अंक के तीस श्लोको में कवि ने सीता के आदर्श चरित्र में विलास की एक कालिमा लगा दी है, जो कवि-हृदय की ही वासना कही जा सकती है।

तृतीय अंक में सीताजी राम-वनवास के समय अपनी सासों से आज्ञा लेती हैं। उन्हें अपने पालित शुक-सारिका प्रभृति पक्षियों के त्यागने में भी दुःख होता है, किन्तु पति-अनुराग के कारण राम के पीछे प्रस्थान करती हैं।

गुर्वाशा परिपालनाय च वनं संप्रस्थितं राघवं
दृष्ट्वाऽसौ त्वरिता विदेहतनया श्वश्रूजनं पृच्छति।
नत्वा कोसलकन्यकांघ्रियुगलं पश्चात् सुमित्रां पुन
र्दृष्ट्वा हा शुकसारिकापिककुलं रामानुगा प्रस्थिता॥ (हनु० ३।१०)

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि सीताजी पतिव्रता थी। उन्हें पशु-पक्षियों के प्रति भी स्वाभाविक अनुराग था। इस ग्रन्थ में न तो राम उन्हें रोकते हैं और न सीता को वन चलने के लिए आग्रह करने की आवश्यकता ही पड़ती है। इस ग्रन्थ की सीता अतिकोमल हैं। अयोध्या से तीन-चार पग चलते ही राम से पूछने लगती हैं कि कितना मार्ग अभी और चलना है।[2] इसी अंक में श्रीराम द्वारा कवि ने पृथ्वी से कठोरता त्यागने की प्रार्थना करते समय सीता को पृथ्वी की पुत्री कहा है।[3] इसके अतिरिक्त विस्तृत रूप में कही पर सीता की उत्पत्ति का कथानक नहीं प्रस्तुत किया गया है।

वन पथ में पथिकवन्धुओं द्वारा राम का परिचय पूँछने पर सीता विशेष लज्जा के कारण मुसकाती हुई मुख नीचा कर लेती हैं।[4] इससे उनकी लज्जाशीलता, प्रगाढ़ पतिप्रेम एवं गम्भीरता का पता चलता है।

सीताजी स्वभावतः अत्यन्त करुण थी। जब चित्रकूट में भरतजी वल्कल वस्त्र

---

१. हनुमन्नाटक। अंक १।५७ (दामोदर मिश्र) सं० २०१५, लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण मुंबई

२. वही, ३।१२ ३. वही, ३।१४

४. पथि पथिकवधूभिःसादरं पृच्छ्यमाना कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति।
स्मितविकसितकाण्डं व्रीडविभ्रान्तनेत्रं मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता॥
(वही, ।३।१५)

धारण किये हुए एवं सिर में जटाजूट बाँधे हुए आते हैं और श्रीराम के चरणों में गिरकर प्रणाम करते है, उस समय सीताजी उच्चकण्ठ से इतना अधिक रुदन करती है, जिसे सुनकर वन्यसत्व भी प्रभावित हो जाते है।[1]

सीताजी स्वभाव से ही अत्यन्त भोली-भाली एवं सुकुमार थी। वे साधारणतया हास्यप्रिय भी थी। अहल्याउद्धार का सकेत करती हुई वे राम से कहती है कि इस विन्ध्यावली की असंख्य शिलायें आपकी पावन पद रज के संस्पर्श से दिव्य स्त्रियाँ वन जायेगी। इससे न जाने कितने तपस्वी स्त्रीयुक्त हो जायेगे।[2] इस कथन से सीता जी का मनोविनोद ही नही अपितु उनके सपत्नीभाव की शका भी व्यक्त होती है।

मारीच के प्रसंग में सीताजी राम से याचना करती है कि इस मृग को पकड़ लाइये। राम और लक्ष्मण दोनो इस कार्य हेतु चलते हैं। चलते समय लक्ष्मणजी सीता की रक्षा के लिए कुटी के बाहर रेखा खीच देते है।[3] इस प्रकार इस ग्रन्थ की सीता को लक्ष्मण के प्रति परुष वचन कहने का अवसर ही नही दिया गया। सम्भवतः भक्ति भाव से प्रेरित होकर कवि ने सीताजी के उक्त पारुष्य को छिपाने की निपुण चेष्टा की है।

इस ग्रन्थ मे सीता-हरण के प्रसंग मे भी कवि ने सीता द्वारा न तो रावण का सत्कार कराया और न तो कोई परिचय दिलाया। जैसे ही सीता रावण को भिक्षा देने लगती है, वैसे ही रावण उन्हें उठाकर ले जाता है और वे राम लक्ष्मण का नाम ले-लेकर विलाप करती ही रह जाती है।[4] वे जटायु की मृत्यु के पश्चात् विशेष दुःखित होकर रुदन करती है। यथा :

> हा राम ! हा रमण ! हा जगदेकवीर ! हा नाथ ! हा रघुपते ! किमुपेक्षसे माम।
> इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्तीमादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम ॥ (४।१४)

वे अपने आभूषणो को उतारकर पर्वतशिखर पर फेकती है और कहती है कि ये देवर लक्ष्मण के साथ आने वाले राम को दे देना।[5] इस कार्य से सीताजी की वुद्धिमत्ता पर प्रकाश पड़ता है।

षष्ठ अक मे हनुमान के लंका जाने पर सीताजी उनसे राम की आंगुलीयक प्राप्तकर हृदय से लगाकर रुदन करती है। उनके शरीर में रोमांच हो आता है और वे हनुमान को प्रत्यभिज्ञान के रूप मे काकवृत्तान्त, मैनशिलतिलकवृत्तान्त वतलाती हुई चूड़ामणि प्रदान करती है।[6] जब हनुमानजी की पुच्छ मे अग्नि लगा दी जाती है, तव वे अग्नि से प्रार्थनाकर अपने सतीत्व के प्रभाव से उसे शीतल वना देती है।[7] इससे उनके सतीत्व, दया, स्नेह, शक्ति एवं आत्मविश्वास की झलक मिलती है।

---

१. हनुमन्नाटक, ३।१७ — २. वही, ३।१६
३. वही, ३।२७ — ४. वही, ६।२४
५. वही, ४।१५ — ६. वही, ६।३१, ३३
७. वही, ६।२४

दशम् अंक में रावण उन्हें राम लक्ष्मण के मायामय सिर दिखलाकर व्यथित करता है।[1] सीता के विलाप करने पर आकाशवाणी होती है[2] और सरमा राक्षसी उन्हें राम के जीवित होने का आश्वासन देती है।[3] जब रावण सीता से प्रणय-निवेदन करता है तब वे उसे फटकारती हुई कहती हैं कि हे राक्षस ! व्यर्थ बकवाद मत करो। मैं राम को अथवा तेरी तलवार को ही चाहूँगी।[4] इससे स्पष्ट है कि पतिव्रता सीता राम के अभाव में अपनी मृत्यु चाहती हैं।

इस ग्रन्थ के इसी दशम अंक में रावण श्रीराम का वेष बना कर मिलने आता है। सीताजी उसको वास्तविक राम समझकर मिलने के लिए उत्सुक होती हैं (१०।२०) किन्तु रावण तत्काल नपुंसक होकर शिव-शिव कहता हुआ लंका लौट जाता है और सीता रावण के इस छल पर अत्यन्त दुःख प्रकट करती हैं (१०।२०)।

जब राम-लक्ष्मण मेघनाद के नागपाश के कारण अचेत हो जाते हैं, तब सरमा नामक राक्षसी सीता को पुष्पक में बैठाकर संग्रामभूमि में ले जाती है। जानकी जी राम की यह दशा देखकर अपने विषय में भविष्यवाणी करने वाले ऋषियों की वाणी पर आश्चर्य प्रकट करती हैं और अपने सधवा होने के लक्षणों को व्यर्थ समझती हैं (१२।६)।

उक्त प्रसंग से यह ज्ञात होता है कि सीताजी को ज्योतिषशास्त्र पर विश्वास था, उन्हें सामुद्रिकशास्त्र का विशिष्ट ज्ञान था, साथ ही वे आदर्श पतिव्रता नारी थीं।

अंक १२ (श्लोक १३) में मेघनाद माया सीता का वध करता है, जिससे राम दुःखित होते हैं। रावण की मृत्यु के पश्चात् लक्ष्मण तथा हनुमान् सीताजी को विमान में बैठाकर राम के समीप लाते हैं। सीता लज्जित होती हैं, हनुमान् उनसे राम को प्रणाम करने के लिए कहते हैं। सीताजी जैसे ही राम को प्रणाम करना चाहती हैं, राम पीछे हट जाते हैं और बिना सतीत्व-परीक्षा लिए हुए सीता को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। सीताजी ज्वलन्त पावक में प्रवेश करती हुई कहती हैं—हे अग्नि ! यदि मन, वचन-शरीर में जाग्रत अथवा सुषुप्तावस्था में मेरा भाव राम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष में हुआ हो, तो तुम मुझे भस्म कर दो, क्योंकि सम्यक् कर्म फल भोगने वाले के कर्म के तुम्हीं एक साक्षी हो।

---

१. हनुमन्नाटक, १०।१ २. वही, १०।५

३. वही, १०।६

४. विरम विरम रक्षः किं वृथा जलाने न स्पृशति नहिमदीयं कण्ठसीमानमन्यः।
रघुपतिभुजदण्डादुत्पलश्यामकान्तेर्दशमुख भवदीयो निष्कृमो वा कृपाणः॥
(वही, १०।१६)

मनसि वचसि काये जागेर स्वप्नमार्गे
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि ।
तदिह दह ममांग पावकं पावकत्व
सुललितफलभाजो त्वं हि कर्मण्यसाक्षी ।। (हनु० १४।५४)

इतने में ब्रह्माजी सीता की पवित्रता की साक्षी देते हैं। राम सीताजी को पाकर परम प्रसन्न होते है। लंका से अयोध्या लौटते समय राम सीताजी को अनेक पुरा परिचित स्थान दिखलाते है। सीता भी कुतूहल एवं आनन्द के साथ उन दृश्यों को देखती हैं। राज्याभिषेक के पश्चात् राम समस्त दिग्पालो की मौलिमणियों को लेकर सीता के लिए कांची (कमरपट्ट) वनवाते है, जिससे सीता उनके पराक्रम का गान करती है (१४।७१)।

कवि ने ग्रन्थ के अन्त में (१४।६१, ६२) सीतात्याग का भी संकेत किया है, किन्तु उससे सीताजी के विषय में कोई विशेष तथ्य प्रकाश में नही आता।

उपर्युक्त संस्कृत नाटकों में सीता चरित्र की विभिन्नता के प्रमाण मिलते हैं। इनके अतिरिक्त आश्चर्यचूड़ामणि, अद्भुत दर्पण, मैथिलीकल्याण, उन्मत्तराघव, कुश-लवोदय प्रभृति अनेक प्रकाशित एवं अप्रकाशित नाटक है, जिनमें सीताजी की उक्त चारित्रिक विशेषताएँ मिलती है। निष्कर्ष रूप मे प्रत्येक नाटक से सीताजी की पति-निष्ठा, आदर्श सतीत्व, सरलता, सहिष्णुता आदि आदर्श गुणों की सत्ता का प्रमाण मिलता है। परवर्ती नाटकों में माधुर्य का प्राधान्य प्रदर्शित किया गया है, जोकि कोरा कविकल्पना प्रसूत है। मधुराभक्ति का प्रचार भी इस कल्पना के लिए उत्तर-दायी माना जाना चाहिए।

■ ■

अध्याय २

पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश-साहित्य में सीता

भारतीय साहित्य में रामकथा का विपुल साहित्य विद्यमान है। राम तथा सीता में अलौकिकत्व का आरोप करें अथवा न करें, उनकी प्रभावकारिता में कोई अधिक अन्तर नहीं पड़ता। सम्भवतः रामकथा की इसी लोकप्रियता को दृष्टिपथ में रखकर ही हमारे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है :

राम ! तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि हो जाय, सहज सम्भाव्य है ।। (साकेत)

हम प्रथम अध्याय में रामकथा की प्राचीनता के सम्वन्ध में विस्तृत उल्लेख कर चुके हैं कि ईसा पूर्व ७०० वर्ष से भी पूर्व रामकथा लोकजीवन में व्याप्त थी। समस्त रामायण में कही पर वौद्धधर्म का प्रभाव नही प्रतीत होता। केवल एक ही स्थल है, जहाँ बुद्ध को चोर के समकक्ष घोपित किया गया है।[1] आलोचक इस श्लोक को वाल्मीकिरामायण की दाक्षिणत्य, गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय(होशियारपुर से प्रकाशित) इन तीनों प्रतियों में उपलव्ध न होने के कारण प्रक्षिप्त मानते हैं। इस प्रकार बुद्ध (ई० पू० ५००) के समय से पूर्व ही रामायण के मूल स्वरूप की रचना हो चुकी थी, यह वात यथार्थ प्रतीत होती है।

संस्कृत के अतिरिक्त रामकथा पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश के अनेक ग्रन्थों में प्राप्त है। प्रस्तुत अध्याय में उक्त भापाओं के साहित्य में विद्यमान सीता के स्वरूप पर विचार किया जायेगा।

(क) पालि साहित्य में सीता के जीवन-चरित्र की झाँकी और उसका मूल स्रोत

वौद्ध साहित्य के अन्तर्गत त्रिपिटक का विशिष्ट स्थान है। ये तीनों पिटक पालि भापा में उपनिवद्ध हैं। इनमें द्वितीय पिटका (सुत्तपिटक) के पंचम भाग खुद्दकनिकाय में जातकथाओं का संग्रह है। इन जातकों में लोकप्रचलित कथाओं को वौद्धधर्मानुसारी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। खुद्दकनिकाय में रामकथा से सम्वद्द तीनों जातकों का अस्तित्व प्राप्त होता है : (१) दशरथ जातकम् (२) अनामकं जातकम्,

---

१. यथाहि चौरः स तथा हि वुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्रविद्धि ।। २ । १०९ । ३४ ।।

(३) दशरथ कथानम् । उक्त जातकों का रचनाकाल ईसा से ३०० वर्ष पूर्व माना जाता है ।[१] उक्त जातकों में गाथाओं को तो पद्य में पाया जाता है किन्तु उनके स्पष्टीकरण के लिए गद्य टीका के भी प्रचलन का अनुमान किया जाता है ।[२]

उक्त तीनों जातकों के मूलपाठ अप्राप्य है । वर्तमान समय में ये जातक कथायें जिस जातकट्ठगणना में उपलब्ध है, वह पाँचवी शताब्दी की एक सिंहली भाषा मे विरचित पुस्तक का पालि रूपान्तर मात्र है । इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन जातक कथाओं का मूल रूप सुरक्षित न रह सका होगा, क्योंकि मूल पालि से सिंहली भाषा मे अनुवाद हुआ, केवल गाथायें पालि में लिखी गई । इस प्रकार गद्य में रूपान्तर होना सम्भव है । सिंहली भाषा की वह मूल पुस्तक भी अप्राप्त है । इस प्रकार ये कथाएँ परम्परा के आधार पर ग्रथित की गई हैं । इनकी मौलिकता पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है ।

उक्त जातकत्रय में से दशरथ जातक विद्वानों के विचारविमर्श एवं आलोचना-प्रत्यालोचना का विषय रहा है । अनाम जातकम् का चीनी भाषानुवाद २५४ ई० में हुआ था जोकि लियेऊ तू त्सी किंग नामक पुस्तक में प्राप्त है । इसका भारतीय रूप लुप्त हो चुका है । इसी प्रकार दशरथ कथानम् का चीनी भाषानुवाद ४७२ ई० में किया गया जोकि त्स पोतिंग किंग नामक त्रिपिटक के अन्तर्गत सुरक्षित है ।

तात्पर्य यह कि पालि में रामकथा के अनुसंधित्सुओं के समक्ष मूल ग्रन्थ की अप्राप्ति समस्या बन जाती है । सन्दर्भ ग्रन्थों का आश्रय लेकर ही ऊहापोह करने के लिए बाध्य होना पड़ता है ।

दशरथ जातक का संक्षिप्त कथानक

वाराणसी नगरी में महाराज दशरथ नामक धार्मिक राजा राज्य करता था । उसके राम पंडित तथा लक्ष्मण दो पुत्र एवं सीतादेवी नामक एक पुत्री थी । ज्येष्ठा रानी के निधन के पश्चात् राजा ने एक अन्य पत्नी को ज्येष्ठा के पद पर प्रतिष्ठित किया । उससे भरतकुमार नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । पुत्रोत्सव के उपलक्ष में राजा ने रानी को एक वर प्रदान किया । जब कुमार भरत सात वर्ष का हुआ, तब रानी ने राजा से उसके हेतु राज्य माँगा । प्रथम तो राजा नकारात्मक उत्तर देता है, किन्तु रानी के दुराग्रह के कारण राजा ने अपने दोनों पुत्रों को बुलाया और बतलाया कि रानी तुम लोगों का अमंगल कर सकती है, अतः तुम दोनों किसी अन्य राज्य अथवा वन में जाकर शरण ले लो । मेरी मृत्यु के पश्चात् अधिकार प्राप्त कर लेना । ज्योतिर्विद विद्वानों के परामर्शानुसार राजा ने द्वादश वर्षावधिक वनवास दिया, क्योंकि उनके जीवन के इतने ही वर्ष शेष थे । पिता की आज्ञा से दोनों बन्धु वन को प्रस्थान करते है और बन्धु-प्रेम से

---

१. डॉ० बुल्के : रामकथा, पृष्ठ ८१

२. वही, पृष्ठ ८२

अनुप्रेरित सीतादेवी भी दशरथ से आज्ञा लेकर उन्हीं के साथ चल देती हैं। तीनों पथिक हिमालय में आश्रम निर्माण कर कालज्ञापन करते हैं।

पुत्र-शोकातुर दशरथ नौ वर्षों के अनन्तर कालपाशग्रस्त हो जाते हैं। भरतकुमार राज्यभार को अस्वीकृत कर राम के समीप (ससैन्य) जाकर उनसे प्रत्यागमन के लिए आग्रह करते हुए दशरथ की मृत्यु के वृत्तान्त का पूर्ण विवरण बतला देते हैं। राम पंडित इस दुःखद वृत्त को श्रवण कर न तो शोच करते हैं और न ही रुदन करते हैं। सन्ध्या समय लखन तथा सीतादेवी के वन से लौटने पर राम पण्डित उनसे पितृ-निधन का वृत्तान्त बतलाते हैं, जिसे श्रवण कर दोनों अति शोकाकुल होते हैं। तदनन्तर राम पण्डित उनके शोकापनयन हेतु उन्हें सांसारिक नित्यता का ज्ञानोपदेश देते हैं, फलतः दोनों शोकरहित हो जाते हैं।

जब भरत के विशेष आग्रह पर भी रामपण्डित द्वादशवर्षानन्तर ही प्रत्यावर्तित होने का संकल्प दुहराते हैं तब भरत उनकी तृणपादुकायें लेकर उनकी आज्ञा से ही लखन तथा सीता देवी को साथ लेकर वाराणसी लौट आते हैं। इन पादुकाओं के आधार पर शासन चलाया जाता है। जब अनुचित निर्णय होता है, तब युगल पादुकायें परस्पर आघात करने लगती हैं और उचित निर्णय होने पर शान्त रहती हैं।

इस प्रकार वर्षत्रय की वनवासावधि व्यतीत कर रामपण्डित वाराणसी आते हैं और सीतादेवी से विवाह कर षोडशसहस्रवर्षपर्यन्त धर्मपूर्वक शासन करने के पश्चात् दिवंगत होते हैं।

समीक्षा

प्रस्तुत दशरथ कथानक की कथावस्तु से सीता के विषय में हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं।

(क) **सीता जी दशरथ की पुत्री एवं रामपण्डित लखन तथा भरत की भगिनी थीं :** ऐसा ज्ञात होता है कि इस बौद्ध कथा में रामायण की मूलकथा को विकृत किया गया है। रामायण के आलोड़न से किसी स्थल पर यह प्रचलन नहीं ज्ञात होता कि भाई-बहिन का विवाह होता रहा हो। हो सकता है कि कुछ आलोचक ऋग्वेद के प्रसिद्ध यम-यमी के संवाद आधार पर सगे भाई-बहिन के विवाह को उस समय वैध होने का भ्रम फैलाते हों, किन्तु इस सन्दर्भ में उन्हें यह ज्ञात होना चाहिए कि उक्त संवाद का भौतिक अर्थ नहीं है। इसके अतिरिक्त इतिहास में भी कहीं ऐसा उल्लेख नहीं प्राप्त होता कि कुछ काल अथवा परवर्तीयुग में भ्रातृ-भगिनी सम्बन्ध वैवाहिक सम्बन्ध में परिणत हो सकता था। सम्भवतः आर्यधर्म के प्रतिस्पर्द्धी होने के कारण ही उक्त बौद्ध कथानक में सीतादेवी को राम की सहोदरा भगिनी के रूप में विकृत ढंग से चित्रित किया गया है।

(ख) सीता का कृषि की अधिष्ठात्री देवी का जो रूप ऋग्वेद आदि प्राचीन-आर्यग्रन्थों में प्राप्त था, उसी में व्यक्तित्व का आरोप कर लिया गया और शक्ति का प्रतीक देवी शब्द उनके नाम के साथ संलग्न कर दिया गया। इससे यह तथ्य भी प्रकाश में आता है कि वाल्मीकिरामायण में सीता के जिस लक्ष्मी रूप का मूल युद्ध-काण्ड (सर्ग ११७, २७) में प्राप्त होता है, उसी समय उक्त बौद्ध कथानक का भी सृजन हुआ होगा। विद्वानों ने उक्त उल्लेख की अन्तिम सीमा ईसा की द्वितीय शताब्दी स्वीकार की है।[1] अतः यह सिद्ध होता है कि उक्त जातक भी उसी समय की मूल रचना है।

(ग) सीतादेवी में राम तथा लखन के प्रति अनुराग था। उनका स्नेहिल हृदय परिवार के उक्त वरिष्ठ सदस्यों को वन-प्रस्थान करते हुए देखकर विशेष द्रवित हो गया था। जहाँ तक राम के प्रति स्नेहाधिक्य का प्रश्न है, इसकी पुष्टि नहीं होती, अन्यथा वे वन में एकाकी राम को छोड़कर लखन तथा भरत के साथ कैसे लौट आतीं।

(घ) सीता में प्रेम, विनय, शिष्टता, कष्ट सहिष्णुता, शालीनता, मधुरिमा आदि भारतीय नारी के सद्गुण विद्यमान थे। उनमें हम कविवर प्रसाद की नारी श्रद्धा के हृदय के निम्नलिखित कोमल भावों का अस्तित्व पाते हैं।

> दया माया ममता लो आज,
> मधुरिमा लो अगाध विश्वास। (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

उदाहरणार्थ यदि उनमें दया न होती, माया-मोह न होता तो राम-लखन के साथ क्यों वन प्रस्थान करतीं? उन्हें तो वनवास की आज्ञा ही नहीं हुई थी। जहाँ तक माधुर्य एवं विश्वास का प्रश्न है, ये दोनों विशेषतायें उनमें थीं। माधुर्य के कारण ही परिवार में विवाह सम्भव हो सका और विश्वासमयी होने के कारण ही हिमालय की अधित्यकाओं तथा उपत्यकाओं में एकाकी लक्ष्मण के साथ प्रातःकाल से सन्ध्याकाल तक विचरण करती रहती थीं। इस प्रकार उन्होंने नौ वर्ष पर्यन्त व्यतीत किए थे।

उनमें प्रगाढ़ भ्रातृप्रेम था, अन्यथा वनवास में उनके लिए कौन-सा आकर्षण था। विनय की देवी सीता भ्रातृप्रेम के वशीभूत होकर वन-प्रस्थान के लिए उद्यत अवश्य होती हैं, किन्तु विनय तथा शिष्टता का अनुपालन करने के लिए वे पिता दशरथ से आज्ञा लेती हैं।

सीता का जीवन कष्ट-सहिष्णुता का पाठ पढ़ाता है। एक सुकुमारी राजकन्या हिमानी के उस निविड़कान्तार में निर्भीक विचरती है। 'चित्रलिखित कपि देख डराती' की उक्ति को चरितार्थ करने वाला व्यक्तित्व सीतादेवी का नहीं, वह तो

१. रामकथा, डॉ० बुल्के तथा संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० ११, १२ (चन्द्रशेखर पाण्डेय।)

परम निर्भीक एवं सहिष्णु देवी हैं। तुलसी की सीता तो 'धरि धीर दये मग में डग द्वै' की स्थिति में पहुँचती है कि भालकनी झलकने लगती हैं, किन्तु बौद्ध-सीता में यह सौकुमार्य कहाँ ?

सीतादेवी शालीनता की जीवित प्रतिकृति है। लखन के साथ प्रत्यावर्तन काल में उनके समक्ष औचित्य का प्रश्न उपस्थित होता प्रतीत होता है। गीता के अनुसार 'न विविक्तासनोभवेत्' शास्त्रीय मर्यादा है, जो युगों से चली आ रही थी। फलतः यदि शालीनता का पालन करने के विचार से वे एकाकी रामपण्डित के साथ नहीं रह सकीं, तो यह उनके चरित्र की महत्ता ही है। अन्ततः राम के साथ विवाह के प्रश्न पर भी उनकी मूक स्वीकृति ही प्रतीत होती है। कन्या पराया धन है। परिवार के उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति जहाँ भेज देते है, उसे जाना ही पड़ता है।

अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।

अंचल मे है दूध और आँखों में पानी॥ (यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त)

(ङ) दशरथ जातक की सीता करुणा की सजीव प्रतिमा है, किन्तु उनकी करुणा में विवेक की धवलधारा सर्वथा विलुप्त नही हो जाती। जब दशरथजी की मृत्यु का समाचार उन्हें सुनाया जाता है, वे अत्यन्त शोकमग्न हो जाती हैं, किन्तु रामपंडित के ज्ञानोपदेश[1] से उनमें विवेक का जागरण हो जाता है और वे धैर्यावलम्बन प्राप्त करती है। इस प्रकार सीतादेवी में नारी-जीवन की करुणा के साथ ही साथ विवेक एवं आत्मनियन्त्रण की विचित्र शक्ति निहित प्रतीत होती है।

(च) इस जातक से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि राम के साथ सीता का विवाह राम-वनवास के पश्चात् ही हुआ। सीता-हरण जैसी कोई घटना नही घटी। बौद्ध जातकों में रावण का वृत्तान्त क्यों नही प्रस्तुत किया गया, इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि इन जातक-रचनाओं के समय तक सीता-हरण का वृत्तान्त पूर्णतया लोकप्रसिद्धि न प्राप्त कर सका होगा अथवा बुद्ध-गाथा के अनुसार बुद्ध पूर्व जन्म में राम पंडित और यशोधरा (उनकी पत्नी) सीता थी। यदि इन गाथाओं में सीता-हरण का उल्लेख किया जाता, तो यह बौद्धधर्म के प्रतिकूल पड़ता। किसी धर्म का उपासक अपने मान्य देव या देवी के प्रति अपमानजनक प्रसंग लिखने या प्रस्तुत करने में संकोच करता है और वह अपने धार्मिक क्षेत्र में असम्मानित हो जाता है। मेरे विचार से इसी हेतु जातक रचनाओं ने इस (सीताहरण वृत्तान्त) ओर उपेक्षा बरती है।

---

१. गाथा २।१२ यथा

फलानमिव पक्कानं निच्चं पपतना भयं।

एवं जातानं निच्चं मरण तो भयं॥ (गाथा ५)

अनामकं जातकम् का संक्षिप्त कथानक

प्रस्तुत जातक में राम, सीता एवं रामायण के किसी अन्य पात्र का नामोल्लेख नहीं मिलता, किन्तु कथावस्तु के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें रामकथा की अनेक घटनायें प्रतिविम्बित है। समीक्षा करते समय हम इस बात पर प्रकाश डालेंगे कि इस जातक में पात्रों के नामों का उल्लेख क्यों नही किया गया।

प्रस्तुत जातक का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है :

एक समय बोधिसत्व चतुर्गुणसम्पन्न राजा थे। इनके मामा भी एक राज्य के शासक थे। मामा आचरण-भ्रष्ट, पदलोलुप एव मद्यप थे। स्वार्थवश बोधिसत्व का राज्यापहरण करने के लिए मातुल ने एक विशाल सैन्य-संगठन किया। स्वार्थवश बोधिसत्व के सचिवों ने भी सैन्यसज्जा तैयार की, किन्तु बोधिसत्व ने स्वार्थहेतु हिंसा उचित नही समझी। परिणामस्वरूप वे राज्य का परित्याग कर वनवासी हो गये और मातुल ने राज्य पर अधिकार कर लिया। बोधिसत्व समुद्र के समीपवर्ती पर्वतीय वन में रानी सहित निवास करते थे। एक दिन समुद्रस्थ नाग ने ऋषि का छद्मवेष धारणकर रानी का अपहरण किया। पथ में एक विशालकाय पक्षी ने नाग का अवरोध किया, किन्तु नाग ने उस पक्षी का दाहिना पंख तोड़ दिया और रानी को नागद्वीप ले जाने में सफल हो गया।

जब फल लेकर लौटे हुए राजा ने आश्रम में रानी को न देखा तब वह उसकी खोज में व्यग्र होकर इतस्ततः भ्रमण करने लगा। नदी तट पर उदास बैठे हुए एक वानर ने राजा से अपनी दुर्दशा बतलाई कि मेरे चाचा ने राज्य का अपहरण कर लिया और मैं निर्वासित हूँ। आपत्तिग्रस्त दोनों व्यक्ति परस्पर सहायतार्थ वचनबद्ध हो गये। द्वितीय दिवस राजाज्ञानुसार वानर ने अपने चाचा से युद्ध छेड़ दिया, किन्तु उसकी सहायता में राजा को आया देखकर भयवश भागने के लिए विवश हो गया। तत्पश्चात् वानरराज ने रानी का पता लगाने के लिए अनेक वानरों को भेजा। उन्होने पथ में मरणासन्न पक्षी से रानी के अपहर्ता नाग का पता पाया।

समुद्र पार करने के लिए वानर असमर्थ थे। आकस्मिक रूप से इन्द्र ने एक लघु वानर का वेप बनाकर प्रत्येक वानर को एक-एक शिला संचित करने की युक्ति बताई और सबके ऐसा करने पर नागद्वीप तक के लिए मार्ग निर्मित हो गया। राजा समस्त वानर सैन्य को लेकर नागद्वीप गया और युद्ध में नाग द्वारा विषैले कुहरे से मूर्छित वानरों को लघु वानर (इन्द्र) की देवोषधि द्वारा चैतन्य कराकर पुनः युद्ध करने लगा। नाग ने आंधी-पानी का प्रकोप उत्पन्न किया और स्वयं विद्युत के रूप में चमकने लगा। लघु वानर इन्द्र ने राजा से बताया कि यह विद्युत नही नाग है, फलतः राजा ने तीव्र बाण के प्रहार से नाग का प्राणान्त कर दिया।

लघु वानर द्वीप से रानी का उद्धार करता है, किन्तु परगृह में रहने के कारण राजा उसको स्वीकार नही करता। अन्ततः अपने सतीत्व की परीक्षा हेतु रानी कहती है : यदि मेरा सतीत्व सुरक्षित हो। तो पृथ्वी विदीर्ण हो जाये। तुरन्त पृथ्वी विदीर्ण हो जाती है और रानी का सतीत्व प्रमाणित हो जाता है। इधर मामा के देहान्त होने पर राजा अपनी पुरी लौट आता है और दम्पत्ति सुखपूर्वक धर्मानुसार प्रजापालन मे तत्पर हो जाते है।

कथानक के अन्त में यह उल्लेख मिलता है कि राजा बोधिसत्व, रानी गौपा, मामा देवदत्त तथा इन्द्र मैत्रेय था।

आलोचना : इस जातक में रामकथा के नामों के अतिरिक्त दशरथ जातक की अपेक्षा कथा का विस्तार अधिक पाया जाता है। सम्भवतः लोकप्रचलित रामकथा तथा वाल्मीकि की आदिकथा के तत्वों का सम्मिश्रण ही उक्त जातक है। अनामकं जातकम् नाम से ही स्पष्ट प्रतीत होता है कि रचयिता ने अनामक = नामविहीन (पात्रों के नाम से रहित) रचना करने का लक्ष्य बनाया था। मूल कथा के नामों की उपेक्षा के निम्नलिखित कारण हो सकते है :—

(क) यदि रामायण कथा के पात्रों का नामोल्लेख किया जाता, तो बुद्ध के पूर्व-जन्म का वृत्तान्त आरोपित माना जाता और मूल नामो की प्रधानता भी सिद्ध हो जाती।

(ख) रामकथा के प्रचलित रूप में कुछ न कुछ परिवर्तन भी करना था। उदाहरणार्थ बालि-वध की घटना के मूल रूप का प्रदर्शन करने से बुद्ध पर पूर्वजन्म मे बालि की हिसा करने का दोष स्पष्ट हो जाता है। अतः जातककार ने इसमें यह परिवर्तन कर दिया कि राजा (राम) को अपने भतीजे के पक्ष मे सहायकर्ता के रूप मे आया जानकर उसका चाचा (बालि) पलायन कर गया। यदि कथा मे पात्रो के नामों का स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाता तो जो जनता रामायण कथा से परिचित थी वह उन बौद्धगाथाओ को कपोलकल्पित समझकर विश्वास न करती। इस प्रकार बौद्ध धर्म के प्रचार मे बाधा सम्भव थी।

(ग) दशरथ जातक की कथा इस जातक की अपेक्षा प्राचीन प्रतीत होती है, क्योंकि उसमे घटनाओं का इतना विस्तृत एवं बहुसंख्यक उल्लेख नही पाया जाता। ऐसा प्रतीत होता है कि दशरथ जातक की घटना ही इस जातक की मूलकथा है। लोकाख्यान के सहयोग से परवर्ती अनामकं जातकम् मे परिवर्द्धन किया गया है। अस्तु जब दशरथ जातक में रामपण्डित, लखन तथा सीता के नामों का उल्लेख पाया जाता है, तब परवर्ती जातक अनामकं जातकम् में भी उक्त पात्रों का नामोल्लेख हो सकता था

इस तर्क से यह बात सिद्ध होती है कि इस जातक के प्रणेता ने जानबूझकर पात्रों के नाम नही लिखे।

(घ) किसी तथ्य को गोपनीय या प्रच्छन्न करने में किसी न किसी प्रकार का भय मूल होता है। उदाहरणार्थ चोर कभी नही कह सकता कि मैने चौरकृत्य किया है, क्योंकि ऐसा करने से उसे सामाजिक, शासकीय एवं पारिवारिक दण्ड भी भोगना पड़ सकता है। इसी प्रकार बौद्धधर्म की स्थिति उस समय इतनी सामर्थ्यवती न होगी कि आर्यधर्म की रामकथा के विरुद्ध कुछ उल्लेख किया जा सके। परिणामस्वरूप रामकथा के नाम छिपाकर उसमें निम्नलिखित परिवर्तन कर दिये गए—(१) बोधिसत्व (राम) के मामा द्वारा राज्यहरण, (२) बोधिसत्व का हिंसा के भय से पलायन, (३) रावण के स्थान पर नाग की परिकल्पना, (४) जटायु के स्थान पर साधारण पक्षी का उल्लेख, (५) लंका के स्थान पर नागद्वीप का उल्लेख, (६) सुग्रीव के स्थान पर वानर की कल्पना, (७) बलि को सुग्रीव के चाचा के रूप में चित्रित करना, (८) बालिवध न कराकर बालि का पलायन कराना, (९) इन्द्र की वानर के रूप मे कल्पना, (१०) सेतु-निर्माण की घटना को महत्वहीन चित्रित करना, (११) रावण की माया के स्थान पर विषैले कुहरे की कल्पना और गरुड़ द्वारा नागपाशमुक्त के कथानक में इन्द्र द्वारा (लघु वानर) औषधि सुँघाकर सचेत करना, (१२) रावण का विद्युत रूप, (१३) सीता की अग्नि-परीक्षा के स्थान पर पृथ्वी के विदीर्ण होने की घटना।

अनामकं जातकम् की कथावस्तु के आधार पर सीताजी के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है :

(क) इसमें रानी (सीता) के पिता का कोई उल्लेख नही है जबकि दशरथ जातक मे इन्हें दशरथ की पुत्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस परिवर्तन का कारण यह प्रतीत होता है कि दशरथ जातक के रचनाकाल में बौद्ध धर्म अधिक सशक्त रहा होगा, अतः आर्यधर्म की मान्यताओ के विरुद्ध सीता को दशरथ की पुत्री के रूप में प्रस्तुत कर दिया। कालान्तर में बौद्ध धर्म की शक्ति उतनी न रही कि स्पष्टतया रामायण कथा के विरुद्ध सीता को दशरथ-पुत्री के रूप मे चित्रित किया जा सके, अतः उस कथानक से रानी (सीता) के पिता होने की कपोलकल्पना को तिलांजलि दे दी गयी होगी।

(ख) उक्त जातक के आधार पर रानी(सीता) एक आदर्श सती के रूप में प्रसिद्ध प्रतीत होती है। उनके चित्त में अपने पति के प्रति अगाध स्नेह है। वे पति द्वारा राज्य का परित्याग कर वन ले जाने के समय उनकी अनुगामिनी के रूप में सहयोग करती हैं। जिस समय नाग (रावण) ऋषि का छद्मभेष धारण कर उनका अपहरण करता है, उस समय वे धैर्यावलम्बन को ही श्रेयस्कर मानती हैं। अन्त में नाग (रावण) के वध

रचनाकाल तक उक्त कथा का प्रचार हो चुका होगा, अतः उसमें सीता की सतीत्व-परीक्षा का उल्लेख पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों जातकों के निर्माण-काल में कम से कम १०० वर्षों का अन्तर अवश्य रहा है। इस प्रकार यदि दशरथ जातक को तीसरे शतक ई० पू० की रचना मानें तो अनामकं जातकम् को द्वितीय शतक ई० पू० की रचना कहना अधिक समीचीन होगा। इसी काल में रामायण का आधुनिक रूप प्रतिष्ठित हो चुका था। इस प्रकार अनामकं जातकम् का मूलस्रोत रामायण को ही मानना तर्कसंगत होगा।

जहाँ तक दशरथ जातकम् का प्रश्न है, उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि लोककथा के रूप में रामकथा सूतों एवं कुशीलवों में मौखिक प्रचलित रही है।[1] महर्षि वाल्मीकि ने जिस समय इनका संग्रह किया होगा (पाँचवाँ शतक ई० पू०) उस समय के पश्चात् भी लोककथाओं के रूप में रामकथा का प्रचार रहा होगा, फलतः वाल्मीकिकथा तथा लोककथा के सम्मिश्रण से दशरथ जातकम् की रामकथा का निर्माण सम्भव सिद्ध होता है। पार्जिटर ने १६०० वर्ष ई० पू०, याकोबी ने ८००-६०० वर्ष ई० पू० रामायण का रचनाकाल माना है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि रामविषयक जातक कथायें रायायण से अनुप्रेरित है, किन्तु अपनी धार्मिक भावना से प्रभावित होकर उन्होंने उसे विकृत रूप में प्रस्तुत किया है। सी० वी० वैद्य, विंटरनित्स, सी० लैस्सन तथा डॉ० बुल्के प्रभृति विद्वान् उक्त जातक कथाओं को रामकथा का विकृत रूप ही मानते हैं।[3]
और आज यही मत मान्य हो रहा है।

(ख) प्राकृत-साहित्य में सीता का जीवन-चरित्र तथा पालि-साहित्य की सीता से तुलना

पालि साहित्य में सीता विषयक स्वल्प सामग्री प्राप्त है, किन्तु इसकी तुलना में प्राकृत साहित्य अत्यन्त व्यापक है। इसमें राम-सीता का कथानक भी अत्यन्त विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। प्राकृत रामकथा के रचयिता प्रायः जैन कवि थे, अतः इन्होंने अपनी धार्मिक मान्यताओं के आधार पर उसमें सामान्य परिवर्तन भी किये हैं, जिनका यथास्थान उल्लेख किया जायगा।

---

१. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० ११, पं० चन्द्रशेखर शास्त्री (अष्टम संस्करण)

२. वही, पृ० १२,

३. डॉ० बुल्के रामकथा, पृ० ८१।

इस जैन कथा के दो रूप उपलब्ध होते है : प्रथम विमल सूरि की परम्परा और द्वितीय गुणभद्राचार्य की परम्परा। इनमें प्रथम परम्परा का विशेप आदर हुआ है। प्राकृत साहित्य के जिन विशेष ग्रन्थो में सीता-चरित्र की सूचना प्राप्त है, उनमें निम्नलिखित ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं :

(क) **पउम चरियं (विमलसूरि)** : जैनाचार्यो के मतानुसार यह रचना ७२ ई० में प्रकाश मे आई थी, किन्तु इसकी भाषादि के आधार पर पाश्चात्य विद्वानों ने इसे तृतीय अथवा चतुर्थ शताब्दी ई० की रचना माना है।[1] रविपेणाचार्य ने ६६० ई० में इस ग्रन्थ का संस्कृत रूपान्तर किया था, जो पद्‌मचरित नाम से प्रसिद्ध है। सन् १८१८ ई० में दौलतराम ने इस ग्रन्थ का खड़ी बोली में अनुवाद प्रस्तुत किया था।

(ख) **राम लखन चरियम (नवम् शतक)** : इसके प्रणेता शीलाचार्य माने जाते हैं। इन्होंने चउपन्नमहापुरिसचरिय नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत रामलखनचरियम अंक प्रस्तुत किया है। इसमें मुख्यतः विमलसूरि के कथानक का अनुसरण किया गया है, वैसे कुछ वाल्मीकि का भी प्रभाव ग्रहण किया गया है।

(ग) **कहावली (११वां शतक)** : इसके प्रणेता भद्रेश्वर कवि माने जाते है। उन्होंने इस ग्रन्थ के अन्तर्गत रामायणम् प्रकरण में सीता-राम कथानक का उल्लेख किया है।

(घ) **सीया चरिय** : यह भुवनतुंग सूरि की रचना मानी जाती है। इसमें सीता चरित्र पर जैन धर्मानुसारी कथानक का उल्लेख किया गया है।

(ङ) **राम लक्खन चरियं** : इसके प्रणेता भी भुवनतुंग ही माने जाते हैं।

सामान्य दिग्दर्शन : उक्त समस्त ग्रन्थों का मूलाधार विमलसूरि का पउम चरियं है और सबमें सीता एक आदर्श मानवी के रूप में प्रस्तुत की गई है। इन ग्रन्थों में राम आठवें बलदेव, लक्ष्मण, वासदेव तथा रावण प्रतिवासुदेव के रूप में प्रस्तुत किये गये है। इन ग्रन्थों में रावण (प्रतिवासदेव) का वध लक्ष्मण (वासुदेव) द्वारा ही कराया गया है। इसका कारण यह है कि इन कवियों ने अहिसा सिद्धान्त की पुष्टि के लिए बलदेव (राम) द्वारा रावण-वध अनुचित समझा होगा, अतः यह परिवर्तन कराया है। इसी प्रकार सीता की अग्नि-परीक्षा के पश्चात् इन ग्रन्थों में सीताजी को जैनधर्म में दीक्षित चित्रित किया गया है।

प्राकृत साहित्य : इस साहित्य के अनुसार सीताजी महाराज जनक की पुत्री है और भामण्डल उनका सहोदर बन्धु है। कुछ म्लेच्छ जनक को पीड़ा पहुँचा रहे थे। राम उन म्लेच्छों का वध करते है, फलतः जनकजी उनके साथ सीता का विवाह करने का निश्चय करते है। जव विवाह हेतु सीताजी का स्वयंवर होता है, उसमें राम धनुष चढ़ाते है और सीता के साथ उनका विवाह हो जाता है।

---

१. ए० वी० कीथ, हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३४

जब राम की सौतेली माता कैकेयी दशरथजी से अपने पुत्र भरत के लिए वर माँगती है कि इसे राज्यभार दिया जाये, तब राम लक्ष्मण तथा सीता के साथ स्वतः वन प्रस्थान करते है।[1] वन में शूर्पणखा (चन्द्रनखा) के पुत्र शम्बूक के सिद्ध खंग सूर्यहास को लेकर लक्ष्मण उसका शिरच्छेद करते हैं, फलतः चन्द्रनखा अपने पति खरदूषण से समस्त वृत्तान्त बतलाती है। इसके पूर्व वह राम तथा लक्ष्मण से प्रणय-प्रस्ताव भी करती है, पर असफल रहती है। खरदूषण रावण को भी सूचित करता है और एक बड़ी सेना लेकर आक्रमण करता है। प्रत्यावरोध अकेले लक्ष्मण करते है। रावण सीता के पास जाता है और उसके रूप पर आसक्त होता है। उसे अवलोकिनी विद्या द्वारा यह ज्ञान हो जाता है कि लक्ष्मण ने राम को बुलाने के लिये सिंहनाद का संकेत बतलाया है। रावण स्वयं सिंहनाद करता है, फलतः राम सीता को अकेली छोड़कर चले जाते हैं और एकान्त पाकर रावण सीता का अपहरण करने में सफल हो जाता है (पउम चरिउ पर्व, ४३, ५३)।

सीता का अन्वेषण करते हुए राम-लक्ष्मण सुग्रीव से मैत्री करते हैं और हनुमान को रावण के पास भेजने का परमर्श देते हैं कि वह विभीषण से मिलकर रावण से सीता प्रत्यावर्तित कराने में सफल हो सकेंगे। हनुमान लंका में जाकर विभीषण तथा सीता से मिलते है और लंका के उद्यानों को उजाड़ने के कारण इन्द्रजित द्वारा बद्ध होकर रावण के समक्ष उपस्थित होते है। वहाँ स्वतः बन्धन तोड़कर राजप्रसाद को भग्न कर सीता से पुनः मिलते है और उनका सन्देश राम को लाकर देते हैं।[2]

एक बार रावण सीता से मिलकर कहता है कि मैं राम का वध कर तुम्हारे साथ रमण करूंगा। सीता उत्तर देती है कि मेरा जीवन तो राम पर अवलम्बित है। मैं परपुरुष से रमण नही कर सकती। व्यथा के आधिक्य से वे संज्ञाहीन हो जाती है। इस प्रकार राम के प्रति सीता के अविचल प्रेम को देखकर रावण पश्चात्ताप करता है और प्रतिज्ञा करता हैं कि संग्राम में राम-लक्ष्मण को पराजित कर सीता को उन्हे अर्पित कर दूंगा।

लक्ष्मण द्वारा रावण का वध करने पर राम स्वयं लंका जाकर सीता से मिलते है और देवगण सीता के निर्मल चरित्र की पुष्टि करते है (पउम-चरिउ पर्व, ७६)।

अयोध्या लौटने पर कुछ दिनों पश्चात् सीता गर्भवती होती है और राम उनका मनोरंजन करने के लिये जैन चैत्यालय दिखला रहे थे, इतने में नागरिको ने सीतापवाद की चर्चा राम से की। लक्ष्मण के अनुसार सीता का परित्याग अनुचित था

१. पउम चरियं विमलसूरि, पर्व २३, ३२

२. वही, पर्व ४३, ५३ ३. वही पर्व ६९।

फिर भी राम को सीता पर सन्देह हुआ और उन्होने अपने सेनापति कृतान्तवदन के साथ सीता को एकान्त वन में भेज दिया। परित्यक्ता सीता के करुणक्रन्दन से प्रभावित पुंडरीकसुर के नरेश वज्रजंघ उन्हें अपनी राजधानी ले जाकर शरण देते है, वही सीता के लवण तथा अंकुश नामक दो पुत्र उत्पन्न होते हैं (पर्व ९७)।

एक बार वयस्क हो जाने पर इन पुत्रों को नारद द्वारा ज्ञात होता है कि राम ने हमारी माता का परित्याग किया है। फलतः वे अयोध्या पर आक्रमण कर देते है और अन्ततः सिद्धार्थ तथा नारद के माध्यम से युद्ध शान्त हो जाता है और राम अपने दोनो पुत्रों को स्वीकार कर लेते है। तदनन्तर हनुमान आदि द्वारा सीता के स्वीकार करने की संस्तुति पर राम उनकी अग्निपरीक्षा लेते है (पर्व ७६ पउम चरिउ)। तीन सौ हाथ गहरे अग्निकुण्ड में सीता के प्रविष्ट होते ही जल उमड़ आता है। जनता की प्रार्थना पर सीता जल को शान्त कर देती है। उनका सतीत्व प्रमाणित हो जाता है। राम उनसे क्षमायाचना करते है, पर सीता अयोध्या में रहना अस्वीकृत कर जैन धर्म में दीक्षित होने के लिए अपने ही हाथों अपने केशों का वर्णन करती है और तपश्चर्या द्वारा स्वर्ग जाकर इन्द्र पद प्राप्त करती है।[1]

इस प्रकार प्राकृत साहित्य की सीता के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है।

(क) सीता जनक की औरस पुत्री थी और सीता के सहोदर बन्धु का नाम भामण्डल था। सम्भवतः मध्यकालीन रचनाओं मे इसी को लक्ष्मीनिधि की संज्ञा प्राप्त हुई है। इस भामण्डल ने भी लंका के युद्ध में राम की सहायता की थी। यह उल्लेख इस प्राकृत साहित्य की प्रमुख विशेषता है।

(ख) धनुर्भंग के पूर्व ही जनक ने राम के साथ सीता-विवाह का वाग्दान कर दिया था, धनुर्भंग निमित्त मात्र था।

(ग) प्राकृत की सीता कष्ट सहिष्णु, पतिव्रता एव आदर्श पत्नी है।

(घ) प्राकृत की सीता ने हरण के पूर्व लक्ष्मण को कटु वचन नही कहे।

(ङ) इस साहित्य में सीता हनुमान को मौखिक सन्देश देती है, चूड़ामणि नही।

(च) लवकुश युद्ध पश्चात् सीता की अग्नि-परीक्षा होती है और वे निष्कलंक सिद्ध होती है।

(छ) निष्कलंक सिद्ध होकर सीता जैन मत मे दीक्षित होकर स्वर्ग जाती है।

प्राकृत की सीता के साथ पालि की सीता की तुलना

पालि साहित्य की सीता दशरथ की औरस पुत्री तथा राम की सगी बहिन हैं।

---

१. पउमचरियं (विमलसूरि), पर्व १०१, १०२

उनका वास्तविक नाम सीतादेवी है।[1] प्राकृत साहित्य के अनुसार सीता जनक की औरस पुत्री हैं और उनके भाई का नाम भामण्डल था, जबकि पालि में भामण्डल आदि का उल्लेख नही किया गया। लंका के युद्ध में प्राकृत का भामण्डल सहायक सिद्ध होता है। पालि में जनक पक्ष का तो उल्लेख ही नही किया गया।

पालि साहित्य में राम १२ वर्ष का समय वन मे व्यतीत कर वाराणसी आने पर अपनी वहिन सीता के साथ विवाह करते है, किन्तु प्राकृत मे म्लेच्छो को पराजित कर जनक अपनी पुत्री सीता के विवाह का निश्चय करते है।

पालि में राम-विवाह एवं धनुर्भंग का कोई सम्वन्ध ही नही है, किन्तु प्राकृत प्राकृत में स्वयंवर में राम द्वारा धनुर्भंग का उल्लेख मिलता है।

पालि में राम, सीता तथा लक्ष्मण हिमालय की ओर प्रस्थान करते है, पर प्राकृत में दक्षिण की ओर। पालि साहित्य में सीता पूर्वजन्म की यशोधरा मानी जाती हैं, प्राकृत में नही।

पालि मे सीता-हरण का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, केवल अनामक जातक में संकेत मात्र है, दशरथ जातक में तो संकेत भी नही है, किन्तु प्राकृत साहित्य में सीता के सौन्दर्य पर आकृष्ट होकर रावण सीता का हरण करता है।

पालि के अनामक जातक के अनुसार रावण का प्रतीकात्मक नाम नाग है, जिसने छद्मवेष धारण कर रानी (सीता) का अपहरण किया था, पर प्राकृत में रावण ने छद्मवेष नही वनाया।

पालि के अनामक जातक के अनुसार हनुमान का स्पष्ट नाम नही है, वह इन्द्र का एक रूप (लघुवन्दर) था, जिसने राम की सहायता की और रानी (सीता) का उद्धार किया, किन्तु प्राकृत मे हनुमान के सन्देश आदि का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

पालि के दशरथ जातक के अनुसार सीता ९ वर्ष तक तो वन मे राम के साथ रही, किन्तु जव भरत पहुँचते हैं, तव वे लक्ष्मण के साथ घर (वाराणसी) लौट आती हैं। प्राकृत में ऐसा नही है।

पालि की सीता (अनामक जातक के अनुसार) की अग्नि-परीक्षा नही होती है, किन्तु राम उन्हें स्वीकार करने से संकोच करते है। रानी (सीता) कहती हैं कि यदि मुझ में सतीत्व है तो पृथ्वी विदीर्ण हो जाये। पृथ्वी फटती है और उनका सतीत्व प्रमाणित हो जाता है। प्राकृत के अनुसार तो उनकी अग्नि-परीक्षा होती है, वह भी अत्यन्त भयावह एवं रोमांचक रूप में, उसमे वे सफल सिद्ध होती है।

---

१. दशरथ जातक की कथावस्तु के आधार पर।

पालि की सीता निर्वासित नही होती, किन्तु प्राकृत की सीता निर्वासित होती है। पालि की सीता के लिए राम इनते विकल नही हैं, जितने कि प्राकृत की सीता के लिए हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि पालि की सीता की अपेक्षा प्राकृत की सीता का जीवन अधिक कष्टप्रद एवं व्यपक है। पालि मे वन पूर्वजन्म की देवी यशोधरा है, प्राकृत में नहीं। दोनों साहित्यों में सीता एक आदर्श पत्नी एवं पतिव्रता सिद्ध होती है। वे श्रेय की प्रेयरूपा भारतीय नारी है, जिनका जीवन कांटों की छाया में शनैः शनैः झुलस गया, अभिशाप के कलुपित वातावरण में घुट गया, फिर भी प्रतप्त कांचनवत् निष्कलमश सिद्ध हो गया।

(ग) अपभ्रंश साहित्य में वर्णित सीता का जीवन पथ और प्राकृत की सीता से तुलना

राम-चरित्र की महनीयता महाकवि वाल्मीकि की सुप्रसिद्ध रचना रामायण से ही प्रचलित हुई है और इसकी लोकप्रियता के कारण आर्यधर्म-विरोधी बौद्धों तथा जैनाचार्यों ने भी अपने साहित्य में रामकथा को महत्व प्रदान किया हैं।

उक्त रामकथा का उल्लेख करने वाले आचार्योंमें मुख्यतः जैनाचार्यो की विशिप्ट-रुचि का अपभ्रंश में होने के कारण पता चलता है। अपभ्रंश ग्रन्थों का रचनाकाल ५०० ई० से १००० ई० तक माना जाता है। डॉ० ग्रियर्सन ने इसी मत को मान्यता प्रदान की है।[1] वस्तुतः अपभ्रंश में उत्तम श्रेणी का साहित्य अप्टम शताब्दी से चतुर्दश शताब्दी तक लिखा गया है कविवर स्वयंभू से लेकर विद्यापति पर्यन्त उनके मनीपी कवियों ने अपभ्रंश साहित्य की श्री में अभिवृद्धि की है। वर्तमान समय मे अपभ्रंश के तीन कवियों की रचनाओं में सीता-चरित्र का उल्लेख है :

१. **स्वयंभू (आठवीं शताब्दी)** इन्होने पउमचरिउ नामक एक सुन्दर महाकाव्य की रचना की है, जो पाँचकाण्डों तथा ६० सन्धियो में विभक्त है।

२. **पुष्पदन्त (दसवीं शताब्दी)** इन्होंने पउमचरिउ नामक एक पुराण ग्रन्थ की रचना की है, जिसे महापुराण भी कहते है। यह ग्रन्थ आदिपुराण तथा उत्तरपुराण नामक दो खण्डों में विभक्त है। सम्मिलित रूप मे इसे जैनी लोग पद्मपुराण भी कहते हैं। इस ग्रन्थ में १०२ सन्धियाँ प्राप्त होती हैं।

३. **रइप (पन्द्रहवीं शताब्दी)** इन्होंने पद्मपुराण की रचना की है, जिसे आजकल वलभद्रपुराण की भी संज्ञा दी जाती है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है, किन्तु इसकी तीन पाण्डुलिपियों का पता चला है। प्राचीनतम प्रति श्री पन्नालाल अग्रवाल (दिल्ली) के

---

१. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया, पृष्ठ १२१, डॉ० ग्रियर्सन।

पास सुरक्षित है और दो प्रतियाँ आमेरशास्त्रभण्डार में उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में २६५ भड़वक तथा १२ सीन्धयाँ प्राप्त है।

सम्प्रति क्रमिक रूप से प्रत्येक रचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया जायेगा कि इसके प्रणेता कवि ने सीता का जीवन-चरित्र किस रूप में प्रस्तुत किया है।

१. **पउमचरिउ :** प्रस्तुत रचना राम-सीता विषयक कथानक को अपभ्रंश के माध्यम से व्यक्त करने वाली प्रथम कृति है। इस ग्रन्थ में (१) विद्याधर काण्ड, (२) अयोध्या काण्ड, (३) सुन्दर काण्ड, (४) युद्ध काण्ड और (५) उत्तर काण्ड ये पचकाण्ड है। इस ग्रन्थ के अयोध्याकाण्ड से उत्तर काण्ड पर्यन्त सीताराम का काव्यात्मक कथानक अत्यन्त रोचक शैली में उपनिबद्ध किया गया है। अयोध्याकाण्ड मे सीता-विवाह से लेकर सीताहरण पर्यन्त कथा का वर्णन है। सुन्दरकाण्ड में सीतान्वेषण कथानक से लेकर राम द्वारा लंकाभियान तक का कथानक वर्णित है। अन्ततः युद्धकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में राम-रावण-युद्ध तथा राम के जीवन के उत्तरार्द्ध की कथाओं का उल्लेख पाया जाता है।

अयोध्याकाण्ड (२३, १३) में यह उल्लेख किया गया है कि सीताजी जनक की औरस पुत्री थी और उनके सहोदर बन्धु का नाम भामण्डल था। जब सीता-स्वयंवर में सब राजा समुद्रावर्त तथा बज्रवर्त नामक धनुषों के चढ़ाने में असमर्थ रहे, तब राम तथा लक्ष्मण रंगभूमि में पहुँचे और दोनों ने धनुषों पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। तत्पश्चात् देवगण पुष्पवर्षा करते हैं और सीताजी के साथ राम का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

आलोचना की दृष्टि से यह प्रतीत होता है कि स्वयंभू कवि ने सम्भवतः लक्ष्मण की वीरता का भी प्रदर्शन करने के लिए द्वितीय धनुष की कल्पना कर ली है।

रामायण की भाँति स्वयंभू ने भी उक्त ग्रन्थ में कैकेयी के वरदान के कारण राम का वनवास चित्रित किया है और सीता तथा लक्ष्मण के भी सहगमन का उल्लेख किया है। इसमें एक विचित्र तथ्य यह प्रस्तुत किया गया है कि वनपथ में गम्भीरा नदी पार करते समय राम ने सीता को अपने वामहस्त का आश्रय देकर उन्हें अनुगृहीत किया।

इससे दो निष्कर्ष निकलते है:- (१) राम श्रीसीता के प्रति असाधारण अनुराग रखते थे, अतः नारी-जाति के भीरु स्वभाव को समझते हुए उन्होंने सीता को स्वाश्रय प्रदान किया।

(२) सम्भवतः राजकुमारी सीता प्रारम्भ से ही जलसन्तरणविद्या से अनभिज्ञ थी।

राम के वनगमन के छः दिन व्यतीत होते ही भरतजी श्रीराम के समीप पहुँचते हैं और उनसे जो प्रस्ताव रखते है, उसमें वे सीताजी को राम की महादेवी बनाने का मुख्य उल्लेख करते है :

देव। आप रुकें, प्रवास में मत जाइये। यदि आप वन जाते हैं तो दशरथ वंश का विनाश हो जायगा। मैं और शत्रुघ्न आपके सेवक हैं, लक्ष्मण मंत्री और सीताजी महादेवी हैं।[1]

उक्त कथन से इस वात की सूचना मिलती है कि सीताजी के प्रति भरतजी के हृदय में श्रद्धा का भाव था। सम्भवतः सीताजी के शीलस्वभाव के कारण ही वे उनके प्रति श्रद्धालु थे।

अयोध्याकाण्ड में कवि ने यह अत्यन्त स्पष्ट रूप से लिखा है कि दण्डक वन आने पर रावण सीताजी के रूप पर आसक्त होता है और अवलोकिनी विद्या द्वारा वह लक्ष्मण के उस सिंहनाद रूपी गुप्त संकेत का ज्ञान कर स्वयं सिंहनाद करता है, फलतः श्रीराम अपने वन्धु लक्ष्मण पर संकट समझकर अकेली सीता को छोड़कर चले जाते हैं। इसी वीच रावण वलपूर्वक सीताजी का अपहरण करता है।

उक्त उल्लेख से यह निष्कर्ष निकलता है कि सीताहरण का मुख्य कारण उनका सौन्दर्य था। वह सर्वथा असाधारण था, अन्यथा रावण जैसा योगी मुग्ध कैसे हो सकता था?

सीताहरण के पश्चात् कवि ने राम द्वारा सीता-अन्वेषण करते समय जो विलाप करवाया है, उससे स्पष्टतया राम का मानवरूप एवं सीता के अंग-प्रत्यंग की अपार माधुरी का संकेत मिलता है।

राम वन देवी से प्रश्न करते हैं कि यदि तुमने मेरी सीता को देखा हो, तो वता दो। इसी प्रकार गज से पूछते हैं कि मेरी प्रिया की गति की भाँति तुम्हारी भी (मतवाली चाल) सुन्दर गति है। क्या तुमने प्रिया सीता देखी है? उन्मत्त राम कमलों में सीता के आयतलोचनों एवं अशोक में सीता के दोलायमान करों का भ्रम करते थे। इस प्रकार चारों ओर सीता की खोज कर अन्ततः अपने लतागृह में जाकर अधीर होकर राम भू पर गिर पड़ते हैं।[2]

---

१. थक्कु देव ! मंजाहि पवासहों। होहि तरडंड वंसहों ॥
हउं सत्तुहणु भिच्च तडवें वि। लक्खणु मंति सीय महुएवि ॥
(पउमचरिउ, २४, ८)

२. णिद्धगु लक्खन वज्जियउ अण्णु वि वहु वसणोहि भुत्तउ।
रामउ भमह भुअंगु जिह वर्णे हा हा सीय भवन्तउ ॥८॥
हिण्डन्ते भाग मडफ्फर्रेण। वण देवय पुच्छिय हल हरेण ॥१॥
खणे-खणे वेयारहि काँह मई। कहें कहि मिदिट्ठ जहकन्तपहं ॥२॥
वलु एम भणेप्पिणु संचालिउ। तावग्गए वण गइन्दु मिलिउ ॥३॥
हे कुंजर कामिणि गइ गमण। कहें कहि मिदिट्ठ जहमिगणयण ॥४॥
शिय पडिखेण वेयारियउ। जाणल सीयए हचकारियउ ॥५॥

उक्त राम-विलाप से यह पता चलता है कि सीताजी को राम का अप्रतिम अनुराग प्राप्त था। इस प्रसंग का प्रभाव परवर्ती संस्कृत साहित्य पर ही नही, अपितु तुलसी के मानस में भी।

हे जलचर हे मधुकर स्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ॥ अयो० का०
रूप में देखा जा सकता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सुन्दरकाण्ड मे हनुमान सीता की खोज करने के लिए प्रस्थान करते है और नन्दन वन मे विरहिणी सीता के कृश रूप का दर्शन पाते है। हनुमान श्री राम की अंगुलीयक देकर सीता से परिचय प्राप्त करते है और उनसे राम के पास चलने का प्रस्ताव भी करते हैं, किन्तु सीता यह कहकर हनुमान के प्रस्ताव का निषेध करती है कि यह राम की मर्यादा एवं कुलवधू के आचरण के प्रतिकूल है।

वाल्मीकि रामायण में भी कवि ने सीता द्वारा इसी प्रकार औचित्य का प्रदर्शन कराया है, यथा तत्तस्य सदृशं भवेत्। इस स्थल में स्वयंभू ने वाल्मीकि का ही अनुकरण किया है। स्वयंभू ने यहाँ पर सीता की सच्चरित्रता के साथ ही साथ उनके स्वाभिमानरम की वीरता के प्रति दृढ़ विश्वास एवं सीता की कष्टसहिष्णुता के प्रति अधिक ध्यान दिया है। सीता कहती है: यदि अपने पितृगृह भी जाना हो, तब भी नारी को पति के बिना नही जाना चाहिए। मै रावणादि निशाचरों के संहार के पश्चात् जय नाद का श्रवण करती हुई अपने जनपद को जाना चाहती हूँ। तुम यह चूड़ामणि ले लो और प्रत्यभिज्ञान के रूप मे राम को दे देना। रामचरितमानस में उक्त ग्रन्थ का प्रभाव इस प्रकार देखिये :

चूड़ामणि उतार तब दयऊ। हर्ष समेत पवनसुत लयऊ ॥ मानस (सु० का०)
कविवरण स्वयंभू ने सीता द्वारा राम से कहने के लिए इस प्रकार प्रतिसन्देश दिलाया है :

हे हनुमान ! राम से कहना कि सीता तुम्हारे वियोग में रेखामात्रावशिष्ट है। वे राहु द्वारा ग्रस्त चन्द्रलेखा की भाँति क्षीण हो गई हैं। यथा :

कत्थइ दिट्ठइं इन्दीवरहं। जाणह धण णयणहं दीहरइं ॥६॥
कत्थह अयोयतरु हणिलयउ। जाणह धण वाहा होल्लियउ ॥७॥
वण सयलु गवेसेवि सयल महि। पल्लट्टु पंडीवड दाणरहि ॥८॥
तंजि पराउड. शिय भवणु जहिं अच्छिउ आसि लयत्थले।
चाव सिलिम्मुह मुवककरु वलु पडिड स संभुव मंडले ॥९॥

स्वयंभू (पउम चरिउ) अयो० कां० (३९, १२)
भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण, काशी १९४४

अण्णु वि आलिगे वि गुण घणउ सन्देसउ अक्खु मह तणउ।
वल तुज्झु विओएं जखय सुय थिय लीह विसेसण कहवि भुअ ॥१॥
भहीण मयंक लेह गह गहिय व। झीण सुरिन्द रिद्धि तव रहिय व ॥२॥

उक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि सीता केवल कृश ही नही थी, अपितु वे मलिन भी थीं। ऐसा उचित भी है, क्योंकि शास्त्रीय मर्यादानुसार पति-वियोग में नारी को श्रृंगार भी नही करना चाहिए। गर्गसंहिता में एक कवि ने पतिव्रता राधा के विषय में भी कहा है :

तया नो कारि श्रृंगारो यावद्वर्षशतैरपि ॥ गर्ग सं०द्वा०खं०

कविवर तुलसी ने भी सीता की कृशता पर विशेष ध्यान दिया है।

कृस तनु सीसजटा एक वेनी। जपतहृदय रघुपति गुन स्रेनी ॥ मानस सु० का०

अर्थात् सीता कृश तो थी ही, किन्तु श्रृंगारादि की वर्जना के कारण सिर में जटायें बन गई थीं।

जैन कवि स्वयम्भू ने मानस की भाँति सीता के जिस आदर्श पत्नीभाव की उत्कृष्ट व्यंजना की है, वह वस्तुतः कल्पना की वस्तु नही, किसी समय का युगसत्य प्रतीत होता है, जिसे अतीतदर्शी कवि ने अपनी अनुभूति का जामा पहनाया है।

स्वयम्भू की सीता में यह एक विशिष्ट बात मिलती है कि सीताजी ने अपने देश में राम को प्राधान्य देते हुए भी लक्ष्मण के शौर्य्य पर अधिक विश्वास व्यक्त किया है। यथा :

रणे दुव्वार वइरि विणिवारहों। तहाँ सन्देसउ णेंहि कुमार हों ॥८॥
वुच्चइ पइं होन्तेण पि लक्खण। अच्छइ सीय रुयन्ति अलक्खण ॥९॥
णउ देवेहि णउ दाणवेहि णउ रामे वइरि वियारएण।
पर मारेव्वउ दहवयणु स इंभू अन्जु अलेण तुम्हारएण ॥१०॥

भावार्थ यह कि रण दुर्वार है, जिसमे शत्रु का विनाश करना है। अतः हे हनुमान ! तुम कुमार लक्ष्मण से सन्देश देना कि तम्हारे विना सीता वहुत अधिक रो रही है। यद्यपि संग्राम भूमि मे राम से न कोई देव, न कोई दानव विजय पा सकता है, किन्तु केवल तुम्हारी भुजाओ द्वारा ही रावण का वध होगा।

सीता के उक्त कथन में लक्ष्मण की वीरता पर विश्वास, लक्ष्मण के लिए युद्धार्थ प्रोत्साहन एवं उनके प्रति एक निश्छल अनुराग भी प्रतीत होता है। सम्भवतः पउमचरियं (प्राकृत ग्रन्थ) के प्रणेता विमलसूरि के अनुकरण पर, जिसमें लक्ष्मण द्वारा ही रावण (प्रतिनारायण) का वध कराया गया है,[1] स्वयम्भू ने भी लक्ष्मण द्वारा रावण-वध में विश्वास व्यक्त किया है। इस कथन में राम के प्रति भी असाधारण

१. पउमचरियं (विमलसूरि) युद्धपूर्व ७३ ॥ भावनगर १९१४ ई० ॥

विश्वास व्यक्त किया गया है। इस कथन में राम के प्रति असाधारण विश्वास व्यक्त किया गया है। सीता राम के पराक्रम को समझती है कि देव-दानव कोई भी उनसे संग्राम-भूमि में विजय नही प्राप्त कर सकता, फिर भी संग्राम में यदि लक्ष्मण भी तन्मय हो जायेंगे तो राम को विशेष सम्बल प्राप्त हो जायगा। सम्भवतः इसी मुख्य उद्देश्य से सीताजी ने लक्ष्मण के वीरत्व पर अधिक बल दिया है। इतना ही नही रावण-वध भी लक्ष्मण द्वारा सम्पन्न कराकर कवि ने विमलसूरि के कथानक का अनुसरण किया है साथ ही साथ सीता के उक्त सन्देश का लक्ष्मण द्वारा यथार्थ पालन भी करवाया है। इस प्रकार कथावस्तु की संगति बन सकती है।

इस प्रकार स्वयंभू की कथावस्तु में जैन धर्मानुसार कतिपय परिवर्तन भी किए गए हैं। उदाहरणार्थ सीताहरण के प्रसंग में कवि ने राम द्वारा संसार की असारता पर गंभीर विचार करवाया[1]। यथा: संसार में सुख नही है, दुःख की सीमा नही है। यह जीवन जलविन्दुवत् है। गृह-कुटुम्ब, माता-पिता-पुत्रादि सभी सम्वन्ध सारहीन है। ऐसा वैराग्य वाल्मीकि ने नही प्रदर्शित किया, किन्त स्वयम्भू ने जैन धर्म के सिद्धान्तानुसार उपयुक्त अवसर निकालकर अपनी छाप लगा दी है।

स्वयम्भू की कथावस्तु का आलोड़न करने से हमें सीताजी के जीवन पथ के सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते है:

(क) सीता जनक की पुत्री थीं और भामण्डल नामक उनका एक सहोदर भ्राता भी था।

(ख) सीताजी स्वेच्छा से राम के साथ वन गई थी।

(ग) सीता को पथ में किसी कष्ट का अनुभव नही हुआ, वे अत्यन्त सहिष्णु थीं।

(घ) सीताजी को जलसन्तरण कला का विश्वसनीय ज्ञान नहीं था।

(ङ) सीताजी को लक्ष्मण द्वारा सुरक्षा एवं भरत द्वारा असीम आदर प्राप्त था।

(च) सीताहरण के प्रसंग में सीताजी ने लक्ष्मण को कटु वचन नही कहे, क्योंकि वे तो युद्ध में व्यस्त थे। कुटी में राम थे, वे लक्ष्मण के स्वर जैसे गंभीर सिंहनाद को सुनकर लक्ष्मण की रक्षार्थ स्वयं गए थे।

(छ) सीताजी को राम का असाधारण अनुराग प्राप्त था, वे उनके वियोग में उन्मत्त हो गये थे।

(ज) सीताजी असाधारण सुन्दरी थी, उनके अपहरण का मूल कारण उनका अप्रतिम सौन्दर्य ही था।

---

१. पउमचरिउ (३६, ११)

(झ) सीताजी में शालीनता, विवेक, मर्यादा, लज्जा, आदर्श सतीत्व, स्वाभिमान था। धैर्यावलम्बन, आभिजात्य, विश्वास, पतिप्रेम तथा देश प्रेम जैसे महनीय गुण विद्यमान थे।

(ज) सीताजी राम के समकक्ष ही लक्ष्मण के शौर्य पर विश्वास करती थी।

२. **महापुराण (पउमचरिउ) :** पुष्पदन्त प्रणीत प्रस्तुत महापुराण जैन साहित्य का एक विशिष्ट ग्रन्थ माना जाता है। जैन साहित्य के अनुसार क्रोधन सम्वत्सर की आषाढ़ शुक्ला १० दशमी के दिन यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ था।[1] ज्योतिषशास्त्र में प्रभाव से सम्वत्सरों के नाम प्रचलित होते हैं। सम्पूर्ण सम्वत्सरों की संख्या ६० है। कवि ने ९५९ ई० अर्थात् सम्वत् १०१६ वि० में ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ की थी। कालक्रमानुसार गणना करने पर क्रोधन सम्वत् १०२२ वि० में आया था। अतः यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ के निर्माण में ६ वर्ष का समय लगा। इस प्रकार इस ग्रन्थ की समाप्ति ९६५ ई० में हुई, यह इतिहाससिद्ध तथ्य प्रतीत होता है।

उक्त महापुराण दो खण्डों में विभक्त है : (१) आदिपुराण, (२) उत्तर पुराण। हमारी प्रतिपाद्य एवं अध्येत्य कथावस्तु उत्तरपुराण ६९वीं सन्धि से ७९वी सन्धि पर्यन्त अर्थात् ११ सन्धियों में वर्णित है।

संक्षिप्त सीता-चरित्र : प्रस्तुत रचना में सीताजी की जन्म-कथा के सम्बन्ध में कवि ने यह उल्लेख किया है कि रावण एक विद्याधर था। उसकी पत्नी मन्दोदरी ने एक पुत्री को जन्म दिया, जो कालान्तर में सीता के नाम से प्रसिद्ध हुई। पुत्री की उत्पत्ति के समय भविष्यवेत्ताओं ने बतलाया कि यह पुत्री अपने पिता की मृत्यु का कारण बनेगी। रावण ने मृत्यु की आशंका से इस पुत्री को एक मंजूषा में रखवाकर किसी खेत में अन्तर्निहित करा दिया। एक दिन एक कृषक ने हल-संचालन करते हुए वह मंजूषा प्राप्त की और उसे लेकर राजा जनक को समर्पित कर दिया। जनकजी ने उसे पुत्री के रूप में रखा और उसका लालन-पालन करने लगे। कालान्तर में जनक जी ने राम के साथ उसका विवाह सम्पन्न करा दिया। एक समय पर्यटनशील नारद जी ने रावण से सीता के रूप की प्रशंसा की और कहा कि वह सुन्दरी तुम्हारे योग्य थी। फलतः रावण सीता पर आसक्त होकर उसे लंका लाने के लिए प्रयत्नशील हुआ। सर्वप्रथम उसने सीता की मानसिक स्थिति समझने के लिए शूर्पणखा (चन्द्रमुखी) को सीता के पास भेजा, किन्तु स्थिति यह ज्ञात हुई कि वे सतीत्व पर अविचल है।

तदनन्तर रावण विमान में आरूढ़ होकर राम-सीता के विहारस्थल की ओर गया। उसने सीता का मन लुब्ध करने के लिए मारीच को कनकमृग बनने का आदेश दिया। जिस समय राम उस कपट मृग का वध करने के लिए उसका अनुगमन करते

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३०९ (नाथूराम प्रेमी), बम्बई १९४२ ई०

हैं, उसी समय रावण सीता का अपहरण करता है और लंका में लाकर एक वाटिका में स्थान देता है। इधर वनपथ में सीता की खोज में राम विकल हो जाते है। कवि ने राम की विपन्न स्थिति का अत्यन्त प्रभावकारी चित्रण किया है :

> रे हंस हंस-सा हंसगमण पई दिट्ठी कत्थइ विडल रमण।
> चंगडं चिम्पकहुँ सिक्खिओसि महुँ चक्कहंतु जि खल कि गओसि ॥
> रे कुंजर तुह कुंमत्थलाइंणं मह महिलाइ थणत्थलाई।
> सारिक्खउ एउ काई भणु कतई कहिं दिणई पयाई ॥
> साणं कहहि महु जणयधीय णयणहि उवजीविय पइमि सीय।
> अवि धरिणिकेसणिद्धात्तचोर णिसि सररुहदलक्य बंधणार ॥
>
> (उत्तर पुराण, सन्धि ७३,४)

तात्पर्य यह कि राम हंस से सीता का पता पूछते है कि हे हंस! क्या तुमने हंसगामिनी विपुल रमणी सीता को देखा है? पता बताओ। चक्रवाक तुमने सीता से चक्रमण तथा द्युतिमान होना सीखा हैं। निश्चित बताओ, वह कहाँ गई? हे कुजर! तुम्हारे कुम्भस्थलों के समान सीता का विशाल पीवर स्तनमण्डल है, बताओ वह कहाँ गई, कौन उसे ले गया? हे मृग! तुम मुझसे जनकतनया का पता बताओ, वह तुम्हारे नेत्रो की उपजीव्य है। क्या धरिणी ने ही उसे चुरा लिया अथवा कमल ने अपने दलों के मध्य उसे अवरुद्ध कर लिया।

उक्त विलाप मे भी हमें स्वयंभू की छाप प्रतीत होती है। उसने भी वनदेवी, गज, कमल, अशोक आदि से राम को सीता का पता पूछते हुए प्रस्तुत किया है।[1] कविवर तुलसी भी इनसे प्रभावित है। पुष्पदन्त लिखते है कि सीता के वियोग मे राम की प्रकृति के समस्त उपादान दुःखद प्रतीत होते है। शीतल जल उन्हें विष के समान अशान्तिकारक प्रतीत होता है, हरिचन्दन अंगदाहक वन जाता है, कमल शूल वन जाते है और शैय्या देहदाहक लगने लगती है। यथा :

> सीयलु विसु विसु वण संति जणह।
> हरियदणु सिहिकुलु अंगु छणइ।
> शक्तिणु वि सूरहू सयणतु वहण
> सयणीययलि छित्तइ देहु डहइ ॥ (उ० पु० ७३,३)

रामचरितमानस में कविवर तुलसी ने इसी प्रकार का चित्रण किया है।

> कुवलय विपिन कुन्त बन सरिसा। वारिद तप्त तेल जनु बरिसा ॥
> जेहि तरु रहौ करै सोइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ॥
>
> (मानस, अरण्य)

---

१. स्वयंभूकृत पउमचरिउ (३९,१२)

उक्त वर्णन से यह प्रतीत होता है कि कविवर पुष्पदत्त ने सीता के प्रति राम का अपार स्नेह प्रदर्शित किया है इसका कारण उनका अद्वितीय सौन्दर्य मात्र नही, अपितु उनके गुण भी हैं। स्नेह के लिए रूप एवं हृदय दोनों का आकर्षण या सौन्दर्य अपेक्षित होता है। प्रियप्रवास में कविवर हरिऔध ने इस तथ्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है :

प्रसून यों ही न मिलिन्दवृन्द की,
विमोहिता और करता प्रलुब्ध है।
वरच उसका शारा सुगन्ध ही,
उसे बनाता बहु पीतिपात्र है ॥ (कालीदमन प्रसंग)

सीता-हरण के पश्चात् हनुमान तथा सुग्रीव के साथ राम का परिचय होता है एवं सीता के अनुसन्धान हेतु हनुमान मच्छिका का रूप धारणकर अन्ततः एक वाटिका में सीता के दर्शन प्राप्त करते है। उस समय रावण सीता से प्रणय-प्रस्ताव करता पाया जाता है, किन्तु सीता उसकी ओर देखती तक नही।

इस उल्लेख द्वारा कवि ने सीता के आदर्श सतीत्व की पूर्ण सुरक्षा की है। बौद्ध रामकथाओं में भी सीता के सतीत्व पर किसी प्रकार का अभद्र आरोप नहीं किया गया।

सीताजी के प्रति रावण के प्रणय-प्रस्ताव के अनन्तर मन्दोदरी का आकस्मिक प्रवेश होता है और वह अपनी पुत्री सीता को पहिचान कर आश्वस्त करती है। तर्क की कसौटी पर यह उल्लेख खरा नही उतरता। जब उत्पन्न होते ही मन्दोदरी ने रावण के कथनानुसार सीता को मंजूषा मे बन्द कराकर खेत मे गडवा दिया था, तो वयस्क होने पर मन्दोदरी ने सीता को कैसे पहचान लिया ? हो सकता है कि रूप-साध्य के कारण मन्दोदरी ने सीता को पहचाना हो, क्योंकि वाल्मीकिरामायण मे हनुमान भी मन्दोदरी को देखकर उसको सीता समझने की भ्रांति कर बैठते है। कुछ भी हो क्या प्रसग की उक्त उद्भावना स्वयं कवि की प्रतीत होती है। हाँ, मनोविज्ञान के अनुसार सतति को देखकर मातृ-पितृ हृदय अवश्य द्रवित होता है, परिचय हो अथवा नही। उदाहरणार्थ श्रीमद्भागवत में यह उल्लेख पाया जाता है कि कृष्ण की रानी रुक्मिणी की प्रथम सन्तान प्रद्युम्न को शम्भासुर गर्भगृह से अपहृत कर ले गया था, किन्तु वयस्क होने पर जब प्रद्युम्न ने दैत्य का संहार किया और अन्ततः नारदजी ने रति (पत्नी) सहित प्रद्युम्न को द्वारका में श्रीकृष्ण की पत्नियों के समक्ष प्रस्तुत किया, उस समय श्रीकृष्ण की अन्य स्त्रियों में प्रद्युम्न के अद्वितीय सौंदर्य के कारण अनुराग भावना उदित हुई, किन्तु माता रुक्मिणी में वात्सल्य का अनन्तसागर उमड़ आया, उनके स्तनों से दुग्धधारा का अजस्र प्रवाह फूट पड़ा।

उक्त कथानक से यह स्पष्ट है कि वात्सल्य एक ऐसा दिव्यभाव है, जो परिचय की अपेक्षा नहीं रखता। वह अपरिचित होने पर भी अपनी संतति के प्रत्यक्ष होते ही सहस्रधारा के रूप में फूट पड़ता है और अपने उस हृदयखण्ड को आप्लावित कर देता है। अभिज्ञानशाकुन्तल का दुष्यन्त अपने अपरिचित पुत्र भरत को मरीचि आश्रम में देखते ही वात्सल्य की तरंगों में निमग्न होकर सोचने लगता है (अनेनकस्यापि कुलांकुरेण अर्थात् यह किसी के कुल का अंकुर है······। अन्ततः स्पष्ट शब्दों में कहता है) :

नूनमनपत्यता मां वत्सलयति (अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

अर्थात् यह निश्चित है कि मैं सन्ततिशून्य हूँ, यही भाव मुझ को वात्सल्यपूर्ण बना रहा है।

इस प्रकार यदि पुष्पदन्त ने अपनी अज्ञात पुत्री सीता को देखते ही मन्दोदरी को वात्सल्यमयी बना दिया, तो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह सर्वथा उचित एवं सम्भव ही कहा जायगा।

जब सीता को आश्वासन देकर मन्दोदरी प्रस्थान करती है, उस समय रामदूत होने का प्रमाण देकर हनुमान श्रीसीता को राम का सन्देश देते हैं और प्रत्यावर्तित होकर राम को स्थिति से अवगत कराते हैं। अन्ततः राम-लक्ष्मण दिव्यास्त्रों की प्राप्ति हेतु तप करते हैं और शस्त्र-प्राप्ति पश्चात् समर करते हैं, फलतः लक्ष्मण द्वारा रावण का संहार होता है और राम को सीता की प्राप्ति होती है।

आलोचना : पुस्पदन्त ने लक्ष्मण द्वारा रावण का वध प्रदर्शित किया। इसमें जैन-धर्म की स्पष्ट छाप प्रतीत होती है। स्वयंभू ने भी यह परिवर्तन इसी दृष्टिकोण से किया है, क्योंकि जैनधर्म में राम को भी शलाकापुरुषों में स्थान दिया गया है, अतः राम वासुदेव (शलाकापुरुष) द्वारा रावण की हत्या दिखलाना सर्वथा अनुचित बात होती।

पुष्पदन्त ने स्वयंभू की अपेक्षा सीता विषयक नवीन सामग्री प्रस्तुत की है : (क) स्वयंभू ने सीताजी को जनक की पुत्री और भामण्डल को उनका सगा भाई बतलाया है, किन्तु पुष्पदन्त ने सीता को मन्दोदरी की पुत्री घोषित किया है और भूमि से पुनरुत्पत्ति प्रदर्शित कर जनक की दत्तक पुत्री के रूप में प्रस्तुत किया है। मेरा विचार यह है कि पुष्पदन्त में यह परिवर्तन वसुदेवहिण्डि (पाँचवी शताब्दी या इससे पूर्व विरचित) नामक कथाग्रन्थ के आधार पर किया है। जैन-साहित्य का यह प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें पहले-पहल सीता का जन्म लंका में माना गया है।[1]

इसके अतिरिक्त गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (८९७ ई०) में भी सीता को मन्दोदरी की औरस पुत्री बतलाया है। पुष्पदन्त में इसका भी प्रभाव माना जा सकता है, क्योंकि यह ग्रन्थ भी जैन परम्परा में समादृत है और पुष्पदन्त (१०वी शतक) से पूर्ववती रचना

---

१. रामकथा (डॉ० कामिल बुल्के), पृष्ठ २१९

कविवर रइधू की रचना पद्मपुराण द्वादश सन्धियों में विभक्त है। इसमे ग्रन्थ की चतुर्थ सन्धि से सीताराम का कथानक प्रारम्भ होता है और ग्रन्थ के अन्त तक वही चरित्र व्याप्त है। चतुर्थ सन्धि में कवि ने राम-जन्म का तो उल्लेख किया है, किन्तु सीताजन्म की चर्चा तक नही की। इसी सन्धि में कवि ने सीता-विवाह के प्रसंग मे उन्हें उपस्थित किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि यद्यपि सीताजन्म का वृत्तान्त साहित्य तथा धर्म में पर्याप्त स्थान प्राप्त कर चुका था, किन्तु कवि को जैन सम्प्रदाय से रुचि थी, अतः उसने इस प्रसंग की अवहेलना कर दी है, जबकि पूर्ववर्ती जैन कवियों ने इसका भी उल्लेख किया है।

पंचम सन्धि मे कवि ने जहाँ सीताहरण का स्वतन्त्र चित्रण किया है, वहाँ पुष्पदन्त की कथा का प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ काव्यकल्पना भले ही अधिक हो, किन्तु सीता विषयक किसी मौलिकता का प्रदर्शन नहीं किया गया। जो वर्णन है, वह परम्परायुक्त ही कहा जाता है।

षष्ठ सन्धि इस ग्रन्थ की अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है। इसमें सीतान्वेषण, हनुमान का लंका सम्प्रेषण तथा सीता-सन्देश का अत्यन्त मनोहर तथा करुण चित्रण प्रस्तुत किया गया है। पूर्ववर्ती जैन कवियों ने सीताहरण के पश्चात् राम की उन्मत्त दशा का अत्यन्त हृदयाकर्षक चित्रण किया है, अतः परम्परानुसार रइधू कवि ने भी वियोगी राम के मुख से वृक्षों एवं पशु-पक्षियों से सीता का पता लगवाया है। यथा :

हे वर असोय महु सोड फेडि। जहं दिट्ठी ता सहया बहोड़ि।
रे महुये महुवि तुहु कहहि वनः अह किं धिउ पहुँ सन्धिमि अपत।
किं णलिएर पइक हिमिदिट्ठ। किं उतरु देहि उरेण किट्ठ।
रे हंस हंस गमणीहि सुद्धि। माहु कहहि पयतें विमलबुद्धि। (वलभद्द चरिउ ६,२)

तात्पर्य यह कि विरही राम अशोकादि वृक्षों एवं हंसादि पक्षियों से सीता का पता पूछते है। इससे उनकी चेतनाशून्य स्थिति का पता तो चलता ही है, साथ ही इस वात का भी अनुमान होता है कि राम सीता के प्रति कितना अधिक अनुराग रखते थे। सीता के सौन्दर्य एवं गुणो से साम्य रखने वाले समस्त प्राकृतिक उपादान राम की जिज्ञासा के विषय वन गए है। मानव-जीवन की चिर सहचरी प्रकृति यहाँ राम के प्रश्नों का उत्तर नही दे पाती, कितनी विवशता है ?

कवि ने ग्रन्थ की सप्तम सन्धि में राम-विजय के अनन्तर सीता सहित राम के प्रत्यावर्तन को कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है। यहाँ सीता की अग्नि-परीक्षा का उल्लेख नही किया गया है। अष्टम सन्धि में सीता के द्वितीय वनवास का काव्यात्मक उल्लेख किया गया है। लवकुश जन्म, राम की सेना से लवकुश का युद्ध तथा शान्ति इस सन्धि की कथावस्तु के आकर्षक केन्द्र है।

नवम् सन्धि में कवि ने सीता की अग्नि-परीक्षा एवं उनका स्वर्गारोहण चित्रित किया है। औचित्य की दृष्टि से अग्नि-परीक्षा का वर्णन सप्तम सन्धि में ही करना चाहिए था।

आलोचना : कविवर रइधू की सीता के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :

(क) सीता के जन्म के विषय में कवि ने उदासीनता दिखलाई है। केवल राम-विवाह के प्रसंग में ही सीता-मानवी रूप का मनोहरण चित्रण किया गया है।

(ख) सीता एक आदर्श पतिव्रता पत्नी हैं, जिन्हें भरत भी माता मानते थे। सम्भवतः इसके पूर्व किसी जैन कवि ने भरत द्वारा सीता को माता सीता नही कहलाया। इसका कारण यह हो सकता है कि पन्द्रहवी शताब्दी तक सीता का जगज्जननी रूप भी मान्य हो चुका था। उसी समय के लगभग विरचित अध्यात्मरामायण में सीता के इस रूप की पूर्ण प्रतिष्ठा की गयी थी। कवि रइधू ने सीता को शक्ति स्वरूपा भले ही न चित्रित किया हो, क्योंकि धार्मिक दुराग्रह वाध्य करता होगा, किन्तु लोक आदर्श का ध्यान रखकर उन्होंने उनको भरत द्वारा इतनी मान्यता अवश्य दिला दी है। इस मान्यता में हमें तत्कालीन रामभक्ति का प्रभाव स्पष्टरूपेण प्रतीत होता है।

(ग) पूर्वोक्त दोनों कवियो ने सीता की अग्नि-परीक्षा का उल्लेख नहीं किया, किन्तु जैन कवियों में से अपभ्रश रचनाकारों की श्रेणी मे रइधू ने अपने ग्रन्थ की नवम् सन्धि में इसका उल्लेख किया है। इसी प्रकार सीता के स्वर्गारोहण का वृत्तान्त भी इसी कवि ने प्रस्तुत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि रइधू को प्राकृत का विशिष्ट ज्ञान था। विमलसूरि द्वारा विरचित पउमचरिउ में वर्णित अग्नि-परीक्षा को ही इस कवि ने आधार माना है, क्योंकि विमलसूरि ने अयोध्या लौटने पर सीता की अग्नि-परीक्षा का उल्लेख किया है[1], लंका से लौटने पर नही। रइधू ने भी लका से लौटने पर सीता की अग्नि-परीक्षा न कराकर लवकुश युद्ध के पश्चात् ही इसका प्रकरण प्रस्तुत किया है। जहाँ तक अग्नि-परीक्षा की प्राचीनता का प्रश्न है, वह वाल्मीकि रामायण में भी वर्णित है।[2]

---

१. पउम चरियं : पर्व १०१, १०२ : विमलसूरि, भावनगर १९१४।

२. अवश्यं चापि लोकेपु सीता पावनमर्हति।
दीर्घकालोपिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥१३॥ (वाल्मी० रा० सर्ग ११८
वालिशो वत कामात्मा रामो दशरथात्मजः। यु० कां० रामतेज पाण्डेय द्वारा
इति वक्ष्यति मां लोको जानकी मविशोध्यहि ॥१४॥ सम्पादित)
विशेप : सीता का अग्नि-प्रवेश युद्धकाण्ड के ११६ वें सर्ग में वर्णित है।
(काशी, १९५१ ई०

(घ) रइघू का रामविरह-वर्णन परम्परामूलक है। जैन साहित्य मे अपभ्रंश रचनाओं में यह प्रकरण विशेप रुचि के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस रुचि विशेप का कारण यह हो सकता है कि उक्त जैन कवि राम को शलाकापुरुष भले ही स्वीकार करते रहे हों किन्तु उन्होंने सीता को मानवी रूप में ही प्रस्तुत किया है। राम का पूर्ण ईश्वरत्व भी इन लोगों के हृदय एवं मस्तिष्क ने नही स्वीकार किया है। अस्तु उनको प्राकृत जनवत उन्मत चित्रित करने में इन सभी कवियों ने जी खोल कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

प्राकृत की सीता के अपभ्रंश की सीता से तुलना

प्राकृत साहित्य एवं अपभ्रंश साहित्य दोनों के रामचरित प्रणेता प्राय: जैन कवि ही हुए है, अत: अपने जैनधर्म के सिद्धान्तों को रामकथा के अन्तराल मे प्रवेश देने के लिए इन दोनों भाषाओं के कवियों ने पर्याप्त प्रयास किया है। प्रस्तुत प्रकरण में हम दोनों भाषाओं के साहित्य को दृष्टि में रखते हुए तुलनात्मक पद्धति से सीता में जीवन चरित्र पर सूक्ष्म प्रकाश डालने का प्रयास करेगे। सीताजी के समस्त जीवन को हम निम्नलिखित सोपानों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) सीता का जन्म (ख) सीता-विवाह (ग) वन-यात्रा
(घ) सीता-हरण (ङ) हनुमत्सम्वाद (च) अग्निपरीक्षा
(छ) द्वितीय वनवास (ज) लवकुशोत्पत्ति (झ) लवकुश युद्ध
(ञ) सीता निर्वाण ।।

अब इन्ही शीर्षकों के आधार पर यह परीक्षण करने का प्रयास किया जायगा कि प्राकृत के कवियों एवं अपभ्रंश के कवियों ने कितना अधिक ध्यान दिया है। यदि किसी ने किसी स्थल विशेष की उपेक्षा की है अथवा अरुचि के साथ चित्रण किया है, तो उसका कारण क्या है। इसी प्रकार संशोधन-परिवर्द्धन आदि पर भी सतर्क होकर विचार किया जायगा।

(क) सीता जन्म : प्राकृत के कवि विमलसूरि ने पउमचरियं नामक अपनी रचना में सीताजी को जनक की औरस पुत्री के रूप में मान्यता दी है।[1] सीता की माता का नाम विदेहा था जोकि जनकजी की महारानी थी। इन्ही से भामण्डल नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था। परवर्ती प्राकृत रचनाओं में सर्वप्रथम वसुदेवहिण्डि (संघादास-कृत) नामक जैन महाराष्ट्री रचना में (५०० ई० रचनाकाल) सीता मन्दोदरी की पुत्री मानी गई हैं।[2] यह रावण द्वारा परित्यक्ता होकर जनकजी की दत्तकपुत्री के रूप में प्रख्यात होती हैं। इसके पश्चात् प्राकृत के कवि गुणभद्र ने (९ वी ई०) अपने

१. पउमचरियं, पर्व २१, विमलसूरि, भावनगर १९१४ ।।
२. डॉ० बुल्के (रामकथा, पृ० ३७२, सन् १९६२ द्वि० सं०)

कि गुप्तकाल (३१५ ई०, ५०७ ई०) में भक्तिभावना की तरलधारा प्रवाहित हो रही थी। तत्कालीन विष्णुपुराणादि में राम भी ब्रह्म में रूप में प्रस्तुत किये गये थे। अतः सीता में भी पूज्यभावना का उद्भव हो चुका था। सीता के अपहरणकर्त्ता के रूप में रावण प्रसिद्ध ही था, अतः रावण को सीता का पिता सिद्ध करने से सीताजी की पवित्रता में पर्याप्त प्रामाणिकता आ जाती है। इसी दृष्टि से लोककथाओं में सीता-जन्म का यह नवीन रूप प्रचलित हो गया होगा। उस लोकमत की उपेक्षा न कर सकने के कारण इन जैन कवियों ने भी सीता को रावण-मन्दोदरी की पुत्री के रूप में मान्यता प्रदान कर दी होगी।

(ख) **सीता-विवाह :** प्राकृत कवि विमलसूरि (चतुर्थ शतक ई०) ने सीता-विवाह के सन्दर्भ में यह उल्लेख किया है कि राम ने म्लेच्छों के विरुद्ध जनकजी की सहायता की थी, तभी जनक ने सीता का सम्बन्ध निश्चित कर लिया था। तदनन्तर सीता स्वयंवर में राम ने धनुप चढ़ाया और सीता का विवाह राम के साथ सम्पन्न हो गया। प्राकृत कवि गुणभद्राचार्य (नवम् शतक) के अनुसार श्रीजनकजी अपनी यश-रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण को बुलाते हैं और यज्ञपूर्ति पश्चात् उनके पराक्रम से सन्तुष्ट होकर राम के साथ सीता का विवाह कर देते हैं। इस कवि ने राम द्वारा सात अन्य कन्याओं के साथ विवाह करने का उल्लेख कर राम के एकपत्नीव्रत पर कलक लगाया है। सम्भवतः धार्मिक द्वेष के कारण उसने यह परिवर्तन किया है।

विचार करने पर प्राकृत के दोनों कवियों ने स्वल्पान्तर से राम का विवाह एक प्रकार के प्रतिदान के रूप में प्रस्तुत किया है, यह बात सिद्ध होती है। विवाह के पूर्व सीता से राम के परिचय अथवा दर्शन का उल्लेख इन कवियो ने नही किया। अपभ्रंश के कवि स्वयंभू ने पउमचरिउ के अयोध्याकाण्ड में रामसीता के विवाह का उल्लेख परम्परानुसार ही किया है। सामान्य परिवर्तन इतना अवश्य किया है कि धनुर्भंग होने के पश्चात् ही सीता का विवाह कराया है, जबकि प्राकृत के कवियो ने धनुर्भंग के पूर्व ही विवाह निश्चित करा दिया है। इसके अतिरिक्त स्वयंभू ने समुद्रावर्त तथा वज्रावर्त दो धनुपों का उल्लेख किया है, जिन्हें राम तथा लक्ष्मण आधिक्य करते हैं।

अपभ्रंश के कवि पुष्पदन्त (१०वी ई०) ने महापुराण नामक ग्रन्थ में विवाह कथा में किसी नवीन चमत्कार का प्रदर्शन नही किया। केवल उसने इतना अन्तर किया है कि स्वयंवर में एक ही धनुप रखने का उल्लेख किया है। अपभ्रंश के कवि रइधू ने भी इसी परम्परा का निर्वाह वलहद्दचरिउ की चतुर्थ सन्धि में किया है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि प्राकृत की सीता का विवाह तो राम के साथ पूर्व निश्चित सा था, किन्तु अपभ्रंश की सीता का विवाह राम के शौर्य पर आधारित

था। इस अन्तर का कारण यह प्रतीत होता है कि प्राकृत के कवि जैन धर्म के कट्टर-पन्थी थे। अतः उन्होंने राम का शौर्य गौण माना है, किन्तु अपभ्रंश के कवि अपेक्षाकृत उदार थे, फलतः उन्होने धनुर्भंग के आधार पर ही सीता के विवाह का उल्लेख किया है। जैसाकि कविवर तुलसी ने कहा है : रहा विवाह चाप आधीना : तथा : टूटत ही धनु भयउ विवाहू।

यदि सीता-राम विवाह शौर्य की कसौटी पर न होता तो इन समस्त कवियों से पूर्व वाल्मीकि ने स्पष्ट उल्लेख किया होता कि विवाह पूर्वनिश्चित था।

(ग) **वनयात्रा** : प्राकृत के कवि विमलसूरि (४०० ई०) ने पउमचरियं में उल्लेख किया है कि कैकेयी द्वारा भरत के लिए राज्य का वर माँगने पर राम अपनी पत्नी सीता तथा लक्ष्मण सहित दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हैं (पर्व ३२)। उल्लेखनीय है कि गुणभद्राचार्य (नवी ई०) ने वनवास का उल्लेख नहीं किया। राम के साथ सीता को चित्रकूट में विहारार्थ उपस्थित किया है। संघादास (५०० ई०) ने वाल्मीकि के आधार पर ही वनयात्रा का चित्रण किया है, किन्तु संक्षिप्तता की ओर अधिक ध्यान दिया है।

अपभ्रंश के कवि स्वयंभू ने अपने पउमचरिउ में अयोध्याकाण्ड के अनुसार कैकेयी के वरदान स्वरूप राम के साथ सीता तथा लक्ष्मण भी वनगमन के लिए प्रस्थान करते हैं। इसमें सीता की निर्भीकता एवं कष्टसहिष्णुता का विशेष उल्लेख किया गया है।

अपभ्रंश के पुष्पदन्त कवि ने महापुराण में सीता के इसी व्यक्तित्व का उल्लेख किया है किन्तु अन्य घटनाओं, यथा जयन्त कथा आदि का उल्लेख नही किया। रहघू कवि ने भी वनवास-वर्णन में सीता के किसी विशेष चरित्र की ओर ध्यान नही दिया।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि राम की वनवास-यात्रा से सीता-हरण के पूर्व तक की कथाओं में प्राकृत तथा अपभ्रंश में सीता का व्यक्तित्व एक शान्त एवं गम्भीर पतिपरायणा पत्नी के रूप में व्यक्त किया गया है। न तो ग्रामवधूटियों से उनका प्रेमालाप होता है, न तो भरत के चित्रकूट आने पर ही वे अपनी कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त करती है।

(घ) **सीता-हरण** : विमलसूरि ने पउमचरिउ (पर्व ४३) में शम्बूकवध को सीता-हरण का कारण सूचित किया है, क्योंकि यह शम्बूक शूर्पणखा (चन्द्रनखा) का पुत्र था। गुणभद्र ने उत्तरपुराण में सीता-हरण का कारण सीता का अद्भुत सौन्दर्य बतलाया है। नारदजी रावण से सीता के रूप की प्रशंसा करते है, फलतः रावण सीता के हरण का संकल्प करता है। अपभ्रंश के कवि स्वयंभू ने भी रावण को सीता के रूप पर आकृष्ट होकर सीता-हरण करते चित्रित किया है, किन्तु इसमे शम्बूक-

वध को भी सहायक कारण माना गया है। पुष्पदन्त ने महापुराण में शम्बूक की कथा का उल्लेख न कर नारद द्वारा सीता के रूप की प्रशंसा सुनकर रावण को सीता-हरण के लिए उत्सुक चित्रित किया है। रहघू ने पद्मपुराण की पचम सन्धि में सीता-हरण का प्रसंग प्रस्तुत किया है, जिसमें शूर्पणखा का विरूपीकरण ही सीता-हरण का कारण सिद्ध किया गया है।

इसी प्रकार विमलसूरि ने पउमचरिउ (पर्व ४४) में रावण को वास्तविक रूप में पुष्पक लेकर सीता के पास उपस्थित किया है और हरण के पश्चात् जटायु के प्रतिरोध करने पर उसका एक पंख काटकर भूमि में गिरा देने का उल्लेख किया है। इस प्रसंग में सीता द्वारा लक्ष्मण को कटु वचन नही कहलाये गये, क्योंकि लक्ष्मण तो पहले से ही संग्रामरत थे। इसमें कनकमृग की कथा का भी उल्लेख नही किया गया। ऐसा करने से सीता की स्त्रीसुलभ चंचलता का कलंक कवि ने स्वतः दूर कर दिया है। किन्तु गुणभद्राचार्य ने सीता को लुभाने के लिए मारीच द्वारा कपट मृग का रूप धारण करने का उल्लेख किया है। इस कवि ने भी लक्ष्मण के लिए सीता द्वारा कटुवचन नही कहलाये, अपितु यह चित्रित किया है कि चित्रकूट वाटिका में राम-सीता विहार कर रहे थे। कनकमृग राम को लुब्ध कर दूर ले जाता है, इतने में स्वयं रावण ही राम का रूप धारणकर सीता से कहता है कि मैने कनकमृग को वाराणसी (अपनी राजधानी) भेज दिया है और तुम इस पालकी (पुष्पक विमान) में चढ़कर लंका चलो। फलतः सीता पुष्पकारूढ़ होती है और लका पहुँचाई जाती हैं।

अपभ्रंश के कवि स्वयंभू ने अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत सीता-हरण का उल्लेख किया है। इसमें प्राकृत के विमलसूरि के कथानक का अनुसरण करते हुए कवि ने लक्ष्मण को सीता से दुर्वचन नही कहलाये। जटायु के साथ एक विद्याधर को प्रस्तुत-कर कवि ने रावण के पथ का अवरोध कराया है किन्तु जटायु के एक पक्षविहीन करने की घटना इसमें भी दी गई है।

पुष्पदन्त ने कपट मृग का उल्लेख किया है। कथानक के इस भाग में कवि ने पूर्णतया गुणभद्र की पद्धति का अनुसरण किया है। इसमें चित्रकूट में विहार करते हुए राम को कनकमृग के पीछे भेजकर रावण द्वारा एकान्त मे सीता-हरण कराया गया है।

सारांश यह कि प्राकृत तथा अपभ्रंश रामकथाओं मे पर्याप्त साम्य है। मुख्य वस्तु यह है कि उक्त दोनो भाषाओ के कवियों ने कही पर सीता द्वारा लक्ष्मण को कटु वचन कहने का अवसर ही नही दिया। कनकमृग का उल्लेख दोनों भाषाओ के कवियों ने किया है, किन्तु इसमें भी सीताजी को किसी ने प्रेरिका नही बनाया। तीसरी विशेषता यह है कि दोनों भाषाओं के ग्रन्थों मे कही पर रावण के यतिवेष का

उल्लेख नहीं किया गया। चतुर्थ विशेषता यह है कि दोनों भाषाओं के कवियों ने रावण द्वारा सीता का स्पर्श नहीं कराया। इसका यह कारण हो सकता है कि रावण एक धर्मभीरु जैनी के रूप में भी प्रस्तुत हुआ है। ऐसा करने से उसकी आकाशगामिनी शक्ति के नष्ट होने का भय था (गुणभद्र, उत्तरपुराण)। पंचम विशेषता यह है कि माया सीता का उल्लेख उक्त दोनों भाषाओं के कवियों ने नहीं किया। सम्भवतः साम्प्रदायिक भक्ति का उदय होने से ही माया सीता का भी उदय हुआ है। माया सीता का स्पष्ट उल्लेख कूर्मपुराण (सप्तम शतक) के पतिव्रतोपाख्यान में मिलता है।[1]

(ङ) **हनुमत्संवाद :** प्राकृत कवि विमलसूरि ने उल्लेख किया है कि विद्याधरों की इच्छा से हनुमान् को रावण के समझाने हेतु सुग्रीव लंका भेजता है। वहाँ जाकर हनुमान विभीषण तथा सीता से मिलते हैं, इसके पश्चात् लंका के उद्यानों तथा प्रासादों को ध्वस्त करते हैं। परिणामस्वरूप इन्द्रजीत द्वारा बद्ध होकर रावण के समक्ष उपस्थित होते हैं तथा रावण को आतंकित कर बन्धनमुक्त होते हुए रावण के मुख्य आवास को ध्वस्त कर देते हैं। अन्ततः सीता का सन्देश राम के पास लाते हैं। गुणभद्राचार्य के अनुसार हनुमान भ्रमर का रूप धारण कर लंका में प्रविष्ट होते हैं। उन्हें सान्त्वना देकर लौट आते हैं। राम पुनः उन्हें विभीषण से मिलने के लिए प्रेरित करते हैं और हनुमान विभीषण की सहायता से रावण से मिलते हैं, किन्तु रावण द्वारा सीता के लौटाने की अस्वीकृति पाकर हनुमान सीता को प्रणामकर लौट आते हैं (पर्व ६८, ३९०, ४३५)।

अपभ्रंश के कवि स्वयम्भू ने भी हनुमान के लंका-प्रेषण का वृत्तान्त लिखा है। इनके अनुसार लंका में हनुमान का आशाली विद्या तथा लंका सुन्दरी से युद्ध हुआ। हनुमान दुर्बलांगी सीता से परिचय प्राप्त करने के लिये राम द्वारा प्रदत्त आंगुलीयक का प्रयोग करते हैं। परिचय होने पर राम के पास चलने का प्रस्ताव करते हैं, किन्तु सीताजी ऐसा करना राम की प्रतिष्ठा के विरुद्ध बतलाकर जाने का प्रस्ताव ठुकरा देती हैं। प्राकृत के कवियों ने उक्त प्रस्ताव का कोई उल्लेख नहीं किया। इसी प्रकार स्वयंभू ने लिखा है कि सीता ने राम को देने के लिए चूड़ामणि उतारकर दिया और सन्देश में कहा कि मैं राम बिना अत्यन्त क्षीण हूँ और लक्ष्मण से कहना कि मुझे तुम्हारे बाहुबल का सहारा है, तुम्हारी भुजाओं द्वारा ही रावण का वध होगा (पउमचरिउ ५०, १३)। प्राकृत के कवियों ने न तो चूड़ामणि का उल्लेख किया और न इतना प्रभावशाली सन्देश ही दिलाया। पुष्पदन्त ने हनुमत संवाद का उल्लेख सुन्दर ढंग से किया है। प्रथम तो हनुमान सीता को रामदूत होने का

---

१. सीतामादाय रामेष्टां पावकेन्तरधीयत। (कूर्म०, उत्तर वि०, अ० ३४)

विश्वास दिलाते है और सन्देश देते है, तत्पश्चात् सीता का सन्देश लेकर राम को सुनाते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि प्राकृत के कवियों ने हनुमत्संवाद में केवल सीता को सान्त्वना दिलाई है। इसकी तुलना मे अपभ्रंश के कवियो ने सीता की दुर्बलता, क्लेश, सहिष्णुता, अभिज्ञान कौशल, लक्ष्मणममत्व आदि पर विशेष ध्यान दिया है। प्राकृत के पउमचरियं (५३, १२) के अनुसार सीताजी ने हनुमान को अपना उत्तरीयवस्त्र अभिज्ञान के रूप में प्रत्यर्पित किया था, जबकि अपभ्रंश मे चूड़ामणि देने का उल्लेख पाया जाता है। सम्भवतः आभूषण के बदले आभूषण इस बात का ध्यान रखकर ही अपभ्रंश के कवियों ने अंगूठी तो श्रीराम द्वारा प्रेषित करने का उल्लेख किया और समकक्षता में चूड़ामणि सीताजी द्वारा प्रेषित कराया। इस तुलना के आधार पर प्राकृत की सीता की अपेक्षा अपभ्रंश की सीता अधिक बुद्धिमती, आदर्शवादिनी, लज्जाशील एवं मृदु स्वभाववाली प्रतीत होती है।

(च) **अग्नि परीक्षा :** विमलसूरि ने पउमचरियं (पर्व ७६) में सीता-राम के मिलन के समय सीता की पवित्रता की साक्ष्य देवों द्वारा कराई है। उस समय अग्नि-परीक्षा का प्रश्न नही उठाया, किन्तु लवकुश युद्ध के पश्चात् अयोध्या लौटने पर राम सीता की अग्नि-परीक्षा लेते है। तीन सौ हाथ गहरे अग्निकुण्ड में अति तीव्र अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है और सीता अपने सतीत्व की शपथ लेकर कुण्ड में कूद पड़ती है। कुण्ड की अग्नि स्वच्छ जल के रूप मे परिणित हो जाती है और जल सीमा तोड़कर फैलने लगता है। अन्त में जनता की प्रार्थना पर सीताजी स्पर्श मात्र से उसे सीमित कर देती हैं। थोड़ी देर में उसी बावड़ी में सहस्रदल कमल पर आरूढ़ सीता के दर्शन होते है। राम सीता के समीप जाकर क्षमा-याचना करते है और सीता से अयोध्या में रहने का प्रस्ताव करते है, पर सीताजी इस प्रस्ताव को ठुकराकर जैन-दीक्षा लेने के लिये वहाँ से प्रस्थान करती है (पर्व १०१, १०२)।

आगे चलकर गुणभद्राचार्य ने अग्नि-परीक्षा का कोई उल्लेख नही किया। इनके अनुसार राम विना किसी परीक्षा के सीता को स्वीकार कर लेते हैं। सम्भवतः गुणभद्र के समय तक जैन धर्म में सीता के प्रति आदर की मात्रा का ह्रास होने लगा था, अन्यथा पूर्व-स्वीकृत अग्नि-परीक्षा का वृत्तान्त इन्होने क्यो उपेक्षित माना ?

अपभ्रंश के कवियो में स्वयंभू तथा पुष्पदन्त ने इस वृत्तान्त की उपेक्षा की है, किन्तु कविवर रइधू ने बलहद्द चरिउ (नवम् सन्धि) में सीता की अग्नि-परीक्षा का बड़ा ही आकर्षक चित्रण प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार हम देखते है कि सीता की अग्नि-परीक्षा के वृत्तान्त का उल्लेख तो प्राकृत तथा अपभ्रंश दोनों कवियों ने किया है और दोनों ने सीता के गौरव

और सतीत्व में अभिवृद्धि की है, किन्तु दोनों में मौलिक अन्तर यह है कि अग्निपरीक्षा के पश्चात् प्राकृत की सीता जैन दीक्षा लेकर अन्ततः स्वर्ग जाती हैं, जबकि अपभ्रंश की सीता अग्नि परीक्षा के पश्चात् अपने सतीत्व की प्रतिष्ठाकर अपने प्राण त्याग देती है। इस प्रकार प्राकृत की सीता में अन्ततः जैन धर्म का प्रभाव दिखलाया गया है, जबकि अपभ्रंश की सीता जैन प्रभाव से मुक्त हैं।

(छ) **द्वितीय वनवास :** भारतीय वाङ्मय के अन्तर्गत प्राकृत भाषा के पउमचरियं में विमलसूरि ने सीताजी के द्वितीय वनवास का उल्लेख इस प्रकार किया है (पर्व ९२, ९४) :

जिस समय राम गर्भवती सीता को जैन चैत्यालय का प्रदर्शन करा रहे थे, उसी समय सीता के लोकापवाद को बताने के लिए जनता आती है। राम यह सुनकर लक्ष्मण से परामर्श करते हैं, किन्तु लक्ष्मण सीता के परित्याग का परामर्श नहीं देते। इतने पर भी राम अपने सेनापति कृतान्तवदन को आदेश देते हैं कि जिन मन्दिर दिखलाने के व्याज से तुम सीता को गंगा के परवर्ती भयावह वन में छोड़ आओ। सेनापति के ऐसा करने पर संयोगवश राजा वज्रजंघ उपस्थित होता है और वह सीता जी के विलाप को सुनकर उन्हें अपनी राजधानी पुंडरीकपुर ले आता है, वहीं पर सीता के दो पुत्रों का जन्म होता है।

गुणभद्रकृत उत्तरपुराण में सीता-त्याग के उक्त कथानक का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसके अनुसार जब सीता लंका से प्रत्यावर्तित होती हैं तब उनके क्रमशः आठ पुत्र होते हैं।

पउमचरियं (पर्व १०३) में यह उल्लेख किया गया है कि सीता ने अपने पूर्वजन्म में सुदर्शन मुनि की निन्दा की थी, अतः इस जन्म में उन्हें लोकापवाद सहन करना पड़ा।

अपभ्रंश के कवि स्वयम्भू एवं पुष्पदन्त ने इस कथानक की उपेक्षा की है, किन्तु कविवर रइधू ने सीता-त्याग का उल्लेख किया है, परम्परा जैनमतानुसार ही प्रतीत होती है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सीता का द्वितीय वनवास अथवा त्याग का उल्लेख प्राकृत के कविवर विमलसूरि ने किया है। इसके अनुसार सीता कलंकित तो नहीं हैं, किन्तु लोकापवाद की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लगभग इन्हीं का अनुकरण अपभ्रंश कवि रइधू ने किया है। उक्त दोनों भाषाओं के कवियों ने रजकवृत्तान्त का उल्लेख नहीं किया।

(ज) **लवकुशोत्पत्ति :** प्राकृत कवि विमलसूरि के अनुसार राम के सेनापति कृतान्तवदन द्वारा वन में परित्यक्ता सीता को पुंडरीकपुर का राजा वज्रजंघ अपने

महलों में ले आता है, यहीं सीता के दो पुत्र उत्पन्न होते हैं (१) लवण, (२) अंकुश (कुश)। गुणभद्र कृत उत्तरपुराण में सीता के आठ पुत्रों का उल्लेख पाया जाता है, किन्तु सीतात्याग का कथानक उसमें नही है।

इसी प्रकार अपभ्रंश के रइघू कवि ने भी (वलहद चरिउ, सर्ग ८) में सीता के दो पुत्रों का उल्लेख किया है, प्रथम लवण तथा द्वितीय अकुश नाम से विख्यात था। इस का निष्कर्ष यह है कि प्राकृत तथा अपभ्रंश दोनों भाषाओं के कवियों ने लव-कुश जन्म का उल्लेख किया है, किन्तु प्राकृत कवि विमलसूरि का अनुकरण अपभ्रंश के रइघू कवि ने भी किया है। उसने लव-कुश के पूर्वस्वीकृत नामों को ही मान्यता दी है।

(झ) लव-कुश युद्ध : पउमचरियं के अनुसार लवण तथा अंकुश नामक दो सीता-पुत्र जव राजा वज्रजंघ की शरण में रहकर वयस्क होते हैं और विवाहित होकर दिग्विजय करते हैं, तभी नारदजी उनसे उनकी माता के परित्याग का वृत्तान्त वतला देते हैं, फलतः दोनों भाई अयोध्या पर आक्रमण कर देते हैं। युद्ध के मध्य ही सिद्धार्थ तथा नारदजी दोनों पुत्रों के जन्म पर प्रकाश डालते हैं, फलतः राम दोनों पुत्रों को अपना लेते है।

गुणभद्राचार्य ने इस वृत्तान्त का कोई उल्लेख नहीं किया, किन्तु अपभ्रंश के कवि रइघू ने लगभग इसी प्रकार का चित्रण किया है (पउमचरिउ, सन्धि ८)।

(ञ) सीता निर्वाण : पउमचरिउ में विमलसूरि ने उल्लेख किया है कि जव लव-कुश युद्ध के पश्चात् युद्ध विराम होता है, उस समय हनुमान इत्यादि की प्रार्थना पर रामचन्द्रजी सीता को अपने पास बुलाते है, किन्तु उनके सतीत्व की परीक्षा के लिए अग्निप्रज्ज्वलित कराते हैं। परीक्षा पश्चात् सीता पूर्ण सती सिद्ध होती है और राम के कहने पर भी वहाँ न रुककर अपने हाथों से सिर के केश काट डाले और जैन दीक्षा लेकर (सर्वगुप्तमुनि) अन्ततः स्वर्गगामिनी हुई। वहाँ उन्हें इन्द्र की पदवी प्राप्त है (पर्व ११०, ११८)। इसी कथा के आधार पर अपभ्रंश कवि रइघू ने भी सीताजी के स्वर्गारोहण का उल्लेख (वलहद चरिउ, ९ सन्धि) किया है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राकृत तथा अपभ्रंश की सीता अग्निपरीक्षा में सफल होकर पूर्णतया निष्कलंक प्रमाणित होती हैं, किन्तु वेदना की पराकाष्ठा होने पर वे जैनमत में दीक्षा लेकर शेष जीवन तपोनिष्ठा में व्यतीतकर स्वर्गगामिनी होती है।

उपर्युक्त समस्त शीर्पको के आधार पर यह सिद्ध होता है कि प्राकृत साहित्य तथा अपभ्रंश साहित्य दोनों में सीता को एक आदर्श मानवी के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इनके अनुसार राम की आज्ञा से सेनापति कृतान्तवदन सीता को निर्मानुप अरण्य में छोड़ आता है न कि लक्ष्मण। इसके अतिरिक्त विलपती सीता को शरण

देता है पुन्डरीकपुराधीश वज्रजंघ न कि महर्षि वाल्मीकि। दोनों साहित्यों के अनुसार सीता की अग्निपरीक्षा होती है और उनका आदर्श सतीत्व प्रमाणित हो जाता है। जैनधर्म के प्रभाव के कारण उक्त भाषा के कवियों ने सीताजी को जैनमत की दीक्षा दिलाई है और तपश्चर्या में ही उनकी मृत्यु होने का उल्लेख किया है।

प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य में सीता के जीवनसूत्र

१. सीता प्रथम तो जनक की औरसी पुत्री और तत्पश्चात् मन्दोदरी की पुत्री के रूप में मान्य हुई।

२. उनका विवाह राम के साथ निश्चितप्राय था, तदनन्तर धनुर्भंग पर आधारित माना गया।

३. सीता वनयात्रा में धैर्यशालिनी, गम्भीर, सहिष्णु एवं शान्त सिद्ध होती हैं।

४. उनके हरण का प्रधान कारण सौन्दर्य था। सीता ने लक्ष्मण को कटु वचन नहीं कहे।

५. लंका में सीता हनुमान से मौखिक परिचय प्राप्त करती हैं, आंगुलीयक वृत्तान्त पश्चाद्वर्ती है। वे अपना उत्तरीय हनुमान को प्रत्यभिज्ञान के रूप में देती है। चूड़ामणि की कथा प्राकृत में नहीं है।

६. सीता अग्निपरीक्षा के पश्चात् सती सिद्ध होती हैं और जैनमत की दीक्षा लेती हैं।

७. सीताजी के दो पुत्र थे, प्रथम लवण तथा द्वितीय अंकुश।

८. तपश्चर्या में सीता की मृत्यु हुई और वे स्वर्ग जाकर इन्द्र रूप प्राप्त कर सकी।

(घ) संस्कृत साहित्य में वर्णित सीतातत्व के साथ परवर्ती सीता साहित्य की तुलना

विशाल संस्कृत साहित्य में सीता के स्वरूप पर प्रथम अध्याय के अन्तर्गत विशद विवेचन प्रस्तुत किया जा चुका है। यहाँ पर सीतातत्व पर विचार कर लेना परमावश्यक है, क्योंकि सीता और सीतातत्व में पर्याप्त अन्तर है।

सामान्यतया उपासना के क्षेत्र में ही सीतातत्व, गौरीतत्व प्रभृति शब्दों का व्यवहार होता है। तत्व शब्द वास्तविकता, सारांश, मूलरूप आदि में व्यवहृत होता है। इसमें घनीभूतता एव शाश्वतसत्ता का भाव तिरोहित रहता है, इसी हेतु यह तत्व शब्द जिस शब्द के साथ सम्बद्ध हो जाता है, उसके गौरव मे अनायास वृद्धि कर देता है। इस प्रकार जब हम सीतातत्व पद का प्रयोग करते हैं, तब हमारा तात्पर्य उस सीता से होता है, जो शाश्वत सत्ता के रूप में मान्यता प्राप्त है।

उक्त दृष्टि से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि रामायण तथा महाभारत में सीता के मानवी रूप की ही प्रतिष्ठा की गई है। रामायण के केवल एक स्थान में ही उन्हें लक्ष्मी की संज्ञा दी गई है, जबकि रावणवध के पश्चात् देवगण राम की स्तुति करते है। शेष समस्त रामायण में सीता मानवी ही हैं। उपासना का इतिहास अवलोकन करने से यह प्रतीत होता है कि कविवर कालिदास के समय (ई० पू० १ शतक) तक सीता की शक्ति के रूप में उपासना होने लगी थी। जनकतनया स्नान पुण्योदकेषु—यह अंश (मेघ० १) इस बात में प्रमाण माना जाता है। यही परम्परा विकसित होती हुई ११वी शताब्दी में स्वामी रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय में दृढ़तम हो गई। रामतापनीय उपनिषद् सर्वप्रथम ग्रन्थ है, जिसमें सीता तथा मूल प्रकृति को अभिन्न माना गया है।[1] डॉ० वेवर के अनुसार इस ग्रन्थ का रचनाकाल ११वी शताब्दी है। आगे चलकर स्वामी रामानन्द (१४वी शतक) के कारण उपासना के क्षेत्र में सीता को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। वैष्णवमताब्जभास्कर तथा रामार्चन पद्धति से इस बात का परिपुष्ट प्रमाण मिलता है।

संस्कृत की अध्यात्मरामायण रामानन्द सम्प्रदाय में विशेष समादृत है। इस में भी सीता के मूलप्रकृति रूप की व्यापक प्रतिष्ठा की गई है।[2] इस ग्रन्थ का रचनाकाल तो विवादास्पद है, किन्तु डॉ० बुल्के ने इसका रचनाकाल १५वी शतक आकूत किया है।[3] अध्यात्मरामायण ही इस समय सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें राम-सीता का विस्तृत कथानक प्रस्तुत किया गया है, साथ ही सीतातत्व की परिपूर्ण प्रतिष्ठा की गयी है। इस प्रकार सीता को तत्वरूप में निरूपण करने वाले ग्रन्थ अध्यात्मरामायण को हम सीतातत्वपरक प्रमुख ग्रन्थ मानकर उससे परवर्ती हिन्दी साहित्य की सीता का विशेष परिचायक रामचरितमानस को मानते हैं और यहाँ उक्त दोनों ग्रन्थों की सीता का तात्विक विश्लेपण प्रस्तुत करेगे।

अध्यात्मरामायण में सीता मूलप्रकृति तथा उत्पत्ति, स्थिति एवं सहार करने की शक्ति रखने वाली मानी गई है। वे ही परमात्मा की सन्निधि से विश्व की रचना करती हैं।[4] रामचरितमानस की सीता भी अलौकिक शक्तिसम्पन्न हैं। वे भी जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करने वाली हैं। इसके अतिरिक्त वे क्लेशहारिणी तथा

---

१. प्रकृत्या सहितः श्यामः पीतवासा जटाधरः।
द्विभुजः कुंडली रत्नमाली धीरो धनुर्धरः॥ रामपूर्वतापिन्युपनिषद्, ७

२. मां विद्धि मूलप्रकृतिं०॥ अध्यात्म०, वाल० १।३४

३. डॉ० बुल्के, रामकथा, पृ० १५७ (१९६२ ई०)

४. मां विद्धि मूल प्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥ (अध्यात्म०, १।१।३४)

सर्वश्रेयस्करी भी हैं ।[1] अध्यात्मरामायण में श्री भगवान् अवतारोपक्रम में देवों से यह बतलाते हैं कि मेरी योगमाया सीता जनक के गृह में उत्पन्न होगी, उसके साथ मैं तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करूँगा ।

योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा ।
उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥ (अध्यात्म० बाल० २।२८)

रामचरितमानस में विष्णु भगवान सीता के परमशक्ति के रूप में अवतार लेने की भविष्यवाणी करते हैं ।[2] अध्यात्म० में जिस समय विश्वामित्र जी अपनी यज्ञ रक्षा के निमित्त राम लक्ष्मण को लेने आते हैं और दशरथ असमंजस में पड़ जाते हैं, उस समय वशिष्ठजी रामादि की अलौकिकता का प्रतिपादन करते हुए सीता के विषय में कहते हैं (योगमाया भी जनकपुत्री के रूप में उत्पन्न हुई हैं और विश्वामित्र राम से उनका संयोग कराने के लिये ही आये हैं) ।

योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ।
विश्वामित्रोऽपि रामाय तां योजयितुमागतः (अध्यात्म०, बाल० ५।१८, १९)

इस प्रसंग में तुलसी ने मानस में सीता के विषय में स्पष्ट तो नहीं कहा, किन्तु 'इन कहँ अति कल्यान' (बाल०, २०७) कहकर रामविवाह का संकेत अवश्य किया है ।

अध्यात्म० में जिस समय जनकजी कन्यादान करके सीता को राम के कर-कमलों में समर्पित करते हैं, वहाँ भी उपमा द्वारा कवि ने राम को विष्णु एवं सीता को लक्ष्मी के रूप में कल्पित किया है ।

इति प्रीतेन मनसा सीतां रामकरेऽर्पयन् ।
मुमोद जनको लक्ष्मीं क्षीराब्धिरिवविष्णवे ॥ (अध्यात्म०, बाल० ६।५४,५५)

इस प्रसंग में तुलसी ने भी उपमा के माध्यम से सीता को श्री के रूप में मान्यता प्रदान की है । यथा :

हिमवन्त जिमि गिरजा महेसहिं, हरिहिं श्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहिं सिय समरपी, विश्व कलकीरत नई ॥
(मानस०, बाल० ३२४ । छन्द ४)

इतना ही नहीं, तुलसी ने तो एक मण्डप में स्थित चारो बन्धुओं एवं चारो वन्धुओं में

---

१. उद्भव स्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥
(रामचरितमानस, बाल०, मंगलाचरण ५)

२. नारद वचन सत्य सब करिहौं । परम सक्ति समेत अवतरिहौं ।
(राम० मानस०, बाल० १८७।६)

भी तात्विक समावेश किया है ।[1] इस प्रसंग में राम ब्रह्म है और सीता तुरीयावस्था के रूप में उत्प्रेक्षित हैं । तुरीयावस्था योगियों की होती है, अतः सीता के योगमाया रूप की पुष्टि भी सरलता से हो जाती है ।

अध्यात्म० में जनकजी को नारद से यह ज्ञात होता है कि उनकी पुत्री योग-माया है और परमेश्वर दशरथ पुत्र राम के रूप में प्रकट हुए हैं । उन्ही के आदेश से जनक सीता का विवाह राम के साथ करने का यत्न करते है ।

योगमायापि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि ।
अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ।। (अध्यात्म० बाल० ६ । ६५)

मानस में स्पष्ट रूप से ऐसा उल्लेख तो नहीं मिलता, किन्तु जनक के वचनों से राम-लक्ष्मण की अलौकिकता भासित होती है[2] और पुष्पवाटिका के प्रसंग मे सीताजी द्वारा नारद के वचनों के स्मरण करने के संकेत से सीता-राम दोनो की अलौकिकता का संकेत मिलता है :

सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित विलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत ।। (मानस०, बाल० २२६)

राजाओं के संवाद में मानस मे सीता को जगदम्बा के रूप मे कवि ने मान्यता दिलाई है । उनके रूपचित्रण में भी कवि ने सीता के जगदम्बिका रूप का सतर्कता से पालन किया है ।

सिय सोभा नहिं जाय बखानी । जगदम्बिका रूप गुन खानी ।। (बाल० २४७।१)

परशुराम संवाद के प्रसंग में अध्यात्म में स्वयं परशुराम ही बतलाते है कि एक बार बाल्यकाल में मैं चक्रतीर्थ में विष्णु की आराधना के लिए तप करता था । उस समय भगवान् विष्णु ने मुझसे बतलाया था कि मै त्रेतायुग के प्रारम्भ में अपनी पराशक्ति सहित अवतार लूंगा, तब तुम मुझे दाशरथी के रूप में देखोगे ।[3] इससे भी सीता की पराशक्ति के रूप में पुष्टि होती है । मानस में कवि ने इस प्रसंग में उक्त कथानक नही प्रस्तुत किया, किन्तु राम-विवाहोत्सव के लिए सुसज्जित जनकपुरी की छवि की प्रशंसा करते समय सीता को लक्ष्मी के रूप में स्मृत किया गया है । यथा:

---

१. सब सुन्दरी सुन्दर बरन सह एक मण्डप राजही ।
जनु जीव अरु चारिहु अवस्थाविभुनसहित विराजही ।।
(मानस, बाल० ३२५, छन्द ४)

२. इन्हहिं विलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा ।।
(बाल० २१६ । ५)

३. त्रेतामुखे दाशरथिर्भूत्वा रामोऽहमव्ययः ।
उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसिमांततः ।। (अध्यात्म०, बाल० ७।२६,२७)

वसइ नगर तेहि लच्छ करि, कपट नारि वर वेपु ।
तेहि पुर कै शोभा कहत, सकुचहिं सारद शेषु ।। (वाल०२८९ दो०)

अध्यात्म में तो सीताजी ने अपना कुछ चमत्कार नहीं दिखलाया, किन्तु मानस में तो उन्होंने वारांत की सेवा-सुश्रूषा के लिए सिद्धियों को भी आमन्त्रित किया है।[1] इस प्रकार अध्यात्म की मान्यता से भी बढ़कर तुलसी ने सीताजी को अलौकिक शक्ति-सम्पन्न साक्षात् लक्ष्मी के रूप में प्रस्तुत किया है। विवाह के पश्चात् अध्यात्म० में भी कवि ने राम को विष्णु एवं सीता को श्री की उपमा देकर उनकी अलौकिकता सिद्ध की है :

माता पितृभ्यां संहृष्टो रामः सीता समन्वितः ।
रेमे वैकुण्ठ भवने श्रिया सह यथा हरिः ।। (अध्या०, वाल० ७।५३)

अध्यात्म० अयोध्याकाण्ड के प्रारम्भ में ही नारदजी राम के पास आकर उनसे निवेदन करते हैं कि आप पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। आप विष्णु हैं और जानकी लक्ष्मी हैं। यदि आप शिव हैं तो जानकी पार्वती हैं, यदि आप ब्रह्मा हैं, तो जानकी सरस्वती हैं। यथा :

त्वं विष्णु र्जानकी लक्ष्मीः शिवस्त्वं जानकी शिवा ।
ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ।।
भवान् शशांकः सीता तु रोहिणी शुभ लक्षणा ।
शक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहानलो भवान् ।।
यमस्त्वं कालरूपश्च सीता संयामिनी प्रभो ।
निर्ऋतिस्त्वं जगन्नाथ तामसीजानकीशुभा ।। (अध्यात्म०, अयो० १।१३।१५)

आगे चलकर तो यहाँ तक विस्तार दिया गया है कि लोक में स्त्रीवाचक जो कुछ भी है वह जानकी रूप है और जो भी पुरुषवाचक है वह सब राघव रूप है।[1] तुलसी ने भी इतनी व्यापकता स्वीकार की है।

सीय राम मय सब जग जानी । करौं प्रणाम जोरि जुग पानी ।। (मानस०, वाल०)

अध्यात्म० में राज्याभिषेक के प्रसंग में भी कवि ने वशिष्ठजी द्वारा इस बात का प्रकाशन कराया है कि राम देवकार्यार्थ लक्ष्मी सहित उत्पन्न हुए हैं :

जानामि त्वां परात्मानं लक्ष्म्या संजातमीश्वरम् ।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं भक्तानां भक्ति सिद्धये ।। (अध्यात्म० ।२।२३, २४)

---

१. जानी सिय बरात पुर आई । कछु निज महिमा प्रकट जनाई ।।
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई । भूप पहुनई करन पठाई ।।
(वाल०, ३०६।७,८)

मानस में कवि ने इस प्रसंग में वशिष्ठ द्वारा ऐसा गुह्योद्घाटन नही कराया। अध्यात्म० में जिस समय राम वन के लिए प्रस्थान करते हैं और प्रजा वर्ग में क्रान्ति की संभावना प्रतीत होती है, उस समय वामदेव मुनि रहस्योद्घाटन करते हुए कहते हैं :

एष रामः परो विष्णुर्देवोनारायणः स्मृतः ।

एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता ॥ (अध्यात्म०, अयो० ५।११)

तुलसी ने वनप्रसंग में उक्त वृत्तान्त नही प्रस्तुत किया और न तो किसी अन्य विधि से कोई संकेत किया। अध्यात्म० में राम के वन में पहुँचने पर मुनिगण उनका स्वागत करते है और स्तुति करते हुए कहते हैं कि हम जानते हैं कि आप ब्रह्मा से प्रार्थित होकर भूभारहरणार्थ उत्पन्न हुए हैं; आप विष्णु हैं, सीता लक्ष्मी और लक्ष्मण शेष हैं।

भूमेर्भारावताराय जातोऽसि ब्रह्मणार्थितः ।

जानामस्त्वां हरिं लक्ष्मीं जानकीं लक्ष्मणंतथा ॥ (अध्यात्म०, अर० २।१५)

मानस में भी मुनिगण सीताराम की अलौकिकता स्वीकार करते हैं। अगस्त्य ऋषि के शिष्य सुतीक्ष्ण तो उनकी स्तुति करते हुए यह प्रार्थना करते है कि आप धनुष तथा श्री सहित मेरे हृदय में वास करें।

तदपि अनुज श्री सहित खरारी। वसतु मनसि मम काननचारी ॥

(अरण्य० ११)

यहाँ पर तुलसी ने सीता को ही श्री पद से वाच्य माना है। इसी प्रकार अगस्त्य ऋषि भी राम से वर माँगते हुए कहते है :

यह वर माँगऊँ कृपानिकेता। वसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥ (अरण्य० १३।१०)

अध्यात्म० में सीताहरण के पूर्व श्रीराम वास्तविक सीता को अग्नि में प्रविष्ट करा देते हैं और छायासीता ही अपहृत होती है। मानस में भी सीता के इस रहस्य का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार उभयत्र सीता आदिशक्ति हैं, उन्हें अपने अपहरण का रहस्य पूर्वज्ञात है, वे केवल मानवी लीला करती हैं।

आध्यात्म० में वालि भी अपनी मृत्यु के पूर्व राम से कहता है कि मैं आपको जानता हूँ कि आप आदिपुरुष हैं और जानकी श्री हैं। आप ब्रह्मा से प्रार्थित होकर रावण के वध के लिए उत्पन्न हुए है :

देव जानामि पुरुषं त्वां श्रियं जानकीं शुभाम् ।

रावणस्य वधार्थाय जातं त्वां ब्रह्मार्थितम् ॥ (अध्यात्म०, किष्कि० २।६८)

मानस में वालि राम को तो अलौकिक मानता है किन्तु सीता के विषय में वह कुछ नहीं कहता। इसी प्रकार सम्पातिमिलन के पूर्व हनुमान् मरणोद्यत अंगद को समझाते हुए कहते हैं :

रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः ।

सीता भगवती माया जन सम्मोहकारिणी ॥ (अध्या०, किष्कि० ७।१६, १७)

यहाँ पर सीता को जगसम्मोहकारिणी माया के रूप में चित्रित कर कवि ने उनकी अलौकिकता की पुष्टि की है। मानस में इस प्रसंग में जामवन्त अंगद को राम की अलौकिकता तो बतलाते हैं, किन्तु सीता के विषय में कुछ नहीं कहते। अध्यात्म० में लंकिनी भी हनुमान से यह रहस्य बतलाती है कि त्रेतायुग में नारायण स्वयं राम के रूप में जन्म लेंगे और योगमाया सीता के रूप में जनक के गृह में जन्म लेंगी, यह बात ब्रह्मा ने स्वयं मुझसे कही थी।[1] मानस के इस प्रसंग में लंकिनी भी राम के अतिरिक्त सीता की अलौकिकता पर कुछ प्रकाश नहीं डालती। अध्यात्म० में कुम्भकर्ण भी रावण को समझाता हुआ सीता को लक्ष्मी का स्वरूप कहता है:

सीता भगवती लक्ष्मी रामपत्नी यशस्विनी ।

राक्षसानां विनाशाय त्वयानीता सुमध्यमा ॥ (अध्यात्म०, युद्ध० २।१६)

मानस में कुम्भकर्ण सीता को जगदम्बा कहकर रावण को फटकारता हुआ कहता है:

जगदम्बा हरि आनि सठ, अब चाहत कल्यान। (युद्ध० ६२)

अध्यात्म में विभीषण भी तिरस्कृत होकर चलते समय रावण से बतलाता है कि दशरथ के गृह में काल ही राम के रूप में जन्मा है और सीता नाम से काली जनकनन्दिनी के रूप में जन्मी हैं:

कालो राघवरूपेण जातो दशरथालये ।

काली सीताभिधानेन जाता जनकनन्दिनी ॥ (अध्यात्म०, युद्ध० २।३४, ३५)

मानस में सीता को काली की संज्ञा तो नहीं दी गई किन्तु राम को काल अवश्य कहा गया है।[2] इस प्रकार सीता का काली होना आपाततः सिद्ध हो जाता है। अध्यात्म में सीता को चिच्छक्ति, जगदात्यिका तथा जगन्माता के रूप में रावण का मन्त्री शुक भी मानता है।[3] मानस में शुक की इस मान्यता का उल्लेख नहीं मिलता।

---

१. त्रेता युगे दाशरथी रामो नारायणोऽव्ययः ।
जनिष्यते योगमाया सीता जनकवेश्मनि ॥
(अध्यात्म०, सुन्दर० १।४८, ४९)

२. लव निमेषु परमानु जुग, बर्ष कल्प सर चन्ड ।
भजसि न मन तेहि राम कहं, काल जासु कोदन्ड ॥
(मानस०, लंका० १ दो०)

३. अध्यात्म०, युद्ध०४।४. ४२ ॥

अध्यात्म में रावण यह भी जानता है कि राम विष्णु हैं और सीता लक्ष्मी हैं। वह यह सब जानता हुआ भी सीताजी का अपहरण इस उद्देश्य से करता है, जिससे राम के हाथों मरने पर परम पद प्राप्त हो सके :

जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम् ।

ज्ञात्वैव जानकी सीता मयानीता वनाद् बलात् ॥ (अध्या०, युद्ध० १०।५७)

मानस में भी रावण मारीच से मिलने के पूर्व राम को भगवन्त मानकर ही उनसे वैर करने का निश्चय करता है। वह सीता को भी वन्दनीया मानता है :

मन महँ चरन वन्दि सुख माना ॥ (अरण्य०, २८।१६)

सीता की अग्निपरीक्षा का उल्लेख उभयत्र मिलता है, जिसमें सीताजी की अलौकिकता का सर्वोत्तम प्रमाण मिलता है। इन्द्रादि देव उपस्थित होकर उनकी पवित्रता की साक्ष्य देते हैं, स्वयं अग्निदेव ही उन्हें अपनी गोद में लेकर निकलते हैं :

स्वांके समावेश्य सदानपायिनीं श्रियं त्रिलोकी जननीं श्रियः पतिः ॥

(युद्ध०,१३।२३)

इस प्रकार यहाँ भी सीता जी त्रिलोकजननी एवं श्री के रूप में परम प्रतिष्ठित प्रतीत होती हैं। मानस में कवि ने सीता को इन्दिरा के रूप में देखा है। यथा :

जिनि छीरसागर इन्दिरा समर्पी आनि सो। (मानस०, लंका० १०६।२ छन्द)

अध्यात्म में लंका से लौटते समय राम भरद्वाज मुनि से मिलते हैं, वे भी उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि :

हे राम ! तुम सर्वलोकों से नमस्कृत जगत् के स्वामी हो। तुम विष्णु हो और जानकी लक्ष्मी तथा लक्ष्मण शेष हैं :

अतस्त्वं जगतामीशः सर्वलोकनमस्कृतः ।

त्वं विष्णुः जानकी लक्ष्मीः शेषोऽयं लक्ष्मणाभिधः ॥

(अध्यात्म०, युद्ध० १४।२३)

अध्यात्म में सीता क्रीड़ाविपिन में एकान्त में राम से कहती हैं कि नरलोक की लीला समाप्त हो रही है, देवगण हमें स्वर्ग चलने के लिए प्रेरित करते हैं, आपकी जैसी आज्ञा हो वैसा ही किया जाये।[1] यहाँ सीता का आध्यात्मिक रूप और स्पष्ट है। मानस में ऐसा उल्लेख नहीं किया गया।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में सीतातत्व का विशेष जयघोपकारक ग्रन्थ अध्यात्म रामायण ही माना जाता है। इसका परवर्ती हिन्दी साहित्य तो अत्यन्त विस्तृत है, किन्तु उसका प्रतिनिधित्व करने वाला ग्रन्थ तुलसीकृत रामचरितमानस

---

१. अध्यात्म०, उत्तर० ४।३५, ४० ॥

ही है। इसमें अध्यात्मरामायण के सीतातत्व का कितना व्यापक एवं गम्भीर प्रभाव पड़ा है, यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो चुका है। तुलसी के परवर्ती राम साहित्य में मधुरोपासना का प्राकट्य होने पर भी सीता की अलौकिकता पर कोई न्यूनता नहीं हुई। हाँ इतना अवश्य है कि भोग एवं ऐश्वर्य से विरत सीता को कवियों ने आध्यात्मिक रूप देने पर भी उन्हें योग एवं ऐश्वर्य से विरत कर दिया है। उनके जीवन के कटु अंशों की अवहेलना कर इन रसिक कवियों ने युगलोपासना में भी सीता को ही प्रधानता दी है। कुछ भी सही इन मधुरोपासकों ने भी सीता को तत्व के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठा दी है। इस बात को मानने में कोई किसी प्रकार की आपत्ति न होनी चाहिए।

■ ■

अध्याय ३

हिन्दी साहित्य में सीता का स्वरूप

भारतीय वाङ्मय में श्रीसीता का अस्तित्व महर्षि वाल्मीकि की अमर रचना वाल्मीकिरामायण से लेकर अधुनापर्यन्त विविध भाषा साहित्य में प्राप्त होता है। संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के अनेक ग्रन्थों में विकासमान सीता का कथानक हिन्दी साहित्य में आकर विशेष लोकप्रिय हो सका है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की विश्वविख्यात कृति रामचरितमानस के द्वारा सीता के जिस महनीय चरित्र की प्रतिष्ठा हुई है, वह प्रतिष्ठा विश्वसाहित्य के किसी भी ग्रन्थ द्वारा नही हो सकी।

यहाँ हिन्दी साहित्य की परिधि में सीतास्वरूप की एक सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत कर देना अधिक समीचीन होगा। अस्तु हिन्दी में सीताविषयक सामग्री का क्रमिक रूप इस प्रकार है।

हिन्दी साहित्य का व्यापक विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि तुलसीदास जी से पूर्व भी राम-सीता से सम्बद्ध रचनायें की गई थी, भले ही उनका उतना महत्व न हो, किन्तु उनके ऐतिहासिक महत्व के होने में तो कोई सन्देह नही किया जा सकता। सर्वप्रथम हिन्दी महाकाव्य रासो के प्रणेता कविवर चन्दवरदायी के 'पृथ्वीराज रासो' के अन्तर्गत द्वितीय प्रस्ताव में दशावतार वर्णन के प्रसंग में राम विषयक छन्दो (२६४ से ३०१) की संख्या ३८ तक प्राप्त होती है, किन्तु नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के संस्करण में इनकी संख्या १०० तक प्राप्त होती है, जो आज अमान्य प्रतीत होती है। इस ग्रन्थ के उक्त छन्दों में मुख्यतया १३ छन्द ही ऐसे है, जिनमे संक्षिप्त रामकथा प्राप्त होती है, किन्तु उनमें सीताजी के जीवन चरित्र के कोई ऐसे उल्लेखनीय सूत्रों का उल्लेख नहीं मिलता।

वस्तुतः हिन्दी साहित्य में सीताराम की युगपत्प्रतिष्ठा स्वामी रामानन्दाचार्य (१४वी शतक) के समय से हुई है। इनके पूर्व प्रचलित रामानुजाचार्य के श्री सम्प्रदाय में लक्ष्मीनारायण की उपासना होती थी। आचार्य रामानुज ने नारायण और राम की एकता स्वीकार की थी, किन्तु लक्ष्मी के स्थान पर सीता को प्रतिष्ठित करने का मुख्य श्रेय तो स्वामी रामानन्दजी को ही प्राप्त है। इस प्रकार स्वामी रामानन्दजी ही

रामभक्ति के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। इनके संस्कृत ग्रन्थ वैष्णवमताब्जभास्कर तथा श्री रामार्चन पद्धति प्रमाणित माने जाते हैं। इनकी हिन्दी रचनाओं के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। सम्वत् २०१२ में नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से स्वामी रामानन्द विरचित १३ ग्रन्थों की जो सूची प्रकाशित हुई थी, उस सूची में से केवल छः पद ही स्वामी रामानन्द विरचित माने गए हैं, शेष रचनायें पूर्णतः अप्रामाणिक सिद्ध कर दी गई है[1]। अस्तु, रामानन्द की हिन्दी रचनाओं से सीता के विषय में प्रामाणिक तथ्यों का अन्वेषण कर पाना सम्भव नहीं है।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६६, अंक २, ४ पृ० १८८ के आधार पर भक्त विष्णुदास का नाम भी प्रचार पाने लगा है। इसी पत्रिका की १९४१, ४३ की खोज रिपोर्ट में भाषा वाल्मीकि रामायण के प्रणेता के रूप में विष्णुदास जी का नाम प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में ६२४१ अनुष्टुप छन्द होने का उल्लेख मिलता है (१४९२ वि०)। इस ग्रन्थ में वालकाण्ड, हनूकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड ये तीन काण्ड हैं, जिनमें क्रमशः ४५, ४६ अध्याय है, अन्तिम काण्ड अपूर्ण है। यह ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा गया है। इसमें सीता विषयक साधारण सामग्री इस प्रकार प्राप्त है।

(क) ग्रन्थ के वालकाण्ड के षष्ठ सर्ग में कवि ने सीता स्वयंवर का उल्लेख विस्तृत रूप में किया है। इसके अनुसार सीता जी राम की शक्ति एवं सौन्दर्य से विशेष प्रभावित प्रतीत होती है। इसी काण्ड के अन्तर्गत सीता जी राम के साथ वन-गमन करती हैं। इसमें अति संक्षिप्त रूप में सींता के आग्रह का उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार सीता जी पतिव्रता एवं कष्टसहिष्णु प्रतीत होती हैं।

(ख) हनूकाण्ड नामक द्वितीयकाण्ड में कवि ने अशोकवाटिका में सीता हनुमान सम्वाद के प्रसंग में सीता के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है। राम सीता के वियोग में न तो सोते है न भोजन करते हैं अहर्निश सीता की ही रट लगाये रहते हैं :

भोजन करै न सोवैं राती। अहनिस जननि तुम्हारी तांति ॥ (हनू० । १८६)

मुद्रिका प्राप्त होने पर सीता जी वार-बार राम का नाम पढ़ कर अश्रु वरसाती हैं, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है[2]। इससे ज्ञात होता है कि वे राम पर कितनी अनुरक्त थीं।

---

१. रामरक्षा, योगचिन्तामणि, ज्ञानतिलक, सिद्धान्तपटल, ज्ञानलीला, आत्मबोध, मानसीसेवा भगतिजोग ग्रन्थ, वेदान्तविचार, रामानन्द आदेश, राम अष्टक, राम मन्त्र जोगग्रन्थ, पद ॥ रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव (अध्याय ४) डॉ० वदरी नारायण श्रीवास्तव।

२. राम नाम तहि लिख्यो सुनार। सीता वांचै वारम्वार।
आँसू गल छाये ता नैंन। सूधी वात न आवे वैन॥ (भा० वा० रा०। हनू०। १९८ विष्णुदास)।

(ग) सीता जी हनुमान के बल एवं साहस की प्रशंसा करती हुई उन्हें धन्यवाद देती हैं और उनकी माता अंजना को ऐसे वीरपुत्र उत्पन्न करने के लिए धन्य समझती हैं[1]। इससे सीता जी की कृतज्ञता, दूरदर्शिता, शिष्टाचार एवं मनोवैज्ञानिक पहलू पर विशेष प्रकाश पड़ता है, क्योंकि किसी भी उपकारी व्यक्ति को प्रोत्साहन देने से उसकी प्रशंसा करने से उसका उत्साह बढ़ता है और वह भविष्य में भी उक्त कृतज्ञ के लिए सहायतार्थ प्रस्तुत रहता है।

(घ) इस ग्रन्थ की सीता प्रत्यभिज्ञान में केवल चूड़ामणि प्रदान करती हैं, अन्य वृत्तान्त नहीं[2]।

(ङ) इस ग्रन्थ की सीता राज्याभिषेक होने के पश्चात् राम से एक अलौकिक रत्नमाला प्राप्त करती हैं, जो विभीषण द्वारा राम को अर्पित की गयी थी। राम की ही आज्ञा से सीता अपने उपकारी हनुमान को वह माल्य अर्पित करती हैं :

सीता कंठ अमोलिकहार। कर जोरै बूझीयो भ्रतार ॥
आइस विहसि कहै तव राउ। वहि देहि जु जापर भाउ ॥
सुनि जानकी वौहत सुष भयौ। तवहि हंकारि पवनसुतलयौ ॥
घाली माल कंठ ता तनै। वौहत वचन वोले आपने ॥ (भा० वा० रा० हनू०)
जव हौं सोग समद महौ परी। तव हनिवंत आफी मूंदरी ॥ १५६२, १५६७)
सोई भई तरौना मोहि। तातै उरन नह्वै हौं तोहि ॥
वौहत भगति करि सनदे राइ। राम अजुध्या राज कराइ ॥

उक्त वृत्तान्त से यह ज्ञात होता है कि सीता जी का सर्वाधिक कृपापात्र यदि कोई था, तो वे थे हनुमान। इसके अतिरिक्त सीता जी की पतिभक्ति एवं आज्ञाकारिता भी सिद्ध होती है। वे हनुमान की विशेष कृतज्ञ भले ही रही हों, किन्तु बिना राम की आज्ञा के वे उक्त हार किसी को नहीं प्रदान करतीं।

इस प्रकार इस ग्रन्थ से सीता विषयक जो सूत्र प्राप्त होते हैं उनके आधार पर सीता जी कृतज्ञता की मूर्ति, आदर्शप्रिया, विज्ञ, व्यवहारकुशल एवं सती साध्वी प्रतीत होती हैं। ग्रन्थ की अपूर्णता के कारण सीता जी का विशेष विवरण नहीं मिल सका।

---

१. धनि धनि पवनसूत वरवीर। धनि जननी तिंहि पोष्यो वीर ॥
सौ जोजन साइर ना पीयौ। हीये न डर रावन की कीयौ ॥
(भा० वा० रा० हनू० । २०३ ॥ विष्णुदास)

२. मनि अमोलिक जनक सुदीया। वैनी मैं थैं काढ़ी सीया ॥
धरी हाथ हनिवंतहि तनैं। वौहरि संदेस कहै आपनैं ॥
(भा० वा० रा० हनू० । २४५ ॥ विष्णुदास)

स्वामी रामानन्द (१४१० ई०, १५१० ई०) की दास्य भक्ति के प्रचार के कारण हिन्दी साहित्य में भी सीताराम विषयक दास्य भक्ति का पल्लवन हो गया था। इस दृष्टि से दास्य भक्ति के प्रथम कवि के रूप में ईश्वरदास (लगभग १५०१ ई०) का नाम उल्लेखनीय है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष ६६ अंक १) द्वारा इनकी तीन रचनाओं की सूचना दी गई थी : (१) भरतमिलाप (२) अंगद पैज (३) राम जन्म। इन ग्रन्थों में सीता चरित्र की कोई झलक नहीं मिलती।

इनके अनन्तर कवि भागवतदास का भेदभास्कर तथा भूपति कविकृत रामचरित रामायण की चर्चा की जाती है, किन्तु डॉ० दीनदयाल गुप्त ने इन्हें रचनाकाल की दृष्टि से सूर की परवर्ती रचना माना है[1]। इस प्रकार ईश्वर दास (सं० १५५८ के लगभग) और कविवर सूरदास (सं० १५४०, १६२०) समकालीन सिद्ध होते हैं। डॉ० राम निरंजन पांडेय का मत है कि तुलसीतर हिन्दी के राम कवियों में सूर का स्थान प्रायः सर्वप्रथम मान लिया जा सकता है[2]।

महाकवि सूर ने सूरसागर के नवमस्कन्ध के अन्तर्गत संक्षिप्त रूप में रामचरित्र का सरस वर्णन प्रस्तुत किया है[3]। इन पदों की कुल संख्या १५८ है, जिनके अन्तर्गत सीता चरित्र से सम्बद्ध कुल ३५ पैंतीस पद हैं। वस्तुतः सूर के पूर्व सीताकथा का ऐसा सुन्दर रूप हिन्दी साहित्य में देखने को नहीं मिलता। सूर यद्यपि श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध (अध्याय १०, ११) की राम कथा से प्रभावित हैं, किन्तु उन्होंने स्वेच्छा से उसमें पर्याप्त परिवर्द्धन किया है। श्रीमद्भागवत में उक्त अध्यायों में क्रमशः ५६ तथा ३६ श्लोकों में ही कुल कथा वर्णित है।[4]

सूर सागर में सीता विषयक जो ३५ पद प्राप्त हैं[5], उनमें केवल बाल्मीकि रामायण का ही नहीं, अपितु महाभारत और अध्यात्म रामायण का भी प्रभाव प्रतीत होता है, जिसका उल्लेख इसी सन्दर्भ में किया जायगा। इस रचना में सूर की भक्ति

---

१. डॉ० दीनदयाल गुप्त (अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—पृ० २३, २४)
२. डॉ० रामनिरंजन पांडेय (रामभक्ति शाखा) पृष्ठ ३६६
३. सूरदास (सूरसागर) ना० प्र० स० काशी (नवमस्कन्ध। छन्द ४५६, ६१६)
४. श्रीमद्० (गीताप्रेस गोरखपुर) कुल श्लोक संख्या ६२
५. बालकाण्ड : पद संख्या ४६७, ४६९, ४७०, (अयोध्याकाण्ड) पद संख्या ४७८, ४७९, ४८८, ४८९; (अरण्यकाण्ड) पद सं० ५०३, ५०५, ५०७, ५०८, (किष्किन्धा काण्ड) पद संख्या ५१६, ५१७ (सुन्दर काण्ड) पद संख्या ५१९, ५२१, ५२२ ५२३, ५२७, ५२९, ५३८, ५४५ (लंकाकाण्ड) : पद संख्या ६०५, ६०६। विशेष—उपर्युक्त पद संख्या में नागरी प्रचारिणी सभा काशी के चतुर्थ सं० के आधार पर दी गयी है।

का विशिष्ट प्रभाव प्रतीत होता है, क्योंकि उन्होंने राम और कृष्ण में अभेददृष्टि मानी थी और संकीर्णता का दृष्टिकोण नहीं अपनाया।

सूरसागर में सर्वप्रथम सीता का प्रसंग धनुर्भंग के समय प्रस्तुत किया गया है। सीता जी राम को देख कर अनुरक्त हो जाती है और विधि से यह निवेदन करती हैं कि किसी प्रकार इन कोमल पाणि द्वारा धनुष टूट जाय। उन्हें पिता जी के प्रण पर भी क्षोभ होता है :

चितै रघुनाथ बदन की ओर।
रघुपति सौ अब नेम हमारो, विधि सौ करति निहोर।
यह अति दुसह पिनाक पिताप्रन, राघव वयस किशोर।
इन पैं दीरघ धनुप चढ़ै क्यों, सखि यह संसय मोर। (सूर सा०।६।२३।४६७ वां)

इस पद के अनुसार सीता रामानुरक्ता है, उन्हें राम के बल पर संशय है। कविवर तुलसी ने भी सीता के मानसिक असन्तोष को 'सुमिरि पिताप्रन मन अति छोभा' इत्यादि द्वारा उक्त विचार व्यक्त किये है।

विवाह में कंकण मोचन की प्रथा के अनुसार राम सीता के कर का कंकण छोरते है, किन्तु उनके कर के स्पर्श से मग्न हो जाते है, यह देखकर सखियाँ आनन्दित होती हैं, इसके अतिरिक्त जूप के खेल में राम पराजित हो जाते हैं और सीता जी जीत जाती है[1]। इस वर्णन के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सीता जी अत्यन्त कोमल एवं सुन्दरी थी। उनमें चातुर्य, सूतकौशल एवं स्फूर्ति पर्याप्त मात्रा में थी। सूर की यह कल्पना श्रीमद्भागवत में नहीं पाई जाती। सीता जी की इस अधीरता का चित्रण अगले एक छन्द में भी किया गया है।[2] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सीता जी की उक्त अधीरता में राम की कोमलता एवं सीता का स्नेह मुख्य कारण है।

वनगमन के प्रसंग में श्री राम जानकी को यह परामर्श देते है कि तुम जनकपुरी चली जाओ, क्योंकि वन में तुम्हें हमारे साथ अनेक कष्ट भोगने पड़ेगे। तुम घर में ही रहो, वनवास में तुम्हें अन्ततः पश्चात्ताप ही करना होगा। यदि तुम सत्यरूप मे पतिव्रत रखना चाहती हो तो साथ न चलो, उधर जाओ।[3]

---

१. करके, कंकन नहिं छूटै।
राम सिया कर परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटैं।
खेलत जूप सकल जुवतिनि मैं, हारे रघुपति जिती जनक की।
(सूर सागर ४६६)

२. तात कठिन प्रन जान जानकी, आनत नहिं उर धीर ॥ (सूर० ४७०)

३. तुम जानकी जनकपुर जाहु।
कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहवर वन दुःखसिन्धु अघाहु।
सूर सत्य जो पतिव्रत राखौ, चलौ संग जनि उतहीं जाहु। (सूर० सा०।४७८)

जानकी राम के उक्त वचनों का उत्तर देती हुई कहती हैं कि प्रभो ! मुझ जैसी दासी का त्याग न करें। मैं वन में आपके रूप को देख कर प्रफुल्लित रहूँगी और इस प्रकार मेरा जीवन सफल हो जायगा[1]। इस कथन से सीता जी की विनम्रता एवं पातिव्रत्य के साथ ही उनकी कष्टसहिष्णुता भी सिद्ध होती है।

पुरवधूटियाँ सीता जी से प्रश्न करती हैं कि तुम कौन हो, तुम्हारा क्या परिचय है। इसका उत्तर देती हुई सीता जी कैकेयी के प्रति असन्तुष्ट प्रतीत होती है। वे कहती हैं कि :

सास की सौति सुहागिनी सो सखी, अति ही पिय की प्यारी।
अपने सुत को राज दिवायो, हमको देस निकारी। (सूर०।४८८)

जव वही स्त्रियाँ सीता जी से पूंछती है कि तुम्हारे देवर कौन वर्ण हैं और तुम्हारे स्वामी कौन हैं, तव सीता कहती हैं :

कटितट पट पीताम्वर काछे, धारे धनु तूनीर।
गौरवदन मेरे देवर सखि, पिय मम स्याम शरीर। (सूर०।४८८)

अगले छन्द में भी कवि ने ग्रामवधूटियों के उक्त प्रश्न का उत्तर मिलाया है, उसमें सीता जी केवल संकेत द्वारा ही राम को अपना पति वतलाती हैं :

राजिवनैन मैन की मूरति, सैननि दियो वताइ ॥ (सूर०।४८९)

इस प्रकार सीता जी स्वभावत: अत्यन्त सरल एवं कोमल प्रतीत होती हैं, पुरग्राम की ललनायें सहज ही में उन पर अनुरक्त हो जाती है और उनसे विलग होते ही उछ्वास भरने लगती हैं।

सूर की सीता को वाटिका लगाने में विशेष रुचि थी, उन्होंने पंचवटी में एक लघु वाटिका लगाई थी, जिसके पौधों को श्री राम स्वयं सींचते थे, जिससे उनमें पुष्प एवं फल भी लगे हुए थे।[2] भक्त होने के कारण सूर ने भी माया सीता का अपहरण कराया है।[3] वास्तविक सीता तो अग्नि में प्रविष्ट हो गयी थी। इस ग्रन्थ की सीता मारीच द्वारा हा लक्ष्मण इस शब्द को सुनकर लक्ष्मण से जाने का आग्रह करती है न जाने पर जो कहती हैं, वह वर्णनातीत है।[4] केशव ने भी रामचन्द्रिका में ऐसा ही सांकेतिक वर्णन किया है। तुलसी ने मर्म[5] वचन का उल्लेख मात्र किया है, जब कि वाल्मीकि और अध्यात्म० में अपशब्दो का उल्लेख भी किया गया है।

---

१. सूरसागर (४७९)
२. सूरसागर (५०३)
३. जनकतनया धरी अगिन में छाया रूप वनाइ
यह न कोऊ भेद जाने, विना श्री रघुराइ ॥ (सूरसागर ५०४)
४. गयो सो दै रेख, सीता कह्यो सो कहि नहि जाय। (सूर सागर ५०४)

सूर ने लक्ष्मणरेखा के वृत्तान्त का संक्षिप्त उल्लेख किया है। रावण भिक्षुक के रूप में सीता जी के समक्ष उपस्थित होता है और भिक्षा माँगने पर सीता उसे दीन जानकर भजन की आन मानती हुई भिक्षा देती है (सूर०।५०३)। इसमे इसमे कवि ने न तो रावण को सीता द्वारा बुलवाया, जैसा कि रामचन्द्रिका मे कवि ने किया है और न वाल्मीकि की भाँति सीता से अतिथि सत्कार कराया। इस प्रकार इस प्रसंग में सूर की सीता उदार भक्तप्रिय एवं सरल चित्त प्रतीत होती है।

सूर की सीता अपहृत होने पर अशोकवन मे रहती है। उन्हें न तो भूख लगती है, न तो पिपासा और न तो निद्रा ही आती है, उनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो जाता है (सूर०।५०५)। इस प्रकार सीता का वियोगिनी रूप पूर्णतया स्पष्ट हुआ है। वे राम के अतिरिक्त संसार को शून्य समझती थी।

सीता के सौन्दर्य के बारे में कवि ने परम्परा का पालन किया है। स्वयं राम ही विलाप करते हुए सीता के अंग सौन्दर्य का चित्रण करते हैं, जैसा कि तुलसी ने रामचरित मानस में चित्रित किया है।

कटि केहरि कोकिल कलबानी ससि.मुख प्रभाधरी।
मृग भ्रू सी नैननि की शोभा, जाति न गुप्त करी।
चम्पक वरन, चरन कर कमलनि, दाड़िम दसन लरी।
गति मराल अस विंब अधर छवि, अहि अनूप कबरी। (सूर०।५०७)

सूर की सीता अशोक वन की निशाचरियों द्वारा भय दिखलाने पर भयभीत नहीं होती अपितु सरुष होकर रावण के नाश होने अथवा अपने अग्नि प्रवेश करने की बात कहती है :

अहो ढीठ मतिमुग्ध निसिचरी, वेली सनमुख आइ।
तव रावन को बदन देखिहों, दससिर स्रोनित न्हाइ।
कै तन देउँ मध्य पावक के, कै विलसै रघुराई। (सूरसागर। ५२१)

इस कथन-से सीता की निर्भीकता, पतिपरायणता, साहस एवं रावण के प्रति प्रवल आक्रोश पर कितना अच्छा प्रकाश पड़ता है। वाल्मीकि की सीता राक्षसियों के प्रति इतनी निर्भीक नही है, वे तो सीधा एक उत्तर देती है कि स्वेच्छा से तुम लोग मुझे खा भले ही लो, पर मैं तुम्हारा कहना न करूँगी।

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः। (वा० रा०।सुन्द०२५।३)

अध्यात्म रामायण की सीता तो राक्षसियों को कुछ उत्तर ही नही देती। सूर की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने राक्षसियों द्वारा सीता के दृढ़ पातिव्रत्य की प्रशसा

कराई हैं, जो वाल्मीकि रामायण या अध्यात्म रामायण में भी नहीं कराई गई। यथा :

> सुनो किन कनकपुरी के राइ।
> हो बुधिबल छल करि पनिहारी, लख्यो न सीस उचाई।
> डोले गगन सहित सुरपति अरु पुहुम पलटि गज परई।
> नसै धर्म मन वचन काय करि, सिन्धु अचंभी करई।
> अचला चलै चलत पुनि थाके, चिरंजीवि सो मरई।
> श्री रघुनाथ प्रताप पातिव्रत, सीता सत नहीं टरई। (सूर० ५२२)

निःसन्देह, यहाँ पर सूर तुलसी से भी आगे दिखलाई पड़ते हैं। सीता के पातिव्रत्य पर ऐसा उल्लेख तुलसी ने मानस में नहीं किया। राक्षसियों के उक्त वचनों को सुनकर रावण स्पष्ट कहता है कि सीता जी जननी हैं और राम प्रभु हैं, मैं तो उनका प्रतिहार सेवक हूँ। यदि सीता कहीं सत्य से विचलित हो जाये तो मुझ पापी को क्रोध कर कौन तारेगा। (सूर०। ५२२)

जब रावण अशोक वाटिका में जाकर सीता को अनुकूल करना चाहता है, उस समय सीता जी तृण की ओट से रावण को सरुप होकर फटकारिती हैं, जिससे राम की महनीयता, रावण की तुच्छता, रावण के वंशनाश, लंकादाह आदि का संकेत मिलता है (सूर०। ५२३)। इस पद में कवि ने सीता जी से यह भी भविष्यवाणी करा दी है कि आज अथवा कल प्रातः लंका जलेगी, तुम्हारा नाश निश्चित है।

इस ग्रन्थ में सूर ने यह उल्लेख किया है कि त्रिजटा राक्षसी ने सीता को यह बतलाया था कि नल कूबर के शाप के कारण रावण का वश तुम पर नहीं चल सकता।[1] सूर ने यह युक्ति महाभारत के वनपर्व के रामोपाख्यान (१८०।५९) के आधार पर लिखी है, क्योंकि वाल्मीकि रामायण अथवा अध्यात्म रामायण में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

सूर की सीता त्रिजटा से अपनी व्यथा का चित्रण करती हुई केवल राम के ही दर्शन नहीं चाहती, अपितु उनसे मन में माता सुमित्रा तथा माता कौशिल्या जी के प्रति भी प्रबल उत्कण्ठा है। (सूर० ।५२५) इससे कवि ने सीता जी को पतिप्रिया होने के अतिरिक्त परिवार के प्रति भी ममत्वशील सिद्ध किया है। त्रिजटा से सीता प्रियतम राम के बारे में यह कहती हैं कि सुमेर हिल जाय, शेष के सिर काँपने लगे, सूर्य पश्चिम से उदय होन लगे, किन्तु मैं राम की मधुर मूर्ति का परित्याग नहीं

---

१. नल कूबर की साप रावनहिं, तो पर बल न बसाई। (सूर०। ५२४)

कर सकती।[1] तुलसी ने भी इस सीमा तक के दृढ़ पातिव्रत्य का उल्लेख नहीं किया।

सूर के पूर्व संस्कृत के कवियों ने अथवा हिन्दी के तुलसी प्रभृति कवियों ने भी यह उल्लेख नहीं किया कि सीता त्रिजटा से अपने दो पापों का वर्णन करती है, जिनसे उनको इतना दु:ख मिल रहा है। प्रथम पाप मृगवध (मारीच वध के लिए सीता ने प्रेरणा की थी) और द्वितीय जटायुवध (सीता के निमित्त यह मारा गया था)।[2]

सूर की सीता हनुमान पर सहसा विश्वास नहीं कर लेती। पहले तो वानर-रूपधारी हनुमान द्वारा प्रश्न करने पर वे इतना कहती हैं कि मैं सीता हूँ। मुझे रावण हर लाया है और त्रास दिखला रहा है। वत्स ! राम-लक्ष्मण विना तो मै चित्त से दु:खित हूँ, मेरा जीवन व्यर्थ है, मैं समुद्र में डूब मरूँगी,[3] किन्तु वानररूप हनुमान के समीप आने पर वे उसे रावण समझ कर फटकारती है, उनके अंग संकुचित हो जाते है और वे राम के प्रति अपने अनन्य प्रेम को व्यक्त करती हुई, रावण के प्रति घोर घृणा व्यक्त करती हैं। जब हनुमान राम-प्रदत्त मुद्रिका भेंट करते है, तब सीता मुद्रिका को देख कर चकित हो जाती है और केशव की सीता की भाँति वे भी मुद्रिका से प्रश्न करती है :

कहि मुद्रिके, कहाँ तै छांड़े मेरे जीवन मूरि। (सूर० ।५२७)

यहाँ सीता जी मुद्रिका से अधिक तर्क न कर हनुमान से कहती है कि वत्स ! तुम राम से मेरा सन्देशा कह देना कि जिस कोप से आपने काक जयन्त को एकनयन बनाया था वह कोप कहाँ गया :

सोवत काग छुयो तन मेरौ, बरहहिं कीनो बान।
फोरयो नयन काग नहिं छाड़यो सुरपति केविदमान।
अब वह कोप कहाँ रघुनन्दन, दस सिर बरे बिलान। (सूर० । ५२७)

उक्त वृत्तान्त से यह ज्ञात होता है कि भक्ति के कारण सूर ने भी सीता के स्तनों के विदीर्ण होने की घटना को किंचित प्रच्छन्न करने की चेष्टा की है। मानस मे तुलसी ने तो चरणों में ही चोंच मारने का उल्लेख किया है : 'सीता चरण चोंच हति भागा'

---

१. मैं तो राम चरन चित दीन्हा।
मनसा, वाचा और कर्मना, बहुरि मिलन कौ आगम कीन्हाँ।
डुलै सुमेरु, सेषसिर कम्पै, पच्छिम उदै करै वासरपति।
सुनि त्रिजटी तौहूँ नहिं छाड़ौ, मधुर मूर्ति रघुनाथगातरति।
(सूर० । ५२६)

२. सूर सागर, ५२७

३. सूर सागर, ५२७

किन्तु यहाँ सूर ने तन शब्द का उल्लेख कर भक्ति भावना के अनुसार यथार्थ को सांकेतिक बना दिया है। विशेष बात यह है कि यहाँ सीता जी हनुमान से सन्देश में उक्त तथ्य का विवरण प्रस्तुत कर रही हैं, अतः परपुरुष से यदि उक्त अश्लील शब्द का उच्चारण सीता द्वारा न कराकर कवि ने सांकेतिक ढंग से उसकी अभिव्यक्ति कराई है, तो इससे सीता जी की सलज्जता, शालीनता एवं चतुरता ही सिद्ध होती है।

सूर की सीता इतनी सहृदय हैं कि वे सन्देश देती हुई हनुमान को समीप बैठा लेती हैं, अंचल द्वारा उनके मुख की बलैया लेती हैं और उन्हें चिरंजीवी होने का वरदान देती हुई, दैन्यग्रस्त होकर उनके पैर पकड़ने लगती हैं।

निकट बुलाइ बिठाइ निरखि मुख, अंचर लेत बलाई।
चिरजीवौ सुकुमार पवनसुत, गहति दीन ह्वै पाई।
बहुत भुजन बल होइ तुम्हारे, ये अमृत फल खाहु।
अब की बेर सूर प्रभु मिलवहु, बहुरि प्रान किनजाहु। (सूर० । ५२७)

इससे कवि ने सीता को वात्सल्यमयी, करुणामयी, ममतामयी, दैन्यमयी एवं विकल विरहिणी सिद्ध किया है। हनुमान के चरण स्पर्श करने की बात कहाँ तक उचित है? यह एक प्रश्न है। इसका समाधान यही हो सकता है कि 'रहत न आरत के चित चैतू, अथवा 'आरत काह न करै कुकरमू' के अनुसार सीता जी विपत्तिग्रस्त होने के कारण ऐसा करती हैं। जब वे हनुमान को बच्छ या वत्स मानती हैं (सूर० । ५२७) तो वात्सल्य के अतिरेक में चरण स्पर्श भी सम्भव है। प्यार में मातायें पुत्रों के लिए इतना भी कर डालती हैं। हनुमान भी उन्हें जननी ही कहते हैं। (सूर० । ५२८) वे प्रस्ताव करते हैं कि यदि आप मेरी पीठ पर चढ़ कर चलें तो मैं अभी आपको श्री राम के दर्शन करा सकता हूँ। (सूर० । ५२९) यही सीता वाल्मीकि रामायण की सीता की भाँति अनेक बातें न कह कर केवल एक ही बात कहती हैं:

तुम्हें पहिचानत नाहीं वीर।
इन नैननि कबहूँ नहिं देख्यो रामचन्द्र के तीर। (सूर० । ५३०)

इन कथन से कवि ने सीता जी की बुद्धिमत्ता एवं आदर्शवादिता का संकेत दिया है:

सूर ने तीन छन्दों में (५३६, ५३८) सीता सन्देश का उल्लेख किया, उक्त सन्देश में सीता के हृदय की वेदना, दैन्य, ताप, उपालम्भ, संकट एवं पतिप्रेम का अपूर्व चित्रण किया गया है।

सूर स्नेह जानि करुनामय, लेहु छुड़ाइ जानकी चेरी। (सूर० । ५३७)

इस पद द्वारा कवि ने सीता के दैन्य की पराकाष्ठा अंकित कर दी है। एक महारानी विपत्तिग्रस्त होकर अपने लिए चेरी शब्द का प्रयोग करती है। दास्यभक्ति का प्रभाव ही कवि को इस सीमा तक सीता को निरभिमानिनी एवं प्रणत बना सका है।

लंकादाह के पश्चात् हनुमान पुनः सीता जी के दर्शन करते है, इस वार सीता जी चूड़ामणि उतार कर राम को देने के लिए देती हुई मन्दाकिनी के तट पर स्फटिक-शिला में स्थित राम द्वारा तिलक लगाये जाने के वृत्तान्त को भी बतलाती हैं। वाल्मीकि रामायण के प्रभाव से कवि ने प्रस्तुत किया है। यथा :

> मेरी कती विनती करनी।
> पहिले करि प्रनाम, पाइन परि, मनि रघुनाथ हाथ लै धरनी।
> मन्दाकिनी तट फटिक सिला पर, मुख मुख जोरि तिलक की करनी।
> (सूर०।५४५)

इस प्रकार काक वृत्तान्त, चूडामणि और तिलक वृत्तान्त इन तीन अभिज्ञानों द्वारा सीता जी राम के चित्त को विश्वस्त बनाना चाहती है। प्रथम का तात्पर्य राम को शक्ति और सीता प्रेम का स्मरण दिलाना हैं, द्वितीय का उद्देश्य पुरातन वृत्तान्त (जनक, दशरथ, कौशल्या) का स्मरण दिलाकर राम को गर्वोन्नत करना है, जिससे वे अपने गुरुजनों की लज्जा बचाने के लिए पराक्रम करें और तृतीय का उद्देश्य दाम्पत्य प्रेम की पुनःप्राप्ति की कामना है। कवि सूर ने इन तीनों के प्रयोग से सीता जी की बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है।

लंका विजय के पश्चात् लक्ष्मण जी, जामवन्त और विभीषण सीता जी के पास जाकर प्रणाम करते है। उस समय भी सीता का स्वरूप दैन्यग्रस्त था, दुर्बल शरीर नेत्रों से प्रवाहित अश्रुधार उनकी करुणमूर्ति को सहज ही में वियोगिनी सिद्ध कर रहे थे। लक्ष्मण आदि के कथन पर भी वे आभूषण धारण करना उचित नही समझती, जैसा कि वाल्मीकि (युद्ध० । ११४।११) में वर्णित है, किन्तु जब वे रघुनाथ जी की आज्ञा से ऐसा करना ही विधेय समझती हैं, तब वे श्रृंगार कर त्रिजटा सहित पुष्पक विमान में बैठती हैं। राम के पास आने पर राम सीता की ओर से मुख मोड़ लेते हैं, फलतः सीता मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है।

> देखत दरस राम मुख मोरयो, सिया परी मुरझाय।
> सूरदास स्वामी तिहुंपुर के, जग उपहास डराय। (सूर०।६०५)

अन्त मे सीता की आज्ञा से लक्ष्मण अग्नि प्रज्ज्वलित करते है, सीता उसमे प्रविष्ट होती है। अग्निदेव अपने उत्संग में सीता को लेकर प्रकट होते है और राम से सीता की निष्कलंकता प्रमाणित करते है :

> लै उछंग उपसंग हुतासन, निहकलंक रघुराई। (सूर०।६०६)

दशरथ एवं अन्य देवगण भी सीता की शुद्धता प्रमाणित करते है और राम उन्हे स्वीकार कर अयोध्या लौट आते हैं। इस प्रकार सूर ने यही पर सीताचरित्र समाप्त कर दिया है। उनका भक्तहृदय सीता-निर्वासन जैसे दुःखद अध्याय के चित्रण से

सर्वथा विलग रहा है। सूर की सीता पतिव्रता, निर्भीक, विनत, उदार, आदर्शमयी, कृतज्ञ, ममतामयी सहिष्णुता की देवी हैं। वे अद्वितीय सुन्दरी ब्रह्म की शक्ति है, शालीनता उनका शृंगार है।

हिन्दी साहित्य में सीताराम विषयक काव्य प्रणेताओं में सूर के पश्चात् स्वामी अग्रदास (सम्वत् १६३२ वि०) का नाम विशेष महत्व रखता है। यद्यपि इनके स्थितिकाल के विषय में मतभेद है किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० माता प्रसाद गुप्त एवं डॉ० भगवती प्रसाद सिंह प्रभृति विद्वानों ने सम्वत् १६३२ वि० में अग्रदास जी की स्थिति स्वीकार की है।[1] तात्पर्य यह कि इनको सूर का समकालीन माना जाता है। ये कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे, इन्हें रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक के रूप में मान्यता प्राप्त है। वर्तमान समय तक इनकी चार रचनाये ज्ञात हो सकी हैं: १. ध्यान मंजरी, २. कुंडलिया, ३. रामज्योनार, ४. पदावली। इनमें ध्यानमंजरी सर्वाधिक प्रख्यात है। राम ज्योनार की प्रति अप्रकाशित है, अतः केवल तीन पर कुछ उल्लेख किया जा रहा है।

ध्यान मंजरी के अनुसार श्री राम षोडशवर्षीय अवस्था में सदैव शोभायमान रहते हैं, उनके वामभाग में जनक कुमारी विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत विराजमान रहती हैं।[2] इस ग्रन्थ में कवि ने सीता जी के प्रत्यंग के सौन्दर्य का बड़ा सुन्दर एवं सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।[3]

> उज्ज्वल भाल सुचारु अमित उपमा अस सोहै।
> राजत परम सोहाग भाग भवन किधौं है।
> गोरोचन को तिलक ललित रेखा बन आई।
> उन्नत नासा सुभग लसत बेसरि जु सुहाई। (ध्यानमंजरी)

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४६
डॉ० माताप्रसाद गुप्त : हिन्दी साहित्य, खण्ड २, पृ० ३०७
डॉ० भगवती प्रसाद सिंह : ना० प्र० स० पत्रिका, वर्ष ६६ अंक २, ३, ४, पृ० ३३३

२. अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानन्द वामदिशि जनककुमारी।
नगन जरे छवि भरे विविधभूषण अस सोहैं।
सुन्दर अंग उदार विदित चामीकर सोहैं। (अग्रदास, ध्यानमंजरी)

३. श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव के ग्रन्थ : रामभक्ति साहित्य में मधुरोपासना पृ० १६३ से उद्धृत।

इस ग्रन्थ में ८० पदों की संख्या बतलाई जाती है; यह प्रति रसरंगमणि जी के पास सुरक्षित है।

कुण्डलियों में केवल ६८ कुण्डलियों का लेख पाया जाता है। इसमें अग्रदास जी के उपदेशों का संग्रह है। पदावली में सीताविषयक रूपमाधुरी का पर्याप्त उल्लेख पाया जाता है। यथा :

बलिहारी सीता वदन की।
उज्ज्वल अरुन परस्पर दीपति अधर बिंबफल रदन की।
बेसरि मुकता चपल होत अति शोभा बीरी अदन की।
लोचन चार चितै मधुर बरसत दाम काम दुःख कदन की।
सची सहित सोभा त्रिभुवन की वारौं मानिनी मदन की।

इस ग्रन्थ में कवि ने राम कृपा की अपेक्षा सीता जी की कृपा पर विशेष ध्यान दिया है। मधुरोपासना की दृष्टि से कवि सीता जी के प्रभाव से विशेष प्रभावित है। उसकी मान्यता है कि यदि जनकनन्दिनी अनुकूल हो गईं तो राम तो अनुकूल हो ही जायँगे :

जाकी ओर तनक हँसि हेरत करत सहाय राम जू ताकी।
श्री अग्रअली मंजु जनकनन्दिनी पाप भण्डार ताप रिता की। (पदावली)

कवि ने सीता जी की बाललीलाओं का भी विशद वर्णन किया है। धनुर्भंग होने के पूर्व सीता जी अपने पिता जनक के प्रण से कितनी आकुल हैं, राम की सुन्दरता एवं कोमलता को देख कर वे अधीर हो गई हैं :

तात ! प्रन काहे को कियौ।
कठिन पिनाक राम कर कोमल धीर न धरत हियौ।
मधुर मुरति आनन्द-कन्द सम नाहिन और कियौ।
वक्र चितवनि सांवरे सखी चितवत चोरि लियो। (अग्रदास)

इसी प्रकार कवि ने सीता के शृंगार लीलाओं के भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। कहीं पर दिव्य दम्पत्ति रात्रि भर सम्भोगरत, अतः प्रातः अलसित नेत्र वाले प्रतीत होते हैं, कहीं पर हिंडोले में झूलते हैं, कहीं पर होली के राग-रंग में मस्त दिखाई देते हैं, कहीं जलक्रीड़ा का आनन्द लेते हैं।

महाकवि तुलसीदास जी की अमर कृतियों ने तो सीताराम की दास्यभक्ति का जितना प्रचार किया उतना किसी अन्य कवि की कृतियों ने नहीं किया। प्रस्तुत रूप-रेखा में हिन्दी साहित्य में सीता विषयक प्रमुख रचनाओं का उल्लेख किया जा रहा है, तत्पश्चात् इस भाग के प्रतिपाद्य विषय तुलसी द्वारा प्रतिष्ठित सीता के स्वरूप पर विचार किया जायगा। तुलसी के परवर्ती कवियों ने भी इस सीताराम भक्ति के प्रचार हेतु विपुल ग्रन्थों की सृष्टि की है। नाभादास जी (सं० १६४२) का अष्टयाम प्राणचन्द

चौहान कृत रामायण महानाटक एवं लालदास कृत अवधविलास भी सीताराम की भक्ति के पोषक ग्रन्थ माने जाते हैं।

केशव की राम चन्द्रिका भक्तिकाल एवं रीतिकाल की सन्धि (१६५८ वि०) में विरचित एक उत्तम ग्रन्थ है, जिसमें वाल्मीकि रामायण के आधार पर ३९ प्रकाशों में सीताराम का कथानक प्रस्तुत किया गया है। इसका विशद विवेचन इस अध्याय के (ख) भाग में प्रस्तुत किया जायगा। इनके पश्चात् रसिक गोविन्द की रामायण सूचनिका, लछिराम की रामचन्द्रभूषण नामक रचनायें प्रसिद्ध हैं। कविवर सेनापति के कवित्तरत्नाकर की चतुर्थतरंग में सीताराम की भक्ति से ओतप्रोत छन्द मिलते हैं। इनके पश्चात् १७वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुरु गोविन्द सिंह कृत गोविन्द रामायण का विशेष महत्व है। रीतिकालीन रामकथा विषयक ग्रन्थों में इस ग्रन्थ को विशेष मान्यता प्राप्त है। इसमें सीता जी के जीवन पर जो विस्तृत सामग्री प्राप्त है, उसका उल्लेख इसी अध्याय के (ख) भाग में केशव के मूल्यांकन के पश्चात् किया गया है।

अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य सीताराम विषयक विपुल साहित्य की सृष्टि की गई है। मधुरोपासना का साहित्य इतना अधिक है, जिस पर एक विस्तृत इतिहास लिखा जा सकता है। अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में रामप्रियाशरण ने सीतायण नामक सुन्दर ग्रन्थ लिखा है, जिसमें सीता जी के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसके अनन्तर जानकीरसिकशरण कलानिधि एवं महाराज विश्वनाथसिंह का नाम भक्ति धारा के कवियों में परम प्रसिद्ध है।

इनके पश्चात् रामकिशोर शरण की प्रसिद्ध कृति रामरसामृतसिन्धु से लेकर दुर्गेश कवि तक लगभग २० कवियों की प्रसिद्ध परम्परा है। इन कवियों ने रामसीता विषयक प्रबन्ध काव्यों की रचनायें प्रस्तुत की हैं, किन्तु उनका विशेष साहित्यिक मूल्य नहीं आंका जाता। इनमें भगवन्तराम खीची कृत रामायण, मनियार सिंह की कतिपय रचनायें एवं ललकदास की सत्योपाख्यान रचनायें कुछ महत्वशील मानी जाती है।

सं० १९३४ वि० में महाराज रघुराज सिंह कृत राम स्वयम्वर एक सुन्दर रचना मानी जाती है। इनके पश्चात् रसिकविहारी कृत राम रसायन; जानकी प्रसाद कृत राम निवास रामायण एवं नवल सिंह (१८३४ ई०) की रचना रामचन्द्रविलास का उल्लेख पाया जाता है। इसी समय वलदेव दास ने जानकी विजय नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की थी।

वीसवी शताब्दी या आधुनिक काल में भी सीताराम विषयक अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। रामचरित उपाध्याय ने १९२० ई० में राम चरित चिन्तामणि नामक २५ सर्गीय महाकाव्य का निर्माण किया है। १९३३ ई० में पं० वलदेव प्रसाद मिश्र ने १८ सर्गों में निवद्ध कौशल किशोर नामक प्रवन्ध काव्य की रचना की है।

१९३७ ई० में रामनाथ ज्योतिषी ने श्री रामचन्द्रोदय नामक तथाकथित महाकाव्य का निर्माण किया है।

वस्तुतः आधुनिक काल के राम साहित्य में कविवर मैथिलीशरण गुप्त की अमर रचना साकेत (१९३१ ई०) एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमें उर्मिला के अतिरिक्त सीता पर भी प्रकाश डाला गया है। इससे भी महत्वपूर्ण रचना कविवर हरिऔध की वैदेही वनवास नामक महाकाव्य है[1]। इसमें कवि ने १८ सर्गों के माध्यम से सीता वनवास के कथानक को वाल्मीकि रामायण के आधार पर प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ हिन्दी खड़ी बोली का वह गौरव ग्रन्थ है, जिस पर हरिऔध जी को विपुल पुरस्कार एवं सुयश प्राप्त हुआ था। सीता के जीवन की करुण गाथा एवं उनकी पतिपरायणता के अतिरिक्त उनके जीवन के आदर्शों को कवि ने आधुनिक युग की परिस्थितियों के अनुकूल बना कर काव्य के ढाँचे में ढालने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस ग्रन्थ की विशेषताओं का दिग्दर्शन इसी अध्याय के (ग) भाग के अन्तर्गत किया जायगा।

इनके पश्चात् बलदेव मिश्र का साकेत सन्त (१९४६ ई०), केदारनाथ मिश्र कृत कैकेयी (१९५० ई०), बालकृष्ण शर्मा नवीन कृत उर्मिला (१९५७ ई०) प्रभृति ग्रन्थों में भी राम कथा का उल्लेख है। इनमें सीता विषयक स्फुट सामग्री प्राप्त है।

वर्तमान समय में जानकी जीवन महाकाव्य (अप्रकाशित) का भी उल्लेख किया जाता है। इसके प्रणेता राष्ट्रीय आत्मा श्री राजाराम शुक्ल माने जाते है। इस ग्रन्थ में राम और सीता के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। वैसे तो निराला की राम की शक्ति पूजा शीर्षक प्रसिद्ध कविता में भी सीता पर यत्किंचित प्रकाश डाला गया है। कविवर पन्त ने लोकायतन के प्रथम सर्ग में सीता को मानवी चेतना के रूप में प्रस्तुत किया है। नरेश मेहता ने संशय की रात शीर्षक रचना में सीता को कोटि-कोटि जनों की अपहृत स्वतंत्रता के रूप में चित्रित किया है। इसी प्रकार अभी सीता विषयक रचनायें निरन्तर गतिशील हैं। अभी इसी वर्ष (१९७० ई०) में वैदेही नामक एक विस्तृत महाकाव्य पाण्डुलिपि के रूप में दृष्टिगोचर हुआ है। इसके प्रणेता कविवर जुगुल किशोर अवस्थी युगलेश हैं, जिन्होंने अपने दिवंगत होने के पूर्व इस ग्रन्थ के तीन सर्गों की रचना की थी, शेष अंश उनके पुत्र कृष्ण दत्त अवस्थी सुमन ने पूर्ण किये हैं। इस ग्रन्थ में सीता जी के जिस आदर्श रूप का अंकन किया गया है, उसका विवेचन इस अध्याय की समाप्ति के पूर्व ही किया जायगा।

---

१. इसका रचनाकाल १९३९ ई० है (हिन्दी सा० का इतिहास, पृ० ६४३ डॉ० गणपतचन्द्र गुप्त

(क) आचार्य तुलसी द्वारा प्रतिष्ठित सीता का स्वरूप एवं वाल्मीकि की सीता से तुलना

हिन्दी राम भक्ति धारा को प्रतिष्ठित करने का मुख्य श्रेय महाकवि सन्त तुलसी दास जी को प्राप्त है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति विद्वानों ने तुलसी ग्रन्थावली के नाम से जिन ग्रन्थों का सम्पादन किया है, उनमें निम्नलिखित ग्रन्थों का नाम आता है :

१. रामलला नहछू	२. वैराग्य संदीपनी	३. वरवै रामायण
४. पार्वती मंगल	५. जानकी मंगल	६. रामाज्ञा प्रश्न
७. दोहावली	८. कवितावली	९. गीतावली
१०. श्रीकृष्ण गीतावली	११. विनय पत्रिका	१२. रामचरित मानस

उपर्युक्त ग्रन्थों में से वरवै रामायण, जानकी मंगल, कवितावली, गीतावली तथा विनय पत्रिका एवं रामचरित मानस इन षड्ग्रन्थों में सीता विषयक सामग्री प्राप्त होती है। वैसे तो स्फुट रूप में रामाज्ञा प्रश्न में भी सूक्ष्म कथानकात्मक संकेत प्राप्त होते हैं। इस प्रकरण में हम तुलसीदास जी की मान्यता को दृष्टिकोण में रखते हुए उनके सीता विषयक विचारों का विश्लेषण करेंगे।

तुलसी के ग्रन्थों में हमें श्री सीता के दो रूपों के दर्शन होते हैं। प्रथम तो उनका जगज्जननी रूप है, जो कि अत्यन्त मर्यादित एवं आदर्शपूर्ण है किन्तु उनका द्वितीय रूप अलौकिक होता हुआ भी किंचित् मधुर भावना से संपृक्त है। इस रूप के दर्शन गीतावली में ही होते हैं। सम्भवतः कृष्णभक्ति का प्रभाव तुलसी पर भी पड़ गया था।

बरवै रामायण : प्रस्तुत ग्रन्थ में कविवर तुलसी ने सीता जी के सौन्दर्य का अतीव सजीव चित्रण किया है। वालकाण्ड के प्रथम ६ छन्द सीता की माधुरी छवि पर प्रकाश डालते हैं। प्रथम में केश सौन्दर्य, द्वितीय में शरीर की कान्ति, तृतीय में मुख सौन्दर्य, चतुर्थ में नेत्र कटि, भृकुटि, ललाट सौन्दर्य, पंचम में गौरवर्ण का सौन्दर्य और षष्ठ में भी प्रकारान्तर से गौरवर्ण सौन्दर्य का काव्यात्मक चित्रण किया गया है। यथा :

चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाई।
जानि परै सिय हियरे जव कुंभलाइ ॥ (वरवै रामा० ।५। बाल कां०)

आगे चलकर १७ वें छन्द में राम की अपेक्षा सीता के सौन्दर्य को विशिष्ट वतलाने के लिए कवि ने सीता की सखियों के मुख से उनकी रूपमाधुरी की प्रशंसा कराई है[1]।

---

१. गरव करहु रघुनन्दन जनि मनि मांहि।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छांहि। (वरवै०।बाल०।१७)

अरण्यकाण्ड (२९) में कवि ने सीता को हेमलता के अनुरूप कल्पित किया है। सीता के विरह में राम विलाप करते हुए कनकशलाका, शशिकला, दीपशिखा, केतकी पुष्प आदि उपमानों से स्मरण करते है[1]। इससे भी सीता जी के रूप एवं वर्ण सौन्दर्य पर प्रकाश पड़ता है।

इस ग्रन्थ के सुन्दरकाण्ड में कवि ने सीता के वियोगिनी रूप का भी चित्रण किया है। सीता जी हनुमान से ३ छन्दों द्वारा[2] अश्रुपात, चन्द्रिका का दाहक रूप और अपने दौर्बल्य के साथ जीवन की निराशा व्यक्त करती है :

अब जीवन कै है कपि आस न कोई।
कनगुरिया कै मुंदरी कंकन होई। (बरवै० । सुन्दर०। ३८)

इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में कवि ने सीता के व्यक्तित्व एवं जीवन पर कुछ प्रकाश नही डाला है।

जानकी मंगल : इस ग्रन्थ की सीता लक्ष्मी स्वरूपा है[3]। इसमें सीता स्वयंवर से लेकर सीता जी के विवाहोत्सव तक का सरस चित्रण किया गया है। इसमें भी सीता जी के अद्भुत सौन्दर्य का समयोचित वर्णन किया गया है। यथा :

रूपरासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।
नील कमल सरश्रेनि मयन जनु डारइ ।। (जानकी० । ९२)

जब सीताराम परस्पर अवलोकन करते है, तब दोनों काम के वशीभूत हो जाते हैं।[4] दोनों में प्रेम और प्रमोद प्रकट होता है, किन्तु लज्जावश उसे छिपा लेते है। (वही : ९४)

जब धनुर्भंग करने के लिये राम धनुष के पास पहुँचते हैं, उस समय सीता जी संकोच एवं शोच के वशीभूत हो जाती है और राम से धनुष टूट जाय, इस हेतु गौरी, गणेश तथा गौरीश को भी मनाती है :

कहि न सकति कछु सकुचनि, सिय हिय सोचइ।
गौर गनेस गिरीसहि, सुमिरि संकोचइ। (जानकी० । ११२)

यहाँ पर कवि ने सीता जी की कितनी सुन्दर मनोदशा का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है।[4] मानस की सीता की अपेक्षा इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि

---

१. वही, अरण्य० (३२)
२. वही, सुन्दर० (३६, ३८)
३. तहं बस नगर जनकपुर परम उजागर।
सीय लच्छि जहाँ प्रगटी सब सुखसागर। (जानकीमंगल । ५)
४. राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक ।। (जानकी० । ९४)

जब सीता जी राम की ओर देखकर निराशभाव के कारण विरहस-दमग्न होने लगती हैं, तब उनके वामभुज तथा वामनेत्रों का स्फुरण होता है, जिससे सीता जी को अल्पकालिक धैर्य तो होता है, किन्तु पुनः वे अधीर हो जाती है :

> होति विरह सर मगन देखि रघुनाथहिं।
> फरकि वाम भुज नयन, देहिं जन दाहिन।
> धीरज धरति सगुन बल रहत सो नाहिन।
> वर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन॥ (जानकी० । ११३, ११४)

धनुर्भंग होने पर जब सखियाँ राम के गले में जयमाल डालने के लिए सीता को राम के सम्मुख उपस्थित करती है, तब वे राम की ओर संकोचवश स्नेहिल दृष्टि से देखती है[1]। इससे सीता जी की लज्जाशीलता एवं उत्कट प्रेमभावना का कितना सुन्दर स्पष्टीकरण होता है। इसी प्रकार जब विवाह हो जाने पर सीता जी विदा होने लगती है, तब उनके विरह में पुरजन, परिजन के अतिरिक्त पशु-पक्षी भी विकल हो जाते है[2]। इस उल्लेख से कवि ने सीता जी की सहृदयता एवं लोकप्रियता का सुन्दर परिचय दिया है। वस्तुतः उनका हृदय अत्यन्त सरस, कोमल एवं सवेदनशील था।

कवितावली : प्रस्तुत ग्रन्थ में सीता स्वयम्बर से सीता जी का चरित्र उपलब्ध होता है। इस ग्रन्थ की भी जानकी जगदम्बा हैं और रामभद्र जगत्पिता है।[3] न तो संसार मे राम के समान कोई वर हुआ और न सीता के समान कोई दुलही हुई। जब विवाह-मण्डप मे वर के रूप मे श्री राम और वधू के रूप में सीता उपस्थित होती है, उस समय सीता जी मानस की सीता की भाँति ककन के नग की परछाहीं में राम के प्रतिबिम्ब को सुधि-बुधि भूलकर निर्निमेष दृष्टि से एक ही साथ देखने लगती है।[4] इस उल्लेख से सीता जी के प्रेमीहृदय, सलज्जता, भोलापन एवं बुद्धिमत्ता पर एक साथ प्रकाश पड़ता है।

सीता जी एक उच्चकुल की राजकुमारी थी, जिनके लिए पदयात्रा करना सर्वथा नवीन बात थी। जब वे श्री राम के साथ वन के लिए प्रस्थान करती है, तब थोड़ी ही दूर चलने पर श्रमविन्दु निकल आते है, उनके मधुर अधर सूख जाते है और

---

१. सीय सनेह सकुचवस पियतन हेरइ। सुरतरु रुख सुरबेलि पतन जनु फेरइ॥
लसत ललित करकमल माल पहिरावत। कामफंद जनु चन्दहि वनज फंदावत॥
(जानकीमंगल : १२१, १२२)

२. सिय चलत पुरजन नारि हय गज विहग मृग व्याकुल भए॥ (जानकी० । १८९)

३. जगदम्बा जानकी, जगतपितु रामचन्द्र (कवितावली । बाल० ।१५)

४. दूलह श्री रघुवीर······पल टारति नाही॥ (कविता० । बाल० ।१७)

वे प्रियतम राम से पूछने लगती है कि अब कितनी दूर चलकर पर्णकुटी का निर्माण करेंगे।

पुर ते निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भालकनी जल की, पुट सूख गये मधुराधर वै ।।
फिर बूझत है चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै ।
तिय की लखि आतुरता प्रिय की अँखिया अति चारु चली जल च्वै ।।

(कविता० अयो० । ११)

उपर्युक्त कथन से सीता जी अत्यन्त कोमल एव भोली-भाली प्रतीत होती है। उनमे वाल्मीकि जी की सीता की भाँति दृढ़ता नही है और न वैसी कष्टसहिष्णुता ही प्रतीत होती है। उन्हें मार्गजनित कठिनाइयों के कारण राम से बार-बार विश्राम करने का निवेदन करने मे संकोच होता है, अतः अत्यन्त चतुरता के साथ राम से निवेदन करती है कि नाथ बालक लक्ष्मण जल के लिए गये है, तब तक आप छाया में खडे होकर एक घड़ी प्रतीक्षा कर ले। मै आपका पसीना पोंछ लूँ और सतप्तधूल से जलते हुए पैरो को पखार लूँ। राम सीता की इस चातुर्यपूर्ण विनय को सुन कर यह समझ लेते हैं कि सीता श्रमित है, अतः देर तक बैठ कर कंटक निकालने लगते है। राम के इस बहाने को सीता भी समझ लेती है कि मुझे विश्राम देने के लिए ही श्री राम ने इतना विलम्ब किया है, अतः अपने ऊपर इतना पति-स्नेह देखकर सीता आनन्दजन्य अश्रुओ से परिपूर्ण हो जाती है।

जल को गए लखन है लरिका, परिखौ प्रिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।
तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानके बैठि बिलम्ब लौ कटक काढे।
जानकी नाह को नेह लख्यौ पुलकौ तनु बारि बिलोचन बाढ़े।

(कविता०। अयो०।१२)

उक्त छन्द में कवि ने सीता जी में वात्सल्य, नीति, सेवाभाव, पतिप्रेम एवं सर्वोपरि अद्भुत वाक्पटुता का कितना सुन्दर समन्वय किया है ? मानस की सीता मे भी उक्त समन्वय दुर्लभ है।

इस ग्रन्थ मे सीता जी के रूप सौन्दर्य को कवि ने अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है। कही पर तो वे सुदामिनि (अयो०।१५) एवं निसिनाथमुखी, कही पर रति (अ०।१७) और कहीं पर कंजकली (अ०।२२) के रूप में प्रस्तुत की गयी है, जिससे उनकी कान्ति, सौन्दर्य सौकुमार्य एवं अरुसह्य के अतिरिक्त उनकी अलौकिकता भी सिद्ध होती है।

ग्राम-वधूटियाँ सीता जी से राम का परिचय पूछती हैं : साँवरे से सखि रावरे को हैं ? इसके उत्तर में कवि ने सीता जी द्वारा कटाक्षदृष्टि का संकेत करा-कर मंद मुसकान से ही राम को पति बतलाने का जो वैदग्ध्य प्रस्तुत किया है, उससे सीता जी का प्रगाढ़ स्नेह, लज्जाशीलता एवं नारी चातुर्य का अत्यन्त प्रकृष्ट परिचय प्रस्तुत किया है।[1]

अशोक वाटिका के प्रसंग में कवि ने सीता की वेदना को केवल एक ही छन्द में प्रदर्शित किया है। जब हनुमान् उनसे प्रत्यभिज्ञान माँगते हैं, तब सीता जी चूड़ा से छोर कर उन्हें चूड़ामणि अर्पित करती हैं। यहाँ पर कवि ने काकवृत्तान्त अथवा चित्रकूट तिलक वृत्तान्त का संकेत तक नहीं किया। सीता जी हनुमान् को आशीर्वाद देती हैं और कहती हैं कि तात ! मेरे दिन जिस प्रकार व्यतीत होते हैं, तुम देखते ही जाते हो, तुम्हारे आने से अवलम्ब मिला था, अब तुम भी चले :

मातु ! कृपा कीजै, सहदानि दीजै, सुनि सीय,
दीन्ही है असीस चारु चिन्तामणि छोरि कै।
कहा कहौं, तात ! देखे जात ज्यों बिहात दिन,
बड़ो अवलम्ब हौ सो चले तुम तोरि कै॥ (कवि० । सुन्द० ।२६)

ग्रन्थ के उत्तर काण्ड में सीता की अग्नि परीक्षा एवं सीतात्याग का उल्लेख केवल एक ही पंक्ति में किया है :

तीय सिरोमनि सीय तजी, जेहि पावक की कलुषाई दही है।
(कवि०। उत्तर०।६)

इसके अतिरिक्त सीता जी के व्यक्तित्व पर कवि ने कोई विस्तृत प्रकाश नहीं डाला। कवितावली एक ऐसी रचना है जो कि मुक्तक शैली में लिखी गई है, अतः उसमें कथावस्तु की क्रमबद्धता नहीं मिलती। सम्भवतः तुलसी के स्फुटिक छन्दों को ही, बाद में संग्रहित कर दिया गया है।

गीतावली : इस ग्रन्थ में कवि ने राम की बाललीलाओं एवं रामराज्य के सुखों तथा ऐश्वर्यों पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित किया है, अतः इसमें भी कथावस्तु का गाढ़बन्ध देखने को नहीं मिला।

इस ग्रन्थ में पुष्पवाटिका में श्री राम के पुष्प-चयन करते समय सीता जी से भेंट होती है। सीता जी गौरी पूजन हेतु वहाँ आती हैं और राम के रूप को देख-कर अनुरक्त हो जाती हैं। वे माता गौरी को माल्यार्पण करती हैं और मनोवांछित वर की कामना करती हैं :

---

१. सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं, समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
(कविता० अयो० ।२२)

अन्तरजामिनि भवभामिनि स्वामिनि सों हौ
कही चाहौ बात, मातु अंत तौ हौ लरिकै ।
मूरति कृपालु मंजु माल दै बोलत भलै,
पूजौ मन कामना भावतो वरु वरिकै ।। (गीतावली ७०।३)

उक्त कथन से सीता का अनुराग आस्तिकभाव, विनय एव गाम्भीर्य व्यक्त होता है ।

वनपथ में कवि ने ग्रामीणो के मुख से सीता जी की भूमि से उत्पत्ति के वृत्तान्त का भी संकेत कराया है ।[1] इसी भूमिका का सकेत मानस मे भी यत्र-तत्र किया गया है, इस ग्रन्थ की सीता की इष्टदेवी भवानी मानी गई है ।[2] कवि ने सीता जी के अलौकिक प्रभाव का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है कि जब से सीता जी उत्पन्न हुई, तब से जनक का भाग्योदय हुआ :

तब ते दिन दिन उदय जनक को जब ते जानकी जाई । (गीता० ।६६।२)

वनगमन के समय राम सीता को भवन मे रहने के लिए एव कौशल्यादि की सेवा करने का उपदेश देते हैं (अयो०।५) । सीता जी को उक्त उपदेश अच्छा नही लगता । वे वाल्मीकि की सीता की भाँति सरुप होकर राम-भर्त्सना नही करती, अपितु व्यथित होकर मूर्च्छित हो जाती है । सज्ञा प्राप्त होने पर वे राम से वन चलने के लिए निवेदन करती है, जिसमे अपनी कष्टसहिष्णुता, सेवावृत्ति एव प्रियदर्शन लाभ का सकेत देती है और न ले चलने पर अपनी मृत्यु की भी सम्भावना व्यक्त करती है :

कृपानिधान सुजान प्रानपति सग विपिन हौ आवौगी ।
गृह ते कोटि गुनित सुख मारग चलत, साथ सचु पावोगी ।।
थाके चरन कमल चपौगी स्रम भए बाउ डोलावौगी ।
नयन चकोरनि मुख मयंक छवि सादर पान करावौगी ।।
जौ हठि नाथ राखिहौ मो कहं तौ सग प्रान पठावौगी ।
तुलसिदास प्रभु विनु जीवित रहि क्यो फिर वदन देखावौगी ।।
(गीता० । अयो० ।६)

सीता जी पुन: तर्क देती हुई कहती है कि आप के विना मेरा गृह में कार्य ही क्या है, वन में तो आपके साथ दु:ख भी सुखवत् प्रतीत होगे । मै भवन मे सुखो का उपभोग करू और आप वन में रहें ! मानस मे भी कवि ने इसी भाव को वक्रोक्ति द्वारा प्रकट किया है :

मै सुकुमारि नाथ वन जोगू । तुमहिं उचित तप मो कहं भोगू ।।

---

१. वडे भाग मख भूमि प्रकट भइ सीय सुमंगल ऐनी । (गीता० ।७६।१)
२. सुनियत भवभावते राम है, सिय भावती भवानी है । (गीता० ।७८।३)

गीतावली की सीता अतिशय विनम्र हैं। उन्हें आश्चर्य होता है कि राम ने ऐसे कठोर वचन कैसे कहे।[1] कवितावली की सीता की भाँति (अयो०।११) इस ग्रन्थ की सीता भी कोमल हैं। वे अयोध्या से चलते ही पूछने लगती हैं कि कानन कितनी दूर है। वे भी किसी वृक्ष के नीचे विराम कर राम के चरणों की धूल पोंछना चाहती हैं और बयार कर राम के श्रम को दूर करना चाहती हैं।[2]

वनपथ में राम और लक्ष्मण के बीच चलती हुई सीता वारिद और विधु के बीच तड़ित के समान प्रतीत होती हैं।[3] किसी को सीता जी हरि तथा इन्दु के मध्य इन्दिरा-सी प्रतीत होती हैं।[4] कोई उन्हें काम और वसन्त के बीच सुशोभित रति समझते हैं।[5] इतना ही नहीं ग्रामीण उन्हें ब्रह्म और जीव के मध्य मूर्तिमयी माया मानते है।[6] किसी को सीता जी उमा और रमा से भी अधिक सुन्दरी प्रतीत होती हैं।[7] उपर्युक्त वचनों के आधार पर सीता जी अद्वितीय सुन्दरी सिद्ध होती है।

इस ग्रन्थ की सीता विश्ववन्दिनी हैं।[8] कवि ने उनके चित्रकूटवासकाल में दाम्पत्य सुख का अत्यन्त रोचक चित्रण किया है। राम सीता के सौन्दर्य का चित्रण शिलाओं में करते हैं और कभी-कभी उन्हें पुष्पों से अलंकृत करते है। सीता से मनो-विनोद करने के लिए वे उनके तिलक लगाते हैं।[9] सम्भवतः इसी तिलक को अनेक कवियों ने अभिज्ञान के रूप में भी प्रयुक्त किया है। इससे कवि ने सीताराम की माधुरी एवं विलास का भी संकेत किया है।

गीतावली की सीता कनकमृग को देख कर राम को प्रेरित करती है। उनकी दृष्टि से यदि मृग जीवित मिलता है, तब तो पालने योग्य है और यदि मृत होने पर मिलता है तो इसका मञ्जुल मृगछाला बनेगा।[10] इससे कवि ने सीता में स्त्री के स्व भाविक चांचल्य की व्यंजना की है।

जब कपट मृग मारीच मरते समय हा लपन कह कर पुकारता है, तब लक्ष्मण

---

१. गीतावली (अयो०।७,८) २. गीतावली (अयो० ।१३)

३. मनहुँ वारिद विधु बीच ललित अति।
राजति तड़ित निज सहज बिछोही॥ (गीतावली । अयो० । १६।२)

४. वही, अयो० । १८ । २ ५. वही, अयो० । २४ । २

६. वही, अयो० । २८ । ३ ७. वही, अयो० । ३० । २

८. वामअंग वामी विस्व वंदिनी। (अयो० । ४३।१)

९. सिय अंग लिखै धातुराम, सुमननि भूषन विभाग।
तिलक करनि का कहौं, कलानिधान की। (गीता० । अयो० ४४।४)

१०. वही। (अरण्य० । ३)

सीता जी को सान्त्वना देते है, किन्तु सीता जी उन्हें कटु वचन कह कर जाने के लिए वाध्य करती हैं :

सुनहु तात ! कोउ तुम्हहिं पुकारत प्राननाथ की नाईं।
कह्यो लपन हत्यो हरिन, कोपि सिय हठि पठयो बरिआई ॥
(गीता० । अर० । ६)

भक्ति भावना के कारण यहाँ कवि ने सीता जी के कटु वचनो का उल्लेख नही किया, किन्तु उनका कुपित होना एवं बलपूर्वक हठात् लक्ष्मण को राम के पास प्रेषित करना उनके अविवेक, सन्देह अथवा प्रकृष्ट पतिप्रेम को प्रकट करता है। सीता की सुरक्षा हेतु लक्ष्मण द्वारा एक धनुरेखा खीचने का उल्लेख इस ग्रन्थ मे भी मिलता है, सीता ने जिसका उल्लघन किया था।[1]

जब रावण सीता का अपहरण करता है, उस समय सीता जी विलाप करती हुई लक्ष्मण को निर्दोष ही नही सिद्ध करतीं, अपितु वे अपनी भूल स्वीकार करती हुई लक्ष्मण से क्षमायाचना भी करती हैं :

कहे कटु वचन रेख बोधी मैं, तात छमा सो कीजै।
देखि बधिक बस राजमरालिनि, लषनलाल छिनि लीजै ॥ (अरण्य० ।७)

सीता के उपर्युक्त विलाप से उनकी शालीनता सिद्ध होती है। उन्हें राम की अपेक्षा लक्ष्मण पर अपनी सुरक्षा का अधिक विश्वास था, इसी हेतु वे अपना उद्धार करने के लिए लक्ष्मण का स्मरण करती हैं।

अशोक वाटिका में सीता जी अत्यन्त कृश हो गई थी, निरन्तर रामनाम की रट लगाये रहती थी।[2] केशव की सीता की भाँति वे भी हनुमत्प्रदत्त मुद्रिका को देखकर उससे राम की कुशलता पूछने लगती है।[3] उन्हे अब तक लक्ष्मण का ध्यान है कि मैने लक्ष्मण को अपशब्द कहे थे, पता नही कि लक्ष्मण रुष्ट है या नही। उन्होने के क्षमा किया या नही, इसकी उन्हें विशेष चिन्ता है और लक्ष्मण के बारे मे इसी ण उन्हें अँगूठी से पूछने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

हनुमान चित्रकूट का वृत्तान्त वतला कर सीता को आश्वस्त करते है। सीता सीतका विश्वास कर आशीर्वाद देती है। अब सीता जी को राम के दर्शन की वन में तृषित करती है।

करूँ और अ... । (अर० । ७)

प्रकट किया है : य सोभित लगी उड़ि धूल।
मैं सुकुमारि ... मनि गयो मोरे भूलि ॥

१. बड़े भाग मख भूमिन्तर राम राजिव नैन। (गीता० । सुन्दर० २)

२. सुनियत भवभावते

चित्रकूट कथा कुसल कहि सीस नायौ कीस ।
सुहृद सेवक नाथ को लखि दई अचल असीस । (गीता० । सुन्दर २।६)
भये सीतल स्रवन तन मनु सुने वचन पियूप ।
दास तुलसी रही नयननि दास ही की भूख ।।

इससे सीता जी की कृतज्ञता एवं पतिभक्ति का सुन्दर प्रमाण मिलता है। प्रिय के सम्बन्ध से उसके सहयोगी भी प्रिय हो जाते हैं, इस मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसार कवि ने हनुमान् को सीता का कृपापात्र बना कर उन्हें अचल आशीर्वाद दिलाया है।

सीता जी राम के वियोग में अतिशय व्यथित हैं। वे हनुमान् से बार-बार यही पूछती है कि राम कब आयेंगे और मेरा कब उद्धार होगा। उन्हें केवल अपने उद्धार की ही चिन्ता नही है, अपितु लोकपाल, सुर, नागादि जो कि रावण द्वारा बन्दी बनाये गये हैं, उनकी भी चिन्ता है। इसके अतिरिक्त वे यह भी चाहती हैं कि मेरे पति विभीपण को लंका का राज्य प्रदान करें और नारदादि श्री राम के यश का गान निरन्तर करें। इस प्रकार गीतावली की सीता लोकोपकार के लिए भी व्यथित एवं चिन्तित हैं, उन्हें सज्जनों से भी सहानुभूति है।[1]

जब हनुमान् सीता से भेंट कर चलना चाहते हैं, तब पुलक से सीता जी का शरीर शिथिल हो जाता है, नेत्रों से जल छलकने लगता है। वे सन्देश देने की इच्छा तो करती हैं, किन्तु प्रियतम राम के हृदय की बात समझ कर हृदय में ही सारी व्यथा छिपा लेती हैं, मुख से वचन नही निकलते।[2]

इस उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि सीता जी को प्रियतम राम के करुण स्वभाव एवं अपने ऊपर अगाध प्रेम होने का दृढ विश्वास है। वे संदेश देकर राम को अधिक व्यथित नही करना चाहती।

हनुमान यहाँ से जाकर जानकी की व्यथा का यथार्थ चित्रण करते है। वे श्री राम से कहते हैं कि जानकी आपके वियोग में विरह की साकार मूर्ति बन गई हैं, उनके नेत्र चित्रलिखित से निश्चल हो गये हैं, इसी प्रकार चरणों तथा कर्णों की स्थिति है। जिह्वा निरन्तर आपका नाम रटती हैं, हाथ सिर पर रहते है और अपने ही चरणों में उनकी दृष्टि रहती हैं। वे दर्शन की अभिलापा से सदैव आपके ध्यान में मग्न रहती हैं, केवल त्रिजटा राक्षसी ही उनसे सहानुभूति रखती है :

१. गीतावली। सुन्दर०। ६, १०
२. कपि के चलत सिय को मनु गहवरि आयो
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयनन्हि छायो ।।
कहत चह्यो सदेस नहिं कह्यो पियके जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो
(गीता०। सुन्दर०।१५)

रघुकुल तिलक वियोग तिहारे।
मैं देखी जब जाइ जानकी, मनहु विरह मूरति मन मारे।
चित्र से नयन अरु गढ़े से चरनकर मढ़े से स्रवन नहिं सुनत पुकारे।
रसना रटति नाम कर सिर चिर रहै, निज पद कमल निहारे।
दरसन आस लालसा मन महं राखे प्रभु ध्यान प्रान रखवारे।
तुलसीदास पूजति त्रिजटा नीके रावरे गुन गन सुमन सवांरे।
(गीता० । सुन्द०।१८)

यहाँ पर कवि ने आदर्श विरहिणी श्री सीता में विरह की कितनी गम्भीरता प्रदर्शित की है। एक ओर तो पतिविरह और दूसरी ओर साधना की यह चरम सीमा, क्यो न हो विदेह की पुत्री के लिए यह साधना भी तो सरल ही कही जायगी। ये आदर्श जनकनन्दिनी न पालेगी, तो कौन पालेगा !

इसके अतिरिक्त कवि ने उत्तरकाण्ड में सीता जी का सरस रूप भी प्रस्तुत किया है। सीता जी सखियो को साथ मे लेकर राम के सग होली खेलती है, वे जिसको घेरती है उसे नचा कर छोड़ती है :

उत जुवति जूथ जानकी संग। पहिरे पट भूषन सरस रग।
लिए छरी बैत सोधो विभाग। चांचरि झूमक कहै सरसराग।।
नूपुर किंकिन धुनियति सोहाई। ललनागन जब जेहि धर ईधाइ।
लोचन आंजहि फगुआ मनाइ। छाडहि नचाइ हा हा कराइ।।
(गीता० । उत्तर० ।२२)

रामचरितमानस में कवि ने सीता की इस विनोदप्रियता का उल्लेख नही किया। इस ग्रन्थ मे तुलसी श्रीकृष्ण भक्ति के लालित्य से प्रभावित प्रतीत होते है, अतः सीता जी मे भी उक्त लालित्य का चित्रण कर दिया है।

सीता जी के वाल्मीकि आश्रमवास का उल्लेख करने मे कवि ने सीता के दोहद को मुख्यता प्रदान की है। राम एक ओर तो चरमुख से सीता विषयक लोकापवाद सुनते है और दूसरी ओर सीता के दोहद पर भी विचार करते है। सीता जी की इच्छा थी कि मैं वन मे 'जाकर तिय तनय समेत तापस पूजिहौ बन जाय।' अतः राम लक्ष्मण द्वारा सीता जी को वाल्मीकि मुनि के आश्रम मे पहुँचा देते है।[1] जब लक्ष्मण लौटने लगते है, तब सीता जी कहती है :

लखनलाल कृपाल। निपटहि डारिबी न बिसारि।
पालबो सब तापसिन ज्यों राजधरम विचारि।। (गीता० । उत्तर० ।२९)

---

१. गीतावली (उत्तर०।२७)

सीता जी के उक्त कथन में कितनी पीड़ा छिपी है। एक साम्राज्ञी अपने को एक साधारण तपस्विनी के रूप में ही रक्षित एवं स्मृत होने के लिए प्रार्थना करती है। सीता के प्रभाव से मुनि का आश्रम अधिक मांगलिक हो जाता है।[1] वन के पक्षी तथा मृग भी प्रमुदित होते हैं, जंगल में मंगल की अद्‌भुत सृष्टि हो जाती है। इससे सीता जी के अलौकिक प्रभाव का प्रमाण मिलता है।

सीता जी शुभ मुहूर्त में दो पुत्रों को जन्म देती हैं। मुनिवर वाल्मीकि उनके छठी, नामकरणादि संस्कार करते हैं, सीता जी वात्सल्यपूर्ण होकर पुत्रों के चरित्रों को देखकर प्रफुल्लित रहती हैं, किन्तु फिर भी उनका चित्त राम को भूल नहीं पाता।

मुनिवर करि छठी कीन्हीं बारहे की रीति।

× × ×

निरखि बाल विनोद तुलसी जात बासर बीति।
पियचरित सियचित चितेरी लिखत नित हितभीति॥

(गीतावली। उत्तर०।३५)

इसके पश्चात् कवि ने सीता जी के चरित्र का अन्तिम भाग नही चित्रित किया। गीतावली भी एक मुक्तक रचना है, अतः उसमें सीता जी के समस्त जीवन की झाँकी नहीं दिखलाई पड़ती, केवल कुछ अंशों को लेकर ही कवि ने अपने भावों की अभिव्यक्ति की है।

विनयपत्रिका : यह ग्रन्थ भी मुक्तक शैली में लिखा गया है। इसमें सीता जी के चरित्र का कोई उल्लेख नही है। इसमें तुलसी ने उन्हें जगजननि के रूप में मान्यता दी है। सीता जी का दयालु स्वभाव जानकर कवि उनसे निवेदन करता हुआ कहता है।

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मोरिओ सुधि धाइवी कछु करुन कथा चलाइ॥ (विनय पत्रिका। ४१)
जानकी जगजननि जन की किए बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुनगन गाइ॥ (विनय पत्रिका। ४१)

उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त रामाज्ञाप्रश्न में कवि ने सीता जी का महत्व प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि सीता की चरणवन्दना एवं उनके नामकरण से स्त्रियाँ पतिव्रता हो

---

१. जब ते जानकी रही रुचिर आस्रम आइ।
गगन जल थल विमल तब ते सकल मंगलदाइ॥
निरस भूरुह सरस फूलत अति अति अधिकाइ।
कन्द मूल अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ॥ (गीतावली। उत्तर०। ३३)

जाती हैं और उन्हें प्रियप्रेम प्राप्त होता है।[1] सीता जी को वृक्षों एवं लताओं के आरोपण तथा सिंचनादि में विशेष रुचि थी।[2] इस ग्रन्थ मे संक्षिप्त रामकथा दी हुई है। इसके अनुसार जयन्त वृत्तान्त (२।६।५) के अतिरिक्त सीता जन्म का वृत्तान्त महत्वपूर्ण है।

सोधत मख महि जनकपुर सीय सुमंगल खानि।
भूपति पुन्य पयोधि जनु, रमा प्रगट भइ आनि। (रामाज्ञा०४।५।५)

ग्रन्थ के षष्ठ सर्ग (७।६) में कवि ने सीता के पृथ्वी प्रवेश की भी सूचना दी है। इस प्रकार उपर्युक्त ग्रन्थों में सीता जी का जो स्वरूप उपस्थित किया गया है, उसकी तुलना में मानस की सीता का रूप अधिक व्यवस्थित है, अतः अगले पृष्ठों मे रामचरितमानस की सीता का विश्लेषण किया जायेगा।

रामचरितमानस में श्री सीता : इस ग्रन्थ की सीता संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करने वाली आदिशक्ति है। वे राम की वल्लभा होती हुई भी सर्वश्रेयस्करी है।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करी सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥ (बाल०। श्लो० ५)

तुलसी की इस सीता में संस्कृत अध्यात्मरामायण का सर्वाधिक प्रभाव है। उपर्युक्त श्लोक का आधार भी अध्यात्मरामायण का निम्नलिखित श्लोक प्रतीव होता है :

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य सन्निधि मात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता। (अध्यात्म०। बाल०।१।३४)

तुलना करने पर ज्ञात होता है कि इन दोनो ग्रन्थों मे सीता जी संसार के उद्भव, स्थिति एवं संहार करने वाली आद्याशक्ति के रूप में प्रस्तुत की गई है, किन्तु वाल्मीकि जी ने उन्हें आदर्श मानवी के रूप में ही प्रधानता दी है। केवल युद्धकाण्ड (११७।२६) में ही उन्हें लक्ष्मी का अवतार माना गया है, जोकि पाश्चात्य विद्वानों की धारणा के अनुसार प्रक्षिप्त है। यदि इसे प्रक्षिप्त न भी मानें तब भी उनका आद्याशक्ति का रूप तो वाल्मीकि रामायण मे कही प्रस्फुटित नही माना जा सकता।

यद्यपि मानस में विस्तृत रूप में सीता जी की उत्पत्ति के विषय मे कोई उल्लेख नही मिलता, किन्तु कई स्थलों पर उन्हें पृथ्वी की पुत्री के रूप में मान्यता दी गयी है। यथा :

---

१. सीता चरन प्रनामु करि सुमिरि सुनाम सनेम।
सुतिय होहि पतिदेवता, प्राननाथ प्रिय प्रेम॥ (रामाज्ञा० सर्ग३ सप्तक ४।५)

२. सीचत सीय सरोज कर, वये विटप वट वेलि।
समउ सुकालु किसानहित, सगुन सुमंगल केलि॥ (वही।२।३।३)

सिय पितु मातु सनेह बस, बिकल न सकी संभारि।
धरनि सुता धीरज धरेउ, समउ सुधरमु बिचारि॥
(अयो० । २८६ दो०)

इसकी तुलना में कविवर वाल्मीकि ने अपनी रामायण में अनसूया सीता के मिलन प्रसंग में स्वयं सीता द्वारा उनकी उत्पत्ति का वर्णन (अयो० ११८।२७, ३२) कराया है। जिसके अनुसार सीता जी क्षेत्रमण्डल के कर्षण में मिथिलाधिप जनक को प्राप्त हुई थीं। जनक के कोई सन्तान नहीं थी, अतः उन्होंने पुत्री कह कर स्नेह प्रदर्शित किया। इसी बीच आकाशवाणी द्वारा भी पुष्टि की गई कि हे राजन्! यह कन्या धर्म से तुम्हारी तनया है। मानस में कवि ने इस कथानक को क्यों नहीं प्रस्तुत किया? यह एक मौलिक प्रश्न है! हमारे विचार से तुलसी का विशेष ध्यान राम पर ही केन्द्रित रहा है, अतः उन्होंने सीता के जन्म एवं शैशव पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला। उन्होंने सीधे पुष्पवाटिका के प्रसंग में उन्हें प्रस्तुत किया है।

तेहि अवसर सीता तहं आई। गिरजा पूजन जननि पठाई। (बाल० । २२८।२)
यहाँ पर तुलसी ने सीता जी को राम पर अनुरक्त सिद्ध किया है। जब एक सखी सीता जी से राम-लक्ष्मण के उद्यान आने का समाचार देती है, तब सीता जी उनके दर्शन हेतु विशेष लालायित हो जाती हैं। उन्हें नारद जी के उन वचनों का स्मरण आता है, जब कि उन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि सीता पति इन्हें इसी उद्यान में मिलेगा।[1] इस प्रकार मानस की सीता के प्रेम में अलौकिकता का प्रभाव प्रस्तुत किया गया है।

वाल्मीकि रामायण में ही नही अपितु अध्यात्मरामायण में भी सीता जी का पुष्पवाटिका मिलन अनिर्णीत है। संस्कृत ग्रन्थों में जयदेव कृत प्रसन्नराघव नाटक में उक्त प्रसंग प्रस्तुत किया गया है। उसमें सीता जी सन्ध्या समय चन्डिकायतन में राम के दर्शन करती हैं।[2] मैथिलीकल्याण नामक नाटक में भी सीता-राम के उक्त पूर्वमिलन का वर्णन किया गया है, किन्तु उसमें कवि ने श्रृंगार को अश्लीलता की परिधि तक पहुँचा दिया है।[3]

प्रसन्नराघव का रचनाकाल बारहवीं शताब्दी और मैथिलीकल्याण का रचनाकाल तेरहवीं शताब्दी (१२९० ई०) माना जाता है। उक्त दोनों ग्रन्थ तुलसी से पूर्व

१. सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसुमृगी सभीत॥
(रा० च० मा० । बा० । २२९)

२. जयदेव (प्रसन्नराघव) अंक २ । ५, ३०

३. हस्तिमल्ल (मैथिलीकल्याण) अंक १, ४

ही निर्मित हो चुके थे, किन्तु रामचरितमानस की पुष्पवाटिका कथा का मूल हमें प्रसन्नराघव ही प्रतीत होता है। मैथिलीकल्याण का विस्तृत शृंगार वर्णन सीता-अभिसारिका (अंक ३, ४) का दलित रूप भला तुलसी जैसे मर्यादावादी भक्त को कैसे ग्राह्य हो सकता था।

तुलसी की सीता राम के प्रति स्निग्ध हैं, किन्तु उनकी प्रीति पुरातन है।[1] वे राम को देखती ही रह जाती है। उनके प्रियतम राम इस जन्म के नही, वे तो सीता जी की पूर्वनिधि थे, जिसे इस जन्म में सीता ने पहचान लिया था।[2] इस प्रेम में सीता जी अपनी गम्भीरता एवं सलज्जता को सुरक्षित रखती है, वे नेत्र के मार्ग से राम को हृदय में बैठाकर पलक कपाट लगा लेती है।[3] राम के लताभवन से प्रकट होने के पश्चात् एक बार सखी के परामर्श से सीता जी पुनः श्री राम के दर्शन करती है, किन्तु फिर भी उन्हे सकोच लगता है।[4] वे राम की नख-शिख शोभा को देखकर पूर्णतया अनुरक्त होती है और अपने पिता जनक के प्रण का स्मरण कर क्षुब्ध होती है।[5] सीता के उक्त क्षोभ का वर्णन हनुमन्नाटक के 'कमठपृष्ठकठोरमिद धनुः' के आधार पर किया गया है। इस वर्णन से यह मनोवैज्ञानिक स्थिति का पता चलता है कि सीता जी राम की कोमलता और धनुप की कठोरता के साथ ही साथ पिता जी के अपरिहार्य प्रण से विशेष चिन्तित थी। उन्हे अपनी माता सुनयना जी का अनुशासन भी मान्य था, अतः रामदर्शन करने मे जो विलम्ब हो गया, उसके कारण उन्हे माता जी की तर्जना का भी भय था।[6] अन्ततः वे गिरिजागृह में गौरी देवी की अधिक अनुराग से पूजा करती है और गुप्त रूप मे राम को वररूप में प्राप्त करने की प्रार्थना करती है।[7] कवि ने यहाँ भी सीता की शालीनता का परिचय दिया है। उनकी प्रार्थना को सुनकर गौरी देवी सहज सुन्दर सांवरो मन राचो वर की प्राप्ति का वर देकर सीता को आश्वस्त करती है और सीता के वामांग का स्फुरण भी उसकी पुष्टि करता है।[8]

---

१. चली अग्रकरि प्रिय सखि सोई। प्रीत पुरातन लखै न कोई (मानस। वाल० २२६।५)

२. मानस (वाल०। २३२। ४)

३. मानस (वाल०। २३२।७)

४. सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे॥ (मानस। वाल०।२३४।३)

५. मानस० (वाल० ।२३४।४)

६. भयउ विलम्ब मातु भय मानी॥ (मानस०। वाल० ।२३४।७)

७ मोर मनोरथु जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के॥
कीन्हेउ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे वैदेही॥
(मानस०। वाल० ।२३६।३,४)

८. मानस० (वाल० ।२३६)

जिस समय रंगभूमि में राम प्रविष्ट होते हैं, उस समय सभी व्यक्ति अपनी-अपनी भावनानुसार उनके दर्शन करते हैं। सीता जी किस भाव से राम के दर्शन करती हैं, इस बात को कवि अकथनीय कह कर रहस्यात्मकता की पुष्टि करता है।[1] वाल्मीकि जी ने सीता की इस गुह्य रागात्मकता का कोई उल्लेख नहीं किया। तुलसी ने श्रीमद्भागवत (१०।४३।१७) के आधार पर ही इस अंश की रचना की है, किन्तु वहाँ पर कृष्ण की कोई ऐसी प्रियतमा नहीं थी जिसका उल्लेख किया जाता। अस्तु इस प्रसंग में सीता जी के अनुरागपूर्ण दृष्टि की वर्णना गोस्वामी जी की मौलिक देन एवं रागात्मक भक्ति का प्रमाण सिद्ध होती है।

धनुर्भंग के प्रसंग में कवि ने सीता के सौन्दर्य को लोकातीत सिद्ध किया है। सरस्वती, पार्वती तथा रति भी उनके सौन्दर्य के समक्ष तुच्छ है। यदि सौन्दर्य का क्षीरसागर हो, परमरूपमय कच्छप हो, शोभा ही रज्जु बने, शृंगार ही मन्दराचल हो और साक्षात् कामदेव ही मन्थनकर्ता हो और इस प्रकार यदि कही लक्ष्मी का जन्म हो तब कही सकोच के साथ वह सीता के सौन्दर्य की तुलना में उपस्थित की जा सकती है।[2] वाल्मीकि रामायण अथवा अध्यात्म० मे सीता के इतने अधिक सौन्दर्य का वर्णन नही मिलता। इस प्रसंग में तो दोनो ग्रन्थो में सौन्दर्य की चर्चा भी नही मिलती।

जब राम धनुर्भंग करने के लिए चलते है, उस समय सीता जी अनेक देवी देवताओ को सभीत होकर मनाती है। महेश भवानी की वन्दना मे तो वे अत्यन्त आतुर हो जाती है, क्योकि भवानी ने तो उन्हे मन जाहि राचो मिलहि सो वर कहकर आशीर्वाद प्रदान किया था। इनके अतिरिक्त वे गणनायक का भी स्मरण करती है[3] क्योकि ये सिद्धिकारक एव विघ्ननाशक देव है।[4] विवाह के समय और सकट के समय इनके नामोच्चारण का महत्व है ही। यहाँ सीता जी के समक्ष दोनो की समस्या है, अत. गणेश स्मरण उनकी आतुरता का नही, अपितु बुद्धिमता का भी परिचायक है।

धनुर्भंग होते ही सीता जी राम के गले मे जयमाला डालती है।[5] वाल्मीकि रामायण मे इसका उल्लेख नही किया गया। अध्यात्म०(बाल०।६।२६,३१) मे स्वर्णमयी

---

१. रामहि चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहि कथनीया॥
(मानस०। बाल०। २४२।६)

२. रामचरित मानस (। बाल० २४७।४, ८ तथा २४७ दोहा ॥)

३. रामचरित मानस० (। बाल० ।२५७।४, ८ ॥)

४. विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥
(स्फुटिक गणेश द्वादशनाम महिमा)

५. रा० मा० (बाल०।२६४ ॥)

गाला के प्रक्षेप करने का उल्लेख किया गया है। कुछ लोग इस जयमाला योजना को तुलसी की मौलिक कल्पना मानते है।[1] इससे स्पष्ट है कि उन्होंने अध्यात्म० की कथावस्तु का अध्ययन नही किया।

मानस की सीता अपने प्रभाव से सिद्धियो को बुला कर बरातियों का आतिथ्य कराती है।[2] वाल्मीकि० अथवा अध्यात्म० मे सीता जी के इस अलौकिक प्रभाव का उल्लेख नही मिलता। मानस की सीता के विवाह मे शची, रमा, भवानी तथा अन्य देवागनायें भी सम्मिलित होती है।[3] किन्तु वाल्मीकि की सीता अथवा अध्यात्म० की सीता के विवाह में देवांगनाओं को सम्मिलित होने का उल्लेख नही मिलता।

मानस की सीता का खग मृगों से भी बड़ा स्नेह था। उन्होंने जनकपुर मे अनेक शुक सारिकाये पाली थी, वे सीता जी के गमन करते समय अत्यन्त व्यथित होती है।

शुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पीजरन राखि पढ़ाये॥
व्याकुल कहहि कहाँ वैदेही। सुनि धीरज परिहरहिं न केही॥
(राम० मानस। बाल०।३३७।१,२)

वाल्मीकि अथवा अध्यात्म० की सीता की विदा की वेला मे पशुपक्षियो के विकल होने का उल्लेख नही है।

राम वनगमन के प्रसंग मे मानस की सीता उक्त कटुवृत्तान्त को सुन कर व्यथित होती है और माता कौशिल्या जी के पास जाकर शोचमुद्रा मे बैठ जाती है, (अयो०।५७) वाल्मीकि की सीता को राम के वनगमन का वृत्तान्त ज्ञात नही हो पाता। वे तो राम के उदासीन मुखमंडल को देख कर (सर्ग २६) दुःखित होकर राम से राज्याभिषेक न होने का कारण पूछती है। राम वनवास की आज्ञा का उन्हें वृत्तान्त बतला कर व्रतोपवास द्वारा जीवनयापन करने का उपदेश देते हुए सीता को अयोध्या में ही रहने की आज्ञा देते है। (अयो०।२६।२४,३८) मानस की सीता को गृह में रखने के लिए कौसिल्या जी राम से आग्रह करती है, किन्तु वाल्मीकि की सीता के लिए कौसिल्या जी आग्रह नही करती।

दोनों ग्रन्थो से राम वन के विधि कष्टों का वर्णन कर सीता को अयोध्या में ही रहने का परामर्श देते है। इस प्रसंग मे मानस की सीता दुःखित होती है, किन्तु राम के प्रति सरुप नहीं होती। वे राम से सीधे न कहकर माता कौसिल्या के समक्ष राम को सुनाती हुई कहती है।

---

१. डॉ० शिवकुमार शुक्ल : रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १४०
२. रा० मानस (बाल०।३०६ दोहा।।)
३. रा० मानस (बाल०। ३१८।६, ७।।)

दीन्ह प्रानपति मोहिं सिख सोई । जेहि विधि मोर परम हित होई ।।
मै पुनि समुझि दीख मन माही । पिय वियोग सम दुख जग नाही ।।
(मानस० । अयो०। ६४)

मानस की सीता सब सम्बन्धों की तुलना में पति पत्नी सम्बन्ध को श्रेष्ठ वनला कर अपनी कष्टसहिष्णुता, सेवावृत्ति, आत्मसुरक्षा एवं प्राणपरित्याग तक की वाते प्रस्तुत करती हैं । सर्वत्र विनय एवं दैन्य को पुरस्सर करती हुई वनगमन में साथ चलने के लिए प्राणपण से प्रस्तुत होती है ।[1]

इस प्रसग मे वाल्मीकि की सीता प्रणयसक्रुद्धा होकर राम के प्रस्ताव को अपहास्य, अनर्हं, अयशस्य एवं अश्रोतव्य कहती है । इसके पश्चात् नारी के लिए पति को ही एकमात्र आधार बतलाती है । मानस की सीता की भाँति वे भी कष्टसहिष्णु होने का वचन देती है, अपनी सेवावृत्ति, ब्रह्मचारिता आदि का उल्लेख करती हुई[2] यह भी कह देती है कि आप मुझे तैयार हो जाने पर रोक नही सकते ।

नाह शक्या महाभाग निवर्तयिहुमुद्यता ।। (अयो०।२७।१५)

मानस की सीता इतनी प्रखर अथवा आग्रहशील नही है, उनमे इतना दुस्साहस नही है । मानस की सीता यह तर्क नही देती कि मै आपके साथ निर्भीक होकर वन में विचरण करूँगी अनेक नदियो मे स्नान करूँगी । वाल्मीकि की सीता अपनी प्रकृति-प्रियता का परिचय देती हुई उक्त बातों का भी तर्क देती है । (वा० रा०। अयो० ।१७, २२) दोनों ग्रन्थो में सीता जी अपनी मृत्यु की सम्भावना व्यक्त करती है । अन्तर यह है कि वाल्मीकि की सीता तो स्पष्ट रूप से यह कह देती है कि मै आपके वियोग में प्राण त्याग देने का निश्चय कर चुकी हूँ (त्वयावियुक्तां मरणाय निश्चिताम् २७।२३) किन्तु मानस की सीता इसी बात को शालीनता के साथ इस प्रकार कहती है ।

राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत न जनिहहिं प्रान ।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, सील सनेह निधान ।। (मानस । अयो०।६६)

मानस की सीता को अधिक आग्रह नही करना पड़ता, किन्तु वाल्मीकि की सीता को अधिक आग्रह करना पड़ता है । उन्हें यह भी बतलाना पड़ता है कि ज्योतिपियों ने मुझे पितृगृह में ही वतलाया था कि तुम्हे वनगमन करना होगा । इसी प्रकार एक शम वृत्ता भिक्षुणी की भविष्यवाणी का भी प्रमाण देना पड़ता है ।[3] मानस की सीता को उक्त तर्क देने की आवश्यकता ही नही पड़ती । वाल्मीकि की सीता इतनी उत्तेजित हो जाती है कि वे विष अग्नि अथवा जल द्वारा आत्महत्या करने की धमकी भी

१. रा० मानस (अयो०। दो० ६४, ६७)
२. वा० रा० (अयो०।२७।१,१३)
३. वा० रा० (अयो०।२६।८, ६ तथा १३)

देती है।[1] इससे उनका स्वभाव उग्र प्रतीत होता है। मानस की सीता इतनी उग्रता क्या, सामान्य उग्रता का भी प्रदर्शन नहीं करती।

मानस की सीता एक बार की प्रार्थना से ही सफल हो जाती है, किन्तु वाल्मीकि की सीता को दो बार प्रार्थना करने पर भी सफलता नहीं मिलती। अन्ततः उन्हें राम के लिए कठोर एवं रुक्ष शब्दो का भी प्रयोग करना पड़ता है। वे राम को पुरुषविग्रहस्त्री तक कह डालती हैं और राम के उपदेश का खडन करती हुई कहती हैं कि तुम मुझे जिनकी सेवा के लिए रखना चाहते हो, तुम्ही उनकी सेवा करो।[2] अन्त मे इस बार भी आत्महत्या हेतु विषपान की धमकी देनी पड़ती है।[3] इस प्रकार वाल्मीकि की सीता एक क्षण भी राम का वियोग सहने के लिए उद्यत नही होती और करुणस्वर से रोती हुई राम का आलिगन करती है।[4] इतना करने पर राम उन्हें वन ले जाने की स्वीकृति प्रदान करते है।[5] इस प्रकार मानस की सीता मे शालीनता, विनम्रता, करुणा, शिष्टता, लज्जाशीलता एव पतिप्रेम का आधिक्य है जब कि वाल्मीकि की सीता मे शालीनता एव विनम्रता की मात्रा न्यून है। वे शिष्टता की सीमा का भी उल्लघन करती है। वे मानस की सीता की तुलना मे अधिक परुष स्वाभिमानिनी एव क्रोधमयी प्रतीत होती है।

हमारे विचार से यदि वाल्मीकि के राम इतने दृढ़ एव गम्भीर न होते तो सीता भी इतनी परुष न होती। मानस के राम सहृदय एव दयालु है, अतः उसकी सीता भी वैसी ही शालीन एव सरल है। वाल्मीकि की सीता स्वाभिमानी हैं, उनमें दैन्य नहीं है, मानस मे दैन्य की ही प्रधानता है और स्वाभिमान तो कही छू तक नही गया। इतना अवश्य है कि पतिप्रेम की पराकाष्ठा दोनो ग्रन्थो की सीता मे ही प्रतीत होती हैं।

मानस की सीता वन प्रस्थान के समय कौसल्या जी की चरणवन्दना करती हैं और कौसल्या जी उन्हें शिक्षा तथा आशीर्वाद देती है। (अयो०।६९) वाल्मीकि की सीता भी कौसल्या जी द्वारा पतिव्रत धर्म की शिक्षा प्राप्त करती है। अन्तर यह है कि मानस की सीता कौसल्या जी को कुछ उत्तर नही देती जब कि वाल्मीकि की सीता पतिव्रत धर्म पालन करने का आश्वासन देती है। वे यह भी कहती है कि मैं इस बात

---

१. यदि मां दुःखितामेव वन नेतु न चेच्छसि।
विपमग्नि जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात्॥ (वा० रा०। अयो०।२९।२१)

२. वही, (अयो०।३०।३।९)

३. वा० रा० (अयो० ।३०।३,९)

४. वा० रा० (अयो० ।३०।१९)

५. वही, (३०।२२॥)······(वही अयो०।३०।२७, ४७)

को भली प्रकार जानती हूँ कि नारी को पति के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए और उक्त बातें मैंने शास्त्रों से सुनी हैं।[१] इससे यह सिद्ध होता है कि मानस की सीता इस स्थल में भी अधिक विनीत एवं सुशील हैं, उन्हें अपनी बहुज्ञता का गर्व नही हैं, जब कि वाल्मीकि की सीता उतनी विनीत नहीं हैं। ऐसा लगता है कि उन्हें पातिव्रत धर्म का उपदेश बहुत अच्छा नहीं लगा। वे इस उपदेश को अपनी विद्वत्ता की दृष्टि से कोई विशेष महत्वपूर्ण न मानकर स्वयं पातिव्रत धर्म का वर्णन कर अपनी शास्त्रज्ञता का परिचय देने लगती हैं।

वन पथ में गंगा के दर्शन करने पर मानस की सीता गंगा जी से सकुशल लौटने की प्रार्थना करती हैं और लौटकर उनकी पूजा करने की प्रतिज्ञा भी करती हैं।

पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी॥ (अयो०।१०३।३)

वाल्मीकि की सीता भी गंगा के दर्शन कर पति तथा देवर समेत चतुर्दश वर्ष काननवास करके सकुशल लौटने पर पूजा करने की बात कहती हैं। यहाँ मानस की सीता की अपेक्षा वाल्मीकि की सीता राम के राज्याभिषेक की भी कामना करती हुई राज्य के प्रति इच्छुक प्रतीत होती हैं। वे ऐसा होने पर सौ सहस्र धेनु, वस्त्र, अन्नादि तो ब्राह्मणों को दान देने का संकल्प करती हैं और सहस्र घट सुरा तथा मांस से गंगा की पूजा करने का संकल्प करती है।[२] मानस की सीता ऐसा अर्चाविधान करने का कोई सुस्पष्ट विवरण नही देतीं। मानस में गंगा जी सीता जी को सफल मनोरथ होने का आशीर्वाद देती है[३], किन्तु वाल्मीकि की सीता को गंगा से आशीर्वाद नही मिलता। आगे चलकर यमुना के दर्शन करने पर मानस की सीता केवल करबद्ध प्रणाम ही करती है, पूजा की कोई प्रतिज्ञा नही करती[४] किन्तु वाल्मीकि की सीता यमुना से भी सकुशल लौटने की प्रार्थना करती हैं और गोसहस्र तथा सुराघटशतेन उनकी पूजा करने का संकल्प करती हैं।[५] उक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि मानस की सीता की तुलना में वाल्मीकि की सीता पूजापद्धति में अधिक कुशल हैं।

मानस की सीता को वनपथ में जनता का प्रेम तथा सौहार्द्र अधिक प्राप्त है। ग्राम वधूटियाँ तो सीता को सदासुहागिन होने का आशीर्वाद भी देती है।[६] वाल्मीकि

---

१. करिष्ये सर्वमेवाहं भार्या यदनुशास्ति माम्।
अभिज्ञास्मि यथाभर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे। (वा० रा०।अयो०।३९।२७)

२. वा०रा०। अयो०।५२।८२, ९१

३. मानस। अयो०।१०३ दोहा

४. मावस। अयो०।११२।१

५. वा०रा०अयो०।५५।१९, २०

६. अति सप्रेम सिय पायँ परि, बहुविधि देहिं असीस।
सदा सोहागिन होहु तुम, जब लगि महि अहिसीस॥ (मानस०।अयो०।११७)

की सीता को इतनी व्यापक सहानुभूति, इतना सत्कार और इतना सौहार्द्र ग्रामीण जनता से नहीं प्राप्त होता।

मानस की सीता को चित्रकूट में अपने पिता जनक जी एवं माता सुनयना जी के दर्शन हो जाते है। जनक उनको तपस्विनी के रूप में देखकर परम सन्तुष्ट होते है और उनके यश की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजसु धवल जगु कह सबु कोऊ।
(मानस० । अ. यो० । २८)

वाल्मीकि की सीता को यह सुअवसर ही नहीं प्राप्त होता। वे केवल कौसल्यादि के दर्शन कर उनकी सहानुभूति प्राप्त कर पाती है।[1] इस दृष्टि से मानस की सीता वाल्मीकि की सीता से अधिक भाग्यशीला हैं।

मानस की सीता को चित्रकूट में इन्द्रपुत्र जयन्त अपनी चोंच से चरणों मे आहत कर व्यथित करता है, फलस्वरूप श्रीराम, ब्रह्मशर के रूप मे सीक का बाण चलाकर उस काक को एकनयन करके उसके वध से विरक्त हो जाते है। वाल्मीकि की सीता को जयन्त अथवा काकासुर कई बार व्यथित करता है। वह सीता के स्तनो को अपनी चोंच से विदीर्ण कर देता है।[2] अन्त मे राम दर्भ को ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित कर काक पर प्रहार करते है और सर्वत्र भ्रमण के पश्चात् काकासुर अपना एक नेत्र खोकर राम से सुरक्षा पाता है। अध्यात्म० (सुन्दर० ।३।५ ३, ६०) में भी जयन्त द्वारा सीता के स्तनो में चचुप्रहार का उल्लेख किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानस में सीता जी की मर्यादा को सुरक्षित रखने एवं अश्लीलता से बचाने के अभिप्राय से कवि ने स्तनों के स्थान पर चरण को ही काक द्वारा विक्षत करने का उल्लेख किया हैं।

अत्रि के आश्रम में जाकर मानस की सीता उन्हें प्रणाम करती हैं और उनसे दिव्यवसन भूपन प्राप्त करती है।[4] अनसूया जी उन्हे पतिधर्म की शिक्षा भी देती हैं और उनके पातिव्रत्य की पर्याप्त प्रशंसा करती है। वाल्मीकि की सीता भी अनसूया का अभिवादन करती हैं। अनसूया सीता के सतीत्व की प्रशंसा करती हुई उन्हे यश तथा

---

१. वा० रा० । अयो० । १०५।२२,२६
२. मानस० । अरण्य० । दोहा १, २
३. ततः सुप्तप्रबुद्धां मा राघवांकात्समुत्थिताम् ।
वायसः सहसागम्य विददार स्तनान्तरे ॥ (वा० रा० । सुन्दर० । ३८।२२)
४. दिव्य वसन भूपन पहिराये। जे नित नूतन परम सुहाये ॥
(मानस । अरण्य० । ५।३)

धर्म प्राप्त करने का आशीर्वाद देती हैं।[1] दोनों ग्रन्थों की सीताओं में यह अन्तर है कि मानस की सीता अनसूया के पतिव्रत धर्मोपदेश को चुपचाप श्रवण कर लेती हैं किन्तु वाल्मीकि की सीता कहती हैं कि मैं भी जानती हूँ और इसके पश्चात् विस्तृत रूप से पतिव्रत धर्म का वर्णन करती हैं।[2] अनसूया उन्हें दिव्यांगराग, माल्य, वस्त्र तथा आभरण प्रदान करती हैं।[3] इस प्रकार मानस की सीता की तुलना में उन्हें माल्य तथा अंगराग अधिक मिलते है। इस प्रसंग में सीता मानस की सीता की अपेक्षा स्वाभिमानिनी एवं विदुषी प्रतीत होती हैं, जब कि मानस की सीता उक्त पाटव प्रदर्शन से सर्वथा दूर है। उनमें कही पर ऐसे स्थलों में स्वाभिमान की झलक नही प्रतीत होती।

मानस में खरदूषण युद्ध के समय श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण जी सीता को लेकर एक गुहा में सुरक्षित रहते है और शत्रु संहार होने के पश्चात् वापस आते है।[4] वाल्मीकि रामायण में भी राम की आज्ञा से लक्ष्मण गिरिदुर्ग में सीता सहित छिप जाते हैं और राक्षसों के वध के पश्चात् आते हैं।[5] दोनों ग्रन्थों की सीता जी राम से मिलकर प्रसन्नता प्रकट करती है।

मानस की सीता को विराध नामक राक्षस अपहृत नही कर पाता, किन्तु वाल्मीकि की सीता को विराध अंक मे लेकर भग जाता है और उन्हें अपनी पत्नी बनाने की घोषणा करता है। अन्त मे राम उसका वध करते है और सीता जी का उद्धार होता है।[6]

मानस में श्री राम की आज्ञा से सीता जी अपने प्रतिबिम्ब को शेष रखकर अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है और इस रहस्य को लक्ष्मण भी नही जान पाते।

> तुम पावक महँ करहु निवासा। जौ लगि करौ निसाचर नासा॥
> जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी॥
> निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सील सुविनीता॥
> (मानस०।अरण्य०।२४।२,४)

वाल्मीकि में इस प्रकार छाया सीता का उल्लेख नही मिलता। तुलसी ने (अध्यात्म० ७।१,३) के आधार पर ही छायासीता की इस गुह्य घटना का वर्णन किया है। इस

१. वा० रा०। अरण्य०। ११७।१७, २७
२. वही, (११८।२, १२) ३. वही,। ११८।१८
४. रा० मानस। अरण्य०। २८।१०,१२ तथा दो० २१।२
५. वा० रा०। २४।१२, १५ तथा सर्ग ३०।३७
६. वही, अर०। २, ४ सर्ग

घटना का प्राचीनतम वर्णन कूर्मपुराण (७वीं शताब्दी) के उत्तर विभाग, अध्याय ३४ में प्राप्त होता है।

मानस में कपटमृग मारीच को देख कर सीता मुग्ध हो जाती हैं और उसके छाल को ले आने के लिये आग्रह करती हैं।[1] वाल्मीकि की सीता पुष्पचयन मे व्यस्त थीं, उसी समय उन्हें उस अद्भुत मृग के दर्शन होते है। सीता उसे देखकर विस्मित होती है और प्रसन्नचित्त होकर राम तथा लक्ष्मण दोनों को वार-वार बुला कर भली-भाँति उस मृग को देखती हैं। लक्ष्मण स्पष्ट कहते हैं कि सम्भवतः यह कपटमृग मारीच है (अरण्य०।४३।१, ५)। सीता लक्ष्मण की बात नही मानती और राम से कहती है। आर्यपुत्र ! यह सुन्दर मृग मेरे मन को हरण कर रहा है। आप इसे लायें, यह मेरी क्रीड़ा के लिये होगा। सीता उक्त मृग के तेज, गठन, दीप्ति से प्रभावित हैं। वे उसके रूप लक्ष्मी तथा स्वर की भी प्रशंसा करती हुई लुब्ध हो जाती हैं। वे चाहती हैं कि यदि यह मृग जीवित पकड़ लिया जायगा तो अन्तःपुर हेतु क्रीड़ा-मृग बनेगा, अन्यथा इसकी मृगछाला मेरे बैठने के लिये होगी।[2] उक्त तुलना से यह स्पष्ट है कि मानस की सीता की तुलना में वाल्मीकि की सीता अधिक कुतूहलमयी हैं। उनमें माधुर्यभाव भी अधिक प्रतीत होता है। मानस की सीता को लक्ष्मण की बात का प्रत्याखान नही करना पड़ता, किन्तु वाल्मीकि की सीता उनकी बात का प्रत्याखान कर अविवेक एवं प्रलोभन का परिचय देती हुई राम पर अपना प्रणयाधिकार जनाती हैं। मानस की सीता म्रियमाण मारीच के हा लक्ष्मण शब्द से व्यथित होकर राम की सहायता हेतु लक्ष्मण को जाने का आदेश देती हैं और लक्ष्मण के समझाने पर भी नही मानतीं अपितु मर्म वचन कहती है :

मर्म वचन सीता जब बोला। हरि प्रेरित लक्ष्मण मन डोला।।(अरण्य०।२८।५)

इस प्रसंग में वाल्मीकि० की सीता अधिक चंडी हैं। उन्हें केवल हा लक्ष्मण ही नही अपितु हा सीते यह शब्द भी सुनाई पड़ता है, जिससे वे लक्ष्मण को लाने के लिए प्रेरित करती हैं। मानस के कवि ने सीता के मर्म वचनों का संकेतमात्र किया है, किन्तु वाल्मीकि ने सीता के मर्म वचनों का बहुत स्पष्ट उल्लेख किया है। सीता जी लक्ष्मण को राम विनाश का इच्छुक एवं सीताभिलाषी भी कहती है[3]। लक्ष्मण के समझाने पर वे उन्हें अनार्य, नृशंस, निर्दय, कुलकलंक एव कामुक भी कहती हैं।

अनार्याकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन।
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्।। (वा० रा०। अरण्य०।४५।२१)

---

१. मानस०। अरण्य०। २७।४, ५
२. वा० रा०। अरण्य०।४३।६, १६
३. वा० रा० अरण्य० ।४५।५, ८

उन्हें यह भी सन्देह होता है कि लक्ष्मण भरत द्वारा प्रेषित छद्मवेषी हैं, ये राम का घात ताक रहे हैं। इस प्रकार सीता प्राण त्यागने के लिए भी उद्यत होती हैं।[१] लक्ष्मण सीता को पुनः समझाते हैं, इस बार वे नारियों को विमुक्तधर्म चपल तथा भेदक कहकर अपना क्रोध व्यक्त करते हैं और सीता को धिक्कारते भी हैं।[२] इस पर सीता अत्यन्त प्रिय रोष प्रकट करती हुई आत्महत्या की धमकी देकर दोनों हाथों से अपनी छाती पीटने लगती हैं।[३] अन्त में लक्ष्मण को विवश होकर वन के लिए प्रस्थान करना पड़ता है।

इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में सीता जी लक्ष्मण के प्रति कठोरता का वर्ताव करती हैं, मुख्य अन्तर यह है कि मानस में तुलसी ने सीता के उक्त पारुष्य पर पर्दा डाल दिया है, जिससे सीता की शालीनता प्रच्छन्न रह गई है, किन्तु वाल्मीकि ने सीता के पारुष्य का विधिवत उद्घाटन कर दिया है।

मानस की सीता के समक्ष रावण यति के वेष में जाता है और सीता जी को राजनीति, भय तथा प्रीति दिखला कर वशीभूत करना चाहता है। सीता उसके वचनों को दुष्टवचन की संज्ञा देती हैं:

कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु वचन दुष्ट की नाईं॥

(मानस०।अर०।२८।१२)

इतने में रावण प्रगट होकर उनका हरण कर आकाशमार्ग से चल देता है। सीता जी रावण को राम का भय दिखलाती हैं एवं तिरस्कार ही करती रह जाती है।[४]

वाल्मीकि में परिव्राजक रूप में रावण को आगत देखकर सीता उस का अतिथि सत्कार करती हैं।[५] अपना विस्तृत परिचय देती हैं और रावण का भी परिचय पूँछती हैं। जब रावण अपना वास्तविक परिचय देकर अपना विचार व्यक्त करता है, तब सीता उसकी तीव्र भर्त्सना करती हैं।[६] इस पर भी रावण आत्मश्लाघा करता है, जिसे सुन कर सीता उसे लज्जित करती हुई उसको सर्वनाश का भय दिखलाती हैं (अरण्य०।४८ सर्ग)। रावण उक्त वचनों से क्रुद्ध होकर वलपूर्वक उनका अपहरण करता है और सीता विलाप ही करती रह जाती हैं। (अरण्य०।४६)

१. वही, ४५।२३, २६ २. वा० रा० अरण्य०।४५।५,८

३. वही, ४५।३६, ३८

४. कह सीता धरि धीरज गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा॥
जिमि हरि वधुहि छुद्र ससचाहा। भएसि कालवस निसिचर नाहा॥
(मानस०।अर०।२८।१४, १५)

५. वा० रा०, अर०।४६।३२ ६. वही, ४७।३२, ४८

इस प्रकार मानस की सीता की तुलना में वाल्मीकि की सीता अधिक वाचाल एवं परुष हैं, उनमें अतिथिसत्कार की भावना भी विशिष्ट मात्रा में विद्यमान है। मानस की सीता विलाप करती हुई लक्ष्मण को निर्दोष कहती है (अरण्य०।२६।३)। वाल्मीकि की सीता भी लक्ष्मण को आदर्शधर्मात्मा, राम का आज्ञाकारी एवं महान् त्यागी कहकर उनका स्मरण करती हैं (४६।२४, २५)। मानस की सीता कैकेयी को नही कोसती, पर वाल्मीकि की सीता कैकेयी को कोसती है।

हन्तेदानीं सकामास्तु कैकेयी बान्धवैः सह।
ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः ॥ (वा० रा० अर०।४६।२६)

वाल्मीकि की सीता जनस्थान के वृक्षों पक्षियों, सरिताओं, वनदेवियो एवं समस्त वनसत्वों से निवेदन करती हैं कि वे रावण द्वारा मेरे हरण का वृत्तान्त राम को वतला दें (४६।३१, ३४)। मानस की सीता ऐसा निवेदन नही करती। उनके विधिवत विलाप को सुन कर चराचर को दुःख अवश्य होता है। उन्हें भी इनकी सहानुभूति स्वतः प्राप्त है, याचना की आवश्यकता नहीं है।

मानस की सीता पथ में रावण को अपशब्दों द्वारा कोसती नही, किन्तु वाल्मीकि की सीता रावण को नीच, चोर, कायर, छली, नृशंस, दुश्चरित्र आदि शब्द कह कर उसे जी भर कोसती हैं।[1] मानस की सीता किष्किन्धा के वानरों को पर्वत पर बैठे देखकर केवल पट डाल देती है, किन्तु वाल्मीकि की सीता कौशेय उत्तरीय तथा आभरण दोनों को इस उद्देश्य से डालती है कि हो सकता है कि ये वानर राम को मेरा पता बता दें।[2] इस प्रकार यहाँ मानस की सीता की तुलना में वाल्मीकि की सीता अधिक चतुर प्रतीत होती है। केवल वस्त्र तो उड़कर गिरिशृंग पर से अन्यत्र भी जा सकता था, किन्तु आभूषणों के भार के कारण उसका यथास्थान पहुँचना निश्चित प्राय था।

मानस की सीता को रावण अशोक वन में ही स्थान देता है यथा :

एहि विधि सीतहिं सो लै गयऊ। वन अशोक मह राखत भयऊ ॥

वाल्मीकि के अनुसार रावण प्रथम तो सीता को अन्तःपुर ले जाता है और उन्हें अपना वैभव दिखला कर प्रलुब्ध करना चाहता है, किन्तु जब सीता जी को उदासीन देखता है तब अशोकवनिका में स्थान देता है।[3] मानस में सीता के अपहृत हो जाने पर राम उन्मत्त होकर वृक्षों एवं लतादिकों से सीता के सौन्दर्य का साम्य प्रस्तुत करते हुए विलाप करते है। खंजन, शुक, कपोत, मृग, पीन, मधुपनिकर,

---

१. वा० रा० अर०।५३ सर्ग २. वा० रा० अर०।५४।१, २

३. अशोकवनिका मध्ये मैथिली नीयतामिति।
तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता ॥ (वा० रा० अर०। ५६। ३०)

कोकिल, कुंदकली, दाड़िम, दामिनी, शरद्कमल, शशि, नागिन, वरुणपाश, मनोजधनु, हंस, गज, केहरि, श्रीफल, कनककदली ये सभी उपमान राम की स्मृति में आते हैं, इनसे नेत्र, नासिका, ग्रीवा, कटाक्ष, लोचनचांचल्य, केशकलाप, मधुरवाणी, दन्तावली, मुखलालित्य, सौन्दर्य, वेणी, गलवन्ध, भ्रू, मन्द एवं मस्तानी चाल, सूक्ष्मकटि, स्तन, जंघादिकों का सौन्दर्य प्रस्तुत किया गया है ।[1] वाल्मीकि की सीता भी राम को इसी प्रकार सुन्दरी प्रतीत हुईं । वहाँ राम सीता के लिए विलाप करते हुए विल्वस्तनी सीता का पता विल्व से, ककुभोरु सीता का पता ककुभ से पक्वतालोपमस्तनी सीता को ताल से, जाम्बूनदप्रभा सीता को जम्बुवृक्ष से, मृगविप्रेक्षणी सीता को मृग से, गजनासोरु सीता को गज से पूँछते हैं ।[2] इस प्रकार दोनों ग्रन्थों की सीता अतीव सुन्दरी चित्रित की गयी हैं ।

जब हनुमान लंका में जाकर सीता के दर्शन करते हैं, उस समय सीता जी का शरीर अत्यन्त कृश हो गया था, सिर में एक ही वेणी थी और नीचे की ओर मुख किये हुए सीता जी दीनभाव से राम का जप कर रहीं थीं :

कृश तनु सीस जटा इक वेनी । जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी ।।
दो०–निज पद नयन दिये मन, राम पद कमल लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ।। (मानस० । सुन्दर०।८)

वाल्मीकि की सीता भी उपवास करने से कृश हो गई थीं, दुःख संतप्त, पीड़ित, अश्रुमुखी, दीन एवं एकवेणीधरा थीं । अन्तर यह है कि वाल्मीकि की सीता इस स्थिति में भी हनुमान को अतीव सुन्दरी प्रतीत हुईं । वे चन्द्रानना, सुभ्रु, चारुवृत्तपयोधरा पद्मपलाशाक्षी, रतिवत सुन्दरी होती हुई भी अप्रसन्न थीं । वे रामोपरोध से व्यथित अवश्य थीं, किन्तु उनके मुख से राम राम की ध्वनि नहीं निकलती थी ।[3]

मानस की सीता अशोकवाटिका में किसी प्रकार आत्महत्या का प्रयास नहीं करतीं, किन्तु वाल्मीकि की सीता (सुन्दर० । २६ सर्ग) आत्महत्या का निश्चय करती हैं और (सर्ग २८) एक वृक्ष से अपनी वेणी को बाँध कर जैसे ही प्राण त्यागना

---

१. खंजन सुक कपोत मृगमीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ।।
कुंदकली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ।।
वरुन पास मनोज धनुहंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ।।
श्रीफल कनक कदलि हरषाही । नेकु न सके सकुच मनमाहीं ।।
(मान०।अर०।३०।१०, १३)

२. वा० रा० अर० । ६०, १३, २४

३. वही, सुन्दर० । १५ । १८, ३५

चाहती हैं, वैसे ही उन्हें शुभनिमित्तों के कारण इस व्यवसाय से विराम ले लेना पड़ता है।[1] इसी प्रकार मानस की सीता में वाल्मीकि की सीता की अपेक्षा कष्ट-सहिष्णुता, धैर्य एवं विवेक की मात्रा अधिक प्रतीत होती है। वे इतनी अधिक गम्भीर है कि प्राणों का मोह न होने पर भी कोई अविवेकपूर्ण कार्य नही करती। यह बात दूसरी है कि वे अशोक वृक्ष से अग्नि की याचना प्राण त्यागने के उद्देश्य से ही करती हैं।[2]

मानस की सीता को रावण अनेक प्रकार से समझाता है और साम दाम भय भेद का प्रदर्शन करने के पश्चात् भी जब सफल नही होता, तक एक मास की अवधि देकर चला जाता है :

मास दिवस महँ कहा न माना। तो मै मारवि काढ़ि कृपाना॥

(सुन्दर० १०।९)

वाल्मीकि की सीता को यह अवधि दो मास की दी गयी थी। यथा :

द्वौ मासौ रक्षितव्यो मे योऽवधिस्ते मयाकृत:।
ततः शयनमारोह ममत्वं वरवर्णिनी॥ (वा० रा० सुन्दर० ।२२।८)

इस प्रकार मानस की सीता के लिए प्राणसंकट सन्निकट था, जब कि वाल्मीकि की सीता के लिए प्राणसंकट कुछ दूर था। राक्षसियो की तर्जना एवं त्रिजटा की सहानुभूति का उल्लेख दोनों ग्रन्थो मे है।

मानस की सीता रावण के प्रणयप्रस्ताव को सुनकर तृण की ओट से उसे फटकारती हैं और अपने सतीत्व की रक्षा हेतु मृत्युदण्ड भी स्वीकार करना पसन्द करती हैं (सुन्दर० । दो०, १९)। वाल्मीकि की सीता राम का चिन्तन करती हुई तृण की ओट से रावण से बात करती है। प्रथम तो वे उसे सदाचार का उपदेश करती है, पुनः उसकी ओर से मुख फेर कर अपने दृढ़ सतीत्व का परिचय देती है। वे रावण को राम से मैत्री कर लेने का सुझाव भी देती है, अन्ततः रावण को श्वान तक कह कर उसका तिरस्कार करती है (सुन्दर० ।२१ सर्ग)।

इस प्रकार इस प्रसंग में मानस की सीता अधिक निर्भीक एवं क्रोधपूर्ण है, वाल्मीकि की सीता में भय की मात्रा अधिक है, वे नीति का आश्रय लेकर रावण की

---

१. तस्या विशोकानि तदा बहूनि धैर्यार्जितानि प्रवराणि लोके।
प्रार्दुर्निमित्तानि तदा बभूवुः पुरापि सिद्धान्युपलक्षितानि॥
(वा० रा०। सुन्द० ।२८।२०)

२. नूतन किसलय अतल समाना। देहि अगिनि जनि करसि निदाना॥
(मानस। सुन्द०।१२।११)

प्रवृत्ति ही परिवर्तित कर देना चाहती हैं, अधिक कटु वचनों का प्रयोग नहीं करतीं। मानस की सीता रावण को ऐसा कोई उपदेश नहीं देतीं।

मानस की सीता हनुमान से मुद्रिका प्राप्त होने पर नर वानर की संगति पूंछती हैं और कथा वतलाने पर विश्वास कर लेती हैं कि यह रामदूत है, किन्तु वाल्मीकि की सीता सरलता से हनुमान का विश्वास नहीं करतीं। वे नर वानर की संगति पूंछने के पश्चात् राम लक्ष्मण के चिह्न एवं रूपादि का भी परिचय पूंछती हैं।[१] मानस की सीता की अपेक्षा वाल्मीकि की सीता अधिक सशंक एवं सतर्क हैं। वे हनुमान से राम लक्ष्मण की कुशलता ही नही पूंछतीं, अपितु राम के कार्यकलाप, उनकी राजनीतिक गतिविधि, पारिवारिक प्रेम, भरत तथा लक्ष्मण के सहयोग की आशा, सुग्रीव की सहायता आदि से सम्बद्ध अनेक प्रश्न करती हैं।[२] इस प्रकार मानस की सीता की अपेक्षा वाल्मीकि की सीता में देश काल परिस्थिति के प्रति अधिक जागरूकता प्रतीत होती है। उनका बौद्धिक स्तर मानस की सीता की तुलना में उच्चतर प्रतीत होता है। यह सत्य है कि मानस की सीता में दैन्य अधिक है, वे अपने ऊपर राम कृपा का ही ज्ञान करना चाहती है, उनमें अधिक बौद्धिकता न होकर अधिक भावुकता है, उनके मुख से वचन ही नहीं निकलते हैं।[३]

मानस की सीता के समक्ष हनुमान उन्हें ले चलने का प्रस्ताव नही करते। केवल इतना ही कहते हैं :

अवहिं मातु मैं जाहुं लिवाई। आयसु पै न दीन रघुराई।।

(मानस०। सुन्द०।१६।३)

वाल्मीकि की सीता के समक्ष हनुमान यह प्रस्ताव रखते हैं कि आप मेरी पीठ पर बैठकर चल सकती हैं।[४] हनुमान के इस प्रस्ताव को सुन कर सीता जी अनेक तर्क देकर पृष्ठारूढ़ होकर जाना अनुचित वतलाती हैं और अन्ततः सर्वप्रबल तर्क यह देती हैं कि मैं पतिव्रता नारी हूँ। स्वेच्छा से परपति का स्पर्श करना अनुचित है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार चोरी से चलने पर राम की प्रतिष्ठा के विरुद्ध कार्य होगा।[५]

इस प्रकार यहाँ मानस की सीता का औदात्य प्रच्छन्न है, जब कि वाल्मीकि की सीता का औदात्य पूर्ण प्रमाणित हो गया है।

---

१. वा० रा०। सुन्द० ३५।२, ४   २. वही०। सुन्द०।३६।१२, ३१

३. वचन न आव नयन भरे वारी। अहह नाथ मैं निपट विसारी।।

(मानस०। सुन्द०।१४।७)

४. पृष्ठमारोह मे देवि! मा विकांक्षस्व शोभने।
योग मन्विच्छ रामेण शशांकेनेह रोहिणी। (वा० रा० सुन्दर० ।३७।२६)

५. वही, सुन्दर० ।३७।३१, ६८

मानस की सीता हनुमान को चूड़ामणि देने के पश्चात् जयन्तवृत्तान्त के रूप में बतलाती हैं :

तात सक्रसुत कथा सुनायहु। बान प्रताप प्रभुहि समझायहु।
(सुन्द०। २७।५)

वाल्मीकि की सीता प्रथम तो श्रेष्ठ अभिज्ञान के रूप में जयन्तवृत्तान्त बतलाती है (सर्ग ३८। सुन्दर०) तदनतर चूड़ामणि प्रदान करती है।[1] मानस की सीता तो चूड़ामणि के विषय में कुछ नहीं कहतीं, किन्तु वाल्मीकि की सीता कहती है कि राम इसे देखकर माता कौसल्या का, मेरा और दशरथ जी का स्मरण करेंगे।[2] यहाँ पर वाल्मीकि की सीता मणि के महत्व का प्रतिपादन कर अपनी कुशलता का परिचय देतीं हैं। मानस की सीता तृतीय अभिज्ञान के रूप में मैनसिल तिलक का वृत्तान्त नहीं प्रस्तुत करतीं, किन्तु वाल्मीकि की सीता इस वृत्तान्त को भी प्रस्तुत करती है।[3] इससे प्रगाढ़ प्रेम की व्यंजना प्रतीत होती है।

मानस की सीता हनुमान के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ, स्निग्ध एवं प्रसन्न है। वे राम प्रिय समझकर हनुमान को बल-शील-निधान-अजर-अमर गुण निधि एवं शाश्वत-राम कृपापात्र होने का आशीर्वाद देती है :

आसिष दीन राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।।
अजर अमर सुत गुननिधि होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।
(सुन्द०।१७।२, ३)

वाल्मीकि की सीता हनुमान के प्रति स्निग्ध तो है, वे उनके पराक्रम की प्रशंसा करती हैं, किन्तु आशीर्वाद नही देती। दोनों ग्रन्थों में सीता जी राम को सन्देश देती है कि एक मास के अन्दर ही मेरा उद्धार करने की कृपा करें।[4] मानस की सीता रावण के नाश होने का कोई प्रतीक नहीं बतलाती, किन्तु वाल्मीकि की सीता विभीषण की पुत्री कला द्वारा अविन्ध्य नामक मेधावी राक्षस द्वारा की हुई भविष्यवाणी राम द्वारा राक्षसों का नाश होगा को सुनकर हनुमान से बतलाती है।[5] इससे यह सिद्ध होता है कि वाल्मीकि की सीता अपने उद्धार के लिए अत्यन्त सचेष्ट थीं।

मानस की सीता के समक्ष राम के कृत्रिम शिर को दिखलाकर रावण उन्हें व्यथित नहीं करता, किन्तु वाल्मीकि की सीता के समक्ष यह समस्या आती है।

---

१. वा० रा०।सुन्द०।३८।६६ २. वही, सुन्दर०।३९।२

३. मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः।
त्वया प्रणष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि। (वा० रा० सुन्दर०। ४०।४५)

४. मानस। सुन्दर०।२७।३, ८ तथा वा०रा०।३८।६७,६८

५. वही, ३७।१२

(लंका । ३१, ३२ सर्ग) इस स्थिति में सीता अत्यन्त दुखित होकर विलाप करती हैं। इसी प्रकार (युद्ध० । ४७ सर्ग) वाल्मीकि की सीता को नागपाशबद्ध राम लक्ष्मण के दर्शन कराकर उन्हें दु:खित किया जाता है, किन्तु मानस की सीता के साथ ऐसा छल या प्रपंच नहीं किया जाता। वाल्मीकि में मेघनाद माया सीता का वध करता है (युद्ध० । ८१ सर्ग) किन्तु मानस में माया सीता के वध का उल्लेख नही पाया जाता।

रावण वध के पश्चात् मानस की सीता के समीप हनुमान जाते हैं और रावण वध का समाचार सुनाते हैं, सीता जी इस वृत्तान्त को श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं और राम के दर्शन की लालसा व्यक्त करती हैं :

अब सोइ जतन करहु तुम ताता। देखौं नयन स्याम मृदुगाता॥
(लंका । १०८ । १)

हनुमान सीता का समाचार राम को देते हैं और युवराज विभीषण को हनुमान के साथ जाने की आज्ञा देते हुए राम उन्हें शीघ्र ही सीता जी को ले आने का आदेश देते हैं (लंका दो० १०८)। वाल्मीकि में भी प्रथम हनुमान जाकर सीता से राम की विजय का कुशल समाचार बतलाते हैं और सीता इस संदेश को पाकर हनुमान के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हैं (युद्ध० । ११३ । १८, २१)। हनुमान राक्षसियों को दण्ड देना चाहते हैं, किन्तु सीता की दयालुता उन्हें रोक देती है। अन्ततः सीता राम के दर्शन की लालसा प्रकट करती हैं (युद्ध० । ११३।४८)।

मानस की सीता अपने को अलंकृता रूप में राम के समक्ष प्रस्तुत करने में कोई अनुपपत्ति नहीं करतीं, किन्तु वाल्मीकि की सीता एक बात यह कहती है कि मैं इसी वास्तविक वेष में राम के दर्शन करना चाहती हूँ।

अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर॥ (युद्ध । ११४।११)

इस चित्रण से वाल्मीकि० की सीता की यह विचारधारा सिद्ध होती है कि वे राम को अपनी दयनीयता की स्थिति का यथार्थरूप प्रदर्शित कर प्रभावित करना चाहती हैं और अपनी सच्चरित्रता का भी प्रमाण देना चाहती हैं। अन्ततः जब सीता जी को यह बतलाया जाता है कि राम की आज्ञा है कि सीता को अलंकृत रूप में लाया जाये, तब वे पति की आज्ञा शिरोधार्य कर वैसा ही करती हैं। (वा० रा० युद्ध० । ११४ । १३)

मानस की सीता राम के समीप आकर रुदन नहीं करतीं, किन्तु वाल्मीकि की सीता सभा में आकर वस्त्रों से अपना मुख ढंक लेती हैं और आर्यपुत्र ! इस प्रकार सम्बोधन कर रोने लगती हैं (युद्ध० । ११४ । ३५)। इससे वाल्मीकि की सीता का प्रगाढ़ प्रेम और उनकी मानसिक स्थिति का परिचय प्राप्त होता है। मानस की सीता

को राम कछुक दुर्वाद कहते हैं, जिनका लक्ष्य वास्तविक सीता, जो अनल में स्थित थी, उनका प्रकट करना था :

सीता प्रथम अनल महुँ राखी । प्रगट कीन्ह चह अन्तर साखी ॥

(मानस । लंका० । १०७ । १४)

वाल्मीकि० की सीता को भी राम दुर्वचन कहते हैं, (युद्ध० । ११५ । १७, २४) जिनका स्पष्ट रूप कवि ने प्रस्तुत किया है, जब कि मानस में उन्हें प्रच्छन्न रखा गया है । वाल्मीकि में वास्तविक सीता को प्रकट करने के उद्देश्य से राम ऐसा नही करते अपितु लोकापवाद के भय से ऐसा कहते हैं ।

दोनों ग्रन्थों में सीता जी अपनी अग्निपरीक्षा देती है, किन्तु राम के व्यवहार से मानस की सीता क्षुब्ध नही होती, जब कि वाल्मीकि० की सीता राम को खरी-खोटी भी सुनाती है (युद्ध० । ११६ । ५, १६) । यहाँ उनका स्वाभिमान, सच्चरित्रता, रोष प्रवृत्ति, पारुष्य आदि का प्रकटीकरण हुआ है ।

मानस की सीता अपने सतीत्व की शपथ लेकर अग्नि में प्रवेश करती हैं, वाल्मीकि की सीता भी अपने सतीत्व की शपथ लेकर अग्नि में प्रवेश करती हैं, (युद्ध० । ११६ । २५, २६) ।

दोनों ग्रन्थों में अग्निदेव अपनी गोद में सीता को लेकर राम को प्रत्यार्पित करते है । देवगण राम की स्तुति करते हैं । इसके पश्चात् पुष्पकारूढ़ राम सीता को मार्ग के विविध दृश्यों का अवलोकन कराते हुए अयोध्या आते हैं ।

रामचरित मानस में सीता जी के उत्तर चरित्र का वर्णन नही किया गया, जब कि वाल्मीकि में उनके इस करुण जीवन का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया गया है ।

रामचरित मानस तथा वाल्मीकि रामायण में वर्णित सीता के रूप का तुलनात्मक विवेचन करने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है :—

(क) दोनों ग्रन्थों की सीता भूमिजा हैं, वे अद्वितीय सुन्दरी हैं । मानस की सीता आद्याशक्ति हैं, किन्तु वाल्मीकि० की सीता आदर्श मानवी हैं, वे लक्ष्मीस्वरूपा भी है, किन्तु उनका मानवीरूप ही मुख्य है ।

(ख) मानस की सीता विवाह के पूर्व ही राम से पुष्पवाटिका में मिल कर अनुरागवती हो जाती हैं, किन्तु वाल्मीकि की सीता पूर्वानुरागवती नही हैं, न उनका पुष्पवाटिका में मिलन होता है ।

(ग) मानस की सीता अत्यन्त विनीत, पतिप्राणा, राम की अनन्य सेविका है । वाल्मीकि की सीता में भी उक्त विशेषतायें विद्यमान हैं, किन्तु वे वनवास के प्रकरण में राम के प्रति सरुष एवं कटुवादिनी भी हैं ।

(घ) मानस की सीता को ग्राम वधूटियों से अद्भुत सौहार्द्र प्राप्त होता है, जब कि वाल्मीकि की सीता को उतना सौहार्द्र नही प्राप्त होता है। ग्रामवधूटियाँ उनके प्रभाव से आतंकित या आश्चर्यान्वित अधिक हैं, स्नेहिल कम। उनमें आभिजात्य अधिक है, मानस की सीता में आभिजात्य की मात्रा न्यून है।

(ङ) मानस की सीता श्रद्धामयी हैं, वाल्मीकि की सीता तर्कमयी है। मानस की सीता में विविध शास्त्रों के पांडित्यप्रदर्शन की प्रवृत्ति नहीं, जब कि वाल्मीकि की सीता विदुषी हैं भी और उनमें अपनी विद्वत्ता के प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी है।

(च) दोनों ग्रन्थों में सीता एक आदर्श गृहिणी सिद्ध की गई है, किन्तु वाल्मीकि की सीता में स्पष्टवादिता, कष्टसहिष्णुता एवं अतिथिसत्कार के गुण अधिक प्रदर्शित किए गए हैं।

(छ) गाम्भीर्य, सारल्य एवं सौम्यत्व के गुण वाल्मीकि की सीता की अपेक्षा मानस की सीता में अधिक हैं।

(ज) दोनों ग्रन्थों की सीता आदर्श वियोगिनी है, पतिव्रतधर्म पर प्राणपण से आरुढ़ हैं, किन्तु मानस की सीता से भी अधिक संकट वाल्मीकि की सीता को है। उनका जीवन अभिशापों की गाथा है। उन्हें एक बार अग्निपरीक्षा देने पर भी शान्ति नही मिलती। परिपूर्ण गर्भावस्था में ही निर्वासित होना दो-दो पुत्रों के लालन-पालन का उत्तरदायित्व वहन करना और अन्ततः अपने सतीत्व का पुनः प्रमाण देकर माता वसुन्धरा की गोद में चिरकाल के लिए समाविष्ट हो जाना, ये सभी बातें उनके करुण जीवन के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

(ख) आचार्य केशव के काव्य में सीता का स्वरूप एवं तुलसी की सीता से तुलना

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल (भक्तिकाल तथा रीतिकाल) के रामभक्ति विषयक प्रचुर साहित्य की रचना हुई। इस साहित्य का अधिकांश भाग अप्रकाशित अथवा अनुपलब्ध है। तुलसी अपने समय के एक ऐसे प्रतिभाशाली भक्त कवि हुए, जिनके समकालीन कवियों की रामभक्ति विषयक रचनाएँ मन्द प्रकाश पड़ गई। सूर-सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास—इस उक्ति के आधार पर ऐसा ज्ञात होता है कि तुलसी के पश्चात् प्रसिद्ध एवं लोकमान्य कवियों में कविवर केशव को मूर्धन्य स्थान प्राप्त था। केशव की कीर्ति का प्रकाशस्तम्भ राम चन्द्रिका नामक विशिष्ट ग्रन्थ है, जिसमें विविध छन्दों में राम कथा का प्रबन्धात्मक वर्णन किया गया है। प्रस्तुत अंश में हम रामचन्द्रिका में निरूपित सीता के आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व का विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।

राम चन्द्रिका : प्रस्तुत महाकाव्य ३९ प्रकाशों में विभक्त है। इसमें केशव ने विश्वामित्र के अवध आगमन से लेकर सीता मिलन एवं लवकुशादि के राज्य वितरण पर्यन्त रामकथा का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में सीता जी का विवरण इस प्रकार उपलब्ध है :

स्वयम्वर के समय विश्वामित्र जी ने जनक की प्रशंसा करते हुए सीता की भूमिजा रूप की पुष्टि की है। यथा :

केशव भूषण की भवि भूषण भूतन ते तनया उपजाई ॥

(रामचन्द्रिका ।५।२४)

इसके अतिरिक्त विस्तृत कथानक के रूप में कवि ने कही पर सीताजन्म का उल्लेख नही किया। इसी प्रकार पुष्पवाटिका का प्रसंग भी कवि ने उपेक्षित समझा है, सम्भवत: वाल्मीकि रामायण के अनुकरण पर ही केशव ने इस प्रसंग को अछूता छोड़ दिया है। धनुर्भंग होने पर सीता जी राम को माला पहनाती हैं।

सीता जू रघुनाथ को, अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबन की, हृदयावलि भूपाल॥ (रा० चं०। ६।४६)

यहाँ पर कवि ने सीता जी की मनोवृत्ति का चित्रण नही किया। ग्रन्थ के छठवें प्रकाश में कवि ने सीता जी के स्वरूप का वर्णन, दमयन्ती, इन्दुमती, रति, कमल, स्वर्ण, अग्नि एवं चन्द्रादि को भी तुच्छ बतलाकर उनको सर्वश्रेष्ठ रूपवती चित्रित किया है।[1] वस्तुत: यह स्थूल चित्रण है, अंग सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन नही।

ग्रन्थ के नवम प्रकाश में राम वनगमन के प्रसंग मे राम सीता के पास जाकर वनगमन का वृत्तान्त बतलाते है और उनसे कहते है कि तुम माताओं की सेवा करो अथवा जनकपुरी चली जाओ, इन दोनो बातों में तुम्हें जो रुचिकर हो, वही करो। सीता जी राम की इस बात का उत्तर देती हुई कहती है :

न हौं रहौं न जाहूँ जू विदेहधाम को अबै।
कही जु बात मातु पै आजु मै सुनी सबै॥

---

१. को है दमयन्ती इन्दुमती रति रातिदिन।
होहि न छबीली छनछबि जो सिंगारिये।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप।
जातरूप बापुरे विरूप सो निहारिये।
मदन निरुपम निरूपत निरूप भयचे।
चन्द वहु रूप अनुरूप कै विचारिये।
सीता जी के रूप पर देवता कुरूप को है।
रूप ही के रूपक तौ वार वारि डारिये॥ (रामचन्द्रिका। ६।५९)

लगै छुधाहि मां भली विपत्ति मांभि नारिये ।
पियास त्रास नीर वीर युद्ध में संभारिये ।। (रा० चं०। ६।२४)

सीता जी के उक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि वे अत्यन्त बुद्धमती, तर्कशील एवं बहुश्रुत थीं, उन्हें नीतिशास्त्र का प्रौढ़ ज्ञान था। वे जानती थी कि भूख के समय माता, विपत्ति में स्त्री, प्यास के समय जल और युद्ध के समय बन्धु की ही आवश्यकता होती है। इस प्रकार राम के ऊपर वनवास रूप विपत्ति है, उन्हें साथ में स्त्री ले जाने की आवश्यकता है, इस बात को सीता जी कितनी चतुरता के साथ व्यक्त करती है। वस्तुतः 'भार्या मित्रं प्रवासेषु' यह नीति यथार्थ ही है, जिसका प्रतिपादन सीता द्वारा कराकर कवि ने उनकी नीतिज्ञता का सुपरिचय प्रस्तुत किया है।

वाल्मीकि रामायण में तो स्वयं राम वन के दुःखों का वर्णन कर सीता को वनगमन से विरत करना चाहते हैं किन्तु केशव ने लक्ष्मण द्वारा वन की दुर्गमता का वर्णन कराया है, जिसके उत्तर में सीता जी कहती है कि वन की प्रत्येक कठिनाई अथवा पीड़ा सहन कर लूँगी, किन्तु राम का विरह नहीं सहन कर सकती।

के सौदास नीद भूख प्यास उपहास त्रास,
दुःख को निवास विष मुखइ गह्यो परै।
वायु को पहन दिन दावा को दहन,
वड़ी वाड़वा अनल ज्वालजाल में रह्यो परै।
जीरन जनम जात जोर जुर घोर परिपूरन,
प्रकट परिताप क्यों कह्यो परै।
सहिहौं तपन ताप पर के प्रताप रघुवीर,
को विरह वीर ! मो सौं न सह्यो परै ।। (रा० चं० ।६।२६)

सीता जी के उक्त कथन में तो एक ओर राम के प्रति अनन्य प्रेम व्यक्त होता है, दूसरी ओर उनकी अद्भुत कष्टसहिष्णुता, स्पष्टवादिता एवं अदम्य साहस की भी झलक प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त केशव ने सीता की शालीनता की भी सुरक्षा की है, वे वाल्मीकि की सीता की भाँति न तो राम को अपशब्द कहती हैं और न तो आत्महत्या की ही धमकी देती हैं। कारण यह कि कवि की सीता तो एकत्रीभूत-सिद्धियों का स्वरूप है लौकिक स्त्री नही।[1]

वनपथ में राम लक्ष्मण के साथ सीता चली जाती हैं, लोग इनसे पूँछते है कि यह राजपुत्री हैं या रति है या लक्ष्मी है।[2] इससे भी सीता जी की सुन्दरता एवं अलौकिकता का संकेत मिलता है।

---

१. रामचन्द्रिका ६।२६ २. रामचन्द्रिका ६।२९

तुलसी की सीता की भाँति केशव की सीता अत्यन्त कोमल नही, अपितु वे अत्यन्त कष्टसहिष्णु हैं, उन्हें धूप शीतल प्रतीत होती है, पथ की धूलि भी शीतल लगती है, क्योकि वे प्रिय के पद-कमल चिह्नों पर ही चलती है।

धाम को राम समीप महाबल, सीतहिं लागत है अति सीतल
ज्यो धन संयुत दामिनी के तनु होत है पूषन के करभूषन ।।
मारग की रज तापित है अति, केशव सीतहिं सीतल लागति ।
प्यौ पद पंकज ऊपर पायनि, देखु चलै तेहि ते सुखदायिनि ।।
(रा० चं० ६। ३७, ३८)

यहाँ कवि ने सीता जी के इस चरित्र की ओर ध्यान नही दिया कि एक पतिपरायणा सीता जैसी साध्वी स्त्री अपने पूज्य पति के चरण चिह्नों पर पग रख कर कैसे चल सकती है।

केशव की सीता राम की अनन्य सेविका है। यदि राम उनके श्रम को वल्कलवस्त्र डुलाकर दूर करते है, तो सीता भी चारु दृगंचलै से राम के श्रम को दूर करती हैं।[1] इस रूप में भी कवि ने उनके सौन्दर्य की झलक एवं पतिप्रेम की माधुरी को व्यक्त किया है।

सीता जी अत्रि मुनि क आश्रम मे अनुसूया जी के चरण स्पर्श करती है, इससे उनका शिष्टाचार व्यक्त होता है। अनसूया जी उन्हें अंग-अंग के अंगरागों से अलंकृत करती है और अनेक उपदेश भी देती है। वाल्मीकि की सीता इस स्थल पर विनम्रता के साथ अपनी बहुज्ञता का परिचय देती है किन्तु केशव ने उन्हें इस प्रकार मुखर होने से बचा लिया है। इस प्रकार यहाँ केशव की सीता विनीत एवं गम्भीर प्रतीत होती है। केशव ने उन्हें जीव ब्रह्म के बीच माया के रूप में भी उत्प्रेरित किया है, जैसा कि मानस में तुलसी ने किया है।

ब्रह्म जीव बिच माया जैसी। (रामचरित मानस)
राम आगे चले मध्य सीता चली। बन्धु पाछे भये सोम सोमै भली।
देखि देही सबै कोटिधा के मनो। जीव जीवेश के बीच माया मनो।
(रा० चं०। ११।७)

विराध वध के प्रसंग में भी कवि ने सीता जी को आक्रान्त होने से बचा लिया है, मानस में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है। केशव की सीता गानवाद्य में भी प्रवीण थी, वे राम को रिझाने के लिए गीत गाती थी, इससे उन्हें राम के गुणगान का

---

१. मग को श्रम श्री पति दूर करे सिय को शुभ वालक अंचल सौं।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सों ।।
(रा० चं० ।६।४४)

अवसर मिलता था, दुःख भूल जाते थे और वन्य-पक्षी भी मुग्ध होकर उन्हें घेर लेते थे।[1] इस प्रकार प्रकृति की अनन्य उपासिका सीता वन में प्रमुदित चित्रित की गई हैं। यही कारण है कि वन्य-जीव उनके साथ-साथ भ्रमण करते थे।[2]

केशव ने सीता हरण के पूर्व उनका अग्निवास दिखलाया है। राम स्वयं कहते हैं कि हे सीते! मैं अब पृथ्वी का भार हरण करना चाहता हूँ, अतः तुम अपना वास्तविक स्वरूप छिपा लो और छाया के रूप में होकर कपटमृग की अभिलाषा करो।[3] तुलसी ने भी तब लगु करहु अग्नि महं वासा। जब लगि करौ निसाचर नासा॥ के रूप में छाया सीता का उल्लेख किया है। वाल्मीकि रामायण में छाया सीता का उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार केशव की सीता मारीचवध के समय हा लछिमन! शब्द से व्यथित होती हैं और लक्ष्मण से राम की सहायता हेतु जाने का आग्रह करती हैं। लक्ष्मण के समझाने पर वे कुछ कहती हैं। क्या कहती हैं, इस बात को कवि ने बड़ी चतुराई के साथ छिपाया है। यथा :

राजपुत्रिका कह्यो सु और को कहै सुनै।
कान मूँदि बार बार सीस बीसधा धुनै॥ (रा० चं० १२।१८)

इस प्रसंग में कवि ने यह संकेत दिया है कि सीता के स्वभाव में हठधर्मिता, कटुभाषिता एवं स्त्रीसुलभ अविवेक भी था और इन सबकी मूल में था, पति विषयक प्रगाढ़ प्रेम।

सीता हरण के पूर्व रावण को भिक्षु जानकर सीता जी उसे बुलाती हैं, इससे उनके उदार स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है। यहाँ पर भी कवि ने वाल्मीकि की सीता की भाँति उन्हें मुखर नहीं बनाया। न तो वे रावण से उसका परिचय पूँछती है और न स्वयं अपना कुछ परिचय देती हैं। जब रावण भिक्षा देते समय ही सीता का अपहरण करता है, तब वे राम और लक्ष्मण का नाम लेकर रक्षाहेतु विलाप करने लगती हैं।

हा राम! हा रमन! हा रघुनाथ धीर।
लंकाधिनाथ वश जानहु मोहिं वीर॥
हा पुत्र लक्ष्मण! छुड़ावहु वेगि मोही।
मार्तंडवंश यश की सब लाज तोही॥ (रा० च० १२।२१)

इस विलाप में कवि ने सीता को लक्ष्मण के प्रति अधिक बल देती हुई सिद्ध किया है, क्योंकि पुत्र का सम्बोधन दिलाना असाधारण बात है। पुत्र का उत्तरदायित्व भी तो बहुत अधिक होता है।

---

१. जब जब धरि सीता प्रकट प्रवीना बहुगुन लीला सुख सीता।
पिय जियहिं रिझावहिं दुखनि भजावैं विविध बजावैं गुनगीता॥
तजि मति ससारी विपिन विहारी सुख दुखकारी घिरि आवैं।
तब तब जगभूषण रिपुकुल दूषण सब को भूषण पहिरावैं॥ (रा०चं०, ११।२७)

२. वही, ११।३०

३. वही, १२।१२

सीता रावण द्वारा अपहृत होकर पथ मे नूपुर तथा उत्तरीय डाल देती है, क्योकि एक स्थान पर पाँच वानर बैठे हुए थे, सीता जी समझती थी कि हो सकता है इनसे राम को मेरे अपहरण का वृत्तान्त ज्ञात हो जाये ।[1]

सीता जी अशोकवाटिका मे एक आदर्श पतिव्रता वियोगिनी के रूप मे रहती थी । उनके सिर में एक वेणी थी मलिन साडी पहिने हुए थी, मुख से राम-राम निकल रहा था और राक्षसियाँ उन्हे चारो ओर से घेर कर कष्ट दे रही थी ।[2] कवि ने उन्हें चिन्ताग्रस्त बुद्धि, दशनमध्यजिह्वा, राहुस्त्रीपरिवृत्तचन्द्र, माया मे लीन जीव, अविद्याओ के मध्य विद्या, शम्बरासुर की स्त्रियो के मध्य रति के रूप मे चित्रित किया है ।[3] इससे सीता जी चिन्तित, मलिन, अव्यवस्थित एव अनलकृत सुन्दरी के रूप मे स्थित ज्ञात होती है । सीता जी रावण के आते ही अपने अगो को संकुचित कर लेती है और अधोदृष्टि होकर रुदन करने लगती है ।[4] इस क्रिया से उनके भीरुस्वभाव, सलज्जता एवं करुण स्वभाव का सकेत मिलता है जब रावण उनसे प्रणय प्रस्ताव करता है, तब वे तृण की ओट हो रावण को तिरस्कृत करती हुई कहती है :

दशरथ सुत द्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै ।
निसिचर बपुरा तू क्यो न स्यौमूल नासै ।। (रा० च० १३।६१)

इतना ही नही वे रावण की भीरुता पर भी प्रहार करती हुई कहती है कि हे खल ! तू जिनकी धनुरेखा का उल्लघन नही कर सका, उनके तीव्र बाणो का प्रहार कैसे सहन करेगा ? अस्तु तू तब तक यहाँ से शीघ्र ही भाग जा, जब तक मेरे वचन रूपी सर्प तुझे नही डसते । मुझे तेरा नाश समीप दिखाई पडता है, अतः मृतक समझ कर मै तुम पर रोष प्रकट कर तुम्हारा सहार नही करती ।[5] सीता जी के इस कथन से कवि ने उनकी निर्भीकता, सतीत्व, वाक्पटुता, साहस एवं क्षमाशीलता पर प्रकाश डाला है ।

---

१. पद पद्म की शुभ घूँघरी । मणि नीलहाटक सोजरी ।
जुत उत्तरीय बिचारि कै । भुव डारि दी पगटारिकै ।। (रा० च० १२।२४)

२. रा० च० १३।५३ ३. वही, १३ ५४, ५५

४. सबै अग लै अंग ही मे दुरायो ।
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो ।। वही, १३।५६

५. अति तनु धनुरेखा नेक जाकी ।
खल सर खरधारा क्यो सहे तिक्ष ताकी ।।
उठि उठि शठ ह्यां ते भागु तोलो अभागे ।
मम वचन विसर्पी सर्प जौलौ न लागे ।।
विकल सकुल देखौ आसुरी नास तेरो ।
निपट मृतक तोको रोप भरि न मेरे ।। (रामचन्द्रिका १३, ६२, ६३)

सीता हनुमान सम्वाद में कवि ने सीता को तर्कप्रधान, वाग्मिनी, नीतिकुशल, चतुर एवं एक पतिव्रता नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। जब सीता अशोक वृक्ष से अग्नि की याचना करती है उसी समय हनुमान राम की मुद्रिका डाल देते हैं। सीता जी वृक्ष के ऊपर वानर देख कर उसे रावण समझ कर पूँछती है कि तू शीघ्र बता कौन है? अन्यथा शाप दे दूँगी।[1] इससे उनमे शाप देने की क्षमता भी सिद्ध होती है। हनुमान के यह कहने पर कि जननि मै रामदूत हूँ, वे विश्वास नही कर लेती, अपितु प्रश्नों की झड़ी लगा देती हैं। वे दशरथ अज आदि का भी परिचय पूँछती है और राम के गुण-रूप-शील-शोभा तथा स्वभाव का भी परिचय पूँछती है।

रघुनाथ कौन ! दशरत्थनन्द। दशरत्थ कोन अज तनय चंद ।।
केहि कारन पठये यहि निकेत। निज देन लेन सन्देस हेत ।।
गुण रूप सील, शोभा सुभाउ। कहु रघुपति के लक्षण सुनाउ ।।

(रा० च० १३।७३,७४)

तुलसी की सीता तर्कशील नही, जितनी केशव की सीता है। वस्तुतः इतनी शंकालुता की आवश्यकता थी। सीता जी राम की मुद्रिका को प्राप्त कर विविध कल्पनाएँ करती है।[2] उन कल्पनाओं में यह कल्पना सुन्दरतम है :

सुखदा, सिखदा, अर्थदा, यशदा, रसदातारि।
रामचन्द्र की मुद्रिका किधो परमगुरुनारि ।। (रा० च० १३।८३)

किसी रामायण में मुद्रिका को देख कर सीता जी इतनी गम्भीरता से विचार करती हुई नही चित्रित की गई। वे मुद्रिका को देख कर इतनी भावमयी हो जाती है कि उन्मादवश उसी से कहने लगती है। राज्यश्री ने राम को अयोध्या में, मैने वन मे और तुमने मार्ग मे राम को छोड़ दिया, अतः हे मुद्रिके ! बता, अब स्त्री जाति पर कौन विश्वास करेगा।[3] सीता के इस कथन मे कवि ने स्त्री जाति पर कैसा व्यंग कसा है। आत्मग्लानि सीता जी को है, वे अपने प्रियतम श्री राम के करुण जीवन से कितनी गहरी सहानुभूति रखती है ?

हनुमान द्वारा प्रत्याभिज्ञान चाहने पर सीता जी उन्हे सीसमणि देती है और हनुमान को यशस्वी, अमर, समरजय तथा राम के परम भक्त होने का आशीर्वाद देती हैं :

---

१. कहि वेगि वानर पाप। न तु तोहिं देहौं शाप ।। (वही, १३।७५)

२. रामचन्द्रिका १३।७९, ८४

३. श्री पुर मे वनमध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कह मुँदरी अब तियनि की को करिहै परतीत ।। (वही, १३।८५)

कछु जननि दे परतीत जासो रामचन्द्रहि आवई ।
सुभ सीसि की मणि दई यह कह सुजस तव जग गावई ।।
सब काल ह्वै हो अमर अरु तुम समर जयपद पाइहो ।
सुत आजु ते रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहो ।। (रा० चं० १३।६५)

कविवर तुलसी ने भी हनुमान जी को ऐसा ही आशीर्वाद दिलाया है यथा :

अजर अमर सुत गुननिधि होहू । सदा करहि रघुनायक छोहू ।। (मानस, सुन्दर०)

वाल्मीकि रामायण में सीता कृतज्ञ तो हैं किन्तु वे इस प्रकार का आशीर्वाद नही देतीं आशीर्वाद दान के चित्रण का उल्लेख परवर्ती रामायणो मे मिलता है ।

हनुमान लका से लौट कर सीता की दुर्दशा का जो चित्रण करते है, वह राम को अत्यन्त व्यथित बनाता है। हनुमान कहते है कि हे राम ! सीता आपके वियोग में वनवीथिकाओ मे भौंरी के समान घूमती रहती है, हसिनि के समान तुम्हारी कमलदण्डतुल्य भुजाओ को चाहती है, वह केसर की क्यारियों की ओर नही जाती, मयूर की ध्वनि उन्हें उद्वेजक लगती है और वे चातकी सी पी-पी रटती रहती है। चन्द्र को देखकर वे चकई की भाँति चुप हो जाती है ।[1] इस वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि राम के वियोग में सीता जी अत्यन्त अशान्त एवं पीडित थी, प्राकृतिक उपादान उन्हें कष्टप्रद प्रतीत होते थे, वे प्रियतम राम का मिलन चाहती थी ।

जब मेघनाद राम-लक्ष्मण को नागपाश में बाँधकर सीता को दिखलाता है[2], तब सीता जी के देखते ही गरुड आकर उन्हें पाशमुक्त कर देता है। इस प्रकार कवि ने यहाँ सीता के विलाप करने का स्वल्प अवकाश नही दिया। इससे केवल यही आभास मिलता हैं कि सीता की कृपा दृष्टि से गरुड़ प्रगट हो गये ।

ग्रन्थ के बीसवे प्रकाश मे कवि ने सीता मिलन का उल्लेख किया है। इसके अनुसार हनुमान श्री राम की आज्ञा से लका जाते है और उनकी चरणवन्दना करते है। सीता जी सन्देश प्राप्त कर अपने अगो को विभूषित करती है और अग्निदेव के अंक में आरूढ होकर राम के पास प्रस्थान करती हैं ।[3] केशव ने सीता के महत्व को और अधिक विशिष्ट बनाने के लिए अग्नि अक मे आरूढ होने की सुन्दर कल्पना की है। यहाँ कवि ने राम द्वारा सीता जी को दुर्वचन नही कहलाये, सीता स्वयं अग्नि-परीक्षा देकर शुद्धता प्रमाणित कर देती है। कवि ने आठ छन्दो मे अग्निस्थित सीता की जिस शोभा को कल्पना की है, उससे भी सीता की अलौकिकता पर सुन्दर

---

१. रामचन्द्रिका १४। २६ २. वही० १७। ११, १४

३. सिगरे तन भूषन भूषित कीने। धरि कै कुसुमावलि अग नवीने।
द्विजदेवन वंदि पढ़ी शुभगीता। तब पावकअक चली चढ़ि सीता ।।
(रा० चं० २०।३)

प्रकाश पड़ता है।[1] वे वस्त्रालंकारभूषिता रमादिक को भी मुग्ध कर रही थीं। उनमें शंकर के तृतीय नेत्र कीसी दिव्यकांति थी, रणचंडी के रूप से प्रतिष्ठित प्रतीत होती थीं। रत्नसिंहासनस्था शची अथवा रागपूरिता रागिनी के रूप में उनकी कान्ति फैल रही थी। वे सरस्वती नदी की जलदेवी-सी प्रतीत होती थी और उनकी कान्ति कमलस्था लक्ष्मी जैसी प्रतीत होती थी :

गिरापूर में है पयोदेवता सी, किधौं कंज की मंजुशोभा प्रकासी ॥
किधौं पद्म ही में सिफाकन्द सोहै, किधौं पद्म के कोषपद्मा विमोहै ॥ (२०।६)

सीता जी के शरीर के तेज से ऐसा आभास होता था मानो सिन्दूरशैल के शिखर पर सिद्धकन्या बैठी हुई शोभायमान हो रही हो अथवा कमलासनस्था साक्षात् सरस्वती हों या जगपृष्ठ पर बैठी हुई भवानी हों। वे दिव्य औषधियों के समूह में बैठी रोहिणी के समान अथवा दिग्दाह में योगिनी के रूप में प्रतीत होती थी। वे तक्षक के फण की मणि के समान अथवा असावरी रागिनी के मणिकुम्भ के समान लगती थी। उनका रूप देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे अशोकपादपस्था वनदेवी हों अथवा वसन्त श्री पलाश पुष्प के मध्य शोभायमान हो रही हो। वे बेलबूटों से सुशोभित चित्र-पुत्रिका के रूप में अथवा सिन्दुर की कान्ति से विभूषित गणेश के मस्तक की चन्द्रकला के समान सुशोभित हो रही थी।

सीता जी अग्नि के मध्य बैठी हुई ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे मणिदर्पण में प्रतिबिम्ब, अनुरागी हृदय की मूर्तिमती प्रीति या प्रतापपुंज में कीर्ति अथवा तपस्तेज में उत्तम सिद्धि या केशव कवि के हृदय में रामभक्ति शोभायमान हो रही हो। यथा :

है मणिदर्पण में प्रतिबिम्ब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुंज प्रताप में कीरति सी तप तेजन में मनु सिद्धि विनीता ॥
ज्यों रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै केशव के शुभ गीता।
त्यों अवलोकिय आनन्दकन्द हुतासन मध्य सवासन सीता ॥

(रा० च० २०।११)

केशव द्वारा सीता जी के विषय की समस्त कल्पनाओं का विश्लेषण करने से यह प्रतीत होता है कि कवि ने सीता के व्यक्तित्व में क्रमशः सौन्दर्यातिशय की प्रतिष्ठा-शक्ति की त्रिगुणात्मिका भावना (ओज-प्रसाद-माधुर्य) तेज तथा अलौकिक लालिमा-मण्डित दैवी शक्ति, प्राकृतिक सुषमा, कलात्मक सौन्दर्य, निष्कलंकता तथा क्षीणता, प्रीतिस्वरूपता कीर्तिमत्ता, सिद्धिस्वरूपता और भक्तिरूपता का आरोप किया है। यदि कवि के इस क्रम में विश्वास किया जाये, तो यह कहा जा सकता है कि केशव की सीता भक्ति की साकार मूर्ति थीं, जिसमें उपर्युक्त समस्त विशेषतायें विद्यमान थी।

---

१. रामचन्द्रिका २०।४, ११

सीता जी की अग्नि परीक्षा के पश्चात् अग्निदेव स्वयं उनकी शुद्धता की साक्षी देकर यह कहते हैं कि सीता जी की शुद्धता सभी देव प्रमाणित करते है, अतः आप भी इन्हें स्वीकार करे। वस्तुतः आप तो योगीश शंकर के भी ईश है और यह सीता आपकी योगमाया है।

श्री रामचन्द्र यह सतत शुद्ध सीता। ब्रह्मादि देव सब गावत शुभ गीता।
हूजै कृपाल गहिजै जनकात्मजा या। योगीश ईश तुम हौ यह योगमाया ॥ (२०।१३)

श्री राम अग्नि की इस प्रार्थना को सुनकर उन्हें हँस कर स्वीकार कर लेते हैं। तदनन्तर राम प्रिया एवं परिजनों सहित मार्ग की छवि का अवलोकन करते हुए अयोध्या लौट आते है। यह कथानक वाल्मीकि रामायण तथा रघुवंश महाकाव्य से प्रभावित प्रतीत होता है। सीतानिर्वासन के प्रसंग में भी कवि ने वाल्मीकि से ही मूलप्रेरणा प्राप्त की है। एक समय राम श्री सीता से कुछ माँगने के लिए कहते है, सीता जी दोहद के कारण गंगातट पर बसे हुए मुनियों को वस्त्रदान देने की इच्छा प्रकट करती हैं :

जो सबते हित मो पर कीजत। ईश दया करिके वरु दीजत।
है जितने ऋषि देव नदी तट। हौं तिनको पहिराय फिरौं पट ॥ (३३।२३)

राम उन्हें प्रातःकाल ही जाने की आज्ञा प्रदान कर देते है। उसी रात्रि गुप्तचर आता है और राम से लोकापवाद की चर्चा करता है। कवि ने लोकापवाद के मूल शब्दों का उल्लेख नहीं किया। प्रातः भरतादि के आने पर राम भरत से पूर्ण वृत्तान्त बतलाते है, भरत उनके त्याग का विरोध करते हैं :

प्रिय पावनि प्रियवादिनी पतिव्रता अतिशुद्ध।
जग की गुरु अरु गुर्विणी छाडत वेद विरुद्ध ॥ (३३।३४)

किसी बन्धु की इच्छा न होने पर भी राम की आज्ञा से लक्ष्मण सीता को लेकर निर्जन वन में पहुँचते है और उन्हे अचेतावस्था में त्यागकर चले आते है। वाल्मीकि जी वहाँ आते हैं और मन्त्रजल से सीता को संयतकर उनका परिचय पाते ही अपने आश्रम ले आते है। वही पर सीता के लव-कुश नामक दो पुत्र होते है और ऋषि की शिक्षा-दीक्षा पाकर वयस्क होते है।

जब अश्वमेधीय अश्व को लेकर सीता के कुमार रामदल पर विजय प्राप्त कर लेते है, तब सीता जी उन्हें बहुत फटकारती है।

पापि ! कहाँ हति बापहिं जैहौ। लोक चतुर्दश ठौर न पैहौ।
रामकुमार कहै नहिं कोऊ। जारज जाय कहावहु दोऊ ॥ (३६।३)

इसी बीच महर्षि वाल्मीकि सीता को समझाते है, फलतः सब मिल कर संग्रामस्थल जाते है और सीता जी के सतीत्व के प्रताप से सम्पूर्ण सेना जीवित हो जाती है :

मनसा वाचा कर्मणा, जो मेरे मन राम।
तो तव सेना जी उठे, होहि घरी न विराम ॥ (३९।१०)

इस प्रकार श्री राम अपनी प्रिया सीता तथा पुत्रों को लेकर सशस्त्र सेना के साथ यज्ञस्थली में आते हैं, सीता जी माताओं की चरण-वन्दना करती हैं। कवि ने सीता के पृथ्वी-प्रवेश की करुणकथा का उल्लेख नहीं किया। सुखान्त काव्य की परम्परा से ऐसा किया गया प्रतीत होता है।

इस प्रकार केशव की सीता साक्षात् राम की योगमाया है। वे अयोनिजा जनक की कृतक पुत्री हैं, उनमें शील-सौन्दर्य, सौजन्य एव पतिव्रता की दिव्यशक्ति है। वे कष्टसहिष्णु, वत्सला, चतुर, वाग्मिनी, करुणालु एवं स्नेहमयी है। उनके छायारूप का ही अपहरण हुआ था, मूलरूप तो अग्नि में सुरक्षित था। उनका त्याग भी उनकी इच्छा से हुआ था, वस्तुतः वे परम पवित्र थी और राम भी उन्हे पवित्र मानते थे।

तुलसी और केशव की सीता (एक तुलनात्मक विश्लेषण)

महाकवि सन्त तुलसीदास ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरित मानस का आधार-मुख्यतया अध्यात्म रामायण को बनाया है, जब कि कविवर केशव ने अपने विख्यात ग्रन्थ रामचन्द्रिका का मुख्याधार वाल्मीकि रामायण को बनाया है। इस कारण दोनों ग्रन्थों के कथानकों एवं पात्रों के चरित्र-चित्रण मे भी अन्तर आ गया है। दोनों कवि भक्त थे और भक्तिकाल के ही माने जाते है, दोनों ने रामकथा को काव्य का आधार बनाया है, अतः दोनों के ग्रन्थों में विभिन्नता के होने पर भी पर्याप्त साम्य पाया जाता है। यहाँ पर उक्त दोनों ग्रन्थों की सीता का तुलनात्मक परीक्षण प्रस्तुत है :

(क) मानस तथा रामचन्द्रिका दोनो मे सीता जी के जन्म विषयक कथानक का कोई उल्लेख नही मिलता। केशव ने 'भूतल ते तनया उपजाई' (५।२४) लिखकर सीता जी को भूमिपुत्री के रूप में मान्यता दी है, किन्तु तुलसी ने तो उन्हे प्रायः जनकतनया ही माना है। यथा :

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजज्ञ जेहि कारन होई ॥
(रा० बा० ।२३१।१)

(ख) मानस में तुलसी ने प्रसन्नराघव के आधार पर पुष्पवाटिका में राम और सीता का पारस्परिक दर्शन कराकर उनमे पूर्वानुराग की सृष्टि की है, किन्तु केशव ने यह प्रसंग छुआ तक नही है।

(ग) मानस की सीता गौरीपूजन करती है, किन्तु केशव की सीता को उनकी आवश्यकता भी नही पड़ती।

(घ) मानस की सीता राम द्वारा धनुप टूट जाने के लिए देवो से प्रार्थना करती हैं, (बा० ।२५७ दो०) राम के दर्शन कर शरीर मे रोमांच उत्पन्न करती है और अश्रु भी भर लेती हैं, किन्तु केशव की सीता में यह अनुराग नही था।

(ङ) मानस की सीता को अपने पिता जनक के प्रण पर भी क्षोभ होता है, किन्तु रामचन्द्रिका की सीता शान्त है।

(च) दोनो ग्रन्थों में धनुर्भंग होने के पश्चात् सीता जी राम को जयमाला पहनाती है, किन्तु मानस की सीता की मानसिक दशा विचित्र है। उनमे प्रेम, लज्जा, संकोच आदि भाव उदित है, (बा० ।२६४ दो०) किन्तु केशव की सीता मे मनोभावों का कोई प्रभाव ही नही दिखलाई पड़ता। (रा० चं० ५।४५, ४६)

(छ) मानस की सीता अपने विवाह में अष्टसिद्धियों को बुलाकर बारात का स्वागत करवाती है, किन्तु केशव की सीता अलौकिक प्रभाव नहीं प्रकट करती।

(ज) मानस की सीता के विवाह में 'शची शारदा रमा भवानी' (३१८।६, ७) भी स्त्री वेप बना कर सम्मिलित होती है, किन्तु रामचन्द्रिका की सीता के विवाह में उक्त देवियों के सम्मिलित होने का उल्लेख नही मिलता।

(झ) मानस की सीता विवाह के पश्चात् पलकाचार में राम के साथ एक पलग पर बैठी नही दिखाई जाती, किन्तु रामचन्द्रिका मे यह वर्णन अपूर्व पद्धति के के साथ मिलता है। (रा० चं० ।६।३७, ४५)

(ञ) दोनो ग्रन्थो की सीता का सौन्दर्य वर्णनातीत है। यदि तुलसी की सीता जगत जननी अतुलित छवि भारी है, तो केशव की सीता भी दमयन्ती, इन्दुमती एवं रति से भी अधिक सुन्दरी है। (६।५९) यदि मानस की सीता विरंचि की सम्पूर्ण निपुणता की साकार मूर्ति है, सुन्दरता को भी सुन्दरता प्रदान करने वाली है और छविगृह मे दीपशिखा-सी प्रतीत होती है (बा० ।२३० दो० ।६, ७) तो केशव की सीता भी इतनी सुन्दरी है, कि जिनके समक्ष स्वर्ग भी निस्तेज लगता है और समस्त देवागनायें तो कुरूप लगती है, अत: वे अनुपम है। 'सीता जी के रूप पर देवता कुरूप को है' (६।५९)।

(ट) राम वनगमन के समय मानस की सीता कौसल्या जी के समीप जाकर उदासभाव से बैठ कर अश्रु बरसाने लगती है (बा० । दो० ५७) कौसल्या जी ही राम से सीता के साथ चलने की कामना व्यक्त करती है, किन्तु रामचन्द्रिका की सीता ऐसा नही करती, स्वय राम ही उनके पास आकर वनगमन का वृत्तान्त बतलाते है। मानस की सीता की सहगमन की कामना समझ कर राम उन्हें वन के विविध कष्टो का वर्णन सुनाते हुए माता कौसल्या की सेवा हेतु ही घर मे रहने की शिक्षा देते है :

कहऊँ सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखऊँ तोही। (अयो०।६१।८)

किन्तु रामचन्द्रिका में राम माता कौसल्या की सेवा के अतिरिक्त सीता को एक और विकल्प कह देते हैं कि तुम अपने पिता जनक जी के धाम में भी रह सकती हो :

तुम जननि सेव कहं रहहु वाम। कै जाहु आज ही जनकधाम।

(रा०चं०९।२३)

जहाँ तक वन के कष्टों का उल्लेख है दोनों ग्रन्थों में है और दोनों का मूल वाल्मीकि रामायण ही है। इस प्रसंग में मानस की सीता अत्यन्त विनम्र एवं सलज्ज है, वे माता कौसल्या के समक्ष ही राम से बोलने के लिए विवश हो जाती है उनकी समस्त प्रार्थना का तत्व यह है कि नारी के लिए पतिवियोग से अधिक दुःख कुछ नही हो सकता।

मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय वियोग सम दुख जग नाहीं॥

(अयो०।६४।८)

इस प्रकार विनती करती हुई सीता जी अपने प्राणान्त होने तक की सम्भावना व्यक्त करती है, किन्तु कहीं पर स्पष्ट रूप से यह नहीं कहती कि मुझे आपका कथन मान्य नही है, किन्तु रामचन्द्रिका की सीता इस प्रसंग मे स्पष्ट कहती है : 'न हौं रहौं, न जाहुँ जू विदेह धाम को अबै' (९।२८) अर्थात् न तो वे अयोध्या में ही रहना चाहती हैं और न जनकधाम ही जाना पसन्द करती है। इस प्रकार मानस की सीता की अपेक्षा इस प्रसंग मे रामचन्द्रिका की सीता निस्संकोच एवं स्पष्टवादिनी है। उनमें तर्क अधिक है, उनका कहना है कि माता भूख के समय, स्त्री विपत्ति के समय, जल प्यास के समय और भाई युद्ध के समय ही अधिक आवश्यक होता है (९।२४) अस्तु व्यंजना द्वारा उनका यह कथन है कि आप विपत्तिग्रस्त है, ऐसी दशा में आपको मेरी ही आवश्यकता है, अतः मैं यहाँ न रहूँगी। मानस की सीता मे यह तर्क नहीं है।

दोनो ग्रन्थो मे सीता जी का पतिप्रेम सराहनीय है। मानस की सीता राम के साथ रहकर सब प्रकार की सेवा करेगी, राम के श्रम को दूर करेगी, उनके चरण प्रक्षालित करेंगी हवा डुलायेगी और उनके संरक्षण में सुख का अनुभव करती हुई सब प्रकार के कष्टो को सहन कर लेंगी।[1] रामचन्द्रिका की सीता भूख-प्यास एव वन के समस्त कष्टो को सहन करने के लिए तैयार है, किन्तु उन्हें पतिविरह असह्य है।[2] उल्लेखनीय है कि केशव की सीता में सेवा-भावना का उल्लेख नही है, जब कि मानस में इसी पर विशेष बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त केशव की सीता को अवध में

---

१. सबहि भाँति पिय सेव करिहौं ··को प्रभु संग मोहि॥

(मानस। अयो०।६६, ६७ दो०)

२. सहिहौं तपन ताप पर के प्रताप रघुवीर को विरहवीर! मो सों न सह्यो परै॥

(रामचन्द्रिका।९।२६)

रखने पर प्राणहानि की आशंका नही, क्योंकि उन्हें रहना ही नही, किन्तु मानस की सीता राम की आज्ञा के विरुद्ध साथ चल भी नही सकती। अतः उन्हे वियोग मे प्राणहानि की आशंका करनी ही चाहिए।[1]

(ठ) मानस की सीता को दशरथ जी भी भवन मे रहने के लिए समझाते है (अयो० ।८।२) किन्तु केशव की सीता के लिए इस प्रकार के कोई पारिवारिक दबाव नही पड़ते।

(ड) मानस की सीता को वन से लौटते समय सुमन्त जी भी समझाते है और राम भी परिवार के कल्याण की बात बतलाकर उन्हें लौटा देना चाहते है, किन्तु सीता जी अपने पतिप्रेम पर दृढ़ रहती है। वे श्री राम को तो यह कहकर चुप कर देती है 'तनु तजि रहति छांह किमि छेकी' (अयो० ।९७।५) और सुमन्त से उन्हे स्पष्ट रूप में सम्पूर्ण सम्बन्धों को पति-पत्नी सम्बन्ध की तुलना मे तुच्छ कह देना पडता हैं।

आरति बस सनमुख भयऊँ, बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पदकमल बिनु, बादि जहाँ लग नात। (मानस०। अयो०।९७)

रामचन्द्रिका की सीता को कवि ने इन परिस्थितियों से निबटने के लिए अवसर ही नही दिया।

(ढ) मानस की सीता को वनपथ मे नर-नारी बड़े आनन्द के साथ देखते हैं, स्त्रियाँ उनसे राम का परिचय पूछती है[2] और सीता जी अंचल से अपने विधुवदन को ढककर कटाक्ष द्वारा सकेत करती हुई राम को पति बतलाती है, किन्तु केशव की सीता को देख कर लोग आश्चर्यचकित होते है। उनकी दृष्टि मे सीता जी अद्वितीय सुन्दरी तो है, किन्तु वे सन्देहास्पद है। उनसे कोई स्त्री अथवा पुरुष किसी प्रकार का प्रश्न नहीं करना। स्त्रियाँ परस्पर सीता के मुख की तुलना चन्द्र से करती है कोई मुख को केवल कमल के समान ही कहती हैं और कोई मुख की तुलना मे कमल तथा चन्द्र दोनों को तुच्छ सिद्ध करती है (९।४०, ४२) अन्त में निर्णय इस प्रकार करती है

दो०—सीता नयन चकोर सखि, रविवंशी रघुनाथ।
रामचन्द्र सिय कमलमुख, भलो बन्यो है साथ ॥ (राम०।९।४३)

केशव की सीता की तुलना मे मानस की सीता को ग्रामीणो का स्वाभाविक स्नेह, सहज सहानुभूति एव स्त्री जाति का आशीर्वाद अधिक मात्रा मे प्राप्त है। यथा .

दो०—अति सप्रेम पिय पाँय परि, बहु विधि देहिं असीस।
सदा सुहागिन होहु तुम्ह, जब लगि महि अहिसीस॥ (मानस०अयो०।११७)

---

१. राखिय अवध जौ अवधि लागि, रहत न जनिअहि प्रान।
दीन बन्धु सुन्दर सुखद सील सनेह निधान ॥ (मान०। अयो०।६६)

२. बहुरि बदन विधु०·········सयननि। (मानस० अयो०।११७ दो०)

निष्कर्ष यह कि मानस की सीता के साथ ग्राम वधूटियों का हृदय मिल गया है, किन्तु रामचन्द्रिका की सीता के साथ उनका हृदय इस मात्रा में नही मिल सका। सम्भवतः वे सीता के रूप एवं ऐश्वर्य से आतंकित हैं।

(ण) दोनों ग्रन्थों में सीता जी राम के चरण चिह्नों पर ही पैर रख कर चलती हैं, मानस की सीता पथ की भीषणता एव भय के कारण ऐसा करती हैं और केशव की सीता सुख पाने के लिए ऐसा करती है। तुलनीय :

(१) प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन भा चलति सभीता॥

(अयो०।१२३)

(२) प्यौ पद पकज ऊपर पायनि, देखु चलै तेहि ते सुखदायिनि॥

(राम०।६३८)

मर्यादा की दृष्टि से उक्त दोनों ग्रन्थों की सीताओं का यह आचरण अनुचित प्रतीत होता है, किन्तु मानस की सीता भय के कारण ऐसा करती हैं अतः 'आपत्ति काले मर्यादा नस्ति' इस नियमानुसार उन्हें हम निर्दोष भी कह सकते है, किन्तु सुखप्राप्ति के लिए ऐसा करनेवाली सीता वाच्य लगती है। तात्त्विक दृष्टि से वनयात्रा भी आपत्ति है अतः केशव की सीता को भी दोष देना संगत न होगा।

(त) तुलसी ने मानस में सीता जी को अत्यन्त सात्त्विक चित्रित किया है। चित्रकूट आश्रम में सीता जी तुलसी के अनेक पौदे लगाती है और यज्ञवेदी का भी स्वयं निर्माण करती हैं, किन्तु केशव ने चित्रकूट आश्रम में सीता जी की इन विशेषताओ का उल्लेख नही किया। मानस की सीता चित्रकूट में अपने पिता जनक जी के भी दर्शन पाती है, कौसल्यादि माताओ का सौहार्द भी प्राप्त करती है, किन्तु केशव की रामचन्द्रिका में सीता जी को उक्त अवसर ही नही प्रदान किये गये।

(थ) मानस की सीता अत्रि के आश्रम में जाकर अनसूया जी के चरण स्पर्श करती है और अनसूया उन्हें दिव्य वसन भूषन पहना कर पातिव्रत धर्म का उपदेश देती है (अरण्य दोहा० ४, ५)। रामचन्द्रिका मे भी केवल एक छन्द (११।६) मे सीता जी के प्रणाम करने एव अगराग प्राप्त करने के साथ ही अनेक प्रकार के उपदेश प्राप्त करने का उल्लेख है। अनन्तर यह है कि मानस की सीता अगराग नही पाती और केशव की सीता अगराग, प्राप्त करती है। केशव मे वाल्मीकि रामायण का प्रभाव स्पष्ट है।

(द) मानस की सीता राम लक्ष्मण के बीच वनपथ मे ऐसी प्रतीत होती थी जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया, मधु और मदन के बीच रति तथा बुध और विधु के बीच रोहिणी, किन्तु रामचन्द्रिका की सीता केवल ब्रह्म और जीव के बीच माया के समान ही शोभायमान होती थी। तुलनीय :

उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥
बहुरि कहऊँ छवि जस मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लखई ॥
उपमा बहुरि कहऊँ जिय जोही। जनु बुध विधु बिच रोहनि सोही ॥
(१२३।२, ४)

राम आगे चले मध्य सीता चली···जीव जीवेश के बीच माया मनो ॥
(रामचन्द्रिका ११।७)

उक्त तुलनात्मक विवेचन से यह सिद्ध होता है कि तुलसी की सीता में शक्ति, शील तथा सौन्दर्य का समन्वय किया गया है, जब कि केशव ने उनकी शक्ति पर ही विशेष ध्यान केन्द्रित किया है। आगे चलकर केशव ने पंचवटी वर्णन मे तुलसी की भाँति सीता को मधु और मदन के मध्य रति के रूप मे देखा है :

देखे रघुनायक सीय सहायक मनहु मदन रति मधु जानै। (११।१७)

किन्तु तब भी तुलसी की सीता की रोहिनी के रूप में कल्पना नही कर सके। वैसे तो अग्नि परीक्षा के समय उन्होने सीता के विषय मे कल्पना के अम्बार लगा दिये है।[1] रोहिणी की कल्पना भी इस प्रसंग मे इस प्रकार की गयी है : 'किधौ औषधी वृन्द मे रोहिणी-सी (२०।८) किन्तु एकत्र तीनो कल्पनाये अपना महत्व रखती है, उनका समुदित रूप सीता के व्यक्तित्व मे कान्ति उत्पन्न कर देता है। राम तथा लक्ष्मण के साथ सीता के सौन्दर्यादि की कल्पना जितनी भली प्रतीत होती है, उतनी स्वतन्त्र रूप में अकेली सीता की अग्नि परीक्षाकालिक कल्पना भली नही लगती। इतना होने पर भी केशव की सीता में शक्ति एवं सौन्दर्य का जो वैविध्य पाया जाता है, वह तो तुलसी मे एकत्र नही मिलता। इतने रूपो की कल्पना तुलसी ने किस ग्रन्थ मे की है ?

(ध) मानस की सीता वनवास के समय राम की सेवा करके उन्हे रिझाती है, किन्तु केशव की सीता अपने गान वाद्य द्वारा भी राम को रिझाती थी। वे वीणा बजाने में इतनी कुशल थी कि जिनकी वीणा की तान से पशु-पक्षी भी विमुग्ध हो जाते थे (११।२७)। मानस की सीता में सगीतकला का ऐसा चमत्कार नही था, वे तो केवल पतिसेवा द्वारा ही मनोरजन कर लेती थी।

(न) दोनों ग्रन्थों में सीता जी की छाया का ही अपहरण हुआ है, वास्तविक सीता तो अग्नि में सुरक्षित थी। मानस में राम एकान्त मे सीता जी से कहते है कि मै कुछ ललित नर लीला करना चाहता हूँ। राम के इन वचनो को सुनकर सीता जी

1. रमा (२०।४), चडी (२०।५), जलदेवी (२०।६), सरस्वती (२०।७), योगिनी (२०।८), वनदेवी (२०।९), द्वितीया का चन्द्र (२०।१०), प्रीति, कीर्ति, सिद्धि, भक्ति, योगमाया (२०।१३)।

प्रभुचरणों को हृदय में धारण कर अपना प्रतिबिम्ब शेप रख कर अग्नि मे समा जाती है[1]। केशव की रामचन्द्रिका में राम कहते हैं कि प्रिये! मैं अब भूभारहरण करना चाहता हूँ, अतः अपने शरीर को अग्नि में रखकर छाया शरीर से मृग (कपट मृग मारीच) की अभिलाषा करो।[2] दोनों मे यह अन्तर है कि मानस की सीता के लिए राम कनकमृग के लिए सीता को आग्रहशील बनाने की आज्ञा नही देते, किन्तु रामचन्द्रिका में राम स्पष्टतया सीता जी को मृग की अभिलाषा करने की आज्ञा देते हैं।

(प) मानस की सीता मारीच द्वारा हा लक्ष्मण! की पुकार सुन कर यह नही समझ पाती कि यह कांचनमृग नही, अपितु राक्षस है, किन्तु केशव की सीता शीघ्र ही समझ लेती हैं कि यह मृग नही निशाचर है।[3] दोनों ग्रन्थों में सीता द्वारा लक्ष्मण को मर्मवचन कहने का उल्लेख मिलता है, किन्तु भक्ति-भावना के कारण दोनों में उक्त मर्म वचनों का स्पष्ट उल्लेख नही किया गया।[4] इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों ग्रन्थों में सीता जी पतिप्रेम के आधिक्य के कारण ही लक्ष्मण को मर्म-वचन कहने के लिए बाध्य हुई।

(फ) मानस की सीता की सुरक्षा के लिए लक्ष्मण जी कोई धनुरेखा नही खीचते, वे तो वनदेवियों एवं दिग्देवादिको को ही सौंप कर राम के समीप चल देते है,[5] किन्तु राम चन्द्रिका की सीता की सुरक्षा हेतु लक्ष्मण धनुष्कोटि से एक रेखा खीच देते है साथ ही देवों को भी साक्षी के रूप मे स्मरण करते है। इस प्रकार मानस की सीता की अपेक्षा रामचन्द्रिका की सीता अधिक सुरक्षित थी।[6] मानस की सीता यतिवेपधारी रावण को बुलाती नही, वह स्वय आता है, किन्तु केशव की सीता उसे भिक्षुक जान कर भीख देने के लिए बुलाती है।[7] मानस की सीता हरण के समय विलाप करती हुई राम के आरतिहरन रूप का स्मरण करती है[8], पर केशव की सीता राम के वीर रूप का स्मरण करती है।[9] मानस की सीता लक्ष्मण के विषय मे कथित अपने कटुवचनों पर पश्चात्ताप करती है, छुड़ाने की प्रार्थना नही करती,

---

१. रामचरित मानस। अरण्य०।२४।१, ४ २. रामचन्द्रिका १२:१२

३. हेम मृग होंहि नहि, रैनिचर जानियो।
दीन स्वर राम केहि भाँति आनियो॥ (रा० चं० १२।५)

४. मानस० अरण्य०।२८।५ तथा रामचन्द्रिका (१२।१८)

५. मानस (अर०।२८।६)

६. रामचन्द्रिका १२।१८

७. रामचन्द्रिका।१२।१६

८. मानस।अर०।२६।

९. रामचन्द्रिका। १२।२१

किन्तु केशव की सीता लक्ष्मण से केवल छुड़ाने की प्रार्थना करती है, स्वकथित कटुवचनों के लिए पश्चात्ताप नही करती ।[1]

(व) मानस की सीता पथ मे जाती हुई गिरि पर बैठे कपियो को देखकर केवल पट डाल देती है, केशव की सीता अपने नूपुर तथा उत्तरीय दोनो डाल दे ी हे ।[2] यहाँ केशव की सीता मानस की सीता की तुलना मे अधिक विवेकशील प्रतीत होती हे, उनमे विचार प्रधान हैं और मानस की सीता मे भाव प्रधान है ।

(भ) दोनो ग्रन्थो मे राम सीता के वियोग मे उन्मत्त होकर विलाप करते दिखाये गये है । तुलसी ने इसी स्थल मे रूपकातिशयोक्ति अलकार द्वारा सीता जी के अगो का वर्णन किया हे । यथा :

> खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ।।
> कुन्दकली, दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ।।
> वरुनपास, मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रशसा ।।
> श्रीफल कनककदलि हरपाही । नेकु न संक सकुच मन माही ।।
>
> (मानस । अर० ३०।१८, १३)

केशव ने इस स्थल पर तो सीता जी के अगो का सौन्दर्य का वर्णन नही किया, किन्तु इसके पूर्व एकादश प्रकाश मे शूर्पणखा वृत्तान्त के पूव छन्द सख्या २८, ३० तक सीता के अगो का सौन्दर्य वर्णन किया है । दोनो की तुलना से ज्ञात होता है कि तुलसी ने बीस उपमानो का प्रयोग कर सीता जी के व्यापक सौन्दर्य का चित्रण किया है और केशव ने दस उपमानो द्वारा उनके सक्षिप्त एव सीमित शृगार का चित्रण किया है ।

(म) जब हनुमान अशोकवाटिका मे सीता को देखते है, तब वे एकवेणी-धारिणी एव शरीर से कृश प्रतीत होती थी । मानस के इस वर्णन की अपेक्षा केशव ने तीन छन्दो (१३।५३, ५५) मे सीता की करुण मूर्ति का आलेखन किया है । यहाँ केशव की सीता मानस की सीता की तुलना में अधिक दुःखित प्रतीत होती है । मानस की सीता रावण के प्रणय प्रस्ताव से अत्यन्त क्षुब्ध होकर तृण की ओट से रावण को बुरी तरह फटकारती है, वे उसे तुच्छ, बलहीन, चोर तथा निर्लज्ज भी कहती है (सुन्दर० दो० ९) । केशव की सीता तृण की ओट से उसे फटकारती है । दोनो ग्रन्थो की उक्तियो मे अन्तर यह है कि केशव की सीता उसे सर्वनाश का भय दिलाती है, वे लक्ष्मण की धनुरेखा का स्मरण दिला कर उसे निर्बल एव कायर सिद्ध कर देती है, वे अपने वचन रूपी सर्पो से बचने के लिए रावण को भाग जाने के लिए प्रेरित करती है । (१३।६१, ६३) इस प्रकार दोनो ग्रन्थो मे सीता जी रावण के प्रति उग्र एव सरुष है, किन्तु रामचन्द्रिका मे वे अपेक्षाकृत अधिक कटु प्रतीत होती है । मानस की सीता

---

१. रामचन्द्रिका १२।२१ २. रामचन्द्रिका । १२।२४

को रावण द्वारा एक मास की अवधि दी जाती है, किन्तु रामचन्द्रिका की सीता के लिए दो मास की अवधि दी जाती है।[1]

(य) मानस की सीता हनुमान के प्रति शीघ्र ही विश्वास कर लेती है, केवल हनुमान उन्हें जननि (मातु) सम्बोधन देकर करुणानिधान की शपथ करते है और मुद्रिका अर्पित करते है।

रामदूत मै मातु जानकी। सत्य सपथ करुणानिधान की ।।
यह मुद्रिका मातु मै आनी। दीन्ह राम तुम कह सहदानी ।।

(मानस० सु० ९, १०)

रामचन्द्रिका की सीता सरलता से हनुमान का विश्वास नही करती, यद्यपि वहाँ भी हनुमान जननि सम्बोधन देकर अपने को रघुनाथ दूत बतलाते है अन्तर यह है कि इस ग्रन्थ के हनुमान कोई शपथ नही लेते। फलतः सीता को रघुनाथ के पिता दशरथ और उनके पिता अज का परिचय देना पड़ता है और राम के गुण रूप और शील शोभा एवं स्वभावादि का सूक्ष्म वर्णन भी करना पड़ता है।[2] इस पर भी जब सीता को विश्वास नही हो पाता, तब हनुमान उन्हे सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाते है इसके पश्चात् कही सीता जी विश्वास करती है इस प्रकार मानस की सीता की तुलना मे इस ग्रन्थ की सीता अधिक तार्किक सतर्क एवं शकालु है। मानस की सीता राम की मुद्रिका प्राप्त कर राम की कुशलता पूँछने लगती है और अपनी व्यथा का भी वर्णन करती है, किन्तु केशव की सीता मुद्रिका को देख कर विभिन्न तर्क वितर्कों मे ही खो जाती है। वे हनुमान जो क साक्षात चेतन रूप मे उपस्थित थे उनसे राम की कुशलता न पूँछकर मुद्रिका से ही इस प्रकार पूँछने जाती है।

कहि कुशल मुद्रिके रामभ्रात। सुभ लक्ष्मण सहित समान तात ।। (१३ ८९)

मानस मे हनुमान सीता जी के लिए मातु जननि माता जानकी के अतिरिक्त और कोई सम्बोधन नही देते। इस प्रसंग में पाँच बार मातु, चार बार माता, चार बार जननि और एक बार जानकी शब्द का सम्बोधन दिया गया है। इस प्रकार १३ बार मातृवाचक शब्दो के प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि मानस के कवि को सीता का मातृरूप अतिशय अभिप्रेत रहा है। रामचन्द्रिका मे केशव ने हनुमान द्वारा प्रथम सम्बोधन तो जननि शब्द द्वारा कराया है किन्तु (१३।८९) आगे चल कर राजपुत्रि सम्बोधन दिया है। इतना ही नही हनुमान सीता जी को सुगति, सुकेशि, सुनैनि, सुमुखि, सुदति और सुश्रोणि जैसे सम्बोधन देकर राम के मिलन का आश्वासन देते है।

---

१. मानस। सुन्दर। १० दो० तथा रामचन्द्रिका १३।६४ ।।

२. करि जोरि कह्यो······कछु रघुपति के लक्षण सुनाउ ।।

(रामचन्द्रिका १३।७३, ७४)

दो०—मृगनि, मुकेशि, सुनैनि सुनि, सुमुखि सुदन्ति सुश्रोनि।
दरसावैगो वेगिही तुमको सरसिज-योनि ॥ (रा० चं०, १३ ९४)

औचित्य की दृष्टि से जननि सम्बोधन देनेवाले हनुमान के लिए उक्त सम्बोधनों का प्रयोग करना कहाँ तक ठीक है ? इतना अवश्य है कि दोनो ग्रन्थो मे सीता जी हनुमान को (सुत, कपि, तात, मानस में) बुद्धिमन्त, हनुमन्त सन्त, सुत (रा० च० में) वात्सल्य सूचक अथवा आदरसूचक सम्बोधनो से ही पुकारती है।

(र) मानस की सीता हनुमान द्वारा प्रत्यभिज्ञान चाहने पर उन्हें चूड़ामणि देने के अतिरिक्त जयन्त वृत्तान्त भी बतलाती हैं (सुन्दर० २७।२, ५) रामचन्द्रिका की सीता केवल चूड़ामणि ही प्रदान करती है (१३।९५)। इससे मानस की सीता रामचन्द्रिका की सीता की अपेक्षा अधिक बुद्धिमती सिद्ध होती हैं। चूड़ामणि तो मार्ग में खो भी सकती थी, किन्तु जयन्तवृत्तान्त खोने की वस्तु नही। इस प्रकार द्विधा प्रत्यभिज्ञान देना सर्वथा सीता की बुद्धिमत्ता का प्रतीक कहा जायगा। दोनो ग्रन्थों में सीता जी हनुमान को अजर-अमर होने तथा रामकृपापात्र होने का वर देती है। (रा० च० १३।९५ तथा मानस। सुन्दर० १७।२, ३) इससे यह सिद्ध होता है कि दोनों ग्रन्थों की सीता हनुमान पर विशेष प्रसन्न थी, उनकी सेवा की कृतज्ञ थी।

हनुमान लका से लौट कर सीता की जिस दयनीय स्थिति का चित्रण करते है, उसके विचार से मानस की सीता मे दैन्यभाव बहुत अधिक है, जब कि रामचन्द्रिका की सीता में वेदना अधिक है। (१४।२९) मानस की सीता अपना उद्धार करने के लिए हनुमान से जो सदेश भेजती है, उसमें तीव्र विरह-वेदना भी प्रतीत होती है।

(ल) मानस की सीता को न तो (कृत्रिम सीता) इन्द्रजीत, नागपाश में बद्ध राम के समीप उपस्थित करता है और न उन्हे रावणकृत किसी छल से सावधान रहना पड़ता है, किन्तु रामचन्द्रिका की सीता रावण के छलों का भी सामना करती है। नागपाश की घटना के पश्चात् उन्हें विवश होकर बद्ध राम-लक्ष्मण के दर्शन करने पड़ते है (१७।११) इस प्रकार इस ग्रन्थ की सीता को रावणजन्य त्रास के अतिरिक्त छलना की शका अधिक रहती थी।

(व) मानस मे रावण वध के पश्चात् राम हनुमान को सीता के पास कुशल समाचार लेने के लिए भेजते है और सीता जी उनसे राम के दर्शन की उत्कट अभिलाषा व्यक्त करती है। तत्पश्चात् राम की आज्ञा से हनुमान और विभीषण सीता को अलंकृत कराकर राम के समक्ष उपस्थित करते हैं। (लंका १०७ दो०)

रामचन्द्रिका में हनुमान को सीता का कुशल समाचार लेने नहीं जाना पड़ता राम की आज्ञा से अकेले सीता के पास जाते है और उनसे राम के पास चलने की प्रार्थना करते है, सीता सुसज्जित होकर चल देती है। मानस की सीता जो प्रथम

अग्नि में समाविष्ट हो गई थी, उन्हें प्रगट करने के उद्देश्य से राम उन्हे कुछ (दुर्वाद) दुर्वचन भी कहते हैं, किन्तु सीता लक्ष्मण द्वारा अग्नि प्रकट कराकर निर्भीक भाव से अग्नि में प्रवेश करने के पूर्व शपथ करती हैं :

जौ मन वच क्रम मम उर माही। तजि रघुवीर आन गति नाही ॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मोकहुँ होउ श्रीखण्ड समाना ॥
(मानस० लंका) १०९।७, ८

रामचन्द्रिका की सीता को राम दुर्वाद नही कहते, सीता स्वयं अपनी शुद्धिहेतु अग्नि परीक्षा देती है। इस प्रकार उन्हे अपनी शुद्धि की शपथ भी नही लेनी पड़ती।

मानस की सीता को अग्निदेव अपने अंक में लेकर स्वयं राम को समर्पित करते हैं, रामचन्द्रिका में अग्निदेव सीता को समर्पित ही नहीं करते अपितु उनकी सर्वकालीन शुद्धता की साक्षी भी देते हैं और उन्हें साक्षात् योगमाया कहकर उनका महत्व स्थापित करते है। मानस की सीता को अग्निदेव द्वारा यह महत्व नही मिला। (२०।१२)

(श) मानस की सीता को निर्वासन का दुःख नही सहन करना पड़ता, किन्तु रामचन्द्रिका की सीता को निर्वासन का दुःख सहन करना पड़ता है। मानस की सीता के पुत्रों का कोई चरित्र वर्णन नही मिलता, केवल दो पुत्रों के होने का संकेत मिलता है : दुइ-दुइ सुत सब भाइन केरे (उत्तर०। २५ दो०) सीता जी के दो पुत्र लव और कुश वतलाये गये है, जो गुणवान वीर विश्रुत एवं राम के प्रतिबिम्ब ही प्रतीत होते थे :

दुइ सुत सुन्दर सीता जाये। लव कुस वेद पुरानन गाये ॥
दोउ विजई विनई गुनमन्दिर। हरि प्रतिबिम्ब मनहुँ अति सुन्दर ॥
(मानस० उत्तर० २५।६, ७)

किन्तु सीता के दोनों पुत्रों के संग्राम, उनकी वीरता, रामायण गान की प्रवीणता आदि पर रामचन्द्रिका में विस्तृत प्रकाश डाला गया है। लव-कुश युद्ध के पश्चात् रामचन्द्रिका की सीता अपने सतीत्व से समस्त रामसेना को जीवित कर देती है, किन्तु मानस की सीता को यह अवसर ही नही मिलता। दोनों ग्रन्थों में सीता के पृथ्वी प्रवेश का करुण वृत्तान्त उपेक्षित कर दिया गया है।

निष्कर्ष यह कि मानस की सीता और रामचन्द्रिका की सीता में मौलिक अन्तर यह है कि मानस की सीता अधिक गम्भीर, सरल, स्नेहिल, विश्वासमयी, दीन, विनम्र एवं पतिपरायणा हैं, जब कि रामचन्द्रिका की सीता मानस की सीता की अपेक्षा वाचाला, तर्कशील, स्वाभिमानिनी, कठोर एवं विदुपी हैं। दोनों ग्रन्थों की सीता वेदनाग्रस्त हैं किन्तु मानस की सीता अन्तर्मुखी है, अधिक व्यक्त नही करती, दोनों ग्रन्थों में सीता ईश्वर की शक्ति हैं, अनुपम सुन्दरी हैं, किन्तु मानस में उनका ऐश्वर्य

विशिष्ट है। वे सृष्टि की उत्पादिका, पालिका एव संहारिका भी है। वे क्लेशहारिणी एवं सर्व श्रेयस्करी देवी है :

उद्भव स्थिति सहारकारणी क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करी सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥ (रा० च० मानस० वा० श्लो० ५)

केशव की रचना रामचन्द्रिका के पश्चात् भी सीताराम के विषय मे व्यापक साहित्य की रचना की गई है, किन्तु इसमें प्रायः श्रृंगार भावना का प्राकट्य होता गया है। इसी प्रकार भक्ति काल मे राजस्थानी भाषा में भी राम साहित्य की प्रचुर सृष्टि हुई है, जो एक स्वतन्त्र शोध का विषय है। रीतिकाल में रसिक गोविन्द की रामायण सूचनिका, लछिराम की रामचन्द्रभूषण ये दो रचनाये विशेष प्रसिद्ध है। १६९८ ई० में गुरुगोविन्द सिंह ने भी रामावतार नामक ग्रन्थ की रचना, जिसे वर्तमान समय मे गोविन्दरामायण नाम से ख्याति प्राप्त है। यह ग्रन्थ रीतिकाल की रामकथा का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जा सकता है। इस ग्रन्थ की सीता पर हम इसी प्रकरण मे समीक्षात्मक प्रकाश डालेगे।

१८वी शताब्दी के प्रथम दशक के लगभग रामप्रियाशरण ने सीतायण नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमे सीता के मधुर रूप का चित्रण प्रधान है। उनकी अनेक सहेलियों के चित्रण मे कवि ने अपनी श्रृगार प्रधान भक्ति का परिचय दिया है। इनके अनन्तर जानकीरसिकशरण कलानिधि एव रीवानरेश महाराज विश्वनाथ सिह की रामभक्ति सम्बन्धी रचनाओ मे भी उक्त परम्परा के दर्शन होते है। रीतिकालीन कवियो ने रामसाहित्य मे जिस मधुरोपासना का समावेश किया, वह युगीनप्रवृत्ति थी एव कृष्ण के रसिक रूप से विशेष प्रभावित हो गयी थी। रामकिशोर शरण की रामरसामृतसिन्धु, प० सूरजराम की जैमिनि पुराण, भगवन्तराय खीची की रामायण, मधुसूदन दास की रामाश्वमेध, गोकुलनाथ की सीताराम गुणार्णव, ललकदास कृत सत्योपाख्यान, नवलसिह कृत रामचन्द्र विलास, वनादास कृत उभय प्रवोधक रामायण प्रभृति ग्रन्थों का नाम प्रकाश में आया है।

सामान्यतया इन रीतिकालीन सीताराम विषयक ग्रन्थो मे राम तथा सीता की श्रगारमयी लीलाओ एवं चेष्टाओ का वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थो मे रामायण के वालकाण्ड की कथावस्तु का ही पल्लवन किया गया है। पुष्पवाटिका एवं विवाह के पश्चात् सुरत प्रसंग के वर्णन में इन कवियो ने विशेष रुचि प्रदर्शित की है। राम और सीता के उन्मुक्त विहार का चित्रण करने के लिए इन कवियो ने कनक भवन, लता-कुजों एवं अनेक सखियों की कल्पना कर सीता को घोर विलासिनी वना दिया है। इस प्रकार इन कवियों ने युगलोपासना के रूप मे साधना का चित्रण किया है। फलतः इन समस्त काव्यो मे रसिकता, प्रेमातुरता, सौन्दर्य का प्राधान्य है। यद्यपि भक्त के पच

प्रकारों (वात्सल्य, दास्य, सख्य, माधुर्य एवं शान्त) का उल्लेख इन ग्रन्थों में प्राप्त होता है, किन्तु प्रधानतया माधुर्यभाव एवं सत्यभाव की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। इनमें भक्त स्वयं को सीता की सखी अथवा राम के प्रिय सखा के रूप में प्रस्तुत करता है। इन ग्रन्थों की सीता पराशक्ति है, जो अपने भक्तो को मुक्तिदान देने के लिए मधुरलीला करती हैं। इन ग्रन्थो मे सीता की अनेक सपत्नियो का उल्लेख किया गया है, जिनमें प्रमुखता सीता जी को प्राप्त है। इस प्रकार मधुरोपासना साहित्य की सीता में करुण पक्ष देखने को नहीं मिलता, वे वास्तविकता की कठोर भूमि से लाखों कोस दूर है।

हिन्दी के राम भक्ति साहित्य में जिस प्रकार भक्तिकाल में तुलसीकृत रामचरित मानस, भक्ति तथा रीतिकाल की सन्धि में कविवर केशवकृत रामचन्द्रिका महत्वपूर्ण ग्रन्थ माने जाते है, उसी प्रकार रीतिकालीन रामसाहित्य में गुरुगोविन्द सिंह (१६६६ ई०-१७०८ ई०) की कृति गोविन्द रामायण का भी महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। इस ग्रन्थ में कवि ने ८६४ छन्दो एवं २२ उपशीर्षको के माध्यम से रामावतार से लेकर सीताराम के साकेत आगमन तक का कथानक ६७ प्रकार के छन्दों द्वारा व्यक्त किया है। इस ग्रन्थ के आधार पर हम सीता जी के विषय मे निम्नलिखित विशेषताये समझ सकते है :

(क) गोविन्द रामायण की सीता विवाह के पूर्व ही प्रासाद के ऊपर से मिथिला में विचरण करते हुए राम की मधुरमूर्ति को देख कर मुग्ध हो जाती है। धनुर्भंग होने पर वे राम के कण्ठ में माल्यार्पण कर लज्जावनत हो जाती है।

(ख) राम वनगमन के समय हमें सीता के पतिव्रता पत्नी के रूप में दर्शन होते है। राम उन्हें माता कौसल्या के समीप रहने की शिक्षा देते है, किन्तु वे हठवश रहना अस्वीकार कर देतीं हैं :

मैं न तजौ पिय संग, कैसो दुःख जिय पै परै ॥
तनिक न मोरउं अंग, अंग से अनग किन ॥ (गो० रा० ४)

इस कथन में हमें केशव की सीता के कथन का प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है। (रा० चं०। ९। २४) उक्त कथन के आधार पर सीता जी स्पष्टवादिनी, पतिप्रिया एवं निःसंकोच थीं। उनमें एक लगन थी, जिस पर दृढ़ रहना जानती थीं, पतिविरह की तुलना में उन्हें मृत्यु स्वीकार थी।

(ग) सीता जी अद्भुत सुन्दरी थीं। चकोर उन्हें चन्द्र अथवा शची किंवा गंगा के रूप में देखते थे। जब राम सीता को लेकर वनपथ में विचरण करते हैं, तब सभी दर्शक उस युग्म को देख कर मुग्ध हो जाते हैं।

(घ) इस ग्रन्थ की सीता कनकमृग पर मुग्ध हो जाती है, किन्तु मारीच के हा लक्ष्मण ! हा सीते ! इन शब्दों से भ्रमित होकर वे लक्ष्मण को प्रेषित करती है, उन्हें कटु वचन नही कहती। इस बीच भिक्षु रूपधारी रावण आता है और लक्ष्मणरेखा को मिटा देने के पश्चात् ही भिक्षा स्वीकार करने को कहता है, फलतः सीता ही स्वयं उस रेखा को मिटाकर भिक्षा देने लगती है, तभी रावण उनका हरण करता है। (७)

(ङ) इस ग्रन्थ की सीता की यह विशेषता है कि वे इन्द्रजीत द्वारा नागपाश में आवद्ध राम लक्ष्मण को देख कर क्रुद्ध होती है और नागमन्त्र द्वारा उन्हें पाशमुक्त कर देती है।

सिय निरख नाथ मनमहिं रिसान, दस अउर चार विद्या निधान।
पढ़ नागमन्त्र संधरी पाश, अति भ्रात जिनई चित भा हुलास ॥

(गो० रा०।१३)

उक्त प्रसंग से यह भी सिद्ध होता है कि सीता जी चतुर्दश विद्याओं में पारगत थीं, उन्हे अपने पति राम तथा देवर दोनों के प्राणो का चिन्ता थी।

(च) रावण वध के पश्चात् इस ग्रन्थ में राम की आज्ञा से हनुमान तथा विभीषण लंका जाते है और सीता को राम के पास प्रस्तुत करते है। सीता जी राम के चरणों में लेट जाती हैं, किन्तु राम की आज्ञा से उन्हें अग्निपरीक्षा देनी पड़ती है। अग्निदेव सीता जी को अपनाकर राम को अर्पित करते है। इस प्रसंग के अनुसार सीता सती, शुद्ध आज्ञाकारिणी एवं निर्भीक सिद्ध होती है। (गो० रा०।१७)

(छ) रामचन्द्रिका की सीता की भाँति इस ग्रन्थ की सीता भी गर्भवती होने पर वनभ्रमण रूप दोहद चाहती है। राम उन्हें लक्ष्मण के साथ वन भेज देते हैं, वहाँ सीता को मूर्छित अवस्था में छोड़कर लक्ष्मण अयोध्या लौट आते है और वाल्मीकि जी उन्हे आश्रय देते है।

(ज) इस ग्रन्थ की सीता के एक पुत्र लव ही उत्पन्न होता है। सीता एक दिन उसे लेकर स्नान करने चली जाती है, इतने मे वाल्मीकि जी पुत्र को नष्ट समझ कर कुश द्वारा एक पुत्र की सृष्टि कर देते है। लौटकर सीता आश्चर्यचकित होती है और उस पुत्र को भी पालने लगती है। इससे उनके वात्सल्य पर प्रकाश पड़ता है। (वही २०)

(झ) जब लवकुश के बाणों से राम भी मूर्छित हो जाते है, तब रामचन्द्रिका की सीता की भाँति वे भी अपने पुत्रों को फटकारती हुई कहती है :

देखि सिया पति मुख रो दीना। कह्यो पूत विधवा मोहिं कीना॥

(गो० रा० ।२०)

इतना अच्छा है कि इस ग्रन्थ की सीता पुत्रो को शाप नहीं देती, जैसा कि रामचन्द्रिका

की सीता करती हैं। सीता व्यथित होकर राम के साथ सती होने का विचार करने लगती हैं। इतने में ही आकाशवाणी होती है कि सीते ! क्या तू भी बालक हो गयी है अर्थात् तुम में सतीत्व की शक्ति है, इन्हें सजीव क्यों नही कर देती। अन्त मे सीता जी अपने पातिव्रत्य की शपथ लेकर सब को जीवित कर देती है :

जो मन वच करमन सहित, राम बिना नहिं और।
तउ ए राम सहित जिएँ, कह्यो सिया तिहठौर ।। (गो० रा० ।२१)

इस वृत्तान्त के आधार पर सीता का सतीत्व, पतिप्रेम एवं सार्वभौम स्नेह सिद्ध होता है। वस्तुतः सीता के इस शक्तिपूर्ण दयालु रूप का चित्रण पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं किया गया।

(ज) इस ग्रन्थ की सीता अन्ततः अभिशापग्रस्त होकर माता वसुन्धरा की गोद में समा जाती हैं। एक दिन स्त्रियों के आग्रह पर वे रावण का चित्र बनाती है, राम उसे देखकर सीता से रुष्ट होते है। सीता जी पति के सन्देह निवारणार्थ पृथ्वी से आत्मसात् कर लेने की प्रार्थना करती है।

जउ मोरे मन वच क्रमन, हृदय बसत रघुनाथ।
पृथ्वी पैठ मुहि दीजिये, लीजै मोहिं मिलाय ।। (गो० रा० ।२२)

पृथ्वी सीता की इस प्रार्थना से विदीर्ण हो जाती है और सीता उसमें विलीन हो जाती है।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ की सीता सुन्दरी, पतिपरायणा, शक्तिमती, स्पष्ट-वादिनी सलज्जा, भीरु, हठवादिनी, सती, मन्त्र-तन्त्रविद्, चतुर्दशविद्या विशारद, चित्रकलानिपुण, आज्ञाकारिणी एवं दयालु होती हुई अपने जीवन भर अबला रहती हैं और वेदना की अग्नि में ही जलकर जीवन समाप्त कर देती है।

(ग) आधुनिक हिन्दी साहित्य में सीता का स्वरूप और पूर्ववर्ती स्वरूप के साथ तुलना

साहित्य के क्षेत्र में वाल्मीकि रामायण के रचनाकाल (३०० वर्ष ई० पू०) से लेकर अद्यावधि रचित साहित्य में सीता जी के विविध रूपों का प्रतिपादन किया गया है। हिन्दी साहित्य के विस्तृत क्षेत्र में भी सीता विषयक विपुल ग्रन्थों की सृष्टि की गयी है। कलाकार का यह दायित्व होता है कि वह अपने ग्रन्थ में युगीन परिस्थि-तियों एवं मान्यताओं के अनुकूल ही पात्रो का चित्रण करें। इस प्रकार सीता के सम्बन्ध में भी युगीन परिस्थितियाँ उनके सामयिक परिवर्तन का उत्तरदायित्व वहन करती चली आई हैं। हिन्दी साहित्य का आदिकाल सीता जैसी आदर्श नारियों के शान्तविग्रह के अनुकूल न था, अतः भक्तिकाल में ही उनके दिव्य रूप की प्रतिष्ठा हो

सकी थी। इसका सर्वाधिक गौरव गोस्वामी तुलसीदास जी की अमर रचना रामचरित मानस को प्राप्त है। तदनन्तर तुलसी की दास्यभक्ति के स्थान पर मधुराभक्ति की प्रतिष्ठा हो गयी और रीतिकालीन प्रवृत्तियो के आधार पर सीता के श्रृगारी रूप की लोकप्रियता वढ़ने लगी। प्राय: प्रत्येक आन्दोलन अपने लक्ष्य की पूर्ति कर लेने के अनन्तर या तो समाप्त हो जाता है अथवा विकृत हो जाता है। सीता जी की मान्यता का भी यही हाल हुआ। कृष्णभक्ति के रसिकोपासना के प्रभाव ने सीता के आदर्श स्वरूप को घोर श्रृंगारी वनाने मे कोर कसर नही रखी। १७वी शताब्दी तक सीता का यह श्रृंगारी रूप ही साहित्य में मुखर रहा है, जिसका विस्तृत रूप वर्तमान शोध ग्रन्थों के माध्यम से प्रकट हो रहा है।

आधुनिक युग मे समाज एवं संस्कृति के परिवर्तन के साथ ही साहित्य के क्षेत्र मे परिवर्तन हुए है। इस युग मे सांस्कृतिक परम्पराओ का सशोधन, परिष्करण एव परिमार्जन हो रहा है और युगीन परिस्थितियो के अनुकूल उन्हें एक नवीन रूप दिया जा रहा है, जिससे पाश्चात्य संस्कृति के सघर्ष में उसे जीवित एवं सशक्त सिद्ध किया जा सके। परिणामस्वरूप आधुनिक युग की सीता न तो भक्तिकालीन मूल प्रकृति अथवा आद्याशक्ति है और न रीतिकालीन श्रृगारमयी आद्याशक्ति है, जो राम के साथ लीला निकुजो में रास रचाती हो और अनन्त सखियों के साथ राम को श्रृंगार रस मे सरावोर करने में ही सलग्न रहती हो।

आधुनिक युग की सीता विकास को तीन चरणो मे विभक्त कर सकते है: (१) सीता का आदर्श मानवी रूप, (२) सीता का प्रतीकात्मक स्वरूप (३) सीता का दार्शनिक रूप। इसका सक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है।

आधुनिक युग के दो प्रमुख महाकाव्यो साकेत तथा वैदेही वनवास मे सीता एक आदर्श पतिव्रता मानवी के रूप में चित्रित की गई है, किन्तु उस पराकाष्टा तक जहाँ मनुष्यत्व देवत्व की कोटि तक पहुंच जाता है। साकेत की सीता मे उनका शक्ति स्वरूप भी दिखता है, पर वे मुख्यतया मानवी है। 'वैदेही वनवास' मे वे शुद्ध मानवी है, जिनमें आदर्शो का अम्बार लगा है, समाज सेवा एव लोक कल्याण मे रह-रह कर इस ग्रन्थ की सीता अपने करुण जीवन को घोल देती है। आगे चलकर यथार्थ वाद के आग्रह के कारण कविवर पन्त ने लोकायतन में उनका प्रतीकात्मक चित्रण किया। उन्होने युग चेतना के रूप मे सीता को अन्तर्मुखी कर दिया। इसी प्रतीकात्मकता में मार्क्सवादी दर्शन एव राजनीति के प्रभाव के कारण नरेश मेहता ने 'संशय की रात' मे उन्हे कोटि-कोटि जनो की अपहृत स्वतन्त्रता का रूप प्रदान किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान ने सीता का पृथ्वी प्रवेश इसी रूप में कर दिया है, उन्हें पुन: प्रतिष्ठित कर लोकजीवन की आदर्शमानवी के रूप मे प्रकट करने के प्रयास

हो रहे हैं। प्रस्तुत प्रकरण में आधुनिक-हिन्दी-साहित्य की काव्यधारा के इन्हीं सोपानों को दृष्टिपथ में रख कर विश्लेषण किया जायेगा। सर्वप्रथम साकेत की सीता का विवरण प्रस्तुत है।

साकेत की सीता : राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का प्रमुख महाकाव्य साकेत आधुनिक हिन्दी साहित्य का एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। यद्यपि इस ग्रन्थ में कवि की मुख्य दृष्टि उर्मिला पर ही केन्द्रित रही है, किन्तु इसमें बीच-बीच सीता जी के विषय में भी विचार व्यक्त किये गये हैं।

सीता, उर्मिला, माण्डवी, एवं श्रुतकीर्ति इन चारों बहनों को राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के साथ स्मरण करता हुआ कवि उन्हें अलौकिक सिद्ध करता है :

राम सीता, धन्य धीराम्बर हला।
शौर्य सह सम्पत्ति लक्ष्मण उर्मिला॥
भरतकर्त्ता माण्डवी उनकी क्रिया।
कीर्ति सी श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न प्रिया॥ (साकेत।१।पृ० १८, सम्वत २०२२)

अगले छन्द में इन चारों बहनों को चार माया मूर्तियाँ कहकर यह स्पष्ट कर दिया है कि वे केवल सीता जी को ही नहीं अपितु उर्मिला आदि को भी अलौकिक शक्ति के साथ में स्वीकार करते हैं। चित्र में राम तथा सीता के रूप का उल्लेख करते हुए कवि ने उन्हें शालग्राम तथा तुलसी के रूप में उत्प्रेक्षित किया है। (साकेत, १ पृ० ३६)

जिस समय राम को युवराज बनाने के लिए तैयारियाँ होने लगती हैं, उस समय सीता जी को यह अच्छा नहीं लगता कि अकेले राम राज्याधिकार को स्वीकार करें। उनकी दृष्टि में ऐसा करना व्यवस्था को भंग कर देना होगा।[1] उक्त कथन से इस ग्रन्थ की सीता की आदर्शवादिता, बान्धव प्रेम एवं अधिकार लिप्सा से विरक्ति भाव सिद्ध होता है। जब राम उन्हें यह बतलाते हैं कि वस्तुतः राज्य नहीं, यह तो भार है, तब सीता का लक्ष्मण के प्रति असाधारण ममत्व इस प्रकार प्रकट होता है :

नाथ ! यह राज नियुक्ति पुनीति, किन्तु लघु देवर की है जीत।
हुआ जिनके अधीन नृपगेह, सचिव सेनापति सह स्नेह॥
(साकेत। पृ० ५७)

---

१. (साकेत पृ० ५६, ५७)
कहा वैदेही ने हे नाथ, अभी तक चारों भाई साथ।
भोगते थे तुम सब सुख भोग, व्यवस्था मेट रही वह योग।
भिन्न सा करके कौशल राज, राज्य देते हैं तुमको आज।
तुम्हें रुचता है यह अधिकार ?

इस कथन से यह भी सिद्ध होता है कि सीता जी लक्ष्मण को राज्य के सचिव एवं सेनापति से भी अधिक उत्तरदायित्व देना चाहती है। यह है सीता जी की अनन्य-विश्वासभावना जिसे लक्ष्मण ने अपने कर्तव्य द्वारा सत्य सिद्ध कर दिया।

जिस समय श्री राम वन के लिए प्रस्थान करना चाहते है, उस समय सीता जी माता कौसल्या के समीप खड़ी हुई थी। यहाँ पर कवि ने सीता जी के अद्भुत सौन्दर्य का चित्रण इस प्रकार किया है :

थी अतिशय आनन्दयुता, पास खडी थी जनकसुता।
गोट जडाऊ घूँघट की, बिजली जलदोपम पट की,
परिधि वनी थी विधु मुख सी, सीमा थी सुषमा सुख की।
भाव सुरभि का सदन अहा। अमल कमल-सा वदन अहा।
अधर छवीले छदन अहा। कुन्दकली से रदन अहा।
साँप खिलाती थी अलकें मधुप पालती थी पलकें,
और कपोलो की झलकें, उठती थी छवि की छलकें।
गोल गोल गोरी बाहे, दो आँखों की दो राहें।
भाग सुहाग पक्ष मे थे, अंचलबद्ध कक्ष में थे।
थी कमला-सी कल्याणी, वाणी में वीणापाणी॥

(साकेत पृ० ९३, ९४, चतुर्थ सर्ग)

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर सीता जी का अंग प्रत्यंग सुन्दर प्रतीत होता है। आन्तरिक सौन्दर्य भी खुलकर सामने आ गया है। उनकी मधुर वाणी की भी प्रशंसा की गयी है। वस्तुतः वे लक्ष्मीस्वरूपा है।

सीता जी एक आज्ञाकारिणी आदर्शवधू है, वे माता कौसल्या के आदेशों को उत्साहपूर्वक सुनती एवं उनका पालन करती है।[१] दोनो सास-वधू 'मैना' एवं 'उमा' के समान प्रतीत होती थी। जब लक्ष्मण सहित श्री राम माता जी के पास आकर प्रणाम करते है, तव सीता जी राम को देखकर कटाक्ष करती हुई मुसकाती है और लज्जावश घूँघट डालकर गम्भीर हो जाती है।[२] इससे उनका दाम्पत्य प्रेम एवं लज्जाशील स्वभाव प्रकट होता है।

जव राम माता कौसल्या से अपने वनवास का वृत्तान्त बतलाते है, तब माता कौसल्या तो उसे असत्य समझती हे, किन्तु सीता उसे सत्य मानती है, क्योकि उन्हे राम की सत्यवादिता पर दृढ़विश्वास था, अतः वे हृदय से कुछ भयभीत हो जाती है।[३]

---

१. साकेत सर्ग ४, पृ० ९४ २. साकेत, पृ० ९५

३. समझी सीता किन्तु सभी, झूँठ कहेगे प्रभु न कभी। (साकेत पृ० ९६, ९७)
खिची हृदय पर भय रेखा, पर माँ ने न उधर देखा।

यहाँ सीता के भीरु एवं कोमल विश्वासी स्वभाव की झलक मिलती है। साथ यह भी ज्ञात होता है कि उन्हे राम की सत्यनिष्ठा पर दृढ़ विश्वास था। सीता जी वनवास का प्रसग सुनकर प्रसन्न होती हैं।[1] वे वाल्मीकि की सीता की भाँति उदास नही होती। विदेह की पुत्री सीता के लिए वनगमन रोचक लगना कोई अस्वाभाविक नही लगता, वहाँ तो धर्माचरण का अच्छा अवसर भी तो मिलता था?

साकेत की सीता पूर्ण आस्तिक है, उनमे धैर्य की कमी नही। जव लक्ष्मण भी वनगमन के लिए उद्यत होते है और उर्मिला प्रियतम के भावी वियोग से तृपित होकर सीता के कन्धे पर झर-झर आँसू वरस पड़ती है, तव सीता जी के भी अश्रु भर आते है और वे उर्मिला को धैर्य धारण करने का अवसर वताकर सान्त्वना देती है। जव उर्मिला उदास होकर कहती है कि अव ईश्वर है तव सीता उसका समर्थन करती हुई कहती है कि गृह हो या वन हो, ईश्वर तो सर्वत्र है :

> पहन तरलतर हीरे से, कहा उन्होने धीरे से।
> वहन धैर्य का अवसर है, वह वोली अव ईश्वर है
> सीता वोली कि हाँ वहन सभी कहीं गृह हो कि गहन॥ (साकेत पृ० १०७)

साकेत की सीता अत्यन्त सुकुमारी होती हुई भी वल्कलवस्त्र धारण करने के लिए प्रथम उद्यत होती हैं।[2] इनके इस कृत्य से उनके पातिव्रत्य वैराग्य एवं सहिष्णुभाव का परिचय प्राप्त होता है। राम वन के कष्ट वतलाकर उन्हें अयोध्या में ही रखना चाहते है, किन्तु पतिव्रता सीता कव रुक सकती थी। वे राम से साथ ले चलने के लिए विनम्रतापूर्ण निवेदन करती है :

> समझो मुझको भिन्न न हा। करो ऐक्य उछिन्न न हा।
> तुमको दुख हो मुझको भी। तुमको सुख तो मुझको भी॥
> (साकेत। पृ० ११७)

यहाँ पर सीता अवसर जान कर तर्कशील भी वन जाती है, अर्द्धांगिनी का आधा अंग तो सर्वत्र है चाहे सुख हो या दुःख। यदि राम सार्वजनिक हित के लिए वन जाना चाहते हैं तो सीता को भी उनके इस पुण्य कार्य मे भाग लेने का अधिकार है। वे भी राम की भाँति व्रत नियमो का पालन करती है।[3]

यदि सास ससुर की सेवा के लिए राम सीता को गृह में रखना चाहते हैं, तो उक्त कार्य तो सीता से अच्छा उर्मिला ही कर लेगी और वे तो गृह में रह ही रही है। जहाँ तक वन के भय का प्रश्न है, वह तो कोई ऐसी वात नहीं। आत्मजय का

---

१. सीता ने सोचा मन में, स्वर्ग वनेगा अव वन में।
धर्मधारिणी हूँगी मैं, वन विहारिणी हूँगी मैं। (साकेत पृ० १०५)

२. साकेत पृ० ११४, ११५   ३. साकेत पृ० ११७

सम्बल जिसके पास है, उसकी तो सर्वत्र विजय ही विजय है। उसके लिए जंगल में भी मंगल है।[१] सीता जी की मनोवृत्ति वन मे अधिक रमती है। उनका कहना है कि वन में यदि कंटक है, तो कुसुम भी है, छायादार सुन्दर वृक्ष है, झरने दुर्वादल, मधुरकन्द-मूल-फल ये सभी उत्तम वस्तुएँ प्राप्त है। यदि उपवास भी करना पड़े, तो आर्य ललनाये उपवास से डरती कब है।[२] सीता जी वन की सौन्दर्य श्री का चित्रण करती हुई कहती है कि :

मुक्त गगन है मुक्त पवन वन है प्रभु का खुला भवन।
सलिलपूर्ण सरिताएँ है, करुणभाव भरिताएँ है।
उटजलताओ से छाया, विटपों की ममता माया।
खग मृग भी हिल जायेगे, सभी मेल मिल जायेगे॥ (साकेत। पृ० ११६)

यहाँ कवि ने सीता के प्रकृति-प्रेम, सहृदयता एवं कोमल हृदय का कितना सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। सीता जी को अपनी रक्षा की भी कोई चिन्ता नही, क्योकि धनुर्धर राम का नही उन्हे तो लक्ष्मण पर भी रक्षा कर सकने का दृढ विश्वास है। उन्हे वन में भी सगीत का सौन्दर्य अनुभूत हो सकता है। कोकिल का गीत मेघ का मृदग एवं मयूरों का नर्तन होगा और सीता वन की रानी होंगी।[३]

सीता जी का प्रकृतिप्रेम सराहनीय है। उन्हें वन इसलिए प्रिय लगता है कि वहाँ हिंसक जीवो के अतिरिक्त ऋषियो-मुनियो का भी वास है। वहाँ भव विकार एवं भ्रान्तियाँ कहाँ ? वहाँ तो शान्ति ही शान्ति है। सुन्दर पुष्प, मधुर सरिताजल ये वन में ही प्राप्त होते है। वन मे सच्चे सुखों की अनुभूति होती है, क्योकि मन वहाँ पर दुःख तथा बाधाओ को भूल जाता है।[४] सीता जी के इन विचारो से उनकी शांत-प्रवृत्ति, उच्च विचार, सतोगुणी स्वभाव आदि विशेषतायें लक्षित होती है। उन्हे वन की विभूतियों का लाभ तो है ही, किन्तु साथ चलने में सर्वाधिक लाभ है पति का सान्निध्य जिसकी प्राप्ति के लिए उन्हें न तो वन का भय है न यम का। सती नारी के लिए तो पति संग में अनल भी दाहक नही प्रतीत होता।

---

१. सास ससुर की स्नेहलता, बहन उर्मिला महाव्रता।
सिद्ध करेगी वही यहाँ, जो मैं भी कर सकी कहाँ !
वन में क्या भय ही भय है, मुझको तो जय ही जय है।
यदि अपना आत्मिक बल है, जगल में भी मंगल है॥ (साकेत पृ० ११८)

२. साकेत पृ० ११८ चतुर्थ सर्ग

३. मदकल कोकिल गावेंगे, मेघ मृदंग बजावेंगे।
नाचेगे मयूर मानी, हूँगी मैं वन की रानी॥ (साकेत पृ० ११६)

४. साकेत पृ० ११६ (४ सर्ग)

अथवा कुछ भी न हो वहाँ, तुम तो हो जो नहीं यहाँ।
मेरी यही महामति है, पति ही पत्नी की गति है॥
नाथ ! न भय दो तुम हमको, जीत चुकी है हम यम को।
सतियों को पतिसंग कहीं, अगम गहन क्या दहन नहीं॥
(साकेत पृ० १२०)

सीता जी वनपथ में गंगा के दर्शन कर उनकी स्तुति करती है। वे वन की अवधि को यथाविधि तर सकने के लिए ही गंगा से प्रार्थना करती हैं।[1] इससे सीता जी की आस्तिकता एवं सद्भावना का पता चलता है। उन्हें अपनी कुशलता के पूर्व भारत-भूमि की कुशलता की अधिक चिन्ता है।

साकेत की सीता सुकुमारी तो हैं, किन्तु उन्हें राम का विशेष संकोच है। जब श्री राम एक वृक्ष की छाया के नीचे स्वतः रुक जाते हैं और लक्ष्मण तथा सीता से पूँछते हैं कि क्यों तुम दोनों थके नहीं, इसके उत्तर में सीता कहती हैं मैं ही थकी इसके आगे वे और कुछ न कह कर हँसती हैं और अकस्मात रोती हुई कहती हैं :

मुझको अपने लिए नहीं कुछ सोच है।
तुम्हें असुविधा न हो यही संकोच है॥ (साकेत पृ० १४७ सर्ग ५)

मानस की सीता की भाँति साकेत की सीता भी ग्राम वधूटियों से प्रेमपूर्वक वार्तालाप करती हैं, किन्तु राम के परिचय देने में जहाँ मानस की सीता सरस एवं सलज्ज हैं, वहाँ साकेत की सीता सरल हैं, उनकी सरल हँसी अवश्य अनुराग सूचिका बन जाती है :

गोरे देवर श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं
वैदेही यह सरल भाव में कह गई,
तब भी वे कुछ सरल हँसी हँस रह गई॥ (साकेत पृ० १४५ सर्ग ५)

साकेत की सीता को कवि हृदय भी प्राप्त है। त्रिवेणी के दर्शन कर वे आनन्दमग्न हो जाती हैं। लक्ष्मण जब उन्हें सरस्वती के समान कह कर गौरवान्वित करते हैं, तब सीता कहती है :

---

१. जय गंगे, आनन्द तरंगे कलरवे, अमल अंचले पुण्यजले दिवसम्भवे।
सरसरहे यह भरत भूमि तुमसे सदा, हम सबकी तुम एक चलाचल सम्पदा॥
दरस परस की सुकृत सिद्धि ही जब मिली,
माँगे तुमसे आज और क्या मैथिली।
बस, यह वन की अवधि यथाविधि तर सकूं,
समुचित पूजा भेट लौटकर कर सकूँ॥ (साकेत पृ० १४५।५ सर्ग)

देवर ! मेरी सरस्वती अब है कहाँ ? सगम शोभा निरख निमग्न हुई यहाँ ।
धूप छाँह का वस्त्र मात्र उसका वाड़ा, मन्द पवन से लहर रहा है यह पड़ा ।।
(साकेत पृ० १४६)

उपर्युक्त वर्णन से सीता एक विदग्ध कवयित्री की भाँति सहृदया एवं कल्पनापटु प्रतीत होती है। इसी हेतु अगले छन्द में कवि ने उन्हें राम के मुख से कलाकार की सज्ञा प्रदान कराई है।

चित्रकूट आश्रम मे कवि ने सीता को स्वावलम्वी, परिश्रमी एवं प्रकृतिप्रेमी प्रस्तुत किया है। वे स्वयं पर्णकुटी के वृक्ष को सीचती है, राम अत्यन्त अनुराग के साथ उनकी इस क्रिया को देख कर प्रसन्न हो रहे है।[1] इस प्रसंग मे कवि ने सीता को लौकिक एव अलौकिक सती पतिप्रिया तथा अतिशय सौन्दर्यमयी भारतीय ललना सिद्ध किया है। उनकी सीता बुन्देलखन्ड की वीरबाला बन गई है। यथा :

अचल पट कटि मे खोंस, कछोटा मारे, सीता माता थी आन नई धज धारे।
अकुर हितकर थे कलश पयोधर पावन, जन मातृगर्वमय कुशल वदन भव भावन ।।
पहने थी दिव्य दुकूल अहा। वे ऐसे उत्पन्न हुआ हो देह संग ही जैसे।
(साकेत पृ० २२१)

यहाँ कवि ने सीता की शारीरिक छवि का बिम्ब प्रस्तुत किया है, केश, मुख, भुज, कर पद कटि आदि सौन्दर्याकन में कवि को विशेप सफलता मिली है।[2] सीता जी इस वृक्षसिंचन क्रिया में गुन गुन करती गीत भी गाती है।[3]

इस स्थल में कवि ने सीता जी के परमसन्तोषी, विरागी एवं सरल हृदय का सुन्दर चित्रण किया है। मानस की सीता तो वृक्षारोपण में राम की भी सहायता लेती है: कहुँ सिय पिय कहुँ लखन लगाये (मानस) किन्तु साकेत की सीता यहाँ मानस की सीता से दो पग आगे है, वे सब कार्य स्वयं करती है। उन्हें इस वनवास में बड़ा आनन्द है, वे ही यहाँ की रानी है, उनके पति राम ही सम्राट हैं इस राज्य में शान्ति

---

१. निज लक्ष्य सिद्धि-सी तनिक घूमकर तिरछे,
जो सीच रही थी पर्णकुटी के बिरछे।
उन सीता को, निज मूर्तिमती माया को,
प्रणय प्राणा को और कान्तकाया को।
यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी,
योगी के आगे अलख ज्योति ज्यों जागी। (साकेत पृ० २२० सर्ग ८)

२. साकेत पृ० २२१, २२२ सर्ग ८ ।।

३. निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया।
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया ।। साकेत पृ० २२

ही शान्ति है। उनका चित्रकूट किस दुर्ग से कम है ? जहाँ झरने ही प्रहरी हैं, प्रवाह ही परिखा है, वहाँ तो कुटी में भी मनोहर राजमहल है।[1] मानस की सीता भी साकेत की इस सीता की तुलना में इतनी प्रसन्न एवं परम सन्तुष्ट नही प्रतीत होती। उन्हें स्वावलम्ब से कितना सन्तोष है।

औरों के हाथ यहाँ नहीं पलती हूँ।
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रम वारि विन्दु फल स्वास्थ्यशुचि फलती हूँ।
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ॥ (साकेत पृ० २२३, सर्ग ८)

साकेत की सीता वन की सुविधाओं से परम प्रसन्न हैं, उन्हें प्रकृति का अनुपम साहचर्य प्राप्त है। अवध में तो वे एक राजवधू के रूप में रहती थी किन्तु इस वन में वे एक गृहस्थ जाया के रूप में श्रम करने का सुअवसर पा रही है। मुनि वालिकायें, उनकी सहेलियाँ हैं। फल-फूल और लताओं से गृह भण्डार भरा रहता है, सरिता की तरल तरंगों से क्रीड़ा करने का सुअवसर मिलता है। इस प्रकार उन्हें अपनी कुटी में ही राजभवन का सुख सन्तोष प्राप्त है।[2] सीता जी को सबसे अधिक सन्तोष तो इस वात का है कि उनके प्रियतम श्री राम उनके साथ हैं, जिनके कारण उन्हें सर्वत्र प्रेय श्रेय के ही दर्शन होते हैं, धर्म का वास्तविक निर्वाह होता है।[3]

सीता के मनोविनोद के लिए वन में प्रभूत सामग्री है। मयूरों का नर्तन, चातकों का गायन, तितली का चित्रपट, पिक की मधुर तान, शुक का सुन्दर पाठ, निर्झरों का झर-झर नाद आदि उनके आकर्षण केन्द्र हैं।[4] वे इतनी सरल हैं कि कोल-किरात तथा भिल्ल वालाओं को भी वुलाती हैं और भव्यता प्रदान कर नव्यता लेने का प्रस्ताव करती हैं।[5] वे उन्हें अर्द्धनग्न नही देखना चाहती, अपितु गान की लय के साथ उन्हें कातना बुनना सिखाना चाहती हैं।[6] वदले में उन्हें उन भिल्लिनियों से

---

१. साकेत पृ० २२३ सर्ग ८

२. साकेत पृ० २२४, २२५

३. वनदेव देवियाँ आतिथेय हैं मेरे। प्रियसंग यहाँ सब प्रेय श्रेय हैं मेरे।
मेरे पीछे ध्रुव धर्म स्वयं ही छाया। मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।
(साकेत पृ० २२५)

४. साकेत पृ० २२५, २२६ सर्ग ८

५. मुझको कुछ करने योग काम वतलाओ।
दो अहो ! नव्यता और भव्यता पाओ॥ (वही, पृ० २२७)

६. तुम अर्द्धनग्न क्यों रहो, अशेष समय में।
आओ हम काते बुने गान की लय में॥ (वही, पृ० २२७)

अनेक वृत्त सुनने को मिलेगे। सीता जी को वृक्षारोपण में विशेष रुचि थी। उन्होने सीताफल का एक वृक्ष लगाया था, राम हँसी करते हुए सीता से कहते है :

वह सीताफल जब फलै तुम्हारा चाहा।
मेरा विनोद तो सफल हँसी तुम आहा ॥ (साकेत पृ० २२९)

इस हँसी का उत्तर देती हुई सीता कहती है कि आप तो इन्द्रजाल के फल पर हँसते है, हँसिये। अन्तर यह है कि उस फल में केवल मनोविनोद है और इसमे यथार्थता है। ये मेरे परिश्रम से उत्पन्न होगे ओर सार्वजनिक कल्याण के कार्य में आयेगे। अन्त में वे भी मनोविनोद के रग में रंग कर राम से कहती है :

हो सचमुच क्या आनन्द, छिपूँ मै वन मे,
तुम मुझे खोजते फिरो गम्भीर गहन में। (साकेत पृ० २९९)

सीता जी स्वभावतः बड़ी दयालु है, उनके पौधो का काटना छाँटना पसन्द नही, वे उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण नही करना चाहती, राजनीति से तो उन्हें घोर घृणा है, वे बन्धन से बहुत ऊबती है। यहाँ तक कि मानव समाज द्वारा सरिताओ का बन्धन भी उन्हे मानव की स्वार्थ प्रवृत्ति प्रदर्शित करता है।[1] सीता जी लोकोपकार में इतनी रत है कि वे श्री राम को घनश्याम बनकर पृथ्वी के ताप मिटाने के लिए बरसने की प्रेरणा देती है और स्वयं पापपुंज पर विद्युत बनकर टूट पड़ना चाहती है।[2]

जब भरत मनाने के लिए चित्रकूट आते, है तब दूर से देख कर लक्ष्मण उन पर कुपित होते है और उन्हे समझाते है। इस अवसर पर लक्ष्मण का क्रुद्ध होना सीता जी को अच्छा नही लगता। वे राम से कहती है कि यह अच्छा ही हुआ कि लक्ष्मण को आप साथ ले आये, अन्यथा अनर्थ होता :

देवर मैं तो जी गई मरी जाती थी।
विग्रह की दारुणमूर्ति दृष्टि आती थी।
अच्छा ले आये आर्य पुत्र तुम हमको।
ये तुम्हे छोड़ कब कहाँ मानते किनको। (साकेत पृ० २३९)

जब भरत जी यह प्रस्ताव रखते है कि आर्य राम के लौटने तक आर्या सीता ही राज्यभार सम्हालें, तब सीता जी उसे अस्वीकार करती हुई अपने प्रियतम राम के साहचर्य को ही अपना सर्वश्रेष्ठ मण्डन बतलाती है।[3] वे भरत को भी निराश नही

---

१. साकेत पृ० २३० सर्ग ८

२. तो बरसौ सरसै रहे न भूमि जली सी।
मैं पापपुंज पर टूट पड़ूँ बिजली सी ॥ (वही, पृ० २३३)

३. मेरा मण्डन सिन्दूर बिन्दु यह देखो।
सौ सौ रत्नो से इसे अधिक तुम लेखो ॥ (वही, पृ० २६२)

करतीं, अपितु मातृवत यह आशीर्वाद देती है कि तुम राम से भी अधिक यशस्वी बनो :

मैं अम्बा सम आशीष तुम्हें दूँ आओ।
निज अग्रज से भी शुभ्र सुयश तुम पाओ। (साकेत पृ० २६२)

इस प्रकार साकेत की सीता पतिप्राणा एवं ममतामयी जननी प्रतीत होती हैं। वे उर्मिला को लक्ष्मण से मिलने के लिए एक सुन्दर बहाना करती हैं : कुटी के अन्तर्गत जहाँ उर्मिला बैठी थी, वहाँ जाने के लिए संकेत करती हुई लक्ष्मण से कहती हैं :

हे तात ! ताल सम्पुटक तनिक ले आना।
बहनों को वन उपहार मुझे है देना। (साकेत, पृ० २६४)

इससे उनकी संवेदनात्मक प्रवृत्ति और वाक्चातुरी का भी सुन्दर प्रमाण प्राप्त होता है।

मायामृग के मारीच के प्रसंग मे साकेत की सीता वाल्मीकि की सीता की भाँति मर्यादारहित अपशब्दो का प्रयोग कर लक्ष्मण को कुत्सित नही कहतीं, अपितु वे उन्हें जड़ निर्दय तथा पाषाण हृदय जैसे साधारण शब्द कहकर ही अपना आक्रोश व्यक्त करती हैं :

और कहाँ तुम सा जड़ निर्दय, यह पाषाण हृदय पाऊँ !
कहा क्रुद्ध होकर देवी ने, घर बैठो तुम, मैं जाऊँ।। (साकेत पृ० ४२३, सर्ग ११)

इस प्रसंग में सीता एक वीर क्षत्राणी की भाँति अपना साहस प्रदर्शित करती है, रुदन नही करती। इसी प्रकार लंका में रावण द्वारा अपना प्रभाव दिखाने पर भी सीता जी निर्भीक होकर उत्तर देती हैं कि तुम अपने को व्यर्थ ही विश्वजयी कहते हो। यदि राम तुच्छ हैं, तो मुझे चोरी से लाकर तुमने अपनी तुच्छता नही दिखलाई ? यदि तुम में शक्ति थी, तो स्वयंवर में उसका प्रदर्शन कर तुमने वरण क्यों नही किया ? तू कायर है, तू मुझे वर नही सका, अतः चोरी करके लाया ? इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। तुम से तो बात करने में भी पाप लगने का भय है, अतः अग्नितापमें मैं अपने को शुद्ध करूँगी।[1]

---

1. जीत न सका एक अबला का मन तू विश्वजयी कैसा।
जिन्हें तुच्छ कहता है उनसे भागा क्यों तस्कर ऐसा।।
मैं वह सीता हूँ सुन रावण जिसका खुला स्वयंवर था।
वर लाया क्यों मुझे न पामर यदि यथार्थ ही तू नर था।।
वर न सका कापुरुष जिसे तू उसे व्यर्थ ही हर लाया।
अरे अभागे इस ज्वाला को, क्यों तू अपने घर लाया।।
भाषण करने में भी तुझसे, लग न जाय हा मुझको पाप।
शुद्ध करूँगी मैं इस तनु को, अग्नि ताप में अपने आप।।
(साकेत पृ० ४३२, ४३३।११)

उक्त सम्भाषण में सीता एक आदर्श सती एवं निर्भीक नारी प्रतीत होती है, उनमे साहस और तर्क का भी अस्तित्व है। वे परुष होकर रावण की कठोर शब्दों मे भर्त्सना करती है। परपुरुप सम्भापण से भी पाप हो सकता है, अतः वे कठोर प्रायश्चित्त के लिए भी तत्पर प्रतीत होती है। पुष्पवाटिका में हनुमान के मिलने पर भी उनका पतिप्रेम प्रकट होता है। वे सन्देश मे भी कहती है कि राम मेरे लिए अधिक कष्ट न सहन करे, मेरा सुख तो इसी बात मे है कि राम सुखी रहे।

करे न मेरे पीछे स्वामी विपम कष्ट साहस के काम।
यही दुःखिनी सीता का सुख, सुखी रहे उसके प्रिय राम ॥
(साकेत पृ० ४३३)

मानस की सीता की भाँति साकेत की सीता को भी यह खेद रहता है कि मैने लक्ष्मण को अपशब्द कहे थे। मैने जैसा किया उसका फल पाया अब लक्ष्मण मुझे क्षमा करे।

देवर से कहना मैने जो, मानी नही तुम्हारी बात।
उसी दोष का दण्ड मिला यह, क्षमा करो मुझको अब तात ॥
(साकेत पृ० ४३४।११)

यहाँ कवि ने सीता की विनम्रता एवं आत्मग्लानि का भी परिचय दिया है। वस्तुतः जो व्यक्ति भूल करने के पश्चात् उसे स्वीकार कर लेता है, वे भविष्य मे वैसी भूल नहीं करते। वाल्मीकि की भाँति साकेत के हनुमान भी सीता जी के समक्ष यह प्रस्ताव रखते है कि आप मेरे साथ अभी चलना चाहें, चलें। किन्तु सीता जी चोरी-चोरी जाना पसन्द नही करती, वे आत्मसम्मान के साथ चलना चाहती हैं।

मैने कहा अम्ब ! कहिये तो, अभी आपको ले जाऊँ।
बोली वे क्या चोरी चोरी, मैं अपने प्रभु को पाऊँ ॥ (साकेत पृ० ४३४)

साकेत की सीता विभीपण की पत्नी सरमा का विशेष ऋण स्वीकार करती है। वे उसे लंका की रानी कहकर आशीर्वाद देती है। सरमा सीता के सतीत्व की प्रशंसा करती हुई उन्हे शम-दम की मूर्ति कहती है।[1] अयोध्या लौटने पर सीता जी माताओं से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न होती है और वे अपने दुःखों को भूल कर दुगने सुखों की प्राप्ति का अनुभव करती है।[2]

---

१. तब सीता ने कहा पोछ आँखों का पानी।
सरमे क्या दूँ तुम्हें, जियो लंका की रानी।
वसुधा का राजत्व निछावर तुम पर साध्वी।
रक्खे मुझको मत्त इन्ही चरणों की माध्वी ॥
तुम सोने की सतीमूर्ति शम-दम की दीक्षा।
दी है अपनी यहाँ जिन्होने अग्नि परीक्षा ॥ (साकेत पृ० ४८६। सर्ग १२)

२. साकेत पृ० ४६४। सर्ग १२

इस प्रकार साकेत की सीता मूलरूप में शक्ति हैं, किन्तु व्यवहार जगत् में वे एक आदर्श नारी हैं, जिनमें पतिप्रेम की पराकाष्ठा विद्यमान है। वे अपने जीवन के साथ ही साथ लोकजीवन के कल्याण के लिए भी चिन्तित है, उन्हें अपने देश की भी चिन्ता है। कर्त्तव्य-परायणता, स्वावलम्ब, प्रकृतिप्रेम, पारिवारिक स्नेह एवं शान्ति-प्रियता उनके दिव्य गुण हैं। उन्हें लोभ ने कभी संवृत नहीं किया, काम ने कभी विचलित नहीं किया और क्रोध ने कभी मानवता के प्रतिकूल आचरण करने के लिए विवश नही किया। वे आधुनिक सुधारकारिणी सेवापरायण नारियों की भाँति रचनात्मक कार्यों में रुचि लेती हैं और पारस्परिक आदान-प्रदान से समाज की समृद्धि पर विश्वास रखती हैं। विनम्रता उनका जन्मजात आभूषण है, विराग की स्वाभाविक प्रवृत्ति उन्हें राज्य में नही रमने देती। सहृदयता, सम्वेदना एवं करुणा ने उनके हृदय को अत्यन्त कोमल बना दिया है। धर्माचरण तो उनकी पैतृक सम्पत्ति है। वे सर्वदा गम्भीर ही नहीं रहती, यदा-कदा कलात्मक विनोद में भी रुचि लेती हैं। इस प्रकार साकेत की सीता भूतल की देवी हैं, जिन्हें समाज-सेवा एवं लोकोपकार के लिए जीवन-उत्सर्ग करने में भी प्रसन्नता है। उनका आदर्श पातिव्रतधर्म युगीन परिस्थितियों के अनुकूल वितत होकर आज की भारतीय नारी के लिए अनुकरणीय बन गया है।

वैदेही वनवास : हिन्दी खड़ी बोली साहित्य में वैदेही वनवास एक मात्र ऐसा महाकाव्य है, जो पूर्णतया सीता जी पर ही आधारित है। इस ग्रन्थ में सीता वनवास का वह करुण कथानक १८ सर्गो में वर्णित है, जिसमें सीता जी वाल्मीकि जी के आश्रम में परित्यक्त की जाती है और वही पर उनके पुत्र कुश तथा लव उत्पन्न होते हैं, उनको द्वादशवर्ष पर्यन्त शिक्षा मिलती है और अन्ततः पति-दर्शन होते ही सीता का स्वर्गवास हो जाता है।

इस ग्रन्थ में वाल्मीकि रामायण एवं उत्तररामचरित (भवभूति) का विशेष प्रभाव प्रतीत होता है, किन्तु कवि की यह विशेषता है कि उसने युगीन परिस्थितियों के अनुकूल सीता के कथानक में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। इस ग्रन्थ की सीता को राम स्पष्ट रूप में वतलाते हैं कि लोकापवाद के समाधान हेतु मैं तुम्हें कुलपति वाल्मीकि के आश्रम में भेज रहा हूँ। विस्तृत रूप से इस ग्रन्थ की सीता का विश्लेषण प्रस्तुत है।

ग्रन्थ के प्रथम सर्ग में ही राम अपनी गर्भवती प्रियतमा सीता को लेकर उपवन में प्रकृति की रमणीय छटा दिखलाकर उनका मनोरंजन करते हैं। सीता जी प्रकृति की महिमा को तो स्वीकार करती हैं, किन्तु उन्हें प्रकृति का यातनामय रूप असह्य लगता है :

जनकसुता ने कहा प्रकृति महिमा है महती ।
पर वह कैसे लोकयातनाएँ है सहती ।।
क्या है हृदयविहीन ? तो अखिल हृदय बना क्यों ?
यदि है सहृदय आँखो से आंसू न छना क्यों ?

(वैदेही वनवास ।१।२८)

सीता जीं प्रकृति के उत्थान पतन आदि विभिन्न रूपों पर विचार-वितर्क करती हुई उसके उद्वेजक पक्ष से खिन्न हो जाती है । वे कही रजनी की सुन्दरता एवं प्रभात होने पर, उसकी समाप्ति पर, कही चन्द्रसौन्दर्य एव चन्द्रास्त पर, कही सरयू के पालक एवं संहारक पक्ष पर, कही पुष्पों के सौन्दर्य एवं उनकी क्षणभंगुर, सुन्दरता पर दार्शनिक दृष्टि से विचार करती-करती गम्भीर हो जाती हैं :

सुन्दरता मे कौन कर सका समता जिनकी ।
उन्हे मिली है आयु एक दिन या दो दिन की ।।
फूलो सा उत्फुल्ल कौन भव में दिखलाया ।
किन्तु उन्होंने कितना लघु जीवन है पाया ।। (वै० व० । १ । ३८)

सीता जी का हृदय अत्यन्त कोमल है, उन्हें लंकादहन का प्रसंग भी स्मृत हो आता है, जिसमें जनता का हाहाकार, करुणकन्दन, असहाय बालकों, विवश वृद्धों एव रोगी-जनों की भी निर्मम हत्या हो गई थी । इसी प्रकार राम-रावण युद्ध की भयानक हिंसा भी स्मृति पथ में आकर उन्हे विकल कर देती है ।[1]

सीता जी स्वय एक सती नारी है, अतः उन्हे मेघनाद की पत्नी सती प्रमीला (सुलोचना) का बलिदान अत्यन्त प्रभावित करता है, जिसका स्मरण करते ही वे रोमांचित हो जाती है :

आह ! सती सिरधरी प्रमीला का बहु क्रन्दन ।
उसकी बहु व्याकुलता उसका हृदय स्पन्दन ।।
मेघनाद शव सहित चिता पर उसका चढ़ना ।
पतिप्राणा का प्रेमपन्थ में आगे बढ़ना ।। (वै० व० । १।४४)

सती नारी के प्रति सीता जी की सहानुभूति है, वे समाज पर व्यंग करती हुई कहती है कि भला वह सती प्रमीला जीवित रह ही कैसे सकती थी, क्योंकि वह तो पति की थाती थी । अस्तु, पति चरणों में अर्पित हो गयी । धन्य है उस सती नारी का भाग्य और धन्य है उसका अविचल प्रेम ।[2]

---

१. हरिऔध, वैदेही वनवास १।३९, ४३
२. हरिऔध, वैदेही वनवास १।४६

इतना कहते-कहते सीता स्वयं अपने विषय मे सोचने लगती है। अपने को कलहमूल कहकर व्यथित होती है।[1] सीता जी एक ऐसे समाज की कल्पना करती हैं, जिसमें सदैव मंगल ही मंगल होता, सव का उत्थान होता, सभी लोग फलते-फूलते और कोई दुःखी न होता।[2] उक्त चिन्तन उनकी अहिंसाभावना, लोककल्याण-कामना एवं शान्तिमय स्वभाव का कितना सुन्दर निदर्शन है।

द्वितीय सर्ग में दुर्मुख नामक एक गुप्तचर राम के पास आकर रजक-वृत्तान्त वतलाता है और यह भी कहता है कि यह चर्चा (सीता का लोकापवाद) ग्रामों-नगरों एवं जनपदों तक व्याप्त हो गयी है।[3] राम सीता के लोकापवाद को सुनकर वहुत व्यथित होते हैं। उनकी दृष्टि में सीता जी परम पतिव्रता, कष्टसहिष्णु, धैर्यशीला, आदर्श सेविका, त्यागशीला, परम उदार, सरल, सहज, भावुक, स्निग्ध, शान्तिरत, सात्विक, सरस एवं दयालु हैं।[4] यथा :

शान्तिरत जिसकी मति को देख, लोप होता रहता है कोप।
मानसिक तम करता है दूर, दिव्य जिसके आनन का ओप ॥
(वै० व० २। ४३)

लंका से लौटते समय सीता की अग्निपरीक्षा के पूर्व भी इस ग्रन्थ में राम सीता को दुर्वचन नहीं कहते, अपितु सीता जी ने स्वयं प्रतिष्ठा हेतु अपनी अग्निपरीक्षा का प्रस्ताव प्रस्तुत किया था।[5] इससे सीता जी की उदात्त भावना एवं पति की प्रतिष्ठा के प्रति कितनी जागरूकता सिद्ध होती है।

ग्रन्थ के तृतीय सर्ग में राम अपने वन्धुओं से इस लोकापवाद के विषय में वार्तालाप करते है और सभी वन्धुओं के विचार से सीता को निर्दोष पाते है। लक्ष्मण कहते हैं :

आह वह सती पुनीता है। देवियों सी जिसकी छाया है।
तेज जिसकी पावनता का। नही पावक भी सह पाया ॥ (वै०व०।३।५६)

इतने होने पर भी राम सीता के निष्कासन को लोकहित में अच्छा समझते है। वे

---

१. वै० व० १।४८

२. अच्छा होता भली वृत्ति ही जो भव पाता।
मंगल होता सदा अमंगल मुख न दिखाता ॥
सवका होता भला फले-फूले सव होते।
हँसते-मिलते लोग दिखाते कही न रोते ॥ (वैदेही वनवास। १।४६)

३. वही, २।६, १७ ४. वही, २।२७, ४४

५. प्रिया का ही था यह प्रस्ताव। न लांछित हो जिससे मम नाम ॥
(वही, २।४६)

गुरुदेव वसिष्ठ जी से (चतुर्थ अंक में) परामर्श करते हैं, वे भी सीता के पूतचरित्र की प्रशंसा करते हैं :

सखी शिरोमणि पति परायणा पूतधी।
वह देवी है दिव्य मूर्तियों से भरी॥
है उदारतामयी सुचरिता सद्व्रता।
जनकसुता हैं परम पुनीता सुरसरी॥ (वै० व० ।४।६०)

पंचम अंक में सीता जी श्री राम के चिन्तित मुखमण्डल को देखकर आश्चर्यान्वित होती हुई उनकी चिन्ता का कारण पूछती हैं (५।११,१५)। राम उनसे लोकापवाद का वृत्तान्त बतलाते हैं और इसके मूल में दो कारणों का निर्देश करते हैं: प्रथम तो रावण कुल के संहार का आतंक और द्वितीय रावण के मित्र लवणासुर का दुष्प्रचार[1]। अन्त में राम इस लोकापवाद को दूर करने के लिये सीता को कुछ समय के लिए स्थानान्तरित करने की बात समझाते हैं। सीता जी इस बात को सुनकर सब कुछ सहन करने के लिए उद्यत हो जाती हैं, किन्तु वे वियोग को असह्य बतलाती है।

जनकनन्दिनी ने दृग में आते आँसू को रोक कहा।
प्राणनाथ सब तो सह लूँगी क्यों जायगा विरह सहा॥ (वही०।५।२२)

इसके अतिरिक्त अदर्शनजन्य नेत्रवेदना, अश्रुप्रवाह, सेवानिवृत्ति, हितचिन्ता, समययापन की समस्या आदि अनुपत्तियों को भी प्रस्तुत करती हैं।[2] अन्त में सीता अपना कर्तव्य समझ कर लोकाराधन हेतु पति की आज्ञा को शिरोधार्य मानती है।[3] यहाँ पर कवि ने सीता के चरित्र को कितना ऊँचा उठाया है। त्याग, आज्ञाकारिता, संयम, तितिक्षा, लोकाराधन एवं पतिभक्ति के दिव्य भावों से सीता जी पूर्ण प्रतीत होती हैं। सीता जी के चित्त में कीर्ति सुरक्षा का विशेष महत्व है।[4] जैसा कि गीता में कहा गया है :

---

१. गन्धर्वो के महानाश से प्रजावृन्द का कँप जाना।
लवणासुर का गुप्तभाव से प्रायः उनको उकसाना॥ (वै० व० ।५।१७)

२. वै० व०।५।२३, २५

३. किन्तु आपके धर्म का न जो परिपालन कर पाऊँगी।
सहधर्मिणी नाथ की तो मैं भला कैसे कहाऊँगी॥
वही करूँगी जो कुछ करने की मुझको आज्ञा होगी।
त्याग करूँगी इष्टसिद्धि के लिए-बना मन को योगी॥
सुखवासना स्वार्थ की चिन्ता दोनों से मुँह मोड़ूँगी।
लोकाराधन या प्रभु आराधन निमित्त सब छोड़ूँगी॥ (वही० ।५।२६, २८)

४. यदि कलंकिता हुई कीर्ति तो मुँह कैसे दिखलाऊँगी।
जीवन धन पर उत्सर्गित हो जीवन धन्य बनाऊँगी॥ (वै० वन० ।५।२९)

'सम्भावितस्य चाकीर्तिमरणादतिरिच्यते'। (गीता)

इस निमित्त सीता लोकोत्तर त्याग के लिए कटिवद्ध हैं। इसमें उन्हें वेदनाओं के दीपक के रूप में प्रज्वलित होना पड़ेगा, आकुलतायें सहन करनी होंगी, अन्तस्ताप से ललित लालसाओं को झुलसाना होगा किन्तु वे अपने आराध्य पतिदेव राम की आज्ञा से सब कुछ करेंगी।[1] सीता जी की इस त्याग-भावनाओं से स्वयं राम उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं :

तुम विशाल हृदया हो मानवता है तुम से छवि पाती।
इस लिए तुममें लोकोत्तर त्याग वृत्ति है दिखलाती॥ (वै० वन०। ५।३७)

जब राम यह निर्णय करते हैं कि हमारे वंश की यह परम्परा रही है कि गर्भवती साम्राज्ञी कुलपति आश्रम में भेजी जाती है और यथाकाल संस्कारादिक होने पर प्रत्यावर्तित होती है, अतः हे सीते! मैं तुम्हें वाल्मीकि आश्रम में भेज रहा हूँ।[2] प्रभु की इस आज्ञा को स्वीकार करती हुई सीता कहती है :

जानकी ने कहा प्रभु मैं उस पथ की पथिक हूँगी।
उभरे काँटों में से ही अति सुन्दर सुमन चुनूंगी॥
पदपंकज पोत सहारे संसार समुद्र तरूँगी।
वह क्यों न हो गरल-वाला मैं सरस सुधा ही लूँगी॥
(वै० व० ।५।५०, ५१)

सीता जी के इस कथन में त्याग के प्रति कितना उत्साह है? शूलों को फूलों के रूप में परिणत करने का अदम्य साहस, गरल को सुधा के रूप में परिवर्तित करने की अद्भुत क्षमता एवं अपने धैर्य पर अडिग विश्वास सीता के चरित्र को देदीप्यमान करने के लिए पर्याप्त प्रतीत होते हैं।

सीता जी अभिशाप से वरदान की खोज के लिए कृतसंकल्प हैं। समस्त कष्टों में उन्हें अपने प्रियतम राम की कृपामूर्ति का अवलम्ब है, जो कि उनके हृदय में ही वर्तमान है।[3] राम की भाँति वे भी जनता के विश्वास की सुरक्षा में सचेष्ट हैं, धैर्य और धर्म की धारणा से वे अत्यन्त निर्भीक हैं।

होगी न वृत्ति वह जिससे खोऊँ प्रतीत जनता की।
धृतिहीन न हूँगी समझे गति धर्मधुरन्धर ताकी॥ (वै० व०। ५।५६)

जब सीता जी वनवास के लिए प्रस्थान करती हैं तथा अपनी पूज्या श्वस्रू कौशल्या जी को प्रणाम करती हुई उनसे आशीर्वाद लेती हैं और उनकी सेवा से वंचित

---

१. वही, ५।३०, ३२
२. वही, ५।३८, ४६
३. वही, ५।५४, ५५

होने का दुःख प्रकट करती है। यहाँ भी वे अपने प्रियतम के भोजनादिक सुख हेतु माताजी का ध्यान आकृष्ट करती है। (६।६।१७)

सीता जी के स्वभाव, गुण एवं सच्चरित्रता की प्रशंसा करती हुई कौशल्या जी कहती है :

हो अनाथ जनकी अवलम्बन, हृदय बड़ा कोमल पाया है।
भरी सरलता है रग-रग में, पूत सुरसरी सी काया है॥
जब देखा तब हँसते देखा, क्रोध नही तुमको आता है।
कटु बातें कब मुख से निकली, वचन सुधारस बरसाता है॥
(वै० व०। ६।२६,२७)

इससे सिद्ध होता है कि सीता जी कितनी दयालु, कितनी सरल, कितनी पवित्र एवं कितनी प्रसन्नचित्त नारी थी। उनमें क्रोध एव कटुता का नाम नही था, उनके मृदुवचन मनोमुग्धकारी होते थे। इसी प्रकार जब सीता की बहनें माण्डवी आदि उनके वनगमन से खिन्न होकर वे भी उनके साथ चलने का आग्रह करती है, तब सीता जी उन्हें कौसल्यादि माताओं की सेवा, पतिसेवा, संयम आदि का पाठ पढ़ा कर उन्हे कर्तव्य-परायणता पर दृढ़ रह कर परिस्थितियो से लोहा लेने का उपदेश देती है :

जैसी कि परिस्थिति होगी, वह टलेगी नही टाले।
भोगना पड़ेगा उसको, क्या होगा कन्धा डाले॥ (वही०। ६।८१)

सप्तम सर्ग में सीता जी लक्ष्मण के साथ वन के लिए प्रस्थान करती है। वे लक्ष्मण के अधीर होने पर उनसे अपनी कर्तव्यनिष्ठा की दृढ़ता का संकल्प बतलाती है :

परन्तु कर्तव्य है न भूला, कभी उसे भूल मै न दूंगी।
नहीं सकी मैं निवाह निजव्रत, कभी नही यह कलंक लूंगी॥ (वही। ७।५०)

जिस प्रकार लोकाराधन राम का लक्ष्य था, उसी प्रकार सीता भी लक्ष्मण से अपने लोकाराधन पक्ष को पुष्ट करती है।[1] वे आत्मसुखों की अपेक्षा आत्मत्याग को अधिक श्रेष्ठ बतलाती है।[2] अन्त में वे लक्ष्मण जी से विश्वप्रेम के सर्वोपरि महत्व का वर्णन करती हुई कहती है :

सर्वोत्तम साधन है उर मे, भवहित पूतभाव का भरना।
स्वाभाविक सुख लिप्साओ को, विश्वप्रेम मे परिणत करना॥
(वै० व० ७।७५)

कुलपति वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचने पर वाल्मीकि जी भी सीता जी की पवित्रता

१. वै० व०। ७।६३ २. वै० व०। ७।७३

की प्रशंसा करते है ।[1] इस ग्रन्थ के अष्टम सर्ग में वाल्मीकि जी भी सीता को मानवी नहीं देवी मानते हैं ।

आप मानवी हैं तो देवी कौन है ? महादिव्यता किसे कहाँ ऐसी मिली ॥ (८।२९)

वे सीता जी को पतिप्राणा, अलौकिक आदर्शमयी एवं कष्टसहिष्णु सिद्ध करते है ।[2] सीता जी की शक्ति, महत्ता, विज्ञता, धृति, उदारता, सहृदयता, दृढ़चित्तता और इन सभी गुणों से अधिक उनकी ऐकान्तिक पतिभक्ति की प्रशंसा करते हुए वाल्मीकि जी उनका अभिनन्दन करते हैं :

पुत्रि आपकी शक्ति महत्ता विज्ञता,
धृति उदारता सहृदयता दृढ़चित्तता ।
मुझे ज्ञात है, किन्तु प्राण पतिप्रेम की,
परम प्रवलता तदीय एकान्तता ॥ (वै० व०।८।५१)

जब लक्ष्मण जी सीता जी को वाल्मीकि के आश्रम मे छोड़ कर अयोध्या चलना चाहते हैं, तब भी सीता जी पतिप्रेम के कारण लक्ष्मण जी से राम को सन्देश देती है, जिसमें सीता जी राम के पदपद्म का अहर्निश सेवाभाव स्मृत रखने की वात कहती है ।[3]

नवम सर्ग में कवि ने लक्ष्मण द्वारा सीता जी के अवधवासकाल की दिनचर्या का चित्रण कराया है । सीता जी नित्यप्रति प्रातः सरयू में जाकर स्नान-दान करती थी, मन्दिरों में जाकर समय-समय पर उनकी व्यवस्था देखती थी और सन्ध्या समय भ्रमण करने के लिए निकलती थी, तव असहायों, पीड़ितों एवं अकिंचनों की सहायता करती थी ।[4] यदि पथ में उन्हें कोई रोगी या विकलांग व्यक्ति मिल जाता था तो वे उसके उपचार की समुचित व्यवस्था करती थी ।

मिले पंथ में किसी रुग्ण विकलांग के ।
करती उनके लिए उपचार थी । (वै० व० । ९।३४)

लक्ष्मण जी सीता जी के आन्तरिक व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए श्री राम से कहते हैं कि वे कोमलता, ममता, सद्भावना, उदारता, सेवावृत्ति, मानवता एवं लोकरंजना की मूर्ति है ।[5]

दशम सर्ग में सीता जी महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहकर प्रकृति की सुरम्य छटा को देख कर मन वहलाती हैं । वे दिव्य चन्द्रिका की शुचिता को देख कर

१. वै० व० । ८।२८ २. वै० व० । ८।३०,३८
३. वै० व० । ८।५९ ४. वै० व० । ९।३०,३३
५. आर्या कोमलता ममता की मूर्ति हैं । है सद्भावरता उदारता पूरिता ।
है लोकाराधननिधि शुचिता सुरसरी, हैं मानवता राकारजनीकी सिता ॥
(वही० । ९।३९)

और अपने अतीत के लोकापवाद का स्मरण कर व्यथित हो जाती हैं, उनका मानस अपनी लोकपवित्रता प्राप्त करने के लिए कितना आतुर है।

कहने लगी सिते ! सीता भी क्या तुम जैसी शुचि होगी ?
क्या तुम जैसी ही उसमें भी भव हितरतादिव्य रुचि होगी ॥ (१०।११)

सीता जी चन्द्रिका की अनेक विशेषताओं का चिन्तन करती हैं और अपने कृतकार्यों की तुलना भी करती हैं। साम्य पाने पर उनका चित्त प्रश्नाकुल हो जाता है कि चन्द्रिका क्यों सुखमयी है और मैं क्यों दुःखमयी हूं।[1] इस प्रकार सीता जी चन्द्रिका से प्रियतम की सेवा प्राप्त करने का वरदान माँगती हुई पूर्व सुख की प्राप्ति की कामना करती हैं।[2]

ग्रन्थ के एकादश सर्ग में सीता जी आश्रम में रहती हुई मेघ को देख कर श्री राम से उसकी तुलना करती हैं और मेघ की अपेक्षा उन्हें अधिक सिद्ध करती हैं।

मैं सारे गुण जलधर के जीवनधन में पाती हूँ।
उसकी जैसी ही मृदुता अवलोके बलि जाती हूँ ॥
पर निरपराध को प्रियतम ने कभी नहीं कलपाया।
उनके हाथों से किसने, कब कहाँ व्यर्थ दुख पाया ॥ (वै० व० ।११।३६, ४०)

इसी बीच जब शत्रुघ्न आश्रम में जाकर उनसे मिलते हैं, तब वे श्री राम की कुशलता, माताओं का समाचार, भरतादि देवरों एवं माण्डवी आदि बहनों की कुशलता पूछती हैं (११।४८, ५६)। इतना ही नहीं, सीता जी दासियों की दशा का भी परिचय पूछती हैं, उन्हें अवध की भी चिन्ता है। (११।५८, ६०) और अन्त में वे शत्रुघ्न को लवणासुर पर विजय प्राप्ति का वरदान देती हुई प्रभु से अपने पतिदेव श्री राम के सुयश की कामना करती हैं :

है विनय यही प्रभुवर से, हो प्रियतम सुयश सवाया।
वसुधा निमित्त बन जायें, तब विजय कल्पनाकाया ॥ (वै० व० । ११।६७)

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि श्री सीता अपने पति श्री राम का ही ध्यान नहीं रखती थीं, उन्हें परिवार, प्रजा तथा देश का भी ध्यान था, उनका हृदय विशाल था।

द्वादश सर्ग में सीता जी के युगल पुत्र कुश लव उत्पन्न होते हैं। कुलपति वाल्मीकि उनके सभी आवश्यक संस्कार करते हैं। सीता जी ने अपने समययापन हेतु श्री राम की एक सुन्दर मूर्ति का निर्माण किया था। सीता जी उसी मूर्ति के पास बैठ कर शान्ति प्राप्त करती थीं। उस मूर्ति के पूजा हेतु सुन्दर से सुन्दर मालायें तैयार करती थीं और जब तक मूर्ति का पूजन न हो जाये, तब तक फल भी नहीं

---

१. वही, १०।२२, २६ २. वही, १०।७३

ग्रहण करती थीं ।[1] यह है सीता जी की आदर्श पतिपरायणता, जिसका प्रस्फुटन संयोग की अपेक्षा वियोग में अधिक हुआ है ।

सीता जी वाल्मीकि आश्रम में रहकर सर्वप्रिय हो गयी थीं । उन्होंने अपनी सेवावृत्ति से आश्रमवासिनी तपस्विनियों के मन को भी आकृष्ट कर लिया था ।[2] सीता जी दुखियों की सहायता करती थीं, चीटियों, पक्षियों एवं आश्रमवासी मृगों के भी योगक्षेम का उन्हें पूर्ण ध्यान रहता था ।

देख चीटियों का दल आटा छीटती, दाना दे दे खगकुल को थीं पालती ।
मृग समूह के सम्मुख, उनको प्यार कर कोमल हरित तृणावलि वे थीं डालती ॥
(१३।५)

सीता जी की दुखियों एवं असहायों के प्रति बड़ी सहानुभूति रहती थी । आश्रम में एक हस्तिनी की मृत्यु हो जाने पर उन्होंने उसके वच्चे को बड़े प्यार के साथ पाला था :

एक द्विरद का बच्चा कतिपय मास का,
जनकनन्दिनी के कर से था जो पला ।
प्राय: फिरता मिलता इस मैदान में
मातृहीन कर जिसे प्रकृति ने था छला ॥ (वै० व० । १३।१०)

कविवर भवभूति ने भी उत्तररामचरित नाटक में उक्त द्विरदसुत का उल्लेख किया है । (अंक ३) सीता जी का वात्सल्य अत्यन्त सराहनीय था । वें अपने पुत्रों को लेकर राम के विरहजन्य ताप को भुलाने का प्रयास करती थी । आत्रेयी सीता जी के गुणों एवं उनके पूत स्वभाव से विशेष प्रभावित होकर उनकी प्रशंसा में कहती है :

साम्राज्ञी होकर भी सहजावृत्ति हैं ।
राजनन्दिनी होकर हैं भव सेविका ।
यद्यपि हैं सर्वाधिकारिणी धरा की ।
क्षमामयी हैं तो भी आप ततोधिका ॥ (वै० व० । १३।२५)

आत्रेयी कहती हैं कि आप किसी को दुःख नही पहुँचाती, किसी को कटु शब्द नहीं कहती, आपका अन्तस्तल नवनीत से भी अधिक कोमल, है, आप सच्ची पतिव्रता हैं

---

१. जिसके लिए मनोहर गजरे प्रति दिवस,
विरच आप होती रहती है बहु सुखित ।
जिसको अर्पण किये बिना फल ग्रहण भी,
नहीं आपकी सुरुचि समझती है उचित । (१२।२१)

२. वै० व० । १३।२, ३

और सत्यं, शिवं की तो मूर्ति ही है।[1] आत्रेयी सीता जी के आद्योपान्त जीवन की झाँकी प्रस्तुत करती हुई यह सिद्ध करती है कि आपका जीवन सदैव आपत्तियो से ग्रस्त रहा है। विवाह के समय भी आप राम की प्राप्ति के लिए आतुर थी :

आप रघु पुंगव वक्ष विलोकती।
कोमलता अवलोक रही अतिशंकिता ।। (१३।३१)

आत्रेयी सीता जी के अद्‌भुत त्याग से विशेष प्रभावित होकर कहती हैं कि आप सम्राट-वधू थी, समस्त वैभव आपके समक्ष थे, फिर भी प्राणनाथ के आनन को अवलोक कर आपने सब का त्याग कर दिया :

किन्तु आपने पल भर में सबको तजा,
प्राणनाथ के आनन को अवलोक कर।
था यह प्रेम प्रतीक पूततम भाव का,
था यह त्याग अलौकिक, अनुपम चकित कर ।। (वै० व०। १३।४५)

सीता जी प्रत्युत्तर में अपनी वेदना का विविध प्रकार से चित्रण करती है।[2] किन्तु इस वेदना में भी वे अपने कर्तव्य का परित्याग नही करना चाहती। वे अपनी पतिपरायणता के कारण राम की रुचि, उनकी आज्ञा, उनका प्रियसाधन और उनका अनुगमन ही अपना कर्तव्य समझती है :

उनकी आज्ञा का पालन मम ध्येय है।
उनका प्रिय साधन ही मम कर्तव्य है।
उनका ही अनुगमन परमप्रिय कार्य है।
उनकी अभिरुचि मम जीवन मन्तव्य है ।। (वै० व० १३।६६)

ग्रन्थ के चतुर्दश सर्ग में सीता जी अपने पुत्रों कुश तथा लव को शान्ति निकेतन (आश्रम का एक उद्यान) में लेकर भ्रमण करती है। पुत्रो के वात्सल्य मे खोकर कभी उनको अनेक पुष्पो एवं लताओ से परिचित कराती है और कभी प्रियतम राम के गुणो का गान करती हुई उन्हें प्रफुल्लित करती है :

विदुषी ब्रह्मचारिणी विज्ञानवती सीता जी के सत्संग से अनेक धार्मिक एवं दार्शनिक समस्याओं का समाधान खोजती रहती थी (१४ सर्ग ४०)। वे सीता जी से दाम्पत्य जीवन की सफलता का रहस्य पूछती है और सीता जी दार्शनिक पद्धति से उसका समाधान करती है :

---

१. वै० व० १३।२२,२८
२. रविकुल रवि का आनन अवलोके बिना, सरस शरद सरसीरुह से ये क्यो खिले।
क्यों न ललकते आकुल हो तारे रहें, क्यो न छलकते आँखों में आँसू मिले ।।
(वै० व० १३।८४)

है प्रवृत्ति नर नारी की त्रिगुणात्मिका।
सब में सत, रज, तम सत्ता है सम नहीं ॥
उनकी मात्रा में होती है भिन्नता।
देश काल औ पात्रभेद है कम नही ॥ (वै० व०। १४।८०)

सीता जी दाम्पत्य जीवन की सफलता का मूलस्रोत दिव्य प्रेम मानती हैं।[1] उन्होंने नारी में मुख्य रूप से संयतभाव, शुचि एवं पतिपरायणता को आवश्यक बतलाया है।[2] सीता जी सहनशीलता को कुलकलह की औषधि मानती हैं, जिसके प्रभाव से भिन्न प्रकृति के स्त्री-पुरुष भी सुखपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं। यथा :

तपे हुए की शीतलता है औषधी,
सहनशीलता कुलकलहों की है दवा।
शान्तचित्तता का अवलम्बन मिल गये।
प्रकृति भिन्नता भी हो जाती है हवा ॥ (वै० व०। १४।११९)

सीता जी इन्द्रियलोलुपता, कलह, कपट, अहंभाव, कृत्रिम शृंगार, उच्छृंखलता, स्वार्थ, पापवृत्ति, कठोरता, हिंसा, दुर्व्यसन आदि दोषों को दाम्पत्य प्रेमघातक समझती है।[3] उन्होंने भौतिकता की तुलना में आध्यात्मिकता को ही श्रेष्ठ बतलाया है।[4] इस प्रकार ग्रन्थ के इस चतुर्दश सर्ग में सीता जी के आध्यात्मिकता के विचारों के साथ ही साथ उनके मानस का भी दर्शन कराया गया है। ग्रन्थ के १५ वें सर्ग में सीता जी अपने पुत्रों को आदर्शजीवन की शिक्षा देती हैं :

जीव जन्तु जितने जगती में है बने,
सबका भला किया करना ही है भला।
निरपराध को सता करें अपराध क्यों,
वृथा किसी पर क्यों कोई लाये बला। (वै० व० १५।२४)

वस्तुतः उक्त उपदेश अष्टादश पुराणों का सार है। यथा :

अष्टादश पुराणानां व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

---

१. जहाँ प्रेम सा दिव्य दिवाकर है उदित, कैसे दिखलायेगा तामस तम वहीं।
दम्पति को तो दम्पति कोई क्यों कहे, जिसमें है दम्पति दिव्यता ही नहीं ॥
(वै० व०। १४।८६)

२. वही १४।११३

३. वै० व०। १४।१२७,१४८

४. यदि भौतिकता है स्वार्थपरायणा, आध्यात्मिकता आत्मत्याग की मूर्ति है।
यदि भौतिकता है विलासिता से भरी, आध्यात्मिकता सदाचारिता पूर्ति है ॥
(१४।१५२)

कविवर तुलसी ने भी रामचरित मानस में इसी को स्पष्ट करते हुए स्वाभिमत सिद्ध किया है :

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

सीता जी पुत्रों को शिक्षा देती हैं कि मनुष्य को कृतज्ञ होना चाहिए और परोपकार की प्रवृत्ति तो उन्हें रसाल आदि वृक्षों से सीखनी चाहिए ।[१] वे गंगा को भी परोपकारिणी एवं लोकहितरत बतलाती है ।[२] इस प्रकार सीता जी आदर्शों की देवी सिद्ध होती हैं ।

षोडश सर्ग में शत्रुघ्न लवणासुर पर विजय प्राप्त कर लौटते हैं और सीता जी को यह शुभसम्वाद सुनाते है कि लोक में उनकी पतिपरायणता, त्याग एवं तपोबल के गीत गाये जाते हैं ।

देवि ! आपका त्याग तपोबल आत्मबल,
पातिव्रत का परिपालन संयम नियम ।
सहज सरलता, दयालुता हितकारिता,
लोकरंजिनी नीति प्रीति है दिव्यतम ॥ (१६।७६)

सप्तदश सर्ग में वनदेवी राम के पास आकर सीता जी के दिव्यगुणों की प्रशंसा करती हैं ।[३] राम उनके मुख से सीता का सतीत्व एवं उनके दिव्य स्वभाव तथा गुणों का श्रवण कर प्रसन्न होते हैं और स्वयं सीता को निःस्वार्थ लोकहितकारिणी बतला कर यह कहते हैं कि अश्वमेध के उत्सव में आप भी पधारें, वहाँ जनकनन्दिनी आपको मिल सकेंगी ।[४]

अन्तिम १८वें सर्ग में सीता जी वाल्मीकि जी के साथ कुश एवं लव सहित आती हैं और श्री राम के चरणों का स्पर्श करते ही प्रेमातिरेक के कारण शरीर छोड़ कर दिव्यज्योति के रूप में परिणत हो जाती हैं :

ज्यों पतिप्राणा ने पति पदपद्म का, स्पर्श किया निर्जीव मूर्ति सी बन गई ।
और हुए अतिरेक चित्त उल्लास का, दिव्य ज्योति में परिणत वे पल में हुई ॥
(वै० व० १८।४०)

राम की शक्ति पूजा : महाकवि निराला की प्रस्तुत विस्तृत कविता में भी सीता के मानवीय रूप का स्वरूप चित्रण मिलता है । रावण से युद्ध करते-करते राम असफल हो जाते है और सन्ध्या के निविड़ अन्धकार में शिविर में बैठे चिन्तामग्न है । उसी समय उन्हें पृथ्वीतनया की स्मृति आती है । उन्हें जनक का वह उपवन याद आता है, जहाँ कुमारिका सीता से लतान्तराल में उनका मिलन हुआ था । प्रथम

१. वै० व० । १५।३७,४३
२. वै० व० । १७।८३,८६
३. वै० व० । १७ ।५७, ७५
४. वै० व० । १७।८३, ८६

स्नेह की उस भूमिका में दोनों ने अपलक दृष्टि से परस्पर देखा था, नेत्रों का मौन सम्भाषण हुआ था, और जानकी के सुन्दर नेत्रों के कारण राम के शरीर में प्रथम-वार कम्पन्न उत्पन्न हुआ था, वह इतना आनन्दप्रद था जैसा कि योगी को तुरीया-वास्था से आनन्द प्राप्त होता है।[1]

(क) इस प्रसंग में सीता की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे निराला की मान्यता स्पष्ट है उन्होंने सीता को पृथ्वीपुत्री के रूप में एवं जनक की कृतकपुत्री के रूप में मान्यता दी है।

(ख) तुरीय शब्द के उपादान से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को राम का योगी रूप अभिलषित था एवं सीता का आध्यात्मिकरूप, जिसे तुरीयावास्था की संज्ञा तुलसी ने भी प्रदान की है :

सब सुन्दरी सुन्दर वरन सब एक मण्डप राजहीं।
जनु जीव अरु चारिहु अवस्था विभुनसहित विराजहीं॥

(रामचरित मानस, बालकाण्ड)

यहाँ चतुर्थ विभु ब्रह्म और चतुर्थ अवस्था तुरीय की कल्पना क्रमशः राम एवं सीता के लिए की गई है।

(ग) उक्त प्रसंग में सीता एक लज्जाशील, सुन्दरी, राजकुमारी एवं प्रथमा-नुरागमयी चित्रित की गयी हैं। उनके इस मिलन में 'ज्योति प्रपात स्वर्गीय' के द्वारा भी कवि ने अलौकिकता का आभास कराया है। निराला की सीता राम की अनन्य-प्रिया है, जिसका रावण के बन्धन से उद्धार करने के लिए राम कृतसंकल्प है। जब साधना की चरमावस्था में देवी प्रकट होकर अन्तिम पुष्प चुरा ले जाती है, तब

---

१. ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत
देखते हुए निष्पलक याद आया उपवन
विदेह का प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का नयनों से गोपन प्रियसभाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन
काँपते हुए किसलय झरते पराग समुदय
गाते खग नव जीवन परिचय तरु मलय वलय
ज्योतिःप्रपात स्वर्गीय ज्ञात छवि प्रथमस्वीय
जानकी नयन कमनीय प्रथमकम्पन तुरीय

(अपरा पृ० ४५, षष्ठ संस्करण, १९६५)

अनुष्ठान की अपूर्ति की आशंका से राम का चित्त व्यथा से पूर्ण हो जाता है और उन्हें अपनी प्रियतमा के उद्धार न कर सकने का बहुत खेद होता है।[1]

इस प्रकार निराला की सीता पृथ्वी की पुत्री, जनक कुमारी, राम की अनुरागिणी लज्जामयी, दिव्य सुन्दरी एवं अलौकिक अनुरागमयी मानवी हैं, जो धरातल की सामान्य नारी न होकर एक विशिष्ट शक्ति के रूप में प्रस्तुत है।

लोकायतन : कविवर सुमित्रानन्दन पन्त का यह महाकाव्य १९६३ ई० में पूर्ण हुआ था। इसमें भारतीय लोक भूमि पर विश्व मानव के अन्तर्वाह्य विकास की परिकल्पना चित्रित हुई है।[2] इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के पूर्व स्मृति: आस्था नामक सर्ग के अन्तर्गत कवि ने सीता को मानव चेतना के रूप में प्रस्तुत किया है। रूपक के आवरण में कवि ने अपनी मान्यता इस प्रकार घोषित की है :

सीता जन भू हृदय, राम जन के बल
नर चरित्र धर, मानस पात्र अनश्वर,
प्रीति प्रणत लक्ष्मण अनन्त पौरुष बल,
शील मूर्ति उर्मिला विरह रस गागर। (लोकायतन, पृ० १६)

एक स्थल पर कवि ने राम को परब्रह्म और सीता को पराशक्ति के रूप में भी मान्यता दी है।[3] एक रूपक के आवरण में कवि ने रावण को अहंवृत्ति, लंका को दुर्मति, परिखा को विषय वासना, सीता को चिति और इन्द्रियों को अशोकवाटिका के रूप में चित्रित किया है।[4]

सीता की प्रतीक रूपा चेतना का सौन्दर्य भी अद्वितीय है। कवि ने उसे द्वितीया के चन्द्र जैसी अकलुष स्वयं प्रकाशित, आदिशक्ति के समान कल्पित किया है। वह भूघट की सुधाधारा-सी प्रतीत होती है। उसके पयोधर प्रीति-सिन्धु के शिखरों के समान लगते हैं। जीवन मूल्यों की अमूल्य मणियों का हार उसके वक्षस्थल को

---

१. जानकी ! हाय उद्धार प्रिया का न हो सका। (वही पृ० ५४)
२. लोकायतन मुखपृष्ठ पर अंकित।
३. प्रिये ! दाशरथि, वैदेही हो क्या हम ?
परब्रह्म मैं, पराशक्ति तुम सुविदित।
सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, सर्वगत, शाश्वत
वहुरूपों में भी हम एक अखण्डित।। (लोका०। पृ० १७ आस्था)
४. अहंवृत्ति रावण, लंकादुर्मतिगढ़, विषय वप्र, वंदी चिति, इन्द्रिय वन में।
मुक्त हुई तुम, मिटा अविद्याभय तम, हनुमत प्रेरित जगी चेतना जन में।।
(वही, पृ० १६)

विभूषित करता है। वह अपनी बाहु लताओं से भू जीवन की मूकवेदना और ममता को सिमेटे हुए है।[१]

कथानक की दृष्टि से मुख्यतया कवि ने सीता के परित्याग का अंश चुना है, जिसमें लक्ष्मण उन्हें परित्याग का रहस्य वन में ही बतलाते हैं। सीता इस दारुण वृत्तान्त को सुनकर करुण-क्रन्दन करती हैं, जिसे सुनकर पशु-पक्षी भी व्यथित हो जाते हैं। अन्त में मूर्छित सीता के पास दैवद्रष्टा मुनि वाल्मीकि आते हैं और उनका स्वागत करते हैं।[२] वाल्मीकि जी सीता को निष्पाप एवं जनमन को अन्ध अविकसित तथा संशयरत कहते हैं :

अनघे ! तुम निर्दोष ज्ञात रघुवर को, पूतयोनि रटते तरु मृग खग गिरिवन।
अन्ध अविकसित संशयरत जन भू मन अविश्वास ही धरा-नरक का कारण ॥
(लोका० । पृ० १०)

कवि ने उसी सीता को जो संतप्त होकर अन्ततः धरा के गर्भ में समा गई थी, इस युग की नवीन मानवीय चेतना के रूप में उसे प्रकट किया है। राम सीता को लोककल्याण के लिए प्रेरित करते हैं।

राज्य तन्त्र का सूर्य क्षितिज में ओझल,
रामराज्य था कृपि-मन का युगदर्पण।
गतयुग के जीवन मन के संचय को,
जगद्धात्रि ! लो, करता तुम्हें समर्पण ॥ (लोका० । पृ०११)

सीता राम की उक्त बात को सुनकर हँसती हुई उनके सर्वस्व समर्पण को स्वीकार करती है और राम को भी नए कल्प के दर्पण बनने की प्रार्थना करती हैं। राम सीता की महनीय मूर्ति की प्रशंसा करते हैं।[३] उनका कहना है कि नवीन चेतना रूपी सीता ने ही मानव को नवीन साधन प्रदान किये हैं, इसी ने स्वर्णयुग का प्रकाश किया है, जिसके कारण जड़ताजन्य अज्ञान दूर हो रहा है। वैज्ञानिक दृष्टि के कारण ही अंध भू मन दर्शन हेतु नवीन दृष्टि प्राप्त कर सका है। राम सीता

---

१. वही, पृ० ८, ९

२. मूर्तिमती पृथ्वी की करुणासी वह गिरी विमूर्छित व्यथामथित वज्राहत।
आत्मबोध जब जगा दैवद्रष्टामुनि करते थे वाल्मीकि स्नेह से स्वागत ॥
(लोका० । पृ०९)

३. अमिट अमीप्सा तुम श्रमरत भू मन की। जिसकी स्वर्णिमपूर्ति लोकरूपान्तर।
मैं निमित्त भर तुम्ही अविद्या विद्या, जिसमें सोते जगते निखिल चराचर।
(वही । पृ०१३)

से लोककल्याण करने का आग्रह करते हैं।[1] वे उन्हें मूल-प्रकृति के रूप में भी महत्व देते हैं। राम चाहते हैं कि यह युगचेतनारूपी सीता अपने करुण स्पर्शों से जड़ भू मानस के अन्ध स्तरों को प्रकाशित करती रहे।

राम इस नवीन युगचेतनारूपी सीता के मंगलमयी स्वरूप से परम प्रसन्न हैं। यह सीता यद्यपि अन्तःशिखरों में उदित हो रही हैं, किन्तु फिर भी धरा कक्ष के तम में उनका चन्द्रकलावत् दिव्य रूप अत्यन्त सुन्दर लगता है, उससे लोक कल्याण मंगलमयी वृष्टि होती है।[2]

इस प्रकार लोकायतन की सीता अमूर्त हैं, वे विश्व मंगलविधायिनी चित् शक्ति हैं, जो आज के वर्तमान मानव का कल्याण चाहती हैं, करुणा का विस्तार करती हुई मानवता की सुरक्षा के लिए सचेष्ट हैं। वे अपने अचेतन जड़ में चेतनता का संचार करती हैं, प्राणों में हँसी, मन में दीप्ति और हृदय कमल में चैतन्य-ज्योति का दिव्य प्रकाश फैलाती हैं। वे भाव तथा कर्म में समन्वय स्थापित करती हुई मानव को जीवन पथ दिखलाती हैं। उसके प्रभाव से मानव मन युद्ध और शान्ति के मध्य शान्ति को ही चुनेगा।[3] वे वह पराशक्ति हैं, जो निखिल भुवन में व्यापक हैं और सुर नर मृग सबका कल्याण उन्ही के आश्रित है।[4]

वैदेही महाकाव्य की सीता

प्रस्तुत ग्रन्थ की पान्डुलिपि मेरे पास सुरक्षित है। 'वैदेही-वनवास' की भांति यह ग्रन्थ भी सीता जी के ऊपर ही आधारित है, किन्तु दोनो में मुख्य अन्तर यह है कि वैदेही वनवास सीता जी के उत्तर चरित से सम्बद्ध है और यह ग्रन्थ उनके समस्त जीवन से सम्बद्ध है। इसमें उनके जन्म से लेकर पृथ्वी-प्रवेश तक का विस्तृत, सरस एवं रोचक कथानक प्रस्तुत किया गया है।।

---

१. नई चेतना सुधा प्रीति स्वर्णिम तुम, नई पात्रता देगी अब जन मन को।
आत्मा इन्द्रिय बीच भेद तम भ्रम हर, स्वीकृति देगी पूर्णजगत जीवन को।।
(वही। पृ० १४)

२. उदित हो रही तुम अन्तः शिखरों पर,
सुमुखि उषा-सी नवसुषमा में मंडित। (पृ० १५)
देख रहा तुम धरा कक्ष के तम में चन्द्रकला-सी उग बरसाती मंगल।।

३. अन्तरतम की आस्था में भू मन की,
युद्ध शान्ति में शान्ति चुनेगा जन मन।। (लोका०। पृ० १६)

४. पराशक्ति तुम, निखिल भुवन में व्यापक,
सुर नर मृग मगल नित जिसके आश्रित।। (लोका०। पृ० २८)

इस ग्रन्थ की सीता मिथिलाधिपति सीरध्वज (जनक) की दत्तक पुत्री हैं, जिनकी उत्पत्ति यज्ञभूमि के संशोधनार्थ हल के संचालन करते समय भूमिगर्भ से हुई थी।[१] शैशव में ही सीता अपनी लीलाओं से माता-पिता को आश्चर्यचकित करती रही हैं। एक दिन पिनाक धनुष को बाँये हाथ से उठा कर सीता जी दाहिने हाथ से उसके नीचे लेपन कर देती हैं। जनक जी पुत्री की इस अलौकिक शक्ति से विशेष प्रभावित होते हैं और यह प्रतिज्ञा करते हैं कि जो कोई इस धनुष को चढ़ा सकेगा, उसी के साथ सीता का विवाह होगा।[२]

रामचरितमानस की भाँति इस ग्रन्थ में भी पुष्पवाटिका में सीता राम मिलन होता है। इसमें अन्तर इतना है कि पार्वती जी एक दिन पूर्व ही उन्हें वाटिका में वर प्राप्ति का स्वप्न दिखलाती हैं। इसी स्वप्न की सत्यता देखने के लिए सीता वाटिका में पहुँचती हैं और राम के दर्शन से आनन्दविभोर हो जाती हैं।[३] इस प्रकार स्वप्न की सत्यता देख कर वे राम की प्राप्ति का दृढ़ निश्चय कर लेती हैं। उन्हें उक्त वर की प्राप्ति में सन्देह नहीं रह जाता।

द्वितीय सर्ग में कवि ने सीता जी की दिनचर्या से लेकर वनयात्रा तक का कथानक प्रस्तुत किया है। दिनचर्या मे कवि ने उन्हें दीन-दुखियों के प्रति उदार नियम, व्रत, उपासना आदि में संलग्न, पतिसेवा तथा लोककल्याण में निरत एवं शास्त्र पारंगत विदुषी के रूप में चित्रित किया है। उन्हें प्रकृति की रमणीयता के प्रति अविचल अनुराग है। वे बहुधा राम से वन दर्शन की उत्कण्ठा व्यक्त करती रहती थीं।[४]

जिस समय श्री राम को वनवास की आज्ञा मिलती है और सीता जी को भी यह समाचार ज्ञात होता है, उस समय वे गम्भीर होकर श्री राम से कहती हैं कि वीरों के लिए सर्वत्र राज्य सुख है कायरों के लिए कहीं नहीं। हम वन में रह कर वहाँ भी जनता की सेवा करेंगे। मैं आपकी सेविका हर प्रकार से आपके व्रत में सहयोग देकर धन्य बनूँगी।[५] इस स्थल में राम को सीता की इच्छा का पता लगाने के लिए केवल एक बार उनसे पूछना पड़ता है और उनकी रुचि को समझ कर

---

१. जनक तुम हो सच्चे अवनीश, धरा से सुता मिली अभिराम।
पुराकृत पुण्य तुम्हारा भूरि, वरेंगे इसको आकर राम॥ (वैदे० ।१।४८)

२. वही, १।६०　　　　३. वही, १।६५

४. प्रियतम ! काननदर्शन में मुझको अविरल सुख मिलता है।
विभु की विभुता देख देखकर हृदय कंज सा खिलता है॥ (वही, २।२५)

५. वही, २।५१

अधिक कुछ नहीं कहना पड़ता। सीता जी स्वयं वन के दु:खों का वर्णन कर पति के साथ उन्हें सहनीय बतलाती है।[1]

इस प्रकार इस प्रसग में सीता संयत, धैर्यपूर्ण एवं आदर्श पतिव्रता के रूप मे प्रस्तुत की गई है। उनका साहस तथा त्याग सराहनीय है। वे किसी के प्रति कटु-वचनो का प्रयोग न करती हुई शालीनता का परिचय देती है।

तृतीय सर्ग मे कवि ने चित्रकूटवास के समय सीता जी की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का सुन्दर एवं कलात्मक विश्लेषण किया है। सीता मुनिकन्याओ से मिल-जुल कर सत्संग करती है, अनेक शास्त्रो की चर्चा करती हुई अपनी प्रज्ञा का परिचय देती है। वनवासी कोल-किरात भी उन्हें सरल एव निश्छल होने के कारण प्रिय लगते है। वे उनसे विभिन्न वनस्पतियों का परिचय प्राप्त कर प्रमुदित होती है।[2]

कनक मृग के प्रसग में सीता जी लक्ष्मण को केवल एक बार अपनी शपथ दिलाकर राम की सहायता के लिए जाने का आग्रह करती है और लक्ष्मण अपने असमंजस का वर्णन करते हुए तुरन्त प्रस्थान कर देते है।[3] यहाँ न तो सीता का परुषप्रधान रूप है और न लक्ष्मण का ही असन्तुष्ट रूप प्रतीत होता है, जैसा कि वाल्मीकि में वर्णित है। रावण के प्रति अवश्य ही सीता का चंडी रूप स्पष्ट हुआ है। वे उसे दो दंड रुकने के लिए कहती है। चोर, छद्मवेषी, क्रूर, दस्यु, अधम आदि शब्दों का प्रयोग करती हुई उसे कोसती है, किन्तु रावण उनके एक भी अप-शब्द का उत्तर नहीं देता।[4]

अशोकवाटिका मे सीता से दीनहीन रूप का चित्रण मानस की ही भाँति किया गया है। अन्तर यह है कि इस ग्रन्थ की सीता को त्रिजटा तथा सरमा (विभीषण की रानी) की भी सहानुभूति प्राप्त है। वे पंछी से राम के रूप गुण-शील आदि का वर्णन करती हुई समययापन करती है। रावण के त्रास से भयभीत तो होती है, प्रियतम के दु:सहवियोग की अग्नि उन्हे तपाती तो है, किन्तु वे अपने पिता जनक द्वारा सिखाये गये एक मन्त्र द्वारा अपनी वेदना शान्त कर लेती है और एक दण्ड के लिए उन्हे शान्ति प्राप्ति हो जाती है।[5] सीता जी हनुमान को विश्वस्त मान लेने पर उनसे अपनी विपत्ति बतला कर उद्धार करने की प्रार्थना करती है। इस ग्रन्थ में वे राम को प्रत्य-

---

१. वैदे० ।२।५५

२ सखि यह कैसा धवा वृक्ष है, क्या इसका गुण बतलाओ।
प्रकृतिनटी के चिरपित, पादप, इनको भी समझाओ।। (वैदे० ।३।६०)

३. शपथ देवी सीता की है, राम की आज्ञा इधर कठोर।
हाय! सौमित्र! द्विविध असिधार, पड़ गये चले वन्धु की ओर।। (वही।४।२३)

४. वही, ४।५१ ५. वैदे० । ५।२६

भिज्ञान स्वरूप चूड़ामणि तो देती ही है, इसके अतिरिक्त वे तीन वृत्तान्तों की चर्चा करती हैं।

(१) काकवृत्तान्त, (२) तिलावृत्तान्त, (३) करुणानिधान नाम वृत्तान्त। इनमें प्रथम दो तो वाल्मीकि मे निर्दिष्ट है, किन्तु अन्तिम वृत्तान्त कविकल्पनाप्रसूत है।[1]

सप्तम सर्ग मे रावण विजय के पश्चात् विभीषण की अध्यक्षता मे लक्ष्मण सुग्रीव तथा हनुमान सीता जी के पास जाकर उनसे चलने की प्रार्थना करते है। सीता उसी दीन-हीन वेश में ही राम के पास आती है।[2] अन्य ग्रन्थो मे कवियो ने राम की आज्ञा से सीता के अलकृत रूप मे आने का उल्लेख किया है। यहाँ राम को मौन एवं दुखी देख कर सीता स्वत: अग्निपरीक्षा देती है और जनता उनकी शुद्धि पर विश्वास प्रकट करती है। अन्तिम सर्ग मे कवि ने सीता त्याग का करुण प्रसग प्रस्तुत किया है, जिसके उपसहार मे सीता जी लव-कुश युद्ध के पश्चात् राम के दर्शन कर वन मे ही प्राण त्याग देती है और माता वसुन्धरा उन्हे अन्तर्निहित कर लेती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य की सीता और पूर्ववर्ती काल की सीता

यहाँ सक्षिप्त रूप मे इस बात पर भी विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य मे सीता के जिस स्वरूप की चर्चा की जा चुकी है, उसके साथ पूर्ववर्तीकाल (रीतिकाल) की सीता के स्वरूप की तुलना कर ली जाये, जिससे यह स्पष्ट हो सके किस प्रकार युगीन मान्यताओ मे परिवर्तन होता है।

रीतिकाल मे रामभक्ति मे मधुरोपासना का पर्याप्त प्रचार एव प्रसार हुआ है। यद्यपि इस साधना का मूल आठवी शताब्दी से आचार्य शठकोप की रचनाओ मे प्राप्त होता है, किन्तु हिन्दी साहित्य मे अग्रदास जी को ही रसिक सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इनका स्थितिकाल सम्वत् १६२ वि० सिद्ध किया गया है। इस प्रकार ये तुलसी के समकालीन कवि थे। इस प्रकार १७ वी शताब्दी से १६ वी शताब्दी तक रामसीता की श्रृंगारप्रधान रसिकोपासना का प्रावल्य रहा। वैसे तो स्फुटरूप मे आज भी उक्त धारा प्रवहमान है, किन्तु अब उस रूप मे सजीवता नही रह गयी। इसकी तुलना मे बीसवी शताब्दी का राम-साहित्य बहुत कुछ भिन्न है। यहाँ पर सीता को लेकर उभय कालो का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। आधुनिक युग मे सीता मुख्य रूप मे एक आदर्श मानवी है, जिसका मुख्य प्रतिपादन साकेत मे किया

---

१. इसके अनुसार सीता जी ने प्रथम मिलन की निशा में राम का व्यक्तिगत नाम करुणानिधान रखाया था इस प्रत्यभिज्ञान द्वारा सीता जी राम को पूर्वस्मृति दिला कर प्रभावित करना चाहती थी। (वैदे०। सर्ग ५)।

२. वही [illegible]

गया है, अतः आधुनिक साहित्य की सीता का विवेचन करने मे हमारी दृष्टि मे साकेत की सीता का रहना सर्वथा न्यायसगत होगा।

(क) आधुनिक हिन्दी साहित्य की सीता एक आदर्श मानवी है, जब कि रीति-कालीन सीता राम की आह्लादिनी शक्ति है। वे त्रिवर्णात्मिका माया है। इनके सीता नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार है: सकार विष्णुरूप, ईकार मायारूप, तकार मोक्षप्रद सत्य और अकार अमृत का प्रतीक है।[१]

(ख) आधुनिक साहित्य की सीता का एक ही रूप है, जब कि रीतिकालीन सीता के तीन रूप है: शब्दब्रह्ममयी मूल प्रकृति, भूतल मे हलाग्र से उत्पन्न सीता और तृतीय अव्यक्तस्वरूपा साकेतविहारिणी सीता।[२] इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि आधुनिक साहित्य की सीता केवल पृथ्वी पुत्री एवं जनक की दत्तकपुत्री है, किन्तु रीति-कालीन सीता का उक्त रूप तो गौण है मुख्यतः वे ब्रह्म की मूलप्रकृति ही है।

(ग) आधुनिक हिन्दी साहित्य की सीता अत्यन्त मर्यादित लोककल्याणपरायणा एवं सतीसाध्वी मानवी है, किन्तु रीतिकालीन सीता शृगाररसिका राम के साथ चिरविहारिणी रासेश्वरी है।[३]

(घ) आधुनिक हिन्दी साहित्य की सीता का वनवास हुआ है किन्तु रीतिकालीन सीता (रसिक सम्प्रदाय) तो चित्रकूट मे ही राम के साथ बिहार करती रही, आगे गई ही नहीं, अस्तु हरण आदि का प्रश्न ही नही उठता।

(ङ) आधुनिक हिन्दी साहित्य की सीता चित्रकूटवास काल में राम की सेवा करती हुई प्रकृति की मनोरम छटा देखकर मुग्ध रहती है और वहाँ के कोल-किरातों एवं भिल्लिनियों का सम्पर्क पाकर उनसे भी कुछ सीखती और स्वयं भी कुछ सिखाती है, शृंगार मे उन्मत्त नही हो जाती, किन्तु रीतिकालीन सीता तो मधुरोपासना के अन्तर्गत चित्रकूट को विहारस्थली बना लेती है। उन्हे दाम्पत्यरति से इतना अवकाश ही कहाँ कि वे लोक-जीवन की समस्याओं को क्षणभर देख सके।

(च) आधुनिक हिन्दी साहित्य की सीता को न तो कही होली खेलने का

---

१. सीतोपनिषद् पृ० ४ २. वही पृ० ४

३. राम रस रंग सो संग सिया प्यारी रासमण्डल मधि सोहै।
बनि ठनि रूप सिरोमनि सोहनि कोटि मदन रति मोहै॥
जैसी ये सरद निसा छकि चाँदनी जुगुलचन्द छवि जो है।
कृपानिवास विलास मगन मन कहनि कुशल कवि को है।
(रामभक्ति साहित्य में मधुरोपासना : श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र, माधव, पृ० २२२ से उद्धृत)

अवसर मिला, न वे हिंडोले में झूल सकी और न उन्हें राम के साथ नृत्य करने का अवसर ही मिला, किन्तु रीतिकालीन सीता को उक्त सभी अवसर प्राप्त हुए थे।[1]

(छ) आधुनिक हिन्दी साहित्य की सीता को राम का वियोग सहन करना पड़ता है, वे जीवन की कटुता का विशेष अनुभव करती हैं और पातिव्रत्य के पालन में जीवन का उत्सर्ग भी कर देती हैं, किन्तु रीतिकालीन मधुराभक्ति की सीता को सुख ही सुख, आनन्द ही आनन्द, उल्लास ही उल्लास है। उन्हें जीवन की कटुता का अनुभव कहाँ, अभिशाप का नाम सुनने की फुरसत कहाँ ? वे तो कही अयोध्या के महलों में या कहीं चित्रकूट के लताओं में ही रसमग्न रहती है : वे इतनी महनीय है कि जिनकी सेवाहेतु उमा रमा तथा ब्रह्माणी भी आशा करती हैं। इतना ही नही समस्त देव सीता जी की कृपादृष्टि पर ही आश्रित रहते हैं।[2]

तात्पर्य यह कि रीतिकालीन शृंगार-भावना की प्रधानता एवं कृष्ण की प्रेमाभक्ति के प्रचार एवं प्रभाव के कारण तत्कालीन कवियों में भक्तिकालीन शालीन-तामयी सीता को शृंगार के कुंड में डाल दिया, जिसके उद्धार करने का श्रेय आधुनिक हिन्दी साहित्य के सजग प्रहरी मैथिलीशरण गुप्त एवं अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जैसे युगपुरुषों को प्राप्त है भले ही इन कवियों ने सीता की अलौकिकता न स्वीकार की हो, किन्तु इन्होंने वाल्मीकि और तुलसी जैसे भक्तों की महनीया सीता का गला नहीं घोटा, जैसा कि मधुरोपासना की ओट में रीतिकालीन कवियो ने किया है।[3]

सम्भवत: सीता को इस द्वन्द्व से बचाने के लिए आज के जागरूक कवि पन्त ने उसे चेतना के रूप में अशरीरिणी बना दिया है और उसके आध्यात्मिक रूप को नूतनता प्रदान की है। अच्छा हो कि भविष्यत् के कवि या तो इन्हें आदर्शमानवी ही मानें, जैसा कि वाल्मीकि जी ने माना, अथवा उन्हें चेतना के रूप में ही माता वसुन्धरा की सुखप्रदगोद में चिरकाल तक प्रतिष्ठित रहने दें।

---

१. "राघव सिय खेलत होरी।" "नटत श्री रामसिया मिलि जोरी।"
(भजनरत्नावली, रामनारायणदास)

२. रमा उमा ब्रह्मानियाँ, सिया चरन की आस।
जाके वस सब देव हैं, कृपा कटाक्ष निवास॥
(महराजदास : श्री सीताराम शृंगाररस)

३. लोकायतन (सर्ग १) सुमित्रानन्दन पन्त

अध्याय ४

प्राच्य भाषाओं में सीता का स्वरूप

भारतीय वाङ्मय में सीता विषयक प्रचुर साहित्य की सृष्टि हुई है। न्यूनाधिक रूप में उक्त साहित्य का मूलस्रोत महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण ही सिद्ध होता है। वैसे तो सांस्कृतिक परिवर्तनों एवं लौकिक मान्यताओ के कारण प्रत्येक भाषा के साहित्य में कुछ न कुछ विभिन्नता भी पाई जाती है, किन्तु उसके अन्तर्गत एक ऐसी एकता भी विद्यमान है, जो समस्त भारतीय वाङ्मय को एकसूत्रता के धागे मे पिरोये हुए है। पूर्वाचलीय भाषाओं में उड़िया, बंगला तथा असमिया को ही साहित्यिक महत्व प्राप्त है, अतः इस विषय पर शोधकर्ताओं की दृष्टि इन्हीं तीन भाषाओ के साहित्य तक केन्द्रित रही है। उदाहरणार्थ डॉ० बुल्के ने अपने प्रसिद्ध शोधप्रबन्ध रामकथा में मैथिलीसाहित्य की चर्चा नही की, उन्होने केवल उक्त तीनों भाषाओ के साहित्य की सूची प्रस्तुत की है। इसी प्रकार डॉ० रमानाथ त्रिपाठी (दिल्ली विश्वविद्यालय) ने अपने डी० लिट् के शोध प्रबन्ध पूर्वाचलीय रामायण एवं रामचरितमानस मे उक्त तीन भाषाओं की रामायणों पर ही विचार किया है। इसका एकमात्र कारण यह है कि मिथिला की भाषा मैथिली को अभी तक साहित्यिक भाषा का महत्व नही प्राप्त हो सका, वह अभी लोकभाषा के रूप में ही मान्य है।

मेरे विचारो ने विद्यापति जैसे समर्थ एव उच्चकोटि के साहित्यिक महाकवि की भाषा को कुछ अधिक गौरव देना चाहा है। इसी प्रेरणा के परिणामस्वरूप मैथिली सीता पर स्वतन्त्र रूप से विचार करने की चेष्टा की जा रही है। वैसे तो इसी शोध प्रबन्ध के अध्याय ७ के अन्तर्गत मैथिली लोकगीतो मे श्री सीता उपशीर्षक के नाम से विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा, किन्तु इस अध्याय मे लोकसाहित्य के अतिरिक्त क्षेत्र की भी चर्चा कर देना अनुचित न होगा। मैथिली मे चदामन झा द्वारा विरचित रामायण प्रसिद्ध है, जिसमे सीता का जो स्वरूप चर्चित है, वह उडिया-साहित्य की सीता से पर्याप्त साम्य रखता है।

सामान्यतः पूर्वाचलीय राम साहित्य की सीता तेजस्विनी एवं आदर्श पतिव्रता है। यद्यपि कवियों की दृष्टि में लक्ष्मी का अवतार है, किन्तु उनके जीवन चरित्र में उनके मानवी रूप का ही प्रामुख्य पाया जाता है। उक्त भाषाओ के कवियो ने उनकी

आध्यात्मिकता का पक्ष नहीं लिया, यह बात दूसरी है कि हनुमान प्रभृति भक्त पात्रों के विचार से सीता जगन्माता है। वस्तुतः इन पूर्वांचलीय भाषाओं की सीता मध्ययुगीन चेतनासम्पन्न नारी हैं। वाल्मीकि की सीता से इनका साम्य तो है, किन्तु वैषम्य भी दृष्टिगोचर होता है। यहाँ पर मैथिली काव्य की सीता का रूप प्रस्तुत किया जा रहा है। हम इस विवेचन में श्री राम लोचन शरण द्वारा विरचित मैथिली कृति 'रामचरित मानस' को दृष्टिपथ में रखते हुए विचार प्रस्तुत करेंगे।

(क) मैथिली काव्य में श्री सीता का व्यक्तित्व एवं उसका मूलस्रोत

मैथिली लोकभाषा के रूप में प्रचलित है। रामलोचनशरण कृत 'मैथिली रामचरित मानस' आधुनिक रचना है। यह पूर्णतया तुलसीकृत रामचरित मानस पर ही आधारित है। इस प्रकार मानस की सीता से इस ग्रन्थ की सीता में किसी प्रकार की विभिन्नता नहीं प्रतीत होती :

मैथिली की सीता का पुष्पवाटिका में राम से मिलन होता है, वे राम के दर्शन कर आनन्दविभोर हो जाती हैं, यहाँ तक कि देह की सुधि भी भूल जाती हैं, यथा :

येकटक दृग रघुपति छविहेरी।
पलको सकय निमेष न फेरी॥
उमड़ल नेह न देहक माने।
लख चकोरि जनि सरदक चाने। (मै० रा०। बाल०। २३२। ५, ६,)

राम के अद्भुत सौन्दर्य एवं सौकुमार्य को देख कर सीता जी अपने पिता दशरथ के प्रण का स्मरण कर मन में क्षुब्ध होती हैं।[1] इस प्रकार यहाँ सीता एक अनुरागमयी राजकुमारी प्रतीत होती हैं। वे पार्वती के मन्दिर में जाकर राम को ही वररूप में मिलने की प्रार्थना करती हैं, क्योंकि शंकर जी के कठोर धनुष का स्मरण आते ही उन्हें राम द्वारा धनुर्भंग किये जाने का सन्देह विकल कर देता था। जब गौरी माता राम के वररूप में मिलने का आशीर्वाद प्रदान करती हैं[2] तब सीता का चित्त प्रमुदित हो जाता है।

धनुर्भंग की वेला में रंगभूमि में पहुँच कर सीता राम को पहचान कर चकित दृष्टि से देखने लगती हैं, किन्तु समाज में गुरुजनों की उपस्थिति के कारण उनके चित्त

---

१. नख सिख रामक शोभा देखी।
सुमिरि पिताप्रन छोम विशेखी॥ (मै० रा० बा०। २३४।४)

२. मन रतल जनिमे हता से सुन्दर सहज स्यामल पती।
करुनानिधान सुजान बुझ तव सीलओनेहकगती॥
(मै० रा०। बाल०।२३६ के पूर्व)

में लज्जा उत्पन्न हो जाती है, अतः हृदय में तो राम का ध्यान करती है, किन्तु बाह्य दृष्टि से सखियों की ओर अवलोकन करने लगती है।[१] जब राम धनुष तोड़ने,के लिए उद्यत होते है, उस समय सीता की हार्दिक उद्विग्नता बहुत अधिक बढ़ जाती है। कभी तो वे देवों का स्मरण करने लगती है, कभी पिता के प्रण पर आक्रोश व्यक्त करती है।[२] उनकी अधीरता का कारण धनुष की कठोरता एवं राम की कोमलता थी। इस प्रकार सीता का एक-एक पल उन्हे व्यथित कर रहा था। यथा :

सिय मन में परिताप महाने।
पललव वित सय जुगक समाने॥ (मै० रा० बा०। २५८।८)

रामचरितमानस मे भी तुलसी ने इसी प्रकार सीता की मानसिक वेदना का चित्रण किया है। उड़िया की सीता भी इसी प्रकार चिन्तित है। उन्होने ब्रह्मा से निवेदन किया है कि मुझे निराश न करना।[३] बंगला की सीता भी इसी प्रकार राम की प्राप्ति के लिए देवो से प्रार्थना करती है। ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, दिग्पाल, गणपति, अग्नि, भूतनाथ गौरी, कात्यायनी आदि उनकी स्तुति के पात्र है।[४] वनवास के समय मैथिली० की सीता पति के साथ जाने के लिए उत्सुक होती हुई भी गम्भीर है, वैसे उनका संकल्प तो दृढ है।[५] वे चरणो के नखो से भूमि कुरेदने लगती है, नेत्रो मे आँसू भर लेती है। इससे उनकी गम्भीरता ही तो व्यक्त होती है।

जब राम वनदोषो का वर्णन करते हुए गृह मे रहकर जननी की सेवा करने का परामर्श देते है, तब वे यह उत्तर देती है कि स्त्री के लिए तो पति बिना सभी सम्बन्ध व्यर्थ है, सभी सुख भोग व्यर्थ है :

प्राननाथ बिनु अहक जहाने।
सुखद न मोहि कहहु किछु आने॥ (मै० रा०। अयो०। ६५।६)

वे अपने पति राम के साथ वन देखने की इच्छा प्रकट करती है। वहाँ का जीवन शान्तिप्रद होता है, इसी प्रकार वहाँ का कन्द-मूल-फल का भोजन भी सीता की प्रकृति के अनुकूल था। वाल्मीकि की सीता भी प्रायः ऐसे ही विचार प्रस्तुत करती है। उडिया की सीता इस प्रसग में राम से रुष्ट हो जाती है। उनका प्रेम ही इस रुष्टता एवं परुषता का कारण बन जाता है। (उडिया रा०।२।४१) मैथिली की सीता में विनय एवं सेवाभाव की मात्रा अन्य रामायणो की अपेक्षा अधिक है। वे राम से कहती है :

---

१. वही, बाल०। २४८।७;८ २. वही, बाल०। २५८ के पूर्व
३. उड़िया रा०। १,५१ ४. कृत्तिवास रामायण। आदि। पृ० १८६
५. कीतन प्रान कि केवल प्राने।
जानल जाय न विधिक विधाने॥ (मै० रा०। बा०। ५८।४)

वैंमि छांह तव चरन पखारी । वियनि डोलायव मन मुदकागी ।।
श्रमजल बिन्दु भरल तनस्यामे । चितति प्रानपति दुखक न नामे ।।
(अ० । ६७।२, ३)

वनाय मे सीता एक मर्यादाशील, सहृदय एवं सलज्ज कुलांगना सिद्ध होती है। ग्राम वधूटियाँ उनसे मिलती है, उनका सम्मान करती है और सीता जी उनके निश्छल वचनों को सुनकर प्रसन्न होती है। अपने प्रिय वचनों से उनको सन्तुष्ट करती हुई सीता उनका हृदय जीत लेती है। उनमें राजकुमारी होने का अभिमान नही है और न यही भावना है कि ये तुच्छ मूर्ख अस्पृश्य ग्रामीण स्त्रियाँ है।[1]

चित्रकूट मे जनक जी तपस्विनी सीता को देख कर परम प्रसन्न होते है, किन्तु सीता विपत्ति में पडी हुई थी, वे माता-पिता को देख कर अपने को आसानी से नही सम्भाल पाती। जनक उन्हें सान्त्वना देते है, माता भी हृदय से लगाकर आशीर्वाद देती है।[2] अन्य पूर्वाचलीय रामायणों की सीता मे यह वैशिष्ट्य नही मिलता।

जयन्त वृत्तान्त में मानस की सीता की भाँति मैथिली की सीता की भी स्थिति है। जयन्त उनके चरणों में चंचुप्रहार करता है, व्यथित होकर भी वे राम से कुछ नही कहती, किन्तु राम उन पर इतना अधिक स्नेह करते थे कि वे सीता के अपकारक काक पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करते है और एक नेत्र करके ही मानते है।[3]

अनुसूया जी के समीप जाने पर सीता उनकी चरणवन्दना करती है इससे उनकी शिष्टता एव नम्रता सिद्ध होती है। उनकी सुशीलता से प्रसन्न होकर अनुसूया जी दिव्य वस्त्राभूषण प्रदान करती है और पातिव्रत धर्म का उपदेश भी देती है, सीता उन्हे सादर स्वीकार करती है। वे वाल्मीकि की सीता की भाँति वाचाल नही है, न अपनी वैदुषी तथा चतुरता ही व्यक्त करती है। खरदूषण युद्ध के पश्चात् सीता जी राम को प्रणाम करती है और प्रेम भरी दृष्टि से देखने लगती है।[4] बंगला की सीता इस प्रसग मे करुणापूर्ण है, क्योकि वे राम के क्षतगात्रो को देख कर आँसू बहाने लगती है, उन्हे कैकेयी के कुकृत्य का स्मरण आ जाता है कि यदि उसने वनवास न दिलाया होता, आज राम की यह दुर्गति न होती।[5]

---

१. मैथिली रा० । अयो० ।११७।१८ २. वही, अयो० । २८६, २८७
३. वही । अरण्य० ।१, २ ४. मै० रा० । अरण्य०।२, ३
५. अस्त्रक्षत देखिया रामेर कलेवरे । जानकीर नेत्रनीर झरझर झरे ।
ताहारे कहेन राम रण विवरण । शुन सीता कैकेयी के करिल स्मरण ।।
(कृत्ति० । अर०। पृ० ३२५)

मैथिली की सीता भी राम के आदेशानुसार अपनी छाया शेष रखकर अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं, इस प्रकार आगे चलकर इसी माया सीता का ही अपहरण हुआ है :

जखन राम वच सुनइत भैली ।
प्रभु पद धय अनल समेली ।। (मै० रा० । अर० । २४।३)

बंगला, उड़िया अथवा असमिया की प्रमुख रामायणों में इस माया सीता का उल्लेख नही मिलता । वाल्मीकि में भी यह वृत्तान्त अवर्णित है, किन्तु अध्यात्म मे इसका उल्लेख है । मैथिली सीता भी कपटमृग के प्रसंग में लक्ष्मण को कटु वचन कहती है, किन्तु पूर्वाचलीय रामायणो में विशेषत: असमिया में वे अपेक्षाकृत अधिक उग्र हो गयी है । वे लक्ष्मण को चांडाल एवं चाटुकार तक कह डालती है । (३,१०७, १०) मैथिली सीता ऐसा नही कहती, वे संयत स्वल्पक्रुद्ध हैं । वे रावण को भी अधिक दुर्वचन नही कहती, यतिरूपधारी रावण के कटु एवं दूषित वचनो पर उन्हे आश्चर्य होता है :

कह सीता सुनु जति बाबा जी ।
वचन अहाँ दुष्टक सन बाजी ।। (मै० रा० । अर० ।३८।१२)

हाँ उस समय वे रावण को खल आदि अपशब्द कहती है, जब वह उनका बलात् अपहरण करता है । अपहरण के समय पतिव्रता सीता सर्वप्रथम अपने वीरपति राम के दयालु रूप का स्मरण करती है । क्योकि न वे क्रोध करती और न लक्ष्मण उन्हे छोड़कर जाते तथा न यह आपत्ति आती ।[1] असमिया की सीता तो कहाँ लक्ष्मण पर इतनी क्रुद्ध थीं, कहाँ रावण को डाँटती हुई कहती है कि लक्ष्मण के बाणों की चोट से तु जीवित नही बच सकता[2] । इस प्रकार मैथिली सीता लक्ष्मण पर विश्वस्त तो है, किन्तु इनका विशेष ध्यान राम पर ही केन्द्रित रहता है, वे लक्ष्मण की वीरता का आश्रय नही लेना चाहती ।

मैथिली की सीता अशोक वाटिका में अत्यन्त दु.खित रहती है, वे वेदना की अधिकता से प्र.ण त्याग देना चाहती है, क्योकि रावण तथा उसकी दासियो के वचन उन्हें असह्य प्रतीत हो रहे थे ।[3] रावण उन्हें विविध प्रलोभनो द्वारा वशीभूत करना चाहता है, किन्तु दृढ़ पातिव्रत मे आरूढ़ सती को तुच्छ प्रलोभनों से क्या प्रयोजन ? उन्हें प्राणातक भय भी विचलित नही कर पाता । बंगला की सीता तो रावण से भयभीत होती हुई भी उसका डटकर तिरस्कार करती हैं । वे कहती है कि हे दुष्ट,

---

१. मै० रा० । अरण्य० ।२६।१, ४   २. अ० रा०।३,१७८

३. मै० रा०।सुन्द०।१२

यदि तू अमृत भी खा आया है तव भी रामवाणों से तू वच नही सकता। तेरी सोने की लंका तेरे अहंकार के कारण भस्म हो जायेगी।[१]

मैथिली सीता भी हनुमान पर सहसा विश्वास नही कर लेती। वे मुद्रिका पाने पर भी नर-वानर की संगति का वृत्तान्त पूछती हैं, तभी उन्हें रामदूत मानती है और हनुमान को आशीर्वाद देकर अलंकृत करती है।[२] इससे उनकी तार्किक बुद्धि एवं सहज कृतज्ञता की प्रवृत्ति का प्रमाण मिलता है। कृत्तिवास० की सीता भी हनुमान को आशीर्वाद देती हैं।[३] उन्हें भी रामवृत्त सुनने पर ही विश्वास होता है। वे तो राम के रूप धर्मादि का भी विशद चित्रण सुनना चाहती हैं। (कृत्ति०।पृ० ५०८)

जव लंकादाह के पश्चात् हनुमान सीता के कुछ अभिज्ञान माँगते है, तव सीता उन्हें चूड़ामणि प्रदान करती हैं :

दीय चिन्ह माता मोहि तेहन।
रघुनायक मोहि देलनि जेहन॥
चूड़ामणि उतारि हनु देलनि।
हरप समेत पवन सुत लेलनि। मै० रा० पृ०।२७।१,२ :

वे मौखिक रूप में अपने महत्संकट को दूर करने के लिए राम से संदेश देने के लिए हनुमान से निवेदन करती हैं और यह वतलाती है कि मेरे जीवन की कुल अवधि एक ही मास है। इस कथन से सीता की मानसिक वेदना की अधिकता का सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है। मैथिली सीता के समक्ष हनुमान उन्हें पीठ मे वैठाकर ले जाने का प्रस्ताव नही करते, किन्तु वंगला की सीता के समक्ष हनुमान उक्त प्रस्ताव भी करते है, जिसे सीता जी अनेक तर्क देती हुई अन्ततः पर पुरुप स्पर्शजन्य दोप वतलाकर अनुचित सिद्ध कर देती हैं। (कृत्ति०। सुन्दर। पृ० ५१८)

मैथिली की सीता भी अग्निपरीक्षा देती है, लंका से लौटने पर राम उन्हें कुछ दुर्वचन कहते है, किन्तु उनका उद्देश्य सीता को शुद्ध सिद्ध करना ही था, वस्तुतः वे सीता को शुद्ध समझते थे, किन्तु उनकी लौकिक परीक्षा आवश्यक थी :

जे सीता अरपित छल अनले।
अन्तर साखि देखा यदा चहले॥ (मै० रा०।१०७, १४)

लक्ष्मण द्वारा अग्नि प्रकट किए जाने पर विना किसी भय के यह कह कर अग्नि मे प्रविष्ट हो जाती हैं कि यदि मैं मन, वचन तथा कर्म से रघुवीर को छोड़ कर अन्य

---

१. अमृत खाइया यदि हस रे अमर। तथापि रामेर वाणे मरिवि पामर॥
सोनार लंकार तरे तोर अहंकार। श्री रामेर वाणानले हइवे अंगार॥
(कृत्ति०। सुन्दर०। पृ० ४६५)

२. वही, सुन्द०।१३, १७

३. कृत्ति०। सुन्दर। पृ० ५१७

किसी को नही जानती तो मुझे अग्नि चन्दन एवं तूल तुल्य शीतल लगे। इसकी तुलना मे असमिया की सीता राम के दुर्वचनो से क्षुब्ध है और राम के प्रति कटुवचन भी कहती है। (६४८४, ८६) बंगला की सीता भी राम से क्षुब्ध है, वे सात बार राम की और तीन बार अग्नि की परिक्रमा कर चिता में बैठ जाती है और अन्ततः अग्निदेव ही उन्हें सती प्रमाणित करते है। (कृत्ति० रा०। उत्तर०। ४४३)

इस प्रकार मैथिली रामायण में सीता के जीवन का पूर्वार्द्ध ही वर्णित है, उनके उत्तरार्द्ध जीवन की गाथा मैथिली लोकगीतो मे देखने को मिलती है, जिसका विस्तृत वर्णन इस प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में किया जाएगा। यहाँ पर सामान्यतया उसका सक्षिप्त दिग्दर्शन ही प्रस्तुत है :

राम लोकापवाद के कारण सीता को निर्वासित करते हैं, किन्तु उन्हे नही बतलाते। सीता से वह यही कहते है कि तुम्हारे मायके से तुम्हारा निमन्त्रण आया है, तुम वहाँ जाओ। सीता कहती है कि न मेरा सहोदर भाई है और न माता। पिता जनक ऋषि है, मैं वहाँ किसके बल पर जाऊँ :

दुअरे से अएले रघुलाल कि धनि के बोलाओल हे।
धनि अएलो नइहरवा के नेओत कि हमे तुहुँ जाएब हे।
नय मोरा नइहरवा में माए भइया सहोदर हे।
प्रभु जी नए रे जनक रिसि बाप ककरा बल जाउब हे।

(मैथिली लोकगीत पृ० ५३)

यहाँ पर सीता का हृदय कितना दुःखित प्रतीत होता है। साहित्यिक रामायणों में उनकी इस वेदना का चित्रण कहाँ है ? लोक जीवन मे जिस पुत्री से ममतामयी माता की करुणामयी छाया छिन जाती है, पिता का वात्सल्य सागर सदैव के लिए तिरोहित हो जाता है और सहोदर की सौम्यमूर्ति भूतल से उठ जाती है, उसका हृदय नैराश्य नद मे निमग्न हो जाता है, जीवन का एक सुरम्य उद्यान सदैव के लिए सूख जाता है। ऐसी दुःखिनी नारी जब राम ऐसे पति से मायके का असत्य श्रवण सुनती है, तब उनके हृदय में कितनी गहरी चोट लगी होगी ? इसका अनुभव लोककवियो या कवियित्रियों के सरस एव सरल हृदय ने किया है। गर्भिणी सीता, जो कि आसन्न-प्रसवा थी, उन्हें लक्ष्मण वाल्मीकि जी के आश्रम के समीप एक दुर्गम वन में छोड़ कर चले आते है, वहाँ सीता असहाय होकर रुदन करती हुई अंचल से अपने आँसू पोछती है। अपने यूथ से बिछुड़ी हरिणी के समान विलाप करती सीता अपनी सहायता के लिए चिन्तित हो जाती है :

ललना केहि मोरा आगु पाछु होयत केहिरे नार छीलत रे।
ललना के हिलेत सोने के हँसुलिया हृदय जुरायत रे॥ (मै०लो० पृ० ५३)

यहाँ पर दुःखिनी सीता अपनी सन्तति के लिए चिन्तित है, उन्हे पारिवारिक चिन्ता भी व्यथित कर रही है। आज उनके आगे-पीछे कोई नही है। पुत्रो का नाल कौन छीनेगा और ननद के अभाव मे नेग कौन मांगेगा ? लोककवि ने यहाँ सीता को एक सामान्य गृहस्थ नारी की भाँति चित्रित दिखलाया है।

इस प्रकार मैथिली काव्य की सीता अलौकिक शक्ति होती हुई भी लोक जीवन में अधिकांश कष्ट का ही अनुभव करती है। उनका जीवन एक सघर्ष की कहानी है। विवाह तो हुआ, किन्तु न जाने कितने देवों के मनाने के वाद, राजकीय महलो का स्वप्निल सुख तो मिला, किन्तु कुछ ही समय के लिए, उनके भाग्य मे तो कोल-किरातों से सेवित भयंकर वन ही वदा था। वहाँ के कष्टों के बीच भी पतिसेवा करके प्रमुदित रहना, स्वावलम्ब पर जीवनयापन करना और प्रकृति के मनोहर वातावरण मे शान्तिपूर्वक रहना भी तो क्रूर विधि को न देखा गया। मायामृग मारीच के वेष ने भयकर आपत्ति ही तो आई थी ? 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः' यह सत्य ही तो है, अन्यथा क्या राम नही जानते थे कि स्वर्ण मृग नही होता। इसी विपरीत बुद्धि ही ने तो लक्ष्मण जैसे सच्चरित्र एवं आदर्श सेवक को कटु वचन कहलाया, जिससे अकेली सीता को छोड़ कर लक्ष्मण को राम के पास जाने के लिए विवश हो जाना पड़ा। दुर्भाग्य का यह चक्कर तो देखिये, यति (रावण) को भिक्षा देना भी अभिशाप वन गया। रावण इसी रूप मे उन्हे अपहृत कर ले गया। बेचारी सीता अशोकवाटिका मे रहकर एक-एक क्षण युगवत व्यतीत करने लगी। रावण का आतक, दासियो के कटुवचन एव प्रिय का विरह, इन सबने उन्हे आत्महत्या तक की प्रेरणा दे दी, किन्तु हनुमान का पहुँचना ही वरदान वन गया। अनेक कष्टो को झेलने के पश्चात् कही रावण का वध हुआ, किन्तु सीता का दुर्भाग्य कब पीछा छोडता था ? उसने उनकी अग्निपरीक्षा दिलाई, तव कही पति राम से मिलने दिया। सीता का सुख और राज वैभव उस दुर्भाग्य से कब देखा गया। जब सीता गर्भवती थी, तभी लोकापवाद के अभिशाप से उन्हे वन मे निर्वासित करा दिया। बेचारी ने कुश तथा लव जैसे पुत्रो को जन्म देकर भी शान्ति नही पाई और अन्ततः उसे पाताल मे ही शरण लेनी पड़ी।

मैथिली काव्य की उक्त सीता का मूल स्रोत तो तुलसीकृत रामचरित मानस मे ही विद्यमान है, किन्तु उनके उत्तरार्द्ध जीवन की गाथा का मूलस्रोत लोकगीत ही हैं। मानस मे सीता के जीवन के उक्त अश का वर्णन नही किया गया। मै० रा० मे भी कवि ने इस अश की उपेक्षा की है। इस उपेक्षा का कारण कवि की भक्तिभावना ही है। अन्य प्राच्य रामायणो मे इस अश का विशेष चित्रण किया गया है। मेरे विचार से असमिया के उत्तरकाण्ड के प्रणेता शंकरदेव ने सीता के जीवन की उक्त गाथा का वर्णन करने में सर्वाधिक सफलता पाई है।

(ख) बंगला साहित्य में श्री सीता का स्वरूप और मैथिली काव्य की सीता से तुलना

बंगला साहित्य में सीता के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाली प्राचीनतम रचना 'कृत्तिवास-रामायण' है। इसका रचनाकाल १४६७ ई० और १४७२ ई० के मध्य माना जाता है।[1] इस ग्रन्थ का मूल प्रेरणास्रोत तो वाल्मीकि रामायण ही माना जाता है, किन्तु उसमें शैव सम्प्रदाय, शाक्त सम्प्रदाय एवं वैष्णव रामभक्ति सम्प्रदाय का भी प्रभाव प्रतीत होता है। वगीय राम साहित्य के मूर्धन्य एवं मूलग्रन्थ के आधार पर ही इस अंश मे सीता का स्वरूप निर्धारित किया जायगा, क्योकि परवर्ती वगाली राम साहित्य इस ग्रन्थ का न्यूनाधिक ऋणी तो है ही। इसका कारण यह है कि आनन्द रामायण में सीता जो एक देवी के रूप मे चित्रित की गई है, जिन्होने सहस्र स्कन्ध रावण का वध किया था। सीता की उक्त दैवी कल्पना बगाल के मातृ उपासकों के सर्वथा अनुकूल रही। परिणामस्वरूप नित्यानन्द कृत आश्चर्य रामायण, श्री रामेश्वर कृत अद्भुत रामायण, चन्द्रावती कृत रामायण गाथा प्रभृति ग्रन्थो में सीता के उक्त चण्डी रूप का ही अधिक प्रतिपादन किया गया है। इसी श्रेणी में १८ वी शताब्दी की अनेक रचनाये आती है, इनमे रामानन्द कृत 'रामलीला' का विशेष महत्व है। १८ वी शताब्दी के अनेक ग्रन्थ इसी परम्परा का पालन करते है। इनमे जगतराम कृत 'अद्भुत रामायण', कमललोचन कृत 'राम भक्ति-रसामृत' तथा दुर्गाचरण कृत' अध्यात्म रामायण' मुख्य है। अट्ठारहवी शताब्दी की 'विष्णुपुरी रामायण' अपने समय की श्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

उन्नीसवी शताब्दी के ग्रन्थों में रघुनन्दन गोस्वामी विरचित 'राम रसायन' रचना विशेष महत्व रखती है, इसमे रसिक भावना का पुट विद्यमान है। बीसवी शताब्दी मे वाल्मीकि रामायण के अनेक अनुवाद दिये गये है। इस सामान्य परिचय से यह प्रतीत होता है कि बंगला-साहित्य की सीता प्रथम तो वाल्मीकि के आधार पर मानवी है, किन्तु शक्ति प्रभाव के कारण मध्य युग मे राम से भी अधिक शक्तिशालिनी देवी वन गई और उन्नीसवी शताब्दी में उनके देवी रूप मे लालित्य का भी प्रवेश हो गया। इतना परिवर्तन होने पर भी बंगाली रामसाहित्य के सिर पर वाल्मीकि का ऋण विद्यमान है और कृत्तिवास रामायण बंगला साहित्य की रामभक्ति-शाखा का सर्वोत्तम ग्रन्थ मान्य है।

---

१. अनुवादक का वक्तव्य (भूमिका पृ० १४, १५) कृत्तिवास-रामायण (अनु० नन्द कुमार अवस्थी) १९६९।

इस प्रकार उक्त रामायण को प्रमुख रूप से विचार पथ में रखते हुए हम बंगला साहित्य की सीता के आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व का विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।[1]

कृत्तिवास की सीता ग्रन्थकार के मत में माता लक्ष्मी का अवतार हैं। कवि ने वेदवती को ही सीता के रूप में अवतरित माना है। ऋषि जनक पुत्र कामना से यज्ञ करने के लिए यज्ञार्थ भूमि जोत रहे थे कि इतने में ही आकाश से उर्वशी नामक अप्सरा गमन कर रही थीं। उन्हें देख कर जनक मोहित हो जाते हैं और उनका वीर्य स्खलित होकर ऋतुमती पृथ्वी पर पड़ता है[2] जिससे डिम्ब के रूप में एक सत्व की सृष्टि हो जाती है। बहुत समय पश्चात् लांगल से टकरा कर वह डिम्ब फूट जाता है और उससे लक्ष्मी के समान रत्नरूपा कन्या प्रकट हो जाती है।[3] इतने में आकाशवाणी होती है कि यह कन्या, जो कि भूमि से उत्पन्न हुई है वह तुम्हारी कन्या है, तुम इसका पालन करो। यह सुन कर राजा जनक उसे अंक में लेकर घर आये। प्रथम तो उनकी रानी विरोध करती हैं, किन्तु क्षेत्रजा बतलाने पर वह उसे स्वीकार कर लेती है। वह कन्या परम सुन्दरी थी और सीता (खेत जोतने के पश्चात् बनी हुई लांगल रेखा) से उत्पन्न होने के कारण सीता नाम से प्रसिद्ध होती है। इसके रूप को देख कर नारायण भी मुग्ध थे :

परमा सुन्दरी कन्या येन हेमलता।
सिराले हइल जन्म नाम राखे सीता॥
लक्ष्मी रूपेर किवाकहिन तुलन।
यार रूपे भुलिबे आपनि नरायण॥ (कृत्ति०। आदि०। पृ० १३९)

---

१. कृत्तिवास के मूलपाठ को देवनागरीलिपि में सुरक्षित रखते हुए श्री नन्दकुमार अवस्थी (लखनऊ) ने आदिकाण्ड से सुन्दरकाण्ड पर्यन्त इस ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर भुवन वाणी, रानीकटरा, लखनऊ ३ से प्रकाशित कराया है। इस सन्दर्भ में १९६९ ई० के उक्त ग्रन्थ के प्रथम संस्करण से ही उद्धरण दिये जायेंगे।

२. श्री हरिर जन्मकथा थाकुक एखन। आगेते कहिब माता लक्ष्मीर जनम॥
येखनाते वेदवती छाड़िल जीवन। सेखाने हइल दिव्य मिथिला भुवन॥
तार राजा हइल जनक नामे ऋषि। पुत्रेर कारणे राजा यज्ञभूमि चषि॥
स्वहस्ते लांगले राजा यज्ञभूमि चषे। उर्वशी चलिया जाय उपर आकाशे॥
ताहेके देखिया कामे जनक मोहित। हठात् ऋषिर वीर्य्य हइल स्खलित।
(कृत्ति०। आदि०। पृ० १३८)

३. डिम्ब माँगे जनक करिल दुइ खान। कन्या रत्न देखि ताहे लक्ष्मीर समान॥
(कृत्ति०। आदि०। १३८)

सीता का भूमि से उत्पन्न होने का वृत्तान्त वाल्मीकि रामायण (उत्तर १७ सर्ग) विष्णु पुराण, पद्मपुराण, रामायण मजरी (३४४, ३४६) माधव कदलीकृत असमीया रामायण (३, १ बाल०) एव बलरामदास कृत उड़िया रामायण मे भी कुछ हेर-फेर के साथ पाया जाता है। उदाहरणार्थ उड़िया रामायण (अरण्य०) मे उर्वशी के स्थान पर मेनका का उल्लेख पाया जाता है। जनक हलकर्पण के समय आकाश मार्ग से जाती हुई मेनका को देख कर तत्तुल्य रूपवती कन्या की कामना करते है और मेनका उन्हे अपने से भी अधिक रूपवती कन्या की प्राप्ति का आश्वासन देती है। इसी प्रकार माधवदेव कृत असमिया रामायण मे लक्ष्मी को विष्णु का आदेश होता है कि तुम जनक के यहाँ जन्म लो।[1] इसके पश्चात् सर्वत्र शिखरस्था लक्ष्मी रावण से आतकित होकर समुद्र मे कूद पड़ी, पश्चात् समुद्र के सौजन्य से सौ योजनायत द्वीप निकला और पृथ्वी ने लक्ष्मी को अपने गर्भ मे धारण किया। कृषको ने हलकर्षण से पुत्री के रूप में लक्ष्मी को प्राप्त कर जनक को अर्पित कर दिया।[2]

कृत्तिवास की सीता धनुर्भग के पूर्व राम के दर्शन कर आसक्त हो जाती है और अनेक देवों तथा देवियो से राम को वररूप मे प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करती है :

> कृतांजलि सुचिन्तता, प्रार्थना करेन सीता, शुनह सकल देवगण।
> यदि रामगुर्णानिधि, स्वामी करिदेह विधि, तबे हय कामना पूरण ॥
>
> (कृत्ति० । आदि० । पृ० १८६)

सीता की कामना को समझकर देवगण आकाशवाणी द्वारा सीता को इस बात का वर प्रदान करते है कि कौसल्यानन्दन राम के लिए धनुप पुष्पवत कोमल हो जायगा और राम उसे भंग कर देंगे, देववाणी कभी मिथ्या नही हो सकती। (वही पृ० १८६) उक्त वृत्तान्त से सीता अनुरागवती, आस्तिक एवं राम के प्रति अनन्यमनस्का सिद्ध होती हैं। उड़िया की सीता (उड़ि० रा० । १ । १५१) तो इस प्रसंग मे केवल ब्रह्मा से ही प्रार्थना करती है कि तुम मुझे निराश न करना, मेरे यौवनारूढ़ तन ने अतीव दु:ख भोगा है।

बगला की सीता अपने प्रियतम राम के प्रति अत्यन्त पूज्य भावना रखती है। जब विवाह के पश्चात् सखियाँ षष्ठी पूजन के लिए वर-वधू को एक अँधेरे घर में इकट्ठा कर देती है और यह चाहती है कि राम का हाथ सीता के पैरों में पड़ जाये, तो हम को परिहास करने का अवसर मिल जाय, उस समय सीता जी

---

१. अ० रा० अध्याय २२ माधवदेव ।

२. वही, अध्याय २६

हाथ की चूड़ियाँ बजा कर संकेत कर देती हैं, जिससे राम उनका कर पकड़ लेते हैं।[1]

राम द्वारा वनवास के वृत्तान्त को सुनकर कुछ नही कहती। वाल्मीकि की सीता की भांति वे प्रश्नो की झड़ी लगाकर अपनी अन्तर्व्यथा भी व्यक्त नही करती, किन्तु जब राम वन के लिए प्रस्थान करते है और सीता को घर में रह कर मातृ-सेवा करने का आदेश देते है, तब सीता निराश हो जाती है कि स्वामी के बिना मेरा गृह मे निवास कैसे सम्भव होगा।

जानकी बलेन सुखे हइया निराश। स्वामी विना आमार किसेर गृहवास॥

(पृ० २४०)

इस प्रसंग में सीता जी पतिव्रता नारी के लिए पति के अतिरिक्त कोई द्वितीय गति नही है, इस युक्तिसंगत तर्क को देकर राम की सेवा करने एवं उनके क्लेश घटाने के उद्देश्य से चलने के लिए प्रार्थना करती है। उन्हें राम के साथ वन के क्लेश भी सह्य है, क्योंकि पति सेवा मिलने से उन्हे दुःख भी सुखवत प्रतीत होगे।[2] इस आधार पर बंगला की सीता आदर्श पतिव्रता, पतिसेविका, विनम्र एवं कष्टसहिष्णु प्रतीत होती हैं। आगे चलकर जब राम वन के विविध कष्टो का वर्णन कर उन्हे साथ ले जाने को प्रस्तुत नही होते है तब कोप के कारण उनके अधर कंपित हो जाते है और वे राम के प्रति कठोर वचनों का प्रयोग करती हुई कहती है :

आप पंडित होकर निर्बोध (अज्ञानी) की भांति बोलते है। मेरे पिता ने क्यों ऐसे व्यक्ति को मुझे दिया, जो अपनी स्त्री की रक्षा करने मे भी भय मानता है। ऐसे व्यक्ति को कौन वीर कहेगा :

पण्डित हइया बूल निर्व्वोधरे प्राय।
केन हेन जने पिता दिलेन आमाय॥
निजनारी राखिते जे करे भय मने।
देख तारे वीर बले कौन वीर जने॥ (कृत्ति०। अयो०। पृ० २४१)

---

१. बरेरे आनिते आज्ञा करे सखीगण। आसिया करुन राम षष्ठीर पूजन॥
हाते धरि आनाइल रामेरे लखन। सीतार हात धरि तोल बेल सखीगण॥
लखन भावेन मने सीता ठकुरानी। पाये हाल देन पाछे राम गुण मणि॥
करि लेन सीता वाम हस्ते शंखनि। हाते धरि सीतारे तोलेन रघुमणि॥
(कृत्ति० आदि० पृ० २०१, २०२)

२. स्वामी विना स्त्री लोकेर नाहि आर गति।
स्वामीर जीवने जीये मरणे संहति॥
तोमार सेवाय दुःख सुख सब मानि॥······(कृत्ति०। अयो०। पृ० २४०)

अन्ततः सीता जी अपने साथ ले चलने के लिए निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करती हैं :

(क) जिस भरत ने ज्येष्ठ वन्धु का राज्य ले लिया, वहाँ आपकी पत्नी कैसे सुरक्षित रहेगी।[1]

(ख) मुझे आपके साथ वन मे कुश-कटक तृण के समान सुखद, पथ की धूल अगर और चन्दन के समान और आपके साथ तरुतल-निवास स्वर्ग से भी अधिक आनन्दप्रद प्रतीत होगा।[2]

(ग) आपके श्यामरूप के दर्शन से भ्रमणजन्य क्षुधा-पिपासा भी शान्त होगी।[3]

(घ) अनेक तीर्थों एवं तपोवनों का दर्शन आपके साथ प्राप्त होगा, अनेक पर्वतशिखरों मे आरोहण करने का अवसर मिलेगा।[4]

(ङ) मेरे पिता से भविष्यवक्ताओं ने बतलाया था कि यह कन्या पतिसहचरी होकर वनगमन करेगी।[5]

(च) यदि आप मुझे त्यागेंगे, तो मैं प्राण त्याग दूँगी, इससे आपको स्त्रीहत्या का अक्षम्य पाप लगेगा।[6]

उपर्युक्त वृत्तान्त वाल्मीकि० (सर्ग २७, २९ अयो०) से प्रेरित है, किन्तु अन्तर यह है कि बंगला की सीता तो अपशब्द नही कहती, उनका क्रोध सयत है। दूसरी बात यह है कि वे भरत पर आशका व्यक्त करती है, वाल्मीकि की सीता ऐसा नहीं करती। तृतीय अन्तर यह है कि वनगमन में ज्योतिषियो की भविष्यवाणी के अतिरिक्त एक भिक्षुणी की भविष्यवाणी का भी तर्क दिया गया है,[7] जब कि कृत्ति० मे भिक्षुणी का तर्क नही दिया गया। चतुर्थ अन्तर यह है कि वाल्मीकि की सीता प्राणत्याग की धमकी तो

---

१. जे जने ग्रहण करे राजत्व तोमार। लइबे तोमार नारी विलब कि तार॥

२. तथा ३. कृत्ति०। अयो०। पृ० २४१

४. बहुतीर्थ देखिब अनेक तपोवन। नाना विधि पर्वते करिब आरोहण॥

५. लखन पितर घरे छिलाम शैशवे। बलितेन आमाके देखिबा मुनि सबे॥
शुन हे जनकराज, तोमार दुहिता। करिबेन वनवास पतिर सहिता॥
(पृ० २४१, ४२)

६. तुम छाड़ि गेले आमि त्याजिब जीवन। स्त्रीवध हइले नाहि पापविमोचन॥
(वही, पृ० २४२)

७. कन्या च पितुर्गेहे वनवासः श्रुतो मया।
भिक्षुण्याः शमवृत्ताया मम मातुरिहाग्रतः॥ (वा० रा०। अयो०। २९।१३)

देती है,[1] किन्तु यह नही कहती कि आपको स्त्रीहत्या का अक्षम्य पाप लगेगा, जब कि कृत्ति की सीता ऐसा भी कहती है।

वाल्मीकि की भाँति कृत्तिवास रामायण मे भी जयन्त काक रूप धारण कर सीता जी के स्तनो मे चचुप्रहार करता है[2] और भयभीत होकर कैलाश होता हुआ इन्द्रलोक तक जाता है। राम काक को दण्ड देने के लिए रामबाण का सन्धान करते है, क्योकि सीता जी ने जयन्त के प्रहार से अपनी विषम वेदना का समाचार बतला दिया था।[3]

बंगला० की सीता फल्गु नदी के तट पर महाराज दशरथ को पिण्डदान करती है राम लक्ष्मण तो मुद्रिका को वेचने के लिए चले जाते है और अकेली सीता फल्गु नदी मे खेल करने लगती है। इतने मे दशरथ जी सीता से अपनी क्षुधा का निवेदन करते हुए बालू से निर्मित पिण्ड को ही दान मे माँगते है। सीता ब्राह्मण, तुलसी, फल्गु नदी एव वटवृक्ष को साक्षी देने के लिए कहती है :

भाल माल वलि कहे सीता चन्द्रमुखी।
आद्येर तुलसी तुम हये थाक साक्षी॥
जिज्ञासा करेन राम फिरि आसि यदि।
कहिवेन वटवृक्ष आर फलगु नदी॥ (कृत्ति०। अयो०। पृ० २९२)

सीता द्वारा पिण्ड प्राप्त कर दशरथ विदा होते है[4] और रामलक्ष्मण के लौटने पर सीता सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाती हैं। राम इस अद्भुत घटना की साक्ष्य चाहते है[5] किन्तु ब्राह्मण, तुलसी एवं फल्गु नदी ये तीन साक्षी तो व्यक्तिगत कारणो से साक्ष्य नही

---

१. वा० रा०। अयो०। २९।२१

२. जयन्त नामेते काक छिल से आकाशे।
देखिया सीतार रूप आसे सीता पाशे॥
सहसा सीतार गाये पडिल उडिया।
सुतीक्ष्ण नखरे वक्षः दिल आचड़िया॥ (कृत्ति० अयो०। पृ० २५९)

३. हेन काले श्री रामे बलेन देवी सीता।
आँचड़िया गेल काक ह येछि व्यथिता॥ (वही, पृ० २५९)

४. इहा शुनि दशरथ हर्षे उठि रये। लइया वालिर पिण्ड गेला स्वर्गपथे॥
(कृत्ति० अयो० पृ० २९२)

५. राम कहिलेन किसे प्रत्य हय कथा। साक्षी करि राखि, याछि कन देवी सीता॥
(वही, पृ० २९३)

देते, असत्य बोलते है, फलत: सीता इन तीनो को शाप दे देती है, अन्त मे वटवृक्ष साक्ष्य देता है,[1] सीता उसे विभिन्न आशीर्वाद देकर अनुगृहीत करती है।[2]

उक्त प्रसग के अनुसार सीता विदुषी, श्राद्धकर्मनिपुण एव चतुर गृहिणी प्रतीत होती है। उनमे सतीत्व का तेज है। वे असत्यभाषियो को (ब्राह्मण, तुलसी, फल्गुनदी) क्षमा नही कर सकती। इसी प्रकार उन्हे सत्य के प्रति विशेष रुचि है, अत: वे सत्य-वादी वटवृक्ष को वरदान भी देती है। शाप और अनुग्रह की इतनी अधिक शक्ति वाल्मीकि रामायण मे नही पाई जाती। मानस मे भी उक्त प्रसग का अभाव है।

दुर्गावर कृत गीति रामायण (असमिया) आनन्द रामायण, शिवपुराण (ज्ञान सहिता अध्याय ३०) प्रभृति ग्रन्थो मे भी सीता जी के पिण्डदान का वृत्तान्त सामान्य परिवर्तनो के साथ प्राप्त होता है। प्राचीन पुराणो मे राम ही दशरथ के लिए पिण्ड-दान देते है।[3] कृत्तिवास की सीता शिष्ट एव विनीत है, वे अत्रिमुनि के आश्रम मे अनुसूया जी के चरण स्पर्श करती है और दूर्वादल श्याम श्री राम को ही अपनी निधि बतलाती है। उनकी दृष्टि मे बिना पति के स्त्री के सभी सुखभोग मिथ्या है, पुन: राम जैसे पति को पाकर वे इतना त्याग क्यो न करे।

सीता कहलेन मा सम्पदे किवा काम।
सकल सम्पद मम दूर्व्वादल श्याम॥
स्वामी बिना स्त्री लोकेरकार्यँ किवाधने।
अन्य धने कि करिबे पितर बिहने॥ (कृत्ति०। अरण्य०। पृ० ३०२)

उक्त प्रसग से यह सिद्ध होता है कि सीता राम के प्रति अनन्यभाव से अनुरक्त पति-व्रता नारी थी, उनके चित्त में सांसारिक सम्पत्ति के लोभ ने स्थान नही बनाया, वे तो राम के ही रूप पर लुब्ध थी। उनका त्याग स्वाभाविक था। विश्व की सम्पत्ति पतिव्रता के चरणों की धूल होती है। यही कारण है कि वे अनुसूया जी से वरदान-स्वरूप राम के प्रति प्रेम को ही माँगती है, न कि कोई अन्य वस्तु।[4] अनुसूया जी उनकी इस प्रवृत्ति से प्रसन्न होकर उन्हे दिव्य अलंकार और बहुमूल्य सम्पत्ति प्रदान

१. बालिपिण्ड ल, ये छिला सीता डान हाथे। आपनि लइला ताहा राजा दशरथे॥
खाइया सीतार पिण्ड प्रफुल्ल अन्तरे। देखिते देखिते राजा गेला स्वर्गपुरे॥
(कृत्ति अयो०। पृष्ठ २९५)

२. कृति। अयो०। पृष्ठ २९६

३. ब्रह्मपुराण (१२३ अ०), स्कन्धपुराण (११ अ०) (तथा गरुड़पुराण) १४३ अध्याय)

४. धन जन सम्पद नाहिं चाय भगवती।
आशीर्वाद कर येन रामे थाके मति॥ (कृत्ति०। अरण्य०। पृ० ३०२)

करती हैं। वाल्मीकि की सीता की भाँति इस ग्रन्थ की सीता भी अनुसूया से अपनी उत्पत्ति की कथा बतलाती है[1]। वाल्मीकि के अनुसार उर्वशी का सीता के जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता, किन्तु इस ग्रन्थ में नभपक्ष से जाती हुई उर्वशी को देखकर जनक का रेत पृथ्वी पर गिरने का उल्लेख है, जिससे डिम्ब उत्पन्न हुआ और जनक के हलकर्षण से वह डिम्ब फूटा, जिससे सीता प्रकट हुईं। अनुसूया जी सीता के जन्मवृत्त को सुनकर उनके भाल में सिन्दूर लगाती हैं और उन्हें अनेक आभूषण प्रदान करती हैं :

ब्राह्मणी सीतार भाले दिलेन सिन्दूर।
कण्ठे मणिमय हार बाहूते केयूर॥
कर्णेते कुन्डल करे कंचन कंकण।
नूपुर शोभित हय चरणकमल। (कृत्ति० । अरण्य० । पृ० ३०४)

इस प्रसंग से सीता की पवित्रता एवं महत्ता सिद्ध होती है, अन्यथा सामान्य स्त्री सती अनुसूया द्वारा इतनी प्रतिष्ठा एवं पुरस्कार कैसे प्राप्त कर सकती थी ?

मारीचवध प्रसंग में सीता कुतूहलप्रिय प्रतीत होती हैं। वे मृगचर्म हेतु राम को आज्ञा नहीं देती, अपितु विनम्रता पूर्ण निवेदन करती है[2]। कवि ने स्पष्ट रूप से यहाँ सीता को मृगचर्म के प्रति मुग्ध दिखलाया है।[3] जब मारीच मरते समय हा लक्ष्मण की ध्वनि करता है, उस समय सीता घबड़ाकर लक्ष्मण को राम की सहायता हेतु जाने के लिए प्रेरित करती हैं। जब लक्ष्मण उन्हें राम का पराक्रम एवं अपने उत्तरदायित्व को बतलाकर प्रबोध देना चाहते हैं, तब सीता क्रुद्ध होकर उन्हें कटु सुनाती हैं :

प्रबोध न माने सीता हये उतरौली। शिरे घा हानेन सीता देन गालागाली॥
वैमात्रेय भाइ कभू नहेत आपन। आमा प्रति लक्ष्मण तोमार बुझि मन॥
भरत लइल राज्य तुमि लउ नारी। भरतेर संगे खड़ आछये तोमारि॥
मनेर वासना कि साधिने एइ वेला। आमार आशा ते कि रामेरेकर हेला॥
अपर पुरुषे यदि जाय मम मन। गलाय काटारि दिया त्यजिव जीवन॥
(कृत्ति० । अर० । पृष्ठ ३३६)

उक्त वचनों में सीता लक्ष्मण के चरित्र के प्रति शंकालु प्रतीत होती हैं, उन्हें भरत द्वारा राम का राज्य ले लेने का भी दुःख है। वे अपने पातिव्रत के कारण ही ऐसा

---

१. वही अरण्य० पृष्ठ ३०२

२. श्री राम बलेन सीता मधुर वचन। अनुमति हय यदि करि निवेदन॥
एइ मृगचर्म्म यदि दाउ मालवासि। कुटीर कौतुके रामविछाइया वसि॥
(वही, पृ० ३२३)

३. जानकी चाहेन एइ हरिणेर चर्म्म॥ (वही, पृ० ३३४)

कहती है। राम के बिना आत्महत्या करने की बात मे भी यही मूल है। उड़िया की सीता भी इसी प्रकार क्रुद्ध होती है और लक्ष्मण तथा भरत की दुरभिसन्धि की शंका करती है। इस प्रसंग में असमिया की सीता अधिक रुष्ट एव परुष प्रतीत होती है कि लक्ष्मण को व्याघ्रशरीर एवं हरिणमुख तक कह डालती है। लक्ष्मण के लिए ये चाण्डाल जैसे अभद्र शब्द का भी प्रयोग करती है, उन्हे लक्ष्मण को राम का चाटुकार कहने मे भी सकोच नही होता।[1]

वाल्मीकि की भाँति कृत्तिवास की भी सीता रावण को यतिवेष में देखकर उसका अतिथि-सत्कार करती है और राम को अतिथिप्रेमी बतलाकर उन्हे दर्शन देने के लिए रावण से प्रार्थना करती है :

रह द्विज फल आनि दिवेन लक्ष्मण। सेइ फल दिव तुमि करिउ भक्षण ॥
अतिथिरे भक्ति राम करेन यतने। बड़ प्रीति पाइवेन तोमा दरशने ॥ (पृ० ३३७)

सीता जी लक्ष्मणरेखा का उल्लघन आसानी से नहीं करती। जब रावण कहता है कि या तो बाहर आकर भिक्षा दो, अथवा उत्तर दो, मै घर चला जाऊँ, तब सीता जी धर्मभीरु होने के कारण रेखा के बाहर आने के लिए विवश हो जाती है।[2] वे जैसे ही उस रेखा के बाहर आती है रावण उनका हाथ पकड लेता है। सीता रावण के दुर्व्यवहार से कुपित होकर रावण को फटकारती हुई कहती है : हे पापिष्ठ ! दुराचारी ! दुर्जन ! दूर रह। मेरे कारण तुम्हारा सपरिवार सहार होगा।[3] जब रावण अपने ऐश्वर्य एव अनुनयादि द्वारा सीता को अनुकूल करने का प्रयास करता है, तब सीता अधिक परुषता के साथ उसे दुर्वचन कहती हैं : रे अधम ! अधार्मिक, नगण्य, दुराचारी ! राम तुम्हारा सपरिवार विनाश करेंगे। राम सिंह है तू शृगाल है। तेरा इतना साहस ? तू दुर्वचन बोलता है ? कहाँ तो विष्णु रूप राम और कहाँ तू निशाचर, कितना अन्तर है। यदि राम लक्ष्मण होते, तो तुम ऐसा दुष्टाचरण न करते।[4] उपवन

---

१. असमिया रामायण (माधवकदली) ३१०७, ३११२ छन्द

२. जानकी बलेन व्यर्थ अतिथि जाइवे।
धर्म कर्म नष्ट हवे प्रभु कि बलिबे ॥ (कृत्ति० । अर० । पृ० ३३८)

३. दूर हरे दुराचार पापिष्ट दुर्जन। आमा लागि हवे तोर सबके मरण ॥
(कृत्ति। अर०। पृ० ३३८)

४. अधार्मिक नगण्य अधम दुराचार। करिबेन राम तोरे सवशे सहार।
श्रीराम केशरी, तुइ शृगाल येमन। कि साहस ताहारे बलिस कुवचन ॥
विष्णु अवतार राम तुइ निशाचर। रामे आर तोरे देखि अनेक अन्तर ॥
यदि राम थकितेन अथवा लक्ष्मण। करितिस केमने ए दुष्ट आचरण ॥
(वही पृ० ३३९)

में आज मुझे असहाय पाकर मेरा अपहरण करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती। आलोचना करने पर यह प्रतीत होता है कि यहाँ सीता धर्मभीरु क्रुद्ध असहाय परुष-भाषिणी एवं आदर्शपतिव्रता दिव्य नारी प्रतीत होती हैं, जिनकी दृष्टि में सदाचार का विशेष महत्व है। वे दुराचार को सपरिवार नाश होने का कारण मानती हैं।

कृत्तिवास की सीता जहाँ रावण के प्रति उग्र हैं, वहाँ लक्ष्मण के प्रति उदार हैं वे रावण द्वारा अपहृत होने पर लक्ष्मण का भी स्मरण करती हैं :

> त्रासेते कान्देन सीता हइया कातर।
> कोथा गेले प्रभुराम गुणेर सागर॥
> सिंहेर विक्रम सम देवर लक्ष्मण।
> शून्य घर पेये मेरे हरिल रावण॥ (कृत्ति०। अर०। पृ० ३४०)

इस प्रसंग में वे भाग्यवादिनी प्रतीत होती हैं। वे अपने इस अपहरण का कारण दुर्भाग्य ही मानती हैं, अन्यथा ऐसा कुयोग ही क्यों उपस्थित होता।[1] कवि की दृष्टि में सीता त्रिलोक की माता एवं लक्ष्मी का अवतार हैं,[2] किन्तु फिर भी उसने उनके मानवी रूप को ही प्रधानता दी है। जब रावण सीता को लेकर लंका मे पहुँचता है और अपना वैभव दिखला उनसे अनुनय करता है, तब भी पतिव्रता सीता अपने व्रत पर दृढ़ रहती हुई कहती हैं। मैं राम का ध्यान करती हूँ, राम ही मेरे प्राणों के देवता है, सीता राम के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति को नहीं जानती।[3]

कृत्ति० में सीता जी के समीप देवराज इन्द्र स्वयं पहुँचते हैं और उनकी प्राण-रक्षा के लिए प्रकट होकर परमान्न खिलाते हैं, सीता जी राम को नैवेद्य अर्पित कर उस परमान्न का भक्षण कर लेती है, जिससे क्षुधा पिपासा नहीं लगती थी।[4] इस प्रसंग में सीता बुद्धिमती एवं पतिपरायणा प्रतीत होती हैं। वे सहसा इन्द्र पर विश्वास नहीं कर लेती। जब इन्द्र प्रत्यक्ष रूप मे सहस्राक्ष बन कर दर्शन देते हैं, तभी वे उन्हें इन्द्र रूप मे मान्यता देती हैं। सीता सती थी, वे अपने पति को समर्पित किये बिना उस परमान्न को कैसे खा लेती? परमान्न अर्पित करने के अतिरिक्त इन्द्र उन्हें यह भी आश्वासन देता है कि मैं प्रतिदिन आपके लिए सुधाफल की व्यवस्था करूँगा।

---

१. दैवेर निर्व्वन्ध कभु ना हय खन्डन।
   न तुवा एमन केन हवे संगठन॥ (वही, पृ० ३४०)
२. आपनि त्रिलोक माता लक्ष्मी अवतार।
   ताहां रे राक्षसे हरे ए कि चमत्कार॥ (कृत्ति०। अर। पृ० ३४०)
३. राम ध्यान राम प्राण राम मे देवता।
   राम बिना अन्यजने नाहिं जाने सीता॥ (कृत्ति०। अर०।पृ० ३४७)
४. वही, पृ० ३४८, ३४९॥

महेन्द्र बलेन, सीता, न हउ विकल।
प्रतिदिन जोगाइन आमि सुधाफल ।। (कृत्ति० । अर । पृ० ३४६)

प्रस्तुत वृत्तान्त का मूल वाल्मीकि रामायण (अरण्य) के ५६वें सर्ग के पश्चात एक प्रक्षिप्त सर्ग मे सुरक्षित है। उसमें इन्द्र हविष्यान्न को लेकर निद्रादेवी के साथ आते हैं। निद्रा वहाँ की निशाचरियो को मुग्ध कर लेती है और इन्द्र अपना वास्तविक रूप दिखलाकर उन्हें उक्त पायस भेट करते है। यहाँ सीता राम तथा लक्ष्मण दोनो को पायस निवेदित करके भोजन करती है :

इन्द्रहस्ताद् गृहीत्वा तत्पायसं स शुचिस्मिता।
न्यवेदयत भर्त्रे सा लक्ष्मणाय च मैथिली ।। (वा० रा० अर० क्षेपक २३ श्लो०)

ऐसा प्रतीत होता है कि कृत्ति० ने जानबूझ कर लक्ष्मण को पायस से वञ्चित करा दिया है इससे सीता के व्यक्तित्व में ह्रास भले ही प्रतीत होता हो, किन्तु भक्तो ने राम के अतिरिक्त लक्ष्मण को तो सीता का इतना कृपापात्र भी नही रहने दिया कि वे राम की समकक्षता किसी क्षेत्र मे प्राप्त कर सके।

अन्य रामायणों की भाँति कृत्ति मे भी सीता जी अशोक वन मे राक्षसियो से घिरी हुई दीनहीन स्थिति मे बैठी चित्रित की गयी हैं। उनके मुख से निरन्तर राम नाम निकल रहा था और उनका शरीर इसी प्रकार क्षीण हो गया था जैसे दिन के प्रकाश से चन्द्रकला का प्रकाश क्षीण हो जाता है :

दिवा भागे येन चन्द्रकलार प्रकाश।
श्री राम बलिया सीता छाड़ेन निश्वास।।
श्री राम बलिया सीता करेन क्रन्दन।
सीतारे चिनिया मिल पवननन्दन। (कृत्ति० । सुन्दर० । पृ० ४६१)

रावण जैसे ही अशोकवाटिका मे पहुँचता है, सीता भय एवं लज्जा के कारण कम्पित होकर मलिन वस्त्रो से अपने अग ढक लेती है। वे रावण से अपनी रक्षा के लिए राम का स्मरण करने लगती है। उन्हें धर्मरक्षक लक्ष्मण का भी स्मरण आता है। वे अपना मुख नीचा कर लेती है और रावण की ओर देखना तक नहीं चाहती।[1] असमिया रामायण मे भी सीता की यही स्थिति दिखलाई गई है।[2] वे भी अधोमुखी होकर रामधुन में तत्पर रहती है। रावण उन्हे बार-बार समझाने का यत्न करता है, किन्तु सीता अपने कुल की मर्यादा एव धर्म पर दृढ रहती हुई कहती है :

अधार्म्मिका नहि आमि रामेर सुन्दरी।
जनक राजेर कन्या आमि कुलनारी ।। (कृत्ति० । सुन्दर० ४६५)

---

१. कृत्ति० रा० । सुन्द० । पृ० ४६२, ६३
२. अ० रा० (माधवकदली ५, ८)

हैं, ये चेरियाँ मेरा अपमान करती है। यदि राम लंका आ जाये, तो रावण का परिवार समेत विनाश हो जाये। यदि राम मेरे दुःसह दुःखों को सुन ले, तो वे अपने बाणों से लंकापुरी को नष्ट कर दे। यदि इस क्षण अन्तरिक्ष मे कोई हो, तो वह मेरा दुःख राम मे कह दे। मेरे नेत्रों से निरन्तर अश्रु बरसते है, राम आयें और शीघ्र ही लंका का विनाश करे।[1] इस प्रकार सीता लंका के विनाश का शाप देती है। वाल्मीकि मे भी सीता की इस मर्मान्तक पीड़ा का चित्रण नही किया गया।

कृत्ति० की सीता की विपत्तिसगिनी सरमा नामक निशाचरी है। सीता जी उससे अपनी मानसिक वेदना बतला कर चित्त हलका कर लेती थी। उनका हृदय पश्चात्ताप या ग्लानि में डूबा रहता था कि मैंने किसी की हानि नही की, सब का कल्याण ही करती रही, फिर भी मेरे भाग्य में सब कुछ प्रतिकूल ही लिखा है। भगवान ने मेरी ऐसी दुर्दशा की है। वह किसी को तो दुःख पर दुःख देता है और किसी को सुख ही सुख देता है :

विषय कठिन विधि देखि तव मन।
आमार कपाले केलि एमन लिखन ॥
कारो मन्द नाहि करि सबे करि भाल।
तबे कीन अभागीर हेन दशा हाल ॥
दुःखेर उपरे कारे दाउ विधि दुःख।
सुखेर उपरे कारे दाउ तुमि सुख ॥ (कृत्ति० । सुन्दर० । पृ० ५०४)

इस प्रकार यहाँ सीता की निराशा, अत्यधिक वेदना, भाग्यवादी विचार आदि का सफल चित्रण किया गया है। ऐसा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व बहुत कम रामायणों मे प्राप्त होता है।

जिस प्रकार मानस की सीता रामकथा श्रावक (हनुमान्) को प्रकट होने के लिए कहती है, उसी प्रकार कृत्ति० की सीता भी रामनाम गायक से प्रकट होकर दर्शन देने का निवेदन करती है :

---

१. कोथा लेगे प्रभु राम कौशल्या शाशुड़ी। अपमान करे मोरे रावणेर चेड़ी ॥
यदि हय लका रामेर आगमन। सवशे निर्वश हय राक्षसेर गन ॥
एइ दुःख पाइ यदि शुनि तेन चाने। लकापुरी खान खान करितेन बाने ॥
हेन काले अन्तरीक्षे थाक यदि चर। मोर दुःख कहगिया श्री रामगोचर ॥
आमार चक्षुर जेल नाहिक विराम। ए लकार सर्वनाश करन श्रीराम ॥
गृध्रिनी शकुनि तुष्ट छड़क आकाशे। शृगाले कुक्कुर तृप्त राक्षसेर मासे ॥
जानकी शाप हवे लंकार विनाश। रचिला सुन्दरकाण्ड कवि कृत्तिवास ॥
(कृत्ति० । सुन्दर० । पृ० ५०१, ५०२)

येशु नाले राम नाम एक वार देखा दे ।
निष्ठुर लंकाय रामेर हेन भक्त के ।। (पृ० ५०६)

वे हनुमान के प्रकट होने पर भी विश्वास नहीं करती । वे हनुमान से रामभक्त होने का प्रमाण चाहती हैं । जब हनुमान पूर्णवृत्तान्त वतलाते है और सीता के समीप आते हैं, तव भी उनका मन सशंक होकर सहसा उद्विग्न हो जाता है । वे हनुमान को छद्मवेषी रावण मान कर दीन स्वर में कहती है : मुझे शोकोपवास करते-करते दस मास व्यतीत हो गये हैं, क्यों मेरा नित्य उपहास करते हो :

दश मास करि आमि शोके उपवास ।
मम संगे कि लागिया कर उपहास ।। (पृ० ५०८)

सीता कहती हैं कि यदि तुम सत्यतः राम दूत हो तो मेरा आशीर्वाद है कि तुम अमर एव वलशाली वनो । किसी शस्त्र का तुमारे शरीर पर प्रभाव न पड़े, तुम अग्नि से न जल सको, रण तथा वन में शंकरी (उमा) तुम्हारी रक्षा करें, सरस्वती तुम्हारे कण्ठ में वास करें और सर्वत्र तुम्हारा सम्मान हो ।[1] इस प्रकार यहाँ सीता की कृतज्ञता के साथ ही साथ उनकी अलौकिकता पर भी प्रकाश पड़ता है । मानस मे भी तुलसी ने सीता द्वारा हनुमान को आशीर्वाद दिलाया है । यथा :

अजर अमर सुत गुननिधि होहू । करहिं सदा रघुनायक छोहू ।।
(मानस । सुन्दर०)

अन्तर यह है कि कृत्तिवास की सीता अग्नि तथा शस्त्र से अभय दान देकर हनुमान को तात्कालिक फल प्रदर्शित करने वाली है । आगे चल कर उन्हे अग्निभय तथा मेघनादादि के शस्त्रभय का भी सामना करना था ।

जव हनुमान राम लक्ष्मण के अंग चिन्हों एवं अन्य विशेषताओं को वतलाते हैं तव सीता विश्वस्त होती हैं ।[2] वे वडी चतुरता के साथ राम की तात्कालिक मनोवृत्ति का पता लगाने के लिए दिनचर्या जानना चाहती है । इसके पश्चात् वे लक्ष्मण की

---

१. स्वरुपेते हउ यदि श्री रामेर चर । आमार वरेते तुमि हइवे अमर ।।
अग्नि ते पुडिवे नाहि अस्त्रे न मरिवे । रणे वने तव रक्षा शकरी करिवे ।।
तव कठे सरस्वती होन अधिष्ठान । ये खाने सेखाने जाउ सर्वत्र समान ।।
(कृत्ति । उत्तर०। पृ० ५०८)

२. एत शुनि जानकीर वाड़िल क्रन्दन । एत क्षणे वाछा मोर प्रत्यय हेल मन ।।
(पृ० ५०८)

कुशलता पूंछती हुई अपने पूर्वकथित कटुवचनों का स्मरण करती हैं।[1] उक्त प्रसंग के आधार पर सीता लक्ष्मण को एक आदर्श एवं सच्चरित्र वीर सिद्ध करती हैं। लक्ष्मण पर उनका विशेष ममत्व था, वे राम की तो दिनचर्या ही पूँछती हैं, किन्तु लक्ष्मण की कुशलता पूँछती है, इससे यह सिद्ध होता है कि वे राम की मनोवृत्ति जानना चाहती थीं कि मेरे उद्धार हेतु वे यत्नशील हैं या उदासीन। सम्भवत: वे लक्ष्मण द्वारा अपने उद्धार की अधिक आशा रखती थीं, अत: उनकी दिनचर्या न पूँछकर केवल उनकी कुशलता ही पूँछती हैं।

कृत्तिवास की सीता से हनुमान भी उनका विस्तृत परिचय पूँछते हैं, उत्तर में सीता कहती हैं : मैं स्वर्णधाम मिथिला के अधिपति जनक की पुत्री हूँ, मुझ कुलकलंकिनी का जानकी नाम है :

मिथिला वसति, जनक नृपति, कांचन रचित धाम।
ताहांर नन्दिनी, कुलकलंकिनी, जानकी आमार नाम ।। (पृ० ५११)

सीता के इस कथन में तो एक ओर अपने कुल की प्रशंसा की प्रवृत्ति लक्षित होती है, दूसरी ओर उनके मानस की ग्लानि भी भासित होती है। कुण्ठा का यह भाव सीता की हीन भावना का द्योतक है। जब हनुमान राम की मुद्रिका अर्पित करते हैं, उस समय सीता अतीव प्रसन्न होती हैं। उन्हे अंगूठी की सुरक्षा की भी चिन्ता होती है कि कहीं चेरियाँ स्वर्ण के लोभ से छीन न लें :

वल देखि कोथा राखि रामेर अंगुरी।
सोना देखि केड़े लय पाछे सब चेड़ी ।।

यदि उस मुद्रिका को हृदय में धारण करती है, तो सदैव उसके दर्शन नहीं हो सकेंगे। इसके पश्चात् वे प्रेम में उन्मत्त होकर मुद्रिका से ही वार्ता करती हुई पूछती हैं मुद्रिके तू तो मेरे विवाह काल से ही सपत्नी के रूप में मेरे साथ रही है। दुर्भाग्यवश मैं तो लंका आ गयी और मेरे वियोग से व्यथित राम को तू ही सान्त्वना देती रही, किन्तु अब तुम राम को एकाकी छोड़कर यहाँ लंका में क्यों आ गयी :

तोमाय आमाय दोहे लैला रघुमनि।
सेइ हैते हैले तुमि आमार सतिनी ।।
पीड़लाम जवे आमि श्री रामेर मने।

---

१. रामेर सेवक बटे वाछा हनूमान। केमन अछिन मोर कमल नयन।
केमने वचेन काल राम गुण मणि। रामेर मंगल पिछे शुनिवसे आमि ।।
आगे एक वार्ता हनु सुधाइ तव काछे। सुमित्रार प्राण देवर लक्ष्मण केमन आछे।।
देवरेर कथा आमि न शुनितु काने। दुष्ट कथा कहिलाम पंचवटी वने ।।
(वही, पृ० ५०९)

आमार अभावे राम चाव तव पने ॥
अंगुरी दोसर तुमि छिल राम सने ।
राम के राखिया एका हेथा एले केने ॥ (कृत्ति० । सुन्दर० । पृ० ५१२)

इस प्रकार इस ग्रन्थ की सीता अतिशय भावुक एवं पतिपरायणा है । रामचरित मानस मे भी कवि ने सीता की इस भावुकता का उल्लेख नही किया । इसी प्रकार हनुमान से अपनी व्यथा का चित्रण करती हुई सीता अत्यन्त अधीर हो जाती है । उन्हें अमृतफल खाने की इच्छा नही होती, राक्षसियां नित्य प्रति अनेक ताड़नाये देती है, यदि वे राम का नाम लेती है, तब भी राक्षसियाँ डाटती है । यदि सरमा से उन्हे कुछ फल खाने को मिल भी जाते है, तो रावण की दासियाँ उन्हें खाने नही देती ।[1] इतना अत्याचार तो वाल्मीकि की सीता पर भी नही होता । राम कहने पर भी रोक लगाना, सीता के साथ वहुत अत्याचार करना था, जिसका उल्लेख संस्कृत एव हिन्दी के किसी प्रमुख ग्रन्थ मे नही किया गया ।

सीता हनुमान को सरमा से प्राप्त पाँच आम्रफल अर्पित करती है । उनमे एक राम के लिए, दो फल सेना के लिए, एक लक्ष्मण के लिए, आधा सुग्रीव के लिए और आधा हनुमान के लिए था ।[2] इससे उनके स्नेह का अनुपात सिद्ध होता है, किन्तु जव हनुमान हँसकर कहते हैं कि इससे मेरी तृप्ति न हो सकेगी, तव सीता उन्हे भक्तिभाव से भक्षण करने का परामर्श देती हुई कहती है कि इससे तुम्हारी क्षुधा शान्त हो जायगी । वे यह भी आश्वासन देती है कि यदि मुझे अवध गमन का अवसर मिला, तव मै तुम्हे पेट भर भोजन कराऊँगी :

कभु यदि जेते पाइ अयोध्या नगरे ।
उदर पूरिया वाछा खाव्याव तोमारे ॥ (कृत्ति० । सुन्दर० पृ० ५१७)

उक्त प्रसग मे सीता उदार, कृतज्ञ एव कुशल प्रतीत होती है । जव हनुमान सीता की वेदना को सुन कर उनसे तत्काल चलने के लिए अपनी पीठ पर चढ़ा कर ले जाने का प्रस्ताव करते हैं, उस समय सीता उनके प्रस्ताव को अनेक तर्को द्वारा निरस्त कर देती है, प्रथम तो वे हनुमान के लघु शरीर को ही मानववहन करने मे असमर्थ सिद्ध करती है, किन्तु उनके पर्वताकार रूप प्रदर्शित करने पर वे वेग के कारण अपने पतन की आशंका प्रस्तुत करती है । अन्ततः वास्तविक कारण वतलाती हुई कहती है कि मैं पर-पुरुष का स्पर्श कैसे कर सकती हूँ, विवशता मे रावण के स्पर्श की वात तो भिन्न है ।

के मने तोमार पृष्ठे रव आमि स्थिर ।
सागरे पड़िले खावे हांगर कुम्भीर ॥
पर पुरुषेर स्पर्श नाहि लय मन । (पृ० ५१६)

१. कृत्ति । सुन्दर० । पृ० ५१४, १५ २. वही, पृ० ५१६

उक्त प्रसंग का मूल वाल्मीकि मे विद्यमान है, वहाँ सीता अधिक तार्किक है, यहाँ कवि ने सीता को साधारण तर्कमयी सिद्धकर मुख्यतया उनके पातिव्रत्य की मर्यादा पर ही अधिक ध्यान दिया है। सीता स्वाभिमानिनी भी है, वे चोरी से नही विक्रम से जाना चाहती है। वे चाहती है कि श्री राम रावण का सहार करे, तव तो वीरता है :

रावणेर मत कि करिबे मोरे चुरि।
तोर मारि उद्धारहु तवै वहादुरि॥ (पृ० ५१६)

इस प्रकार इस ग्रन्थ की सीता अतीव पीड़ित होती हुई भी धैर्यशालिनी है। वे अपने कुल के गौरव की सुरक्षा एवं पतिमर्यादा की सुरक्षा में पूर्ण सतर्क है। वीर क्षत्राणी कितना भी कष्ट क्यो न आये, धर्म एव कर्तव्य का परित्याग कैसे कर सकती है ?

अन्य रामायणों की भाँति कृत्तिवास में भी सीता हनुमान को चूड़ामणि एव काक-वृत्तान्त ये दो प्रत्यभिज्ञान प्रदान करती है और एक मास के अन्तर्गत ही अपने उद्धार करने का निवेदन करती है[1]।

कृत्तिवास की सीता की यह विशेषता है कि जब लकादाह के पश्चात् समुद्र मे कूदने पर भी उनकी पुच्छ का दाह शान्त नही होता, तव वे सीता से उक्त व्यथा वतलाते है और सीता जी उनसे यह युक्ति वतलाती है कि तुम अपनी पुच्छ को मुख में डालो, इस प्रकार मुख सुधा के प्रभाव से अग्नि शान्त हो जायगी।[2] वैसा करने पर हनुमान का मुख दग्ध हो जाता है और वे पुनः सीता से निवेदन करते है मेरा मुख देखकर जाति के वीर सभी हँसेगे, तव सीता कहती है कि तुम्हारी जाति के सभी वानरों के मुख तुम्हारे जैसे असित हो जायेंगे।[3]

उक्त नूतन कल्पनाओं में कवि की भक्तिभावना ही मूल मानी जा सकती है, अन्यथा वाल्मीकि में तो ऐसा उल्लेख नही मिलता। इसके अनुसार सीता वह शक्ति है, जिनमे विलक्षण बुद्धि एवं अद्वितीय शक्ति है। हनुमान के मुख की कालिमा तो शक्ति के प्रभाव से ही दूर हो सकती थी, पुनः यह कल्पना करना कि हनुमान की ग्लानि को दूर करने के लिए सीता जी ने सभी वानरो को कृष्णमुख हो जाने का

---

१. माथा हैते खासाइया सीता देन मणि। मणि दिया तार ठांइ कहेन काहिनी॥
मानकेर मध्ये यदि करइ उद्धार। तोमार कल्याणे सीता जीये एइवार॥
आर कि कहिव कथा प्रभुर चरने। इन्द्रसुत काक मोर आंचुडिल स्तने॥
श्री राम ऐपिक वाण करेन सन्धान। खेदाड़िया जाय वाण वधिते परान॥
(कृत्ति। सुन्दर० पृ० ५२०)

२. सीता वले मुखामृत देह हनूमान। एखनि अग्निरज्वाला हइवे निर्व्वाण॥

३. सीता वले ज्ञाति वर्ग केह नहे छाड़ा। मन वाक्ये सकलेइ हवे मुख पोड़ा॥
(कृत्तिवास० सुन्दर०। पृ० ५३८)

शाप-सा दिया, अनुचित प्रतीत होता है। भले ही इससे सीता की अलौकिकता सिद्ध होती हो, किन्तु इससे कवि ने सीता को अविवेकिनी भी बना दिया है। किसी व्यक्ति को यदि अन्य की हानि किये बिना लाभान्वित किया जा सके, तो वह कार्य अधिक श्रेष्ठ कहा जा सकता है। दूसरे निरपराध व्यक्तियों को एक व्यक्ति के स्वार्थ के लिए दण्डित करना तो सर्वथा स्वार्थपरता है, जो सीता के स्वभाव के प्रतिकूल रहा है। इस प्रकार यहाँ कृत्तिवास ने भक्ति के अन्ध आवेश में आकर सीता को स्वार्थमयी एवं अविवेकिनी बना दिया है।

अग्नि परीक्षा के समय राम द्वारा उपेक्षित होने पर कृत्तिवास की सीता राम को अपशब्द नहीं कहती। उनके चित्त में आक्रोश अवश्य उत्पन्न होता है। वे राम से कहती हैं कि आप बाल्यकाल से ही मेरी प्रवृत्ति जानते हैं, सुन चुके हैं कि मैं बालकों के साथ भी नहीं खेलती थी, पुनः आप मेरी दुर्गति क्यों करते हैं? मैं दुष्टा नारी नहीं हूँ कि आप दूसरे को दान कर दें। सभा मध्य आप मेरा इतना अपमान करते हैं।[1] इस प्रसंग में सीता एक संयत, सच्चरित्र, निष्कलंक एवं निरपाध सिद्ध होती हैं। उनका कथन स्वाभाविक है, उनमें सार्वजनिक अपमान सहन करने की क्षमता नहीं। उनका दीन-हीन-असहाय जीवन इस आक्रोश के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता था। अन्ततः सीता अपने पति राम पर पूर्ण आस्था रखती हुई अग्नि में प्रविष्ट होती हैं और अग्निदेव सीता को लेकर राम को प्रत्यर्पित करते हुये कहते हैं कि आज सती सीता के स्पर्श से मेरा जीवन सफल हो गया।[2] इस वृत्तान्त से भी सीता की पवित्रता एवं अलौकिकता सिद्ध होती है।

जब लोकापवाद के कारण राम सीता का परित्याग करते हैं, लक्ष्मण उन्हें साथ लेकर वन-प्रस्थान करते हैं और मार्ग में अनेक अपशकुन होते हैं, तब सीता जी राम एवं माता कौशल्या की कुशलता पर चिन्ता प्रकट करती हैं और अपने त्याग का कारण पथ में ज्ञात होने पर भी राम को जन्मजन्मान्तर में पतिरूप में प्राप्त करने की कामना करती हैं।[3]

---

१. माल मते जान प्रभु आमार प्रकृति। जानिया शुनिया केन कर दुर्गति ।।
बाल्यकाले खेलिताम बालक मिशाले। स्पर्श नाहि करितामपुरुषछाओ याले ।।
दुष्टा नारी नहिं आमि परे कर दान। सभा विद्यमाने कर एत अपमान ।।
(कृत्ति०। सुन्दर०। पृ० ४४०,४४१)

२. आजि हैते राम मोर सफल जीवन। करिलाम आजि सती सीता परशन ।।
(वही, पृ० ४४३)

३. राम हेन स्वामी हउक जन्म जन्मान्तरे। (वही, पृ० ५२६)

नोट :—प्रतीक सं० १ से उद्धरण ना० प्र० पत्रिका वर्ष ७१ सं० २०२३ वि० अंक २ से लिये गये हैं।

इस प्रकार कृत्तिवास की सीता इस प्रसग मे आदर्श पतिव्रता, सहिष्णु, त्यागमयी एवं गम्भीर भारतीय नारी प्रतीत होती है, जिन्हे इतना कष्ट सहन करने पर भी प्रियतम राम के प्रति स्वल्प भी अरुचि नही है। असमिया की सीता तो राम को यम तक समझने लगती है, उन्हे राम की निर्दयता पर विकट असन्तोष है।

जब सीता को यह ज्ञात नही होता कि लवकुश किससे युद्ध करने जा रहे है, उस समय वे पुत्रों को आशीर्वाद देती हुई कहती है यदि मै काय-मनो-वाक्य से सती हूँ, तो तुम युद्ध मे अक्षत रहो :

काय मनो वाक्ये यदि आमि हइ सती।
तो सबार युद्धे कारो नाहि अव्याहति ।। (कृत्ति० । पृ० ५५८)

यहाँ पर कवि ने सीता को आदर्श जननी, पतिव्रता एव वीररमणी क्षत्राणी के रूप मे प्रस्तुत किया है। जब सीता को यह ज्ञात होता है कि मेरे पुत्रो का युद्ध तो राम की सेना से हो रहा है और राम भी आहत होकर अचेतावस्था मे पड़े है, तव वे सिर पीटती हुई अपने पुत्रो को फटकारती है और पति के पास दौड़ती हुई पहुँचती है। (पृ० ५६५,६६)

जब सभा के मध्य अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए राम उन्हे वाध्य करते है, तव सीता जी अत्यन्त दु:खित हो जाती है कि आज से तुम्हारी लज्जा और दु:ख दूर हो जायेगे, तुम जानकी का मुख भी नही देख सकोगे। तुमने मुझे निरन्तर अयश दिया वार-बार परीक्षा के लिये सभा मे बुलाया। कुछ भी सही मै जन्म-जन्म में आपकी पत्नी होऊँ, लेकिन ऐसी दुर्गति न करे। इतना कहते-कहते सीता इतनी निर्मम हो जाती है कि वे अपने पुत्र कुश तथा लव की ओर भी दृष्टिपात नही करती, केवल श्रीराम की ओर देखती हुई पाताल मे प्रवेश कर जाती है :

जन्मे जन्मे प्रभु मोर तुम हओ पति।
आर कौन जन्मे मोर करो न दुर्गति ।।
नाहि चाहिलेन सीता उभयछाओ याले, ।
श्री रामे निरखिया प्रवेशे पाताले ।। (कृत्ति० । उत्तर० । ५५८)

सचमुच अभिशापों की असहनीय चोटे खाकर मातृत्व की तीव्रधारा भी कुठित हो जाती है किन्तु धन्य है वह पातिव्रत्य जो अनन्त एवं असह्य चोटे खाकर भी मुसकराता है, परीक्षा की प्रवल अग्नि में तप कर उद्दीप्त होता है, वेदना की बर्छियो से भी आहत नही होता, निर्दयता एवं प्रपीड़न की घनघोर बौछार से भी भयभीत नही होता। सती नारी का दिव्य जीवन उससे निरन्तर उत्सर्ग चाहता है और बदले मे देता है वेदना।

कृत्तिवास की सीता ऐसी ही पतिव्रता साध्वी एवं आत्मोत्सर्ग की मूर्ति है, जिनका जीवन तपस्या एव विरह की तीव्र अग्नि में झुलस गया है, जिन्हें दाम्पत्य प्रेम के नाम पर जीवन भर आँसुओं की माला पिरोनी पड़ी, सर्वथा शुद्ध होने पर भी परीक्षा पर परीक्षा देनी पड़ी। छलना ने जिनकी छाती को छेद-छेद कर छलनी बना दिया, राजमहलों का स्वप्न देखने पर भी, जिसे वनों एवं आश्रमों की शरण लेनी पड़ी। जीवन की इतनी कटुता भोगने पर भी उनके पतिप्रेम का दिव्य रंग कभी फीका नहीं पड़ता वे कोमलता की मूर्ति मधुरिमा से मण्डित एवं स्वाभाविक सौन्दर्य से सर्वदा अलंकृत रही हैं। विनम्रता के साथ ही उनके आभिजात्य ने सुन्दर समन्वय किया था, मानवीय गुणों ने उनके अन्तःकरण को सरल, निश्छल एवं दयालु बनाया था। इस प्रकार कृत्तिवास की सीता भारतीय नारी की त्यागमयी, करुणामयी एवं विश्वासमयी पतिपरायणा नारी हैं, जो अलौकिक (लक्ष्मी का अवतार) होती हुई भी अपनी शक्ति से अपरिचित मध्यमकुल की प्रतिष्ठित नारी है।

बंगला साहित्य की सीता और मैथिली सीता

संक्षेप में दोनों ग्रन्थों की सीता लक्ष्मी का अवतार हैं, किन्तु बंगला की सीता का मानवी रूप ही मुखर हुआ है जब कि मैथिली मे दोनो रूप पाये जाते है।

(क) दोनों भाषाओ के काव्यो मे सीता विवाह के पूर्व राम के प्रति अनुरक्त दिखलाई गई हैं, परन्तु अन्तर यह है कि बंगला की सीता का पुष्पवाटिका मे मिलन नही होता, जैसा कि मैथिली सीता का होता है।

(ख) दोनों भाषाओं के साहित्य मे सीता एक आदर्श पतिव्रता एव कुलीन स्त्री है, किन्तु बंगला की सीता मे वाल्मीकि की छाप अधिक है, वे स्वभावत: परुष एव स्पष्टवादिनी हैं, जब की मैथिली सीता मे शील और संकोच अधिक है। वे भी समय-समय पर क्रुद्ध होती हैं, परुष वचन बोलती है किन्तु वे अधिकांश मर्यादित रहती है। वनगमन के समय बंगला सीता मैथिली सीता की अपेक्षा दृढतर प्रतीत होती हैं, वे राम के समक्ष कठोर बन जाती है, किन्तु मैथिली सीता इस प्रसंग में भी संकोच करती हैं, वे अत्यन्त संयत एवं मर्यादित रह कर ही वनगमन का आग्रह करती है।

(ग) दोनों भाषाओं की सीता अपने पति राम की आदर्श सेविका हैं, दोनों में कष्टसहिष्णुता है, प्रकृति के प्रति अनुराग है। कुतूहलप्रियता दोनों में है, किन्तु सहृदयता मैथिली सीता में अधिक है। बंगला सीता को वनपथ में यह सहानुभूति एवं वह ग्राम वधूटियों का पवित्र तथा निश्छल स्नेह नही प्राप्त है।

(घ) बंगला सीता लक्ष्मण को भी कटु वचन कहती हैं और साथ ही भरत के प्रति भी उनकी धारणा दूषित है, वे उन्हें अपने राज्य के अपहारक के रूप में मानती हैं, किन्तु मैथिली सीता भरत के प्रति शुद्ध हैं, वे उन्हें लांछित नहीं करतीं।

(ङ) सौन्दर्य की दृष्टि से दोनो ग्रन्थों की सीता अंग-प्रत्यंग में छविमयी है, किन्तु वेदना की दृष्टि से दोनों का जीवन अभिशप्त है। वंगला की सीता तो मैथिली सीता से भी अधिक पीड़ित है। उसे तो अशोक वन में राक्षसियाँ राम तक कहने के लिए मना करती है, फल तक नही खाने देती। मैथिली सीता के लिए इतने बन्धन नही थे। उन्हें राक्षसियाँ मौखिक रूप से कुछ भी कहे, किन्तु शारीरिक दण्ड नही देती थी, बगला की सीता को शारीरिक दण्ड भी सुलभ था।

(च) हनुमान से मिलने पर बंगला की सीता अधिक तर्कमयी प्रतीत होती है, वे हनुमान से अखिल रामवृत्त सुनने पर भी राम के लक्षण पूछती है, मैथिली सीता रामवृत्त सुनकर ही विश्वस्त हो जाती है। बगला की सीता हनुमान को पच आम्र-फल भेंट करती है, किन्तु मैथिली सीता ऐसा नही करती। मैथिली सीता के पास त्रिजटा ही सहानुभूति प्रदर्शित करने वाली थी, किन्तु बंगला सीता के पास सरमा तथा विभीषण की पुत्री भी सहानुभूति प्रदर्शित करती थी।

(छ) बंगला सीता के समक्ष हनुमान का प्रस्ताव था कि मै आपको अपनी पीठ पर बैठाकर ले जा सकता हूँ, किन्तु मैथिली सीता के पास ऐसा कोई प्रस्ताव नही था। इस प्रकार इस प्रसग मे बंगला की सीता की धैर्यपरीक्षा भी हो जाती है।

(ज) अग्नि परीक्षा दोनो भाषाओ की सीता देती है, दोनो मे वे शुद्ध सती के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

(झ) बंगला की सीता का निर्वासन उतना करुण नही जितना मैथिली सीता का है।

इस प्रकार तुलना करने पर बंगला की सीता की अपेक्षा मैथिली की सीता मे शालीनता एव गम्भीरता अधिक है, उनका कोमल एव संयत स्वभाव सोने मे सुरभि उत्पन्न कर देता है। शेष अनेक विशेषताये दोनों भाषाओं की सीता में एक-सी प्राप्त होती है। जहाँ तक उनके पतिप्रेम का प्रश्न है वह तो प्रायः समस्त भारतीय वाङ्मय में चर्चित है। उनके सतीत्व की गाथा तो बौद्ध तथा जैन साहित्य मे भी विद्यमान है।

(ग) उत्कल साहित्य में श्री सीता का आलोचनात्मक अध्ययन

भारत की पूर्वांचलीय भाषाओ मे महर्षि वाल्मीकि की रामायण से अनुप्राणित अनेक ग्रन्थो का निर्माण हुआ हैं। इन ग्रन्थो मे सीता के मानवी रूप का ही दिग्दर्शन कराया गया है। उड़िया भाषा में राम-साहित्य की एक विस्तृत सूची है, जिसमें स्वतन्त्र रूप से एक शोध प्रबन्ध लिखा जा सकता है। इस भाषा की प्राचीनतम रामकथा १५ वी शताब्दी में सिद्धेश्वर परिडा अथवा सारलदास द्वारा लिखी गई थी, किन्तु इस समय उक्त रचना अप्राप्त है। सिद्धेश्वर दास द्वारा विरचित

विलंका रामायण (१७०० ई०) उपलब्ध है। इसकी प्रमुख विशेपता यह है कि इसमें सीता जी सहस्रस्कन्ध रावण का वध करती है (पूर्वखण्ड) और उत्तरखण्ड में सीता जी लक्षस्कन्ध रावण का वध करती हैं।

पूर्वखण्ड के अनुसार सहस्रस्कन्ध रावण युद्ध में रामादि को पराजित कर देता है, फलतः सीता जी मंगलादेवी के पंचशर एवं कुसुमधनुप लेकर रावण से युद्ध करती है और काम के वशीभूत हो जाने पर रावण को श्री रामचन्द्र जी नष्ट कर देते है। इस प्रकार यहाँ सीता की अलौकिक शक्ति एवं शौर्य पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार उत्तरखण्ड में सीता काली का रूप धारण कर लक्षस्कन्ध रावण का वध करती चित्रित की गई हैं।

उड़िया राम साहित्य मे सर्वाधिक प्रतिष्ठित रचना जगमोहन रामायण (१६०० ई०) मानी जाती है। इसके लेखक वलरामदास है, अतः वलरामदास रामायण के नाम से भी इसकी प्रसिद्धि है। यह ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण के आधार पर निर्मित हुआ है, किन्तु इसमें कुछ महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य भी प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ सीता जी को वेदवती का अवतार माना गया है। तपस्विनी वेदवती रावण द्वारा सतायी जाने पर उसे शाप देकर अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है, किन्तु कुछ दिनों पश्चात् रावण उसे जीवित देखकर पुष्पक विमान मे वलात् वैठाकर लका लाता है और मन्दोदरी को उसके मांस का भोजन वनाने का आदेश देता है, किन्तु मन्दोदरी उसे समुद्र में वहा देती है और वरुणदेव उसे जम्बू द्वीप पहुँचा देते है। वहाँ जनक जी हलकर्पण के समय उसे प्राप्त करते हैं और सीता नाम से उस कृतकपुत्री का पालन करते हैं।

इसके अतिरिक्त उक्त ग्रन्थ में सीता लक्ष्मी का अवतार मानी गयी है, आगे चलकर कवि ने सीता को सुभद्रा से अभिन्न माना है। (अरण्यकाण्ड) इसका कारण उड़ीसा की स्थानीय धार्मिक भावना ही है, क्योंकि वहाँ जगन्नाथ, सुभद्रा तथा वलभद्र जी की विशेप प्रतिष्ठा है। उक्त ग्रन्थ की सीता की जन्मकथा मे मेनका अप्सरा का भी प्रसग चर्चित है। कृत्तिवास रामायण की भाँति इस ग्रन्थ में भी सीता का राम के प्रति पूर्वानुराग वर्णित है।

इस ग्रन्थ के उत्तरकाण्ड में माया सीता का भी उल्लेख पाया जाता है। नारद जी के आदेशानुसार सीता अपना माया रूप शेष रखकर अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है और लक्ष्मण भी इस रहस्य को नही जान पाते। जव अन्त में अग्निपरीक्षा होती है तव वास्तविक सीता प्रकट होती हैं। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ की यह भी विशेपता है कि इसमें सीता द्वारा लक्ष्मण पर शंका करने पर लक्ष्मण उन्हें शाप देते है।

लक्ष्मण के शाप की चर्चा वाल्मीकि (३, ४५, ३२), भट्टिकाव्य (५।६०) देवीभागवत (३।२८,४६) अध्यात्म रामायण (३।७।३६) आदि मे भी मिलती है।

कान्तकोइलि नामक करुण रस प्रधान लघुरचना में सीताहरण के समय कवि ने सीता के प्रति बड़ी सहानुभूति दिखलाई है। वहाँ सीता का करुण रूप दर्शनीय प्रतीत होता है। उक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त धनंजयभज का रघुनाथ विलास, हलधरदास कृत अध्यात्मक रामायण, उपेन्द्रभज कृत वैदेही विलास, पट्टनायककृत रामायण एव केशवकृत पूर्णरामायण ये सभी ग्रन्थ सीता के परम्परामुक्त रूप पर प्रकाश डालते हैं।

उडिया साहित्य की सीता का सामान्य परिचय देने के पश्चात् उनका विशिष्ट परिचय देना भी आवश्यक है, इस दृष्टि से यहाँ उड़िया की सीता का प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है :

उड़िया रामायण की सीता त्रिलोकस्वामिनी होती हुई भी अपने को मानवी समझती है।[1] कवि ने मुख्य रूप मे उनके आदर्श मानवी रूप का चित्रण किया है। वे राम की प्रिया तथा उपयुक्त गृहिणी है। उनमे वाल्मीकि एव कृत्तिवास की सीता की भाँति कुछ परुषता भी है, वे सौन्दर्य मे अप्रतिम एव गुणो से परिपूर्ण है। सीता मे मानवीय दुर्बलतायें भी है। वे स्वयवर के समय राम के सुन्दर रूप को देख कर इतनी अनुरागमयी हो जाती है कि ब्रह्मा से मन ही मन निवेदन करने लगती है कि हे विधे तुम मुझे निराश न करना, क्योकि यौवनपूर्ण मेरे शरीर ने बहुत दुःख भोगा है।[2] उक्त स्थल में सीता का आदर्श रूप धूमिल पड़ गया है। वे एक साधारण परिवार की युवती कन्या प्रतीत होती हैं, जिनमे प्रेम का प्राथमिक ज्वार उमड़ता प्रतीत होता है, यौवन की प्रबलता के कारण उनमे काम की पीड़ा का भी सकेत मिलता है।

इस ग्रन्थ की सीता मध्यम परिवार की एक सामान्य नारी प्रतीत होती है। जब राम परशुराम प्रदत्त धनुष चढ़ाते है, तब उन्हे यह ईर्ष्या होने लगती है कि राम क्या द्वितीय कन्या से विवाह करेगे। इसका तात्पर्य यह है कि ताड़का वध के वृत्तान्त से सीता यह जानती थी कि राम स्त्रियों पर निर्दय है। यद्यपि इन्होने शिवधनुप चढ़ाकर मेरा वरण किया है, किन्तु अब पुनः परशुराम का धनुष चढ़ाकर कोई अन्य विवाह तो न करेगे (उड़िया २।१५)। उक्त भाव का मूल सस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ हनुमन्नाटक मे विद्यमान है।[3] इससे सीता के सपत्नीभाव की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

---

१. उड़िया रामायण : त्रैलोक्यर ठाकुराणी जगतर आइ। ३, ४३

२. उड़िया रामायण : १।५१

३. तच्चापमाकर्षति ताटकारावाकर्णमाकर्ण विशाल नेत्रा।
सासूयमैक्षिष्ट विदेहजासौ कन्यां किमन्यां परिणेष्यतीति ॥ (हनुमन्नाटक १।४९)

उक्त ग्रन्थ में कवि ने सीता को लज्जाशील भी चित्रित किया है। जब धनुर्भंग हो जाता है और जनक की प्रतिज्ञा के अनुसार सीता राम की पत्नी बन जाती हैं, तब वे अपने पिता जनक के समक्ष लज्जावनत हो जाती हैं।[1] इस उल्लेख से सीता की शालीनता का परिचय मिलता है। गुरजन लाज समाज बड़ि (मानस, बाल०) में सीता की लज्जाशीलता को इससे भी अधिक महत्व प्रदान किया गया है। नीतिशास्त्र के अनुसार लज्जा नारी का आभूषण है।[2] पुरुष की अपेक्षा नारी में चतुर्गुण अधिक लज्जा होती है : लज्जा चापि चतुर्गुणा (चा० नीति)।

उड़िया की सीता चतुर एवं शंकालु भी है। वे प्रथम मिलन की मधुमयी निशा में ही राम से एकपत्नीव्रत के निर्वाह करने की शपथ कराती है।[3] इस उल्लेख से सीता की महनीयता पर न्यूनता आ गयी है। वे एक सामान्य राजकन्या प्रतीत होती हैं। ऐसा लगता है कि वे सामयिक एवं सामाजिक स्थितियों के प्रति पूर्ण सतर्क है। अक्षय सुहाग की कामना, भौतिक सुखों की आसक्ति की यह प्रवृत्ति देख कर उन्हे विदेह तनया कहने में संकोच लगता है। इस प्रकार उड़िया की सीता एक कुलवधू हैं, जिनमें चतुरता, सतर्कता शालीनता एवं महत्वाकाक्षा का रंग चटकीला है।

वाल्मीकि की सीता की भाँति उड़िया की सीता भी वनवास के समय राम के प्रति रुष्ट हो जाती हैं, किन्तु वे इतनी उग्रता नही धारण करती, जितनी वाल्मीकि की सीता धारण करती है। उनमें परुष का रंग कुछ हलका है। वे अपने को राम की दासी मानती हैं और यह सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर का बतलाती है।[4] वाल्मीकि की सीता में उक्त दास्यभावना इस मात्रा में नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि गीता के अनुसार परागति प्राप्त करने के लिए जिस साधन का उल्लेख किया गया है,[5] उसी साधना का संकेत इस ग्रन्थ की सीता के उक्त कथन में मिलता है। वाल्मीकि की सीता की भाँति इस ग्रन्थ की सीता भी राम के बिना एक क्षण नही रहना चाहती, वे राम के अंगों के लिए अपने को क्षार कर देने के लिए उद्यत थी।[6] इससे सीता का राम के प्रति अनन्य प्रेम एव उनकी दृढ़ आस्था का प्रमाण मिलता है। दाम्पत्य प्रेम की यह पराकाष्ठा कितनी प्रशस्त है?

---

१. पिताकु देखिण सीता लाज-लाज होइ। (उड़िया रामायण ।१।१५५)
२. सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जा च कुलांगना। (चाणक्य नीति)
३. उड़िया रामायण १।१०३
४. जन्म जन्मान्तरे मुं अठइ तौर दासी (उड़िया रामायण, १।२०४)
५. अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो याति परांगतिम्। (श्रीमद्भगवद्गीता)
६. मुहूर्तक निमिषक रहि ये न पाइ।
   ए तुम्हर अंगर मुं होइ थाइ छाइ॥ (उड़िया रामायण ।२।४०)

जब राम वनवास के कष्टों का वर्णन कर सीता को गृह में रहने का परामर्श देते है तब वे राम के प्रति सरुप होकर कहती है : मेरे पिता जनक ने मुझे आपको सर्मपित किया है, मै जन्म-जमान्तर से आपकी दासी हूं। मैं यहाँ किसका मुख देख कर रहूँगी ? आप अच्छी प्रकार समझ ले कि मै आपके वियोग मे प्राण त्याग दूँगी।[1] वाल्मीकि में भी सीता प्राण त्याग कर देने की धमकी देती है।[2] अन्तर यह है कि वाल्मीकि की सीता राम को दुर्वचन भी कहती है और अपनी हठवादिता का भी परिचय देती है। उडिया की सीता कुछ सयत है, उनमे रोप तो है, किन्तु वह विनम्रता अथवा प्रणय से पोपित हैं, वह मर्यादा की मर्यादा का उल्लघन नही कर जाता।

उडिया की सीता वनपथ में अधिक सहृदय एव सामाजिक प्रतीत होती है, वे शबर स्त्रियों से वार्तालाप करती हुई इतनी तन्मय हो जाती है कि उन्हें यह ध्यान ही नही रहता कि राम लक्ष्मण कितनी दूर चले गये।[3] राम उनकी इस नारी प्रकृति की भर्त्सना करते हैं। औचित्य की दृष्टि से यहाँ सीता की यह स्वच्छन्द प्रवृत्ति निन्द्य प्रतीत होती है। वाल्मीकि अथवा अध्यात्म की सीता इतनी स्वैर प्रवृत्ति नही दिखलाती। सीता के चित्त मे अपने रूप-सौन्दर्य की अक्षुण्णता, पति के चिरंजीवित्व और पारिवारिक ममत्व का विशेष स्थान था, महत्वाकांक्षा तो इतनी थी कि वे राम को त्रैलोक्य प्रशासक के रूप मे देखना चाहती थी।[4] उनमे एक आदर्शगृहिणी की भी विशेपतायें विद्यमान थी। वे राम को भोजन बना कर स्नेहपूर्वक खिलाती थी और उसी पत्तल मे स्वयं भोजन करती थी। एक भारतीय नारी की भाँति पति की चरणसेवा करना उनका पावन व्रत था।[5] यह उल्लेख अध्यात्म में भी नही मिलता।

उडिया साहित्य की सीता एक भीरु एवं क्रीड़ाकुशल नारी है। वे राम के साथ चित्रकूट में जलक्रीड़ा करती हुई राम का मनोरंजन करती है। गैरिक शिलारूढ़ होकर मुक्तकंठ से हँसती है, राम उनके मस्तक पर गैरिकविन्दी लगाकर उन्हे आनन्द प्रदान करते है। इतने मे ही समक्ष आते हुए एक कपि को देख कर सीता भीता होकर राम का गाढ़ालिगंन करती हुई हँसने लगती है। आनन्द रामायण मे सीता की उक्त क्रीड़ाओ का उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकि की सीता की भाँति उड़िया की सीता भी शंकालु है। सीताहरण के पूर्व कपटमृग के हा लक्ष्मण ! इस शब्द से उद्वेजित सीता लक्ष्मण को श्रीराम के पास जाने की प्रेरणा देती है और उनके समझाने पर सन्देह करती है कि तुम कपटपूर्वक नियम का पालन करते हुए हमारे साथ रहते हो, तुम्हें भरत ने प्रच्छन्न रूप से भेजा

---

१. वही, २।४१

२. वाल्मी०।अयो०।२७।२३

३. उड़िया रामायण।२।५५

४. वही, २।५७

५. सीता श्री रामकर चापति चरण।२।५८ तथा ३, २१

है। तुम मुझे भरत की पत्नी बनाने के लिए साथ आये हो। इस प्रकार इस प्रकरण में सीता शंकालु कटुभाषिणी, पतिव्रता एवं असमीक्ष्यकारिणी सिद्ध होती है।

जब रावण प्रकट होकर पंचवटी के कुटी के समक्ष प्रणय प्रस्ताव करता है, उस समय उनकी गर्वदीप्तवाणी अतिपरुष हो जाती है। प्रथम तो भीरु स्वभाव के कारण उन्हें भय लगता है और उनके शरीर में कम्पन उत्पन्न हो जाता है, किन्तु तदनन्तर निर्भीक होकर वे रावण को डाँटती हुई कहती हैं : हे चांडाल ! मेरा पति घर में नहीं है और तू मुझसे असंस्कार वचन (अगम्यवचन) बोल रहा है। आज रामचन्द्र जी के बाण से तेरी मृत्यु नियत है।[1] उड़िया की उपर्युक्त कथा का मूल वाल्मीकि ही हैं। उसमें सीता रावण को जम्बुक, बिडाल, वायस, गृद्ध आदि अनेक अपशब्द कहती हैं (वा० रा०।अरण्य०४७ सर्ग ३६,४८)। वे राम द्वारा रावण को मृत्यु की भी धमकी देती हैं।[2]

वाल्मीकि की सीता अशोकवनिका में रहती है और पति-चिन्तन मे संलग्न रहती हैं, किन्तु राम नाम की माला नहीं जपती, जब की उड़िया में सीता जी सिर पर दोनों हाथ रख कर बैठी हुई दिखाई गयी हैं। हनुमान उन्हें देखते हैं कि उनके नेत्र नीचे की ओर झुके हैं, उनके मुख से राम नाम की ध्वनि निकल रही है और उनका (बिम्बोष्ठी का) मुख सूख गया है।[3] यहाँ उड़िया की सीता में भक्ति का प्रभाव प्रतीत होता है। बैठने की मुद्रा से चिन्ता की प्रगाढ़ता व्यक्त होती है और मुख सूखने से कृशता एवं दौर्बल्य सिद्ध होता है।

वाल्मीकि के हनुमान की भाँति उड़िया के हनुमान भी अपनी पीठ पर सीता को बैठा कर ले चलने का प्रस्ताव रखते हैं, किन्तु सीता जी कई कारणों से उस प्रस्ताव को अस्वीकृति कर देती हैं। वाल्मीकि के अनुसार प्रस्ताव की अस्वीकृति के १२ कारण थे : मार्ग की दूरी, हनुमान का अल्प शरीर, वायुवेग की असहिष्णुता, पतन भय, रक्षा का अनिश्चय, हनुमान पर राक्षसों की सन्देहदृष्टि, युद्ध और राक्षसों द्वारा हनुमान की पराजय का भय राम की यशोहानि, राक्षसों द्वारा पुनः अपहृत होने पर गुप्तवास देने का भय, पातिव्रत धर्म की हानि, भय एवं आकुलता, आत्म-प्रतिष्ठा की हानि।[4] उड़िया की सीता ने प्रमुख छः कारण बतलाये हैं १. राम की प्रतिज्ञा की अपूर्ति एवं रावण का जीवित रहना, २. चोरवृत्ति से जाना अनैतिक

१. पुरुष नाहिं मोहर घरै तु पशिलु।
असंस्कार वचन कहिलु कहु मोते।
आज रामचन्द्र बाणे मरिबु नियते॥ (उड़िया०।३।४०, ४१)

२. वा० रा० अर०।४८।२२, २४ ३. उड़िया०।५।८

४. वा० रा० सुन्दर०।३७ सर्ग

कार्य, ३. हनुमान का लघु शरीर, ४. राक्षसों के अनुधावन की शंका, ५. समुद्र दर्शन का भय ६. परपुरुष स्पर्शजन्य दूषण।[1] तुलना करने से स्पष्ट है कि प्रथम दो कारणों के अतिरिक्त शेष चार कारण वाल्मीकि के ही आधार पर दिये गये है। इनके आधार पर सीता धैर्यशालिनी, भीरु, विवेकशील, स्वाभिमानिनी, सहिष्णु, तर्कशील, नीतिकुशल, दूरदर्शिनी एवं आदर्श पतिव्रता थी।

लंका विजय के पश्चात् जब सीता राम के पास उपस्थित की जाती है, तब वाल्मीकि के राम की भाँति उड़िया के राम उन्हें दुर्वचन कहते है, किन्तु उनमें रूक्षता एवं तिरस्कार की भावना कम है। जिस प्रकार वाल्मीकि की सीता इस प्रसग में दृढ़ता से अपनी सच्चरित्रता प्रमाणित करती हैं (युद्ध० ।११६, ५, १०) उसी प्रकार उड़िया की सीता भी कहती है : आप क्या मुझे नटस्त्री समझ कर ऐसा कह रहे है ? मै उभयकुल में पवित्र हूँ। अन्त मे लक्ष्मण अग्नि प्रज्वलित करते है और सीता अपने चरित्र की शपथ लेकर प्रवहमान् जलवत् अग्नि को कुछ न समझती हुई उसमें प्रवेश करती है।[2] इस प्रकार इस प्रसंग में सीता कुछ सरुप, निर्भीक, आदर्श पतिव्रता, त्यागमयी एव व्यथित नारी के रूप में चित्रित की गई है।

उड़िया की सीता निर्वासन के समय भी पारिवारिक ममत्व बनाये रहती है। यहाँ वन मे भी राम के योग-क्षेम के प्रति चिन्तित होकर लक्ष्मण से उनका ध्यान रखने का आग्रह करती है।[3] जब वे वाल्मीकि के आश्रम से लौटती है, तब उनमें विनम्रता एवं स्वाभिमान दोनों के दर्शन होते है।[4] विनम्रता के कारण तो वे करबद्ध थी और स्वाभिमान के कारण लज्जावनत भी थी। सीता के इस स्वाभिमानिनी रूप का चित्रण पूर्वांचलीय रामायणों की विशेषता है। वाल्मीकि या अध्यात्म में सीता इस प्रसंग में स्वाभिमानिनी नही है।

वाल्मीकि की सीता की भाँति उड़िया की सीता भी पृथ्वी से प्रार्थना करती है कि हे वसुधे ! यदि श्रीराम को छोड़कर मेरा मन और किसी में स्थिर हो, तो तुम शीघ्र ही विदीर्ण हो जाओ। मै इस संसार के दुःख को अब और अधिक सहन करने मे असमर्थ हूँ। इतना कहती हुई सीता रुदन करने लगती है :

श्री रामहु मन येवे आने मोर थाइ। दुइ खंड होइ फाटि याउ वेगे मही ॥
सहि न पारइ मुहिं ए संसार दुःख। कांदन्ति बइदेही न चाहि रामसुख ॥
(उड़िया० ।७।१८०)

इस प्रकार उड़िया की सीता पतिव्रता एव दुःख पीड़िता सती है। वाल्मीकि की सीता की तुलना मे उनकी पीडा कुछ कम है। उड़िया की सीता के उक्त शपथ मे पृथ्वी

---

१. उड़िया० ।५।२४ — २. उड़िया०।६।११
३. वही, ६।११७, ११८ — ४. वही, ७।१७८

विदीर्ण नही होती, क्योंकि वे सती थी, किन्तु वाल्मीकि की सीता के वचनो से पृथ्वी विदीर्ण हो जाती है, क्योंकि वे असती नही थी। निष्कर्ष यह कि जहाँ उड़िया की सीता अपने सतीत्व के प्रमाणित हो जाने पर जीने की आशा रखती है, वहाँ वाल्मीकि की सीता सतीत्व प्रमाणित होने पर जीवित नही रहना चाहती।[1]

(घ) असमिया साहित्य की सीता की बंगला साहित्य की सीता से तुलना

पूर्वांचलीय भाषाओं मे सर्वप्रथम असमीया मे राम-सीता कथानक काव्य के रूप मे उपनिबद्ध किया गया है। असमीया भाषा की माधवकदली रामायण का इस दृष्टि मे विशेष महत्व है। इसका रचना काल १४वी शताब्दी के अन्त मे माना जाता है।[2] इस प्रसंग के अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक केवल पाँच काण्डो के प्रणेता माधवकदली माने जाते है। उत्तरकाण्ड की रचना शकरदेव ने और आदि काण्ड की रचना उनके प्रिय शिष्य माधव देव ने की थी। इस प्रकार उक्त रामायण की रचना मे तीन कवियो का योगदान माना जाता है।

बगला की कृत्तिवास रामायण और असमीया की माधवकंदली रामायण का पारस्परिक साम्य पर्याप्त मात्रा मे दृष्टिगोचर होता है। बंगला रामायण का रचना-काल १४वी शताब्दी माना जाता है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि असमीया रामायण मे बगला रामायण का ही प्रभाव पडा है। वैसे तो दोनो ग्रन्थो का मूलस्रोत वाल्मीकि रामायण ही है, किन्तु प्रत्येक की कुछ मौलिकता भी है। प्रस्तुत प्रकरण मे असमीया राम साहित्य का सक्षिप्त परिचय देने के पश्चात् हम उक्त रामायण के आधार पर सीता का विस्तृत परिचय प्रस्तुत करेगे।

असमीया राम साहित्य में हरिवरविप्र कृत लवकुशेर युद्ध रचना चतुर्दश शताब्दी में हुई थी। इसमें सीता जी के निर्वासन से लेकर उनके पृथ्वी प्रवेश तक का कथानक वाल्मीकि के आधार पर वर्णित है। इस ग्रन्थ की सीता आदर्श पतिव्रता, सहिष्णु एवं त्यागमूर्ति है। उनके संयम एवं पवित्र व्यवहार से आश्रमवासी भी सन्तुष्ट है। लोकापवाद के भय से ही राम ने सीता का त्याग किया था, जबकि राम को इस विषय मे कोई सशय नही था।

इसके अनन्तर गीतिरामायण का विशेष महत्व है। प्रस्तुत रचना १६वी शताब्दी की मानी जाती है, इसके प्रणेता दुर्गावर थे। इस ग्रन्थ मे सीता जी दशरथ जी के पिडदान देती हुई चित्रित की गयी है। इसके अतिरिक्त सीता द्वारा पिंडदान

---

१. वा० रा० उत्तर०।९७।१५, १७

२. मैथिलीशरण अभिनन्दन ग्रन्थ : असमीया में राम साहित्य (पृ० ८३१) लेखक : विष्णुकान्त शास्त्री

देने की क्रिया में साक्ष्य न देने के कारण सीता जी चन्द्र, सूर्य, वायु, भूमि, फल्गु तथा ब्राह्मणो को शाप देती है। इस ग्रन्थ की यह अमर विशेषता है कि इसमें चित्रकूट में ही कृत्रिम अयोध्या की सृष्टि होने का वर्णन किया गया हे। राम सीता एवं लक्ष्मण पिचकारी लेकर अयोध्यावासियो के साथ मदनोत्सव मनाते है। इसी प्रकार राम का सीता के साथ मनोरजन करना वर्णित है। सीता राम की चौसर क्रीड़ा भी उल्लेखनीय है।

इसके अतिरिक्त अनन्तकन्दली कृत चार ग्रन्थ सीता कथानक से सम्बद्ध है जीवस्तुति रामायण, महीरावणवध, पातालखण्ड रामायण और सीतारपाताल प्रवेश नाटक इनमे राम भक्ति को अधिक महत्व दिया गया है और सीता को आद्याशक्ति दुर्गा के रूप मे ओजमयी, शक्तिमयी एवं सामर्थ्यमयी सिद्ध किया गया है। शंकरदेव कृत उत्तरकाण्ड एवं राम विजय नाटक का भी अपना स्थान है। गगाराम कृत सीतावनवास, भवदेवविप्र कृत श्री रामचन्द्र अश्वमेध, चन्द्रभारती कृत महीरावणवध, रघुनाथ महन्त कृत कथारामायण एवं अद्भुत रामायण का भी महत्व है। रघुनाथ महन्त ने तो अद्भुत रामायण मे सीता के पाताल प्रवेश के पश्चात् भी उनके कथानक को आगे वढ़ाया है। सीता की इच्छा से वासुकि कुश तथा लव को पाताल ले जाता है, राम उन्हे लाने के लिए हनुमान जी को भेजते है। हनुमान स्त्री रूप धारण कर अपने को रत्नमंजरिणी नामक सीता की सखी वतला कर सीता के पास जाने का प्रयास करते है। सीता से मिलकर हनुमान जी लवकुश को राम के पास भेजने का प्रस्ताव करते है, सीता जी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर पृथ्वी से प्रकट होती है और लवकुश को समर्पित कर राम से यह कहकर अन्तर्ध्यान हो जाती है कि मै नित्य प्रति नित्यक्रियानन्तर आपकी सेवा मे आया करूँगी।

इस वृत्तान्त के अनुसार सीता जी में वात्सल्य, पतिसेवापरायणता एवं शक्तिमत्ता का प्रमाण मिलता है। इस प्रकार असमीया सीता साहित्य का सामान्य परिचय देने के पश्चात् हम माधवकन्दली रामायण के आधार पर सीता के स्वरूप पर आलोचनात्मक विचार प्रस्तुत करेगे :

असमीया की सीता वाल्मीकि की सीता से प्रभावित है। इसमें उनके आदर्श मानवी रूप की प्रधानता है। जव उन्हें ज्ञात होता है कि राम का राज्याभिषेक होना है, तव तो वे विशेष प्रसन्न होती है, किन्तु जैसे ही राम के उदासमुख से वनवास को आज्ञा का समाचार मिलता है, वे दु:खातिरेक से भूमि पर गिर पड़ती है, चिन्ता के

---

१. न याइवा प्रभु, वुलिया जानकी, आंचलंत धरिलत।

(असमीया रा०।१८, २५ छन्द)

कारण उनका मुख विवर्ण हो जाता है और वे राम के वस्त्र को पकड़कर उनसे वन न जाने का निवेदन करने लगती हैं।

इस प्रकार इस ग्रन्थ की सीता वाल्मीकि (अयो० । २६ सर्ग) की सीता से अधिक व्यथित प्रतीत होती है। वाल्मीकि की सीता तो शोकाकुल होकर राम से अनेक प्रश्न करती हैं, वे भूमि पर नहीं गिर पड़तीं और न यह प्रार्थना करती कि आप वन न जायँ। इस प्रसंग में असमीया की सीता अति साधारण नारी प्रतीत होती है, जिनमें धैर्य की न्यूनता है, सुख-दुःख में समत्व की भावना नहीं है। कृत्तिवास की सीता वनवास का समाचार सुनकर राम से कुछ नहीं कहती, वे प्रकोष्ठ पर्यन्त राम को भेजने आती हैं।[1] इस प्रकार उनमें गाम्भीर्य अधिक प्रतीत होता है।

असमीया की सीता वनगमन के समय राम द्वारा घर रहने के प्रस्ताव करने पर राम को अपशब्द नहीं कहतीं, अपितु वे राम से यही पूछती हैं कि प्रभु किस कारण से उपेक्षित कर जा रहे हैं, क्या मैं सौन्दर्य में कम हूँ।[2] कृत्तिवास की सीता अपने सौन्दर्य के विषय में ऐसा कोई प्रश्न नहीं करती, वे सन्ताप एवं क्रोध से भर कर केवल इतने ही कटुशब्द कहती हैं कि आप पंडित होकर निर्बोध की भाँति वचन कह रहे हैं। मेरे पिता ने किसलिए आपको अर्पित किया था।[3] असमीया की सीता राम से कहती हैं कि यदि आप मुझे त्याग जायेंगे तो मेरा जीवन व्यर्थ जायगा। मैं या तो कटार मार कर अथवा गरल पीकर अपना जीवन खो दूँगी।[4] वे पति के साथ वन के कष्टों की बिलकुल परवाह नहीं करतीं। वे वनश्री के दर्शन हेतु भी राम के साथ जाना चाहती हैं, जैसा कि वाल्मीकि (अयो० । २६ । १३) की सीता ने भी कहा था। कृत्तिवास की सीता भी पतिभक्ति के कारण वनवास के दुःखों को भोगने के लिए प्रस्तुत हैं, वियोग में उनका प्राणान्त होना निश्चित है।[5] वे अपने मरण के दोषी राम को ठहराकर उन्हें स्त्रीहत्या का भागी होने का भय भी दिखलाती हैं। वे अपने

१. सीता स्थाने लइलेन श्रीराम विदाय। प्रकोष्ठे तिनेक सीता अनुव्रजि जाय।
(कृत्ति० अयो० । २३२)

२. कमन अंगत मोक हीन देखिलाहा। कि कारणे मोक प्रभु उपेक्षिय याहा॥
(अस० । १८६१ छन्द)

३. पंडित हइया बूल निर्व्वोधेर प्राय। केनहेन जने पिता दिलेन आमाय॥
(कृत्ति० । अयो० । २४१)

४. तुम एरि गैले मोरि जीवन निष्फल।
कटारत मर नुहि भुजिवो गरल॥ (असमी० । १८६२ छन्द)

५. तुम छोड़ आभि गैले त्याग जिव जीवन। स्त्रीवध हइले नाहि पापविमोचन॥
(कृत्ति० । अयो० । २४२)

वन जाने का कारण वनदर्शन नही बतलाती, उनका मुख्य लक्ष्य तो प्रियसान्निध्य है। असमीया की सीता यह तर्क नही देती कि मेरे पिता जनक के समक्ष किसी मुनि ने पति के साथ मेरे वनगमन की भविष्यवाणी की थी, किन्तु कृत्तिवास की सीता इस तर्क का भी आश्रय लेती है, इस प्रकार असमीया की सीता की अपेक्षा बंगला की सीता वाल्मीकि की सीता के अधिक समीप है।

जिस समय कनक मृग प्रसग में सीता लक्ष्मण को भेजना चाहती है और लक्ष्मण अपने कर्तव्यपालन के विचार से नही जाना चाहते, उस समय असमीया की सीता अत्यन्त उग्र होकर लक्ष्मण को अपशब्द कहती है। वे कहती है कि तेरा मुख तो मृग का है, किन्तु शरीर व्याघ्र का है। तेरे मुख मे अमृत है, किन्तु हृदय में विष है। रे चांडाल ! तू भरत के उत्कोच पर राम की चाटुकारिता करता हुआ यहाँ आया है। मैं राम के बिना प्राण त्याग दूँगी, किन्तु परपुरुष का तो चरण से भी स्पर्श नही करूँगी।[1] बंगला की सीता भी इस प्रसंग मे लक्ष्मण के प्रति सरुष हो जाती है, किन्तु वे लक्ष्मण को व्याघ्रमुख आदि अपशब्द नही कहती। उन्हे भी यह कहना पड़ता है कि तुम भरत द्वारा प्रेषित हो, वे राज्य चाहते है और तुम मुझको चाहते हो, किन्तु मैं तो अन्य पुरुष की ओर मन भी नहीं कर सकती, भले ही गला कट जाय और जीवन समाप्त हो जाय।[2] इस प्रकार बंगला की सीता की तुलना में असमीया की सीता अधिक सरुप एवं कटु हैं, पतिप्रेम दोनों की कटुता का मूल कारण प्रतीत होता है।

जब रावण सीता का अपहरण करने के लिए उनके समक्ष उपस्थित होकर प्रणय प्रस्ताव करता है, उस समय असमीया की सीता रावण की तीव्र भर्त्सना करती हुई कहती है कि मैं सिह को छोड़ कर तुम गधे का भजन क्यों करूँ।[3] वे अपने दृढ़पातिव्रत की सूचना देती हुई कहती है कि मै परपुरुष की छाया का तो चरण से भी स्पर्श नही करूँगी।[4] सीता रावण को मृत्यु का भय दिखाती हुई कहती है कि तुम जलती हुई अग्नि को वस्त्र से बाँधना चाहते हो।[5] काम भावना से मुझे देखने पर नेत्र नहीं निकल पड़े और राम की भार्या (मुझको) को लघुवचन कहते समय तुम्हारी जिह्वा नही खिसक गई।

---

१. असमीया रामायण (माधव कन्दली) ३१०७, ३११२ छन्द
२. अपर पुरुषे यदि जाय मम मन।
गलाय काटारि दिया त्यजिब जीवन ॥ (कृत्ति। पृ० ३३६)
३. गाधक भजिबो केन सिहक एरिया। (असमीया। ३१६१ छन्द)
४. चरणे न छुइबो परपुरुषर छाया ॥ (वही, ३१६२)
५. ज्वलंत अग्निक वेटा वस्त्रे बंधिनेस। (वही, ३१६५)

मोक काम भावे चाहते रावण चक्षयो वाज न भैलो।
रामर भार्याक लाघव वोलते जिह्वायोखसि न गैल ॥
(अ० । रा० ।४१७६ छन्द)

सीता कहती हैं कि रावण, भले ही त्रैलोक्य का राजा हो, किन्तु मैं उसकी छाया पर भी पैर नही रखूँगी।[1] बंगला की सीता भी रावण का तिरस्कार करती है। वे उसे शृगाल कह कर उसे सपरिवार नष्ट हो जाने का भय दिखलाती है। अकेली स्थिति मे यह अपघात करने वाले रावण को निर्लज्ज एव दुष्ट भी कहती है।[2] इस प्रकार तुलना करने से यह सिद्ध होता है कि इस प्रसग मे असमिया की सीता बगला की सीता की अपेक्षा अधिक निर्भीक एव सरुप है। तेजस्विता तो दोनो ग्रन्थो की सीता मे विद्यमान है, किन्तु बगला की सीता मे शालीनता अधिक है।

असमिया की सीता अपने प्रत्येक आचरण के प्रति सजग रही है। अशोक-वाटिका मे भी वे रावण के सम्मुख आजाने पर मुख फेर लेती थी, सम्मुख बात करना उनके सतीत्व के विरुद्ध था :

रावणक लाजे, भये पिठि दिया।
सीताये दिला उत्तर ॥ (अ० रा० ।४१३७ छन्द)

बगला की सीता रावण के आते ही आतकित हो जाती है, वे पीठ तो नही फेरती किन्तु विकल होकर नतमस्तक हो जाती है, जिससे वे रावण को न देख सके :

विकल करिया सीता केला हेट माथे।
माथा तुलिना चाहेन रावण साक्षाते ॥ (कृत्ति। पृ० ४६३)

ऐसा प्रतीत होता है कि असमिया की सीता बगला की सीता की अपेक्षा रावण को अधिक तिरस्कृत समझती थी। रामायण तथा महाभारत प्रभृति अनेक ग्रन्थो मे सीता तृण की ओट से रावण से बात करती है। वा० रा० मे यह उल्लेख मिलता है कि सीता जी ने तृण की ओट से बात प्रारम्भ की, किन्तु बाद मे उसकी ओर से मुख फेर लिया।[3] इसी उल्लेख से प्रभावित होकर माधव कदली (असमिया के कवि) रामायण ने भी ऐसा ही उल्लेख किया है।

असमीया की सीता हनुमान से राम के योग-क्षेम के विषय मे भी पूँछती है,

---

१. त्रैलोक्येर राजा होवे यद्यपि रावण।
तथापि छायात तार ने दिवो चरण॥ (असमिया ।४२१६ छन्द)

२. कृत्तिवास। पृ० ३३८, ३४०

३. एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनम्।
राक्षसं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत ॥ (वा० रा०। सुन्दर० २१।५)

उन्हें अपने स्वामी के आहार-विहार, शयनादिक की चिन्ता लगी रहती है।[1] इसी के साथ वे यह भी पूँछती है कि राम क्या मेरा भी स्मरण करते है। इससे सीता जी का पतिप्रेम, उनकी बुद्धिमत्ता एवं आन्तरिक वेदना का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। बंगला की सीता हनुमान से प्रथम यही प्रश्न करती है कि मेरे कमलनयन (राम) कैसे है, उनका समय किस प्रकार व्यतीत होता है, इसके पश्चात् उनकी कुशलता बताओ। वे लक्ष्मण की कुशलता पूछती हुई अपने कुवचनों पर पश्चात्ताप भी करती है।[2] इस प्रकार बंगला की सीता असमिया की सीता से अधिक सहृदय प्रतीत होती है, जहाँ तक दाम्पत्य प्रेम का प्रश्न है दोनो में समान ही प्रतीत होता है, पति की कुशलता की चिन्ता उभयत्र है।

असमीया सीता हनुमान के प्रस्ताव पर उनकी पीठ पर चढ़ कर राम के पास आने को तैयार नही होती। वे कहती है कि मुझे समस्त जगत सती समझता है, अतः मैं परपुरुष का स्पर्श कैसे कर सकती हूँ। जहाँ तक अपहरण वेला मे रावण के स्पर्श का प्रश्न है वहाँ तो मै अबला जाति स्वतन्त्र नही थी :

मइ शांती कन्या हेन जानय जगते।
परपुरुषर अंग छुइबो केन मते॥
बुलिब रावण यिये आनिलेक हरि।
स्त्री जाति पराधीन नोहे स्वतंतरी॥

(माधव कंदली रामायण, पृ० ४३००, ४३०१)

इस प्रसग में (बंगला) कृत्तिवास रामायण की सीता अधिक तर्कशील है। वे असमीया की सीता की भाँति ही परपतिस्पर्श को दूषण और रावण के स्पर्श की विवशता तो बतलाती ही है, साथ ही अपने सिन्धु पतन की आशंका भी व्यक्त करती है। इसके अतिरिक्त उन्हें रावण के समान चौर कार्य पसन्द नही, वे तो वीरांगना है, अतः वे चाहती है कि राम रावण को मार कर वीरोचित ढंग से उनका उद्धार करें।[3] इस प्रकार बगला की सीता मे स्वाभिमान एवं आभिजात्य की वही मात्रा है, जो वाल्मीकि की सीता में है।

जब अग्नि परीक्षा के पूर्व सीता राम के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, तब

---

१. सार करि कथा मोत कह हनुमन्त।
मोहोर कि स्वामी राम कुशलेआछंत॥
किमन शयन स्नान भोजन करत।
किवा चिन्ता करि मोक प्रभु सुमिरंत॥ (असमीया।४२८२, ४२८३)

२. कृत्ति०। सुन्दर०, पृ० ५०९

३. कृत्ति०। सुन्दर० (सीता देवी ओ हनूमानेर कथोपकथन) पृ० ५१८, ५१९

असमीया की सीता भयवश रुदन करने लगती हैं, किसी ओर देखती नही, संकुचित होकर राम के पास जाती हैं और लज्जा तथा भय के आवरण को दूर कर राम की ओर देखने लगती हैं। उन्हें अपनी शुद्धता पर विश्वास था, अतः धैर्य धारण कर कटाक्षों से राम को देखती हुई खड़ी रह जाती हैं।[1] लगभग इसी स्थिति में बंगला की सीता भी राम के पास उपस्थित होती है। वाल्मीकि की सीता इस प्रसंग में विस्मय, प्रहर्ष तथा स्नेह से राम को देखती हैं, लज्जा का भाव उनमें भी विद्यमान है।[2] वाल्मीकि की सीता भी रुदन करती हैं, किन्तु उस रुदन में भय नही, विरह वेदना व्याप्त है, जब कि असमीया की सीता भयवश रुदन करती हैं।

राम द्वारा उपेक्षित होने पर असमीया की सीता कोई आक्रोश नही व्यक्त करतीं, अपितु अपनी सच्चरित्रता ही प्रमाणित करती हैं। वे अपने स्वभाव का स्मरण दिला कर राम से कहती हैं कि आप व्यर्थ ही मेरी दुर्गति क्यों करते है। मैं तो शैशव में भी बालकों का स्पर्श नही करती थी।[3] इसकी तुलना में असमीया की सीता शैशव से ही अपनी सच्चरित्रता तो नही प्रमाणित करती किन्तु वे अपने आभिजात्य का स्मरण दिलाकर राम से कहती हैं कि आप मुझे नटी के समान किसी अन्य को देना चाहते हैं। मुझे तुच्छ नारी न समझिये। पापी रावण ने मेरा हरण किया, उसमें मेरा क्या अपराध, मैं तो स्त्री जाति की हूँ जो स्वतन्त्र नही परतन्त्र होती है :

उत्तम कुलत आमि जनम लभिलों।
महत कुलत मोक बापे विहा दिला ।।
आमाक इतरनारी सम देखिलाहा।
नटर नटिनी येन आनक बिलाहा ।।
पापिष्ठ रावण मोक आनिलेक हरि।
तिरी जाति पराधीन नही स्वतन्तरी ।। (असमीया।६४८२, ८३ छंद)

इतना नही, सीता अपने सतीत्व में देवता, धर्म तथा पृथ्वी को भी साक्षी देती है।[4] इससे यह सिद्ध होता है कि असमीया की सीता बँगला की सीता की अपेक्षा अधिक त्रस्त हैं।

---

१. आ० रा० ।६४६२, ६४७२ छद   २. वा० रा०।लंका ११४।३४, ३६

३. भाल मते जान प्रभु आमार प्रकृति।
जानिया शुनिया केन कर दुर्गति ।।
बाल्य काले खेलिताम बालक मिशाले।
स्पर्श नाहि करिताम पुरुष छाओ याले ।। (कृत्ति० वा० रामायण)

४. तुमि येन शंकि आमि न हो हेन ठान।
देव धर्म साक्षी हुइवा पृथिवी प्रमाण ।। (अ० रा०।६४८४ छंद)

जिस प्रकार वाल्मीकि (युद्ध०।११६।१६) की सीता राम की निर्दयता से दुखी है, उसी प्रकार असमीया की सीता भी राम की निर्दयता से दुःखित है, उनका आक्रोश समस्त पुरुप वर्ग तक व्याप्त हो जाता है :

न सुमिरा मोर एक दिवसर गुण ।
निर्दय पुरुप जाति किनो निदारुण ।। (अ०रा०।६४८६ छद)

बंगला की सीता को भी राम के इस वर्ताव से क्षोभ है, किन्तु वे समस्त पुरुपवर्ग की कठोरता पर अपना आक्रोश नही व्यक्त करती । उन्हे तो सभा के मध्य राम द्वारा अपमानजनक वचन कहे जाने पर क्षोभ है ।[1] ऐसा होना मनोवैज्ञानिक भी है, क्योंकि व्यक्ति का यह स्वभाव होता है कि वह एकान्त मे हुए अपमान की अपेक्षा सर्वसम्मुखीन अपमान को बहुत बुरा समझता है । यह भावना उस समय और अधिक चोट पहुँचाती है, जब अपना ही व्यक्ति सार्वजनिक रूप से अपना अपमान करता है । वस्तुतः तुलसी ने भी सबसे कठिन जात अपमाना के रूप मे आत्मीयजन कृत अपमान का अतिकष्टप्रद बतलाया है ।

शंकरदेव विरचित उत्तरकाण्ड (असमीया रामायण) में सीता की मनोव्यथा का अत्यन्त करुण चित्रण किया गया है । उन्होंने सीता को राम के प्रति सरुष दिखाया है । गर्भिणी नारी, पुनः आसन्नप्रसवा का यह परित्याग कविहृदय सहन नही कर सका । इसकी सीता लक्ष्मण को अधीर होकर रोता देख कर समझाती तो है, किन्तु वे अपनी असहाय स्थिति को समझती हुई वेदना को सहन नही कर पाती ।

कौन दिशे याओ एवे न पाओ उद्दिस (उत्तर०।६७१९ छंद अ०रा०)

बगला की सीता भी परित्याग से व्यथित है, किन्तु वे अपेक्षाकृत इतनी व्यथित नही है । वाल्मीकि (उत्तर०।४८।२६) की सीता की भाँति वे अपने को अनाथ समझकर रुदन करती है और शीघ्र ही उन्हें वाल्मीकि की शरण मिल जाती है । असमीया सीता को राम के व्यवहार से इतना अधिक असन्तोष है कि जब अश्वमेधयज्ञ में सीता को बुलाने के लिए राम जी हनुमान विभीषण शत्रुघ्न तथा सुषेण को सीता के पास भेजते है, तब सीता कहती है कि मुझे अयोध्या के सुखभोग की अभिलाषा नही है । यदि मैं पुनः राम के पत्नी के रूप में वहाँ जाऊँ तो मुझसे बढ़कर निर्लज्ज नारी कौन होगी । राम ने मेरी हत्या के उद्देश्य से मुझ गर्भवती का परित्याग किया, अब उनमे साहस है कि मुझे स्वीकार करे । कुटिल जनो के वचनो के आधार पर राम ने मेरा निष्कासन किया, अस्तु ऐसे पति राम तो मेरे लिए यमराज है ।[2] इस प्रकार सीता

---

१. दुष्टा नारी नहि आमि परे कर दान ।
सभा विद्यमाने कर एत अपमान ।। (कृत्तिवा० रामायण)

२. असमी० रामा०।उत्तर०।६६९४, ६६९६ छंद

हनुमानादिक के साथ जाना अस्वीकार कर देती है। बंगला की सीता इतना आक्रोश नही व्यक्त करतीं। उनकी दृष्टि में राम यम नही जन्म-जन्मान्तर के पति है।[1] वे राम को अपनी हत्या का षड्यंत्रकर्ता नही मानती।

असमीया की सीता महर्षि की आज्ञा से राम के पास चलने के लिए विवश हो जाती हैं, किन्तु लज्जा तथा अपमान के कारण उनके हृदय में भयानक विद्रोह जाग्रत हो जाता है, संकोच के कारण उनके पैर आगे नही बढ़ते। यथाकथचित् सिर झुकाये हुए वाल्मीकि जी के साथ चलती है, किन्तु दृष्टि संयत रहती है। राम की सभा में वाल्मीकि जी सीता की शुद्धता प्रमाणित करते हुए कहते है : मैं हाथ उठाकर सभा में शपथ लेता हूँ यदि सीता दोषयुक्त हो तो मेरे कोटिजन्म कृत सत्कर्म नष्ट हो जायँ और इस जन्म में किये गये तप तथा धर्माचरण भी नष्ट हो जायँ। वाल्मीकि के इन वचनों से राम सन्तुष्ट हो जाते है, किन्तु सीता की अन्तर्व्यथा कैसे शान्त हो सकती थी? कोप एवं अपमान के कारण उनका चित्त स्थिर नहीं था।[2]

उक्त वर्णन वाल्मीकि रामायण (उत्तर० । ९६ । १८, २०) के आधार पर किया गया है। वहाँ भी वाल्मीकि जी सीता को निष्पाप सिद्ध करने के लिए अपनी तपश्चर्या की शपथ लेते हैं। असमीया की सीता इस समय राम के प्रति अधिक असन्तुष्ट हैं, किन्तु अगले जन्म मे भी राम के पति रूप में प्राप्त होने की कामना करती है। वे यह भी कामना करती है कि अगले जन्म मे जनक ही मेरे पिता हों, दशरथ ही मेरे श्वसुर हों, कौसल्या ही मेरी सास हों, भालू एव मर्कट ही मेरे पुत्र तुल्य सहायक हों और लक्ष्मणादि मेरे देवर हों। वे पाताल-प्रवेश करने के पूर्व राम की तीन बार परिक्रमा करती है और उनकी चरणरज को मस्तक में लगाकर राम से क्षमा प्रार्थना करती हुई कहती है कि मुझे खेद है कि मैं आपकी चरणसेवा न कर सकी।[3]

उक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि असमीया की सीता राम के प्रति क्रुद्ध एवं असन्तुष्ट होती हुई भी अपने दाम्पत्य प्रेम को कम करने मे असमर्थ है, उनमे राम-परिवार के ऊपर वैसा ही स्नेह एवं ममत्व है। वे स्वयं को रानी न समझ कर राम की चरण सेविका ही समझती रही हैं। उनका जीवन एक सती नारी का अभिशप्त जीवन है, जो आपत्तियों एवं प्रपीडनो पर भी अपने आराध्य पतिदेव राम को हृदय मे त्यागने में असमर्थ है। उन्होने आदर्श जननी का व्रत लिया, परित्यक्ता होने पर

१. राम हेन स्वामी हउक जन्म जन्मान्तरे (कृत्तिवास०। पृ० ५२६)
२. कोपे अपमाने आति चित्तु नुहि थिर। (आ०रा०।७०७४)
३. हृदय खेदत थि किछु बुलिलोइ दोष क्षमा आमाक।
तोमार चरण सेविवे न पाइलो मोरे से कर्म विपाक। (अ० रा० । ७०९३)

भी रघुवंश के अंकुरों को पल्लवित करने के लिए जीवित रही और अन्तिम क्षणो तक वात्सल्य का निर्वाह करती गईं। उन्होने दोनों पुत्रो को सहयोग से चलने का उपदेश दिया और उनके चिरंजीवी होने का आशीर्वाद देकर पाताल में प्रविष्ट हो गयी। इस सीता की तुलना में बँगला की सीता पुत्रों के प्रति इतनी वात्सल्यमयी नही प्रतीत होतीं। वे तो जन्मजन्मान्तर में राम के ही पति रूप में प्राप्त होने एवं अगले जन्म में इस प्रकार की छीछालेदर न करने की प्रार्थना करती हुई पाताल में प्रविष्ट हो जाती है। पारिवारिक ममत्व के प्रति उनका कोई विचार ही नही प्रतीत होता।[१]

१. जन्मे जन्मे प्रभु मोर तुम हओ पति।
आर कौन जन्मे मोर करौ ना दुर्गति॥
नाहि चाहिलेन सीता उभय छाओयाले।
श्री रामे निरखिया प्रवेशे पाताले॥ (कृत्तिवास० रामा०। ५७३)

अध्याय ५

पश्चिमांचलीय भाषाओं में श्री सीता

भारत के पश्चिमांचल में मराठी तथा गुजराती भाषाओं का विशिष्ट महत्व है। दोनों भाषाओं में सीता विषयक अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। यद्यपि उक्त भाषाओं के क्षेत्रों में श्रीकृष्ण की सरस कथा का विशेष प्रभाव रहा है, किन्तु भक्तिधाराओं में से रामभक्तिधारा ने भी उक्त क्षेत्रों को आप्लावित किया है। १४वीं शताब्दी से इन भाषाओं में सीता चरित्र से सम्बद्ध ग्रन्थों की रचना प्रारम्भ हुई थी और अद्युनापर्यन्त किसी न किसी रूप में रचनायें होती जा रही हैं।

(क) मराठी साहित्य में श्री सीता और उसकी मूल प्रेरणा

मराठी भाषा संस्कृत के अति सन्निकट है। यद्यपि इसमें सीता चरित्र से सम्बन्धित पृथुल साहित्य की सृष्टि हुई है, किन्तु उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना भावार्थ रामायण है। इनके प्रणेता कविवर एकनाथ माने जाते हैं। इसका रचनाकाल १५८० के लगभग माना जाता है। इस ग्रन्थ से पूर्व मराठी मे रामकथा का निवन्ध नहीं हुआ।

मराठी राम साहित्य में सीता स्वयंम्वर के नाम से अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है, जिससे यह सिद्ध होता है कि सीता जी के जीवन का यह अंश मराठी कवियों में विशेष आदृत रहा है। जनी जनार्दन और विठारेणुकानन्दन (१६वी शतक) रामदास, वेगावाई, वामन तथा जयराम स्वामी (१७वीं शतक) आनन्द तनय, गोसावीनन्दन, नागेश विट्ठल, (१८वी शती) प्रभृति कवियों ने सीतास्वयम्वर नामक ग्रन्थों की रचनायें की हैं। अधिकांश में आनन्द रामायण (संस्कृत) का प्रभाव प्रतीत होता है।

परवर्ती कवियों ने मुख्यत: भावार्थ रामायण के आधार पर ही अपने ग्रन्थों की रचना की है। कृष्णदास मुगदल ने युद्धकाण्ड की रचना की है। इसमें मायासीता का उल्लेख मिलता है। मुक्तेश्वर की संक्षेप रामायण में भावार्थ की ही कथावस्तु का संक्षेपण प्रस्तुत किया गया है। इनकी द्वितीय रचना 'अहि-महिरावण-वध' से सीता कथा का कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। माधव स्वामी ने भी परम्परानुसार दो रामायण ग्रन्थों की रचना की थी। महाराष्ट्र में प्राय: समर्थ रामदास की रचनायें भक्ति क्षेत्र में विशेष लोकप्रिय हैं। इन्होंने लघुरामायण सुन्दर काण्ड तथा युद्धकाण्ड नामक रचनायें

प्रस्तुत की है। इन तीनों में कवि ने सीता को मानवी नहीं, एक अलौकिक शक्ति के रूप मे मान्यता दी है, स्थान-स्थान पर भक्ति का पुट दिया है। वेणाबाई ने भी रामायण की रचना की, जो प्रायः भावार्थ पर ही आधारित है। उक्त समस्त रचनाये १७वी शताब्दी में हुयी है। १७०३ ई० में श्रीधर ने राम विजय नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ भी अधिकांश भावार्थ रामायण की कथावस्तु से प्रभावित है।

मराठी साहित्य में मोरोपन्त कवि का गौरवस्थान है। इन्हे मराठी के केशव भी कहते है। इन्होंने ७४ रामायण ग्रन्थों की रचना की थी। इनमें कथावस्तु के प्रकारो मे सामान्य अन्तर पाया जाता है। भक्ति का पुट इनमे भी दर्शनीय है। कवि ने अपनी कथावस्तु का मूलाधार वाल्मीकि रामायण को ही माना है। १९वी शताब्दी मे अमृतराव ओक की रचना शतमुख रामायण एक उत्तम कृति के रूप मे मान्य थी। इस प्रकार मराठी मे सीताराम की कथा समादृत रही है और भावार्थ रामायण रामकथा का ऐसा ही मान्य ग्रन्थ माना जाता है, जैसा कि हिन्दी में रामचरित मानस। यहाँ पर हम इसी ग्रन्थ को आधार मानकर मराठी साहित्य की सीता का विश्लेषण प्रस्तुत करेगे।

भावार्थ रामायण मे मुख्यतया वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण एव आनन्द रामायण इन तीन ग्रन्थो का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ की कथावस्तु का गठन तो वाल्मीकि पर आधारित है किन्तु जहाँ-तहाँ उसमे भक्ति का आवरण प्रतीत होता है। इनके अतिरिक्त अपेक्षाकृत नवीन सामग्री का स्रोत आनन्द रामायण सिद्ध होता है। विशेप कथानको का सकेत करते हुए इसकी प्रामाणिकता सिद्ध की जायगी। कतिपय स्थलो मे कवि की स्वतन्त्र प्रतिभा का भी परिचय मिलता है।

भावार्थ रामायण की सीता अग्निजा है। राजा पद्माक्ष लक्ष्मी की उपासना करते है और लक्ष्मी उन्हे पुत्री के रूप में प्राप्त होती है। राजा पद्मा नाम से उसे अभिहित करता है। इस कन्या के स्वयम्बर मे ही राजाओं से युद्ध होता है और पद्माक्ष की मृत्यु हो जाती है। यह दृश्य देख कर पद्मा अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है। एक दिन रावण अग्निकुण्ड मे खेलती हुई उस कन्या को देखता है, पर कन्या तुरन्त अदृश्य हो जाती है। रावण अग्निशमन करके वहाँ से पञ्चरत्न प्राप्त कर एक पेटिका में रख लेता है। जब वह लंका से बाहर उसे खोलता है तब एक कन्या मिलती है। मन्दोदरी की इच्छा से कन्या उसी पेटिका में रख कर मिथिला मे गाड़ दी जाती है, जिसे एक कृषक प्राप्त करता है और राजा जनक को अर्पित करता है, जनक उस कन्या को पुत्री के रूप में स्वीकार करते है।[1] उक्त कथा का मूल आनन्द

१. भावार्थ रामायण १।१५

रामायण है।[१] उक्त ग्रन्थ में ही सीता के अग्निजा रूप का उल्लेख पाया जाता है। भावार्थ रामायण के अनेक सन्दर्भ आनन्द रामायण से प्रभावित है। इस प्रकार भावार्थ की सीता लक्ष्मीस्वरूपा है। १५वी शताब्दी की इस रचना मे भक्ति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है, अतः इस ग्रन्थ की सीता में अलौकिकता तथा माधुरी का सुन्दर समन्वय किया गया है।

सीता के इस अलौकिक रूप का प्रदर्शन भावार्थ में अनेक स्थलों पर किया गया है। एक वार परशुराम जी जनक के महलों में देखते है कि सीता शंकर के अजगत धनुष को लेकर खेल रही हैं। वे जनक जी को यह परामर्श देते हैं कि तुम्हारी पुत्री असाधारण शक्तिमती है और लोक में असामान्य है, अतः तुम इसका विवाह उसी वीर के साथ करना, जो इस धनुष के भंग करने में सक्षम हो। जनक जी परशुराम के इस परामर्श का स्वागत करते है और सीता विवाह के प्रण के रूप में धनुर्भंग करने के प्रण को प्रसिद्ध करते हैं।[२]

उक्त सकेत से यह सिद्ध होता है कि सीता जी में शारीरिक शक्ति भी असाधारण थी। आनन्द रामायण में (१।३।६०) भी सीता द्वारा धनुप उठा लिये जाने की घटना का उल्लेख मिलता है, जिसके आधार पर जनक जी को इस रहस्य का ज्ञान हो गया था कि सीता लक्ष्मी का अवतार हैं :

> अश्ववत्तद्धनुः कृत्वा जानकी क्रीडनं व्यधात् ।
> जामदग्न्यस्तेन सीतां ज्ञात्वा लक्ष्मीं तदिच्छया ।
> ददौ नृपं पणार्थे तद्धनुरन्यैर्दुरासदम् ॥ (आ० रा० १।३।५९, ६०)

चित्रकूट वासकाल में काक द्वारा चंचुप्रहार का जो वृत्तान्त विभिन्न रामायणों में वर्णित है, उसमें काक के विपय में अनेक मतभेद पाये जाते हैं। भावार्थ रामायण के अनुसार मुदसव नामक गन्धर्व ही काक के रूप में आया था,[३] किन्तु अधिकांश ग्रन्थों में इन्द्रपुत्र जयन्त के ही काक रूप धारण करने का उल्लेख है।

सीता हरण के पूर्व सीता का अग्नि में वास करना और माया सीता अथवा छाया सीता का अपहरण होना, यह वृत्तान्त अनेक परवर्ती रामायणों में प्राप्त होता है। भावार्थ रामायण में भी कुछ परिवर्तन के साथ उक्त वृत्तान्त इस प्रकार दिया गया है :-

देवगण यह समझते थे कि रावण सीता के समीप जाते ही उनके सतीत्व के तेज से भस्म हो जायगा। इस प्रकार अन्य राक्षस अवशिष्ट रह जायेंगे और हमारा उद्देश्य पूर्ण न होगा, फलतः हरण के समय वे सीता जी को परामर्श देते हैं कि आप

१. आनन्द रामायण १।३।१८८, २७५ २. भावार्थ रामायण १।१७
३. भावार्थ रामायण २।१४

स्वयं रावण को भिक्षा न दें, हमारे द्वारा निर्मित सीता को भिक्षा देने के लिए भेजें। सीता उत्तर देती हैं कि माया सीता की रचना आप लोगों की शक्ति के बाहर है, मैं स्वतः अपनी छाया प्रेषित कर उसका अपहरण कराऊँगी और अन्त में वे ऐसा ही करती हैं।[1] इस प्रसंग में सीता अतुलित शक्तिस्वरूपा प्रतीत होती हैं और इस बात की भी सिद्धि होती है कि वास्तविक सीता का अपहरण नहीं हुआ, छाया सीता ही रावण द्वारा अपहृत हुई है। इस ग्रन्थ में रावण मोक्षप्राप्ति के उद्देश्य से ही सीता का अपहरण करता है, न कि कामभावना या किसी अन्य भावना से।[2] यही भाव 'आनन्द रामायण' (१।११।२४४) में भी प्रदर्शित किया गया है। रामकथा में रावण के इस उद्देश्य का वर्णन प्रायः ११ वीं शताब्दी से मिलता है। सर्वप्रथम रामतापनीय उपनिषद् (४।१७) में इसका उल्लेख मिलता है। अध्यात्म (३।५।६०) पद्मपुराण (६।२६९) एवं रामचरित मानस (३।२३।४) में भी यही उल्लेख मिलता है। भावार्थ रामायण में लक्ष्मण जी सीता की सुरक्षा के लिए पर्णकुटी के चारों ओर धनुषकोटि की सहायता से एक रेखा खींच देते हैं और ४ देवों की शपथ करते हुए कहते हैं कि जो इसको पार करेगा उसका सिर विदीर्ण हो जायगा।[3] आनन्द रामायण (१।७।९८) में भी यही तथ्य उल्लिखित है। इससे यह प्रतीत होता है कि सीता की सुरक्षा में लक्ष्मण विशेष संलग्न थे।

'भावार्थ-रामायण' में श्री राम हनुमान को अभिज्ञान स्वरूप मुद्रिकादान के प्रसंग में यह बात बतलाते हैं कि जब सीता वल्कल वस्त्र धारण करने में असमर्थ थीं, तब मैंने अपने हाथ से उन्हें उक्त वस्त्र पहनाये थे।[4] इस कथन से सीता का भोलापन एवं राम की स्नेहानुवृत्ति का प्रमाण मिलता है। इस अभिज्ञान के अतिरिक्त जो एक नवीन तथ्य प्राप्त होता है, वह यह कि राम हनुमान से बतलाते हैं कि सीता की हनु (दाढ़ी) पर मेरा एक लघु चित्र अंकित है।[5] यह उल्लेख कवि की मौलिक सूझ का परिणाम है। इसके अनुसार सीताराम की पारस्परिक प्रीति की प्रगाढ़ता पर प्रकाश पड़ता है और इस बात का भी संकेत मिलता है कि सीता अलंकरणप्रिय थी।

'भावार्थ रामायण' में सीता के साथ लक्ष्मण के अपूर्व संयमी रूप का चित्रण किया गया है। एक बार सीता जी सुप्तावस्था में अनावृत्त हो जाती हैं, राम आते हैं और लक्ष्मण के अपूर्व संयम को देख कर उनकी प्रशंसा करते हैं।[6] इस प्रकार इस ग्रन्थ की सीता लक्ष्मण पर पूर्णतया आश्वस्त हैं, वे उन्हें छली या अन्य कुछ नहीं समझती।

---

१. भावार्थ रामायण, ३।१६
२. भावार्थ रामायण, ६।२३
३. भावार्थ रामायण, ३।१५
४. भावार्थ, ३।१५
५. भावार्थ०, ४।१३
६. वही, अरण्य०।८

भावार्थ में मन्दोदरी से रावण कहता है कि तुम सीता को मेरे अनुकूल बनाने का प्रयास करो।[1] इससे यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ की सीता को रावण के यहाँ विशेष कष्ट मिला है।

'भावार्थ रामायण' में सीता त्याग का कारण ताराशाप भी माना गया है।[2] वालि के वध के पश्चात तारा राम को शाप देती है कि तुम बहुत दिनों तक सीता की संगति न प्राप्त कर सकोगे। सीता जी इस प्रसंग में यह भी आशंका करती हैं कि मैंने लक्ष्मण को दुर्वचन कहे थे।[3] हो सकता है, इसी कारण मेरा निर्वासन हुआ हो। इस प्रसंग में कवि ने सीता को शंकालु प्रवृत्ति की नारी तक नीचे उतार दिया है, जो सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है।

भावार्थ का लव-कुश-वृत्तान्त भी 'आनन्द रामायण' (जन्म०।६,८ सर्ग) पर आधारित है। इसके अनुसार सीता जी 'संयोगकरण व्रत' करती हैं, जिसके लिए लव प्रतिदिन अयोध्या के वीरों को परास्त कर कमल लाता है। ९ दिन में यह व्रत समाप्त होता है। इतने में अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ होता है और वाल्मीकि जी भी सीता तथा उनके पुत्रों सहित जाकर अयोध्या से कुछ दूर ठहर जाते हैं। यहीं पर लव अश्व हरण करता है और अन्त में शान्ति होने पर सीता सतीत्व का साक्ष्य देती हैं, फलतः राम उन्हें तथा लव कुश को अपना लेते हैं।[4]

भावार्थ में सीता का चंडी रूप भी प्रतिष्ठित किया गया है। जब कुम्भकर्ण का पुत्र मूलकासुर की माता को कैकेयी यह परामर्श देती है कि तुम अपने पुत्र को तपस्या के लिए प्रेरित करो, जिससे वह विभीषण का वध कर उसका राज्य छीन ले, तब ऐसी स्थिति आने पर सीता पुरुष का रूप धारण कर लंका जाती है और मूलकासुर का संहार कर अपनी अनुपम वीरता का भी परिचय देती है।[5] आनन्द रामायण (७।४,६ सर्ग) में उक्त कथानक का मूल विद्यमान है, वहाँ राम की अशक्तता पर ही सीता अपने शौर्य का परिचय देती है।

भावार्थ में सीता के भूमि प्रवेश का कथानक इस प्रकार है: जब सीता जीवन से सकुशल लौटकर अपने पुत्रों सहित अयोध्या में रहने लगती हैं, तब एक दिन कैकेयी राजसभा के समक्ष ही सीता के सतीत्व पर सन्देह प्रकट करती है, फलतः सीता जी अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिये पृथ्वी माता से प्रार्थना करती हैं कि तू मुझे अपने अंक में छिपा ले। अन्ततः पृथ्वी विदीर्ण होती है और सीता उसमें प्रविष्ट हो जाती हैं।[6]

---

१. भावार्थ०, ६।५५ — २. भावार्थ, ४।७
३. भावार्थ०, ७।४८ — ४. भावार्थ, ७।६६, ६९
५. वही, ७।७०, ७२ — ६. वही, ७।७३

इस प्रकार मराठी साहित्य की सीता लक्ष्मी स्वरूपा है, उनमें अपूर्व लावण्य है, अद्भुत गुणों का समावेश है। वे मानवी कम, देवी अधिक है। वे परम पावन अग्नि से उत्पन्न है, अतः उनकी पवित्रता एवं तेजस्विता स्वतः सिद्ध है। वे विवाह के पूर्व ही धनुष उठाकर अपनी अलौकिकता एवं दिव्य शक्ति का परिचय प्रस्तुत कर देती है। उनके स्वभाव में कोमलता एवं स्निग्धता अधिक है। प्रेम उल्लास मार्दव एव भावुकता उनके सहजात गुण है। उनमे इतनी शक्ति है कि वे अपनी छाया का स्वतः निर्माण कर लेती है और रावण उसी छाया सीता का ही अपहरण करता है। सीता अपने उपकारी हनुमान के प्रति अतिशय कृतज्ञ है, वे उन्हें अनेक आशीर्वाद देकर अनुगृहीत करती है। उनकी पति-परायणता की यही कसौटी है कि रावण उन्हे आकृष्ट करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रलोभन प्रदर्शित करता है, अनेक यातनाएं दिलाकर अपनी ओर आकृष्ट करने की चेष्टा करता है, किन्तु फिर भी वे उसका तिरस्कार करती है और राम के अतिरिक्त किसी अन्य का स्पर्श करना भी पाप समझती है। उनमे इतनी शक्ति है कि मूलकासुर जैसे दुष्ट को भी संग्राम भूमि मे सुला देती हैं।

सीता वनयातना की भी परवाह नही करती, वे वात्सल्य के कारण अनेक कष्टों को झेलती हुई लवकुश का परिपालन करती है और राम से इतनी सतायी होने पर भी उनके प्रति असन्तोष नही प्रकट करती। जब समय आता है, तब वे अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए भूमि में प्रविष्ट हो जाती है। इस प्रकार मराठी की सीता एक आदर्श पतिपरायणा पत्नी हैं, जिनमें त्याग एवं भोग का अद्भुत समन्वय पाया जाता है। वस्तुतः वे प्रेम की श्रेय मूर्ति है, भारतीय भावना की आदर्श देवी है, त्याग और बलिदान उनके यश के अमर प्रहरी है।

(ख) गुजराती साहित्य में सीता और मराठी साहित्य की सीता से उसकी तुलना

गुजराती भाषा का क्षेत्र उत्तर मे सिरोही मारवाड तक जो कच्छ तथा सिन्ध के थार और पारकर जिलों को भी आवेष्टित कर लेते है, है। दक्षिण मे इस क्षेत्र की सीता दमण गंगा तक है। महाराष्ट्र राज्य के थाणा जिले, सालसेट द्वीपस्वमूह और बम्बई शहर में भी गुजराती बोली जाती है। पूर्व में इसकी सीमा सह्याद्रि पर्वत श्रेणी है, जो उत्तरवर्ती होकर धरमपुर, पालनपुर एवं अरावली पहाड़ियों तक पहुँचती है तथा भील-बस्तियों का कुछ भाग भी जिसमें आ जाता है। पश्चिम ओर का सीमान्त स्वयं सागर ही है[1]। इस भाषा के बोलने वालो की संख्या १ करोड ६३ लाख से भी अधिक है।

---

१. गुजराती साहित्य का इतिहास: श्रीजयन्त कृष्ण हरिकृष्ण दवे (पृ० १) १९६३ प्र० सं २

यद्यपि गुजराती साहित्य में कृष्णोपासना का विशेष उल्लेख मिलता है, किन्तु ऐसा नही है कि उसमें रामोपासना के लिए कोई स्थान ही न हो। अनेक कवियों ने गुजराती भाषा के माध्यम से राम सीता का मूल्यांकन किया है और सत्साहित्य की सृष्टिकर अपनी भाषा के भण्डार की पूर्ति की है।

गुजराती राम साहित्य १४वी शताब्दी से उपलब्ध होता है। आसाईत कृत 'रामलीला ना पदो' पदशैली का प्राचीनतम ग्रन्थ है, जिसमें सीताराम विषयक पदों के माध्यम से कवि ने उनके जीवन की स्थूलकथा को संगीतात्मक रूप प्रदान किया है। सम्वत् १५२६ में कारमतमंत्री नामक कवि ने ४९५ कड़ियों में 'सीताहरण' नामक एक साधारण ग्रन्थ की रचना की, जो अध्यात्म रामायण की भाँति सीताहरण के कथानक से ओतप्रोत है। इसमें सीता के करुणरूप एवं सतीरूप का चित्रण किया गया है। पन्द्रहवी शताब्दी में ही 'मालण' नामक कवि ने 'रामविवाह' (अपूर्ण) तथा 'रामबालचरित' ग्रन्थों की रचना की। इनसे सीताविषयक कोई नवीन सामग्री नही प्राप्त हो सकी। १५वी शताब्दी मे ही मांडण नामक कवि ने किसी रामायण की रचना की थी, जो अपूर्ण है। इसमें अध्यात्म के आधार पर रामकथा वर्णित है। सम्प्रति जो प्रति पूना में उपलब्ध है, उसमें ७० कडवा प्राप्त होते है।

(सन् १५१६-६८) नाकर ने रामायण की रचना की है। 'लवकुशाख्यान' भी इनकी रचना मानी जाती है। १६वी शताब्दी मे मालण कवि के पुत्र उद्धव ने एक रामायण (अपूर्ण) की रचना की थी, जो श्री वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखी गयी है। उक्त रचना 'सुन्दर-काण्ड' तक की कथावस्तु प्रस्तुत करती है। गुजराती के प्रसिद्ध कवि विष्णुदास (१६वी शतक) ने भी रामायण की रचना की थी, उसमें कवि ने भक्ति का आश्रय लेकर रामकथा का वर्णन किया है, किन्तु यह रचना अधिक प्रसिद्धि नही प्राप्त कर सकी। वजियो कवि ने 'सीता वेल' तथा 'सीता सन्देश' नामक दो रामकथा ग्रन्थों की रचना की है। इनमे प्रथम की कथावस्तु सीतास्वयम्वर से सम्बद्ध है, जिसे पाँच कड़वों में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। द्वितीय ग्रन्थ में कवि ने हनुमान द्वारा सीता के करुण सन्देश को राम के पास पहुँचाने के रसात्मक कथानक को काव्य का विषय बनाया है। इस ग्रन्थ की सीता मे करुणा, प्रेम, दैन्य, नैराश्य, ग्लानि आदि का सजीव रोमांचक अस्तित्व चित्रित किया गया है। सूरत-निवासी 'हरिराम' ने 'सीता स्वयम्वर' नामक आख्यान काव्य की रचना की है। प्रेमानन्द (१७वी शती) की 'रणयज्ञ' रचना लघु होती हुई भी महत्वपूर्ण है। इसमे राम के अश्वमेध यज्ञ का. वर्णन किया गया है। हरिदास (१७वी शती) जो कि प्रेमानन्द के शिष्य थे, इन्होंने 'सीता विरह' नामक सुन्दर रचना प्रस्तुत की, किन्तु कथा परम्परित ही प्रस्तुत की है।

डभोई की एक विधवा ब्राह्मणी दिवाली बाई (१८वीं शती) ने रामजन्म तथा राम विवाह सम्बन्धी अनेक गीत लिखे हैं। इसी प्रकार कृष्णाबाई कृत 'सीता विवाह' भी एक सुन्दर रचना मानी जाती है। उमरेठ की पुरीबाई ने 'सीता मंगल' नामक ग्रन्थ की रचना की है। १९वी शताब्दी मे गिरधरदास ने सम्पूर्ण रामकथा 'गिरधर दास-रामायण' के नाम से प्रस्तुत की है। यह ग्रन्थ गुजराती राम-साहित्य मे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, इसी कारण इसे पर्याप्त लोकप्रियता भी प्राप्त है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उत्तर रामचरित, अध्यात्म रामायण आदि के गुजराती अनुवाद भी किए गये हैं।

इस प्रकार गुजराती राम साहित्य के सामान्य परिचय से यह निष्कर्ष निकलता है कि कृष्ण-कथा की तुलना में यहाँ राम कथा गौण रही है और अब भी है। जिन कवियो ने रामकथा को अपनी रचनाओं का आधार बनाया है, उनमे वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण की छाप मिलती है। गुजराती कवियो ने इन दो ग्रन्थो के अतिरिक्त अन्य प्रचलित रामकथा ग्रन्थो से भी यत्र-तत्र प्रभाव ग्रहण किया है। नर्मदाशकर रचित 'रामायण नो सार' एक ऐसी ही रचना है जिसमे कथाओं में वैविध्य प्राप्त होता है।

मराठी तथा गुजराती दोनों भाषाओ में सीता राम-साहित्य की रचना प्रायः एक ही समय प्रारम्भ हुई है। मराठी रचनाएँ 'मुख्यतया' 'आनन्द रामायण' से प्रभावित हैं और गुजराती रचनाये मुख्यतया अध्यात्म रामायण से प्रभावित है। वैसे तो उभयत्र वाल्मीकि-रामायण का भी आंशिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। शाक्त प्रभाव के कारण अथवा राम-भक्ति में सीता की विशेष प्रतिष्ठा के कारण इन भाषाओं के ग्रन्थों में सीता असुरसहारिणी के रूप मे भी प्रस्तुत की गयी है। देवी-भागवत (१२वी शती) में जिस सीता का उल्लेख है यदि उसका भी प्रभाव उक्त भाषाओं के साहित्य पर प्रतीत हो तो इसमे आश्चर्य ही क्या है?

गुजराती साहित्य में सीता लक्ष्मी का अवतार है, उनकी उत्पत्ति भूमि से हुई, अतः वे भूमिजा हैं। वे पार्वती सरस्वती तथा लक्ष्मी से अभिन्न हैं, जैसा कि अध्यात्म (अयो० ।१।१३) में भी वर्णन आया है। मराठी साहित्य में भी सीता आद्याशक्ति लक्ष्मी का अवतार है, किन्तु वे अग्निजा हैं। उभयत्र सीता जनक की दत्तक पुत्री के रूप में वर्णित है।

गुजराती साहित्य की सीता संयत एवं गम्भीर है। वे विवाह के पूर्व राम पर अधिक अनुरक्त नही प्रतीत होती, किन्तु मराठी की सीता तो आनन्द रामायण की सीता की भाँति राम को ही पतिरूप में चाहती हैं, उन्हें पिता के प्रण पर भी गहरा क्षोभ होता है। धनुर्भंग होने पर उभयत्र सीता राम के गले में जयमाला पहनाती है, वहाँ पर सीता की लज्जाशीलता, प्रेमाधिक्य एवं सुशीलता का परिचय दोनो भाषाओ के साहित्य में प्राप्त होता है।

गुजराती तथा मराठी दोनो भाषाओ के साहित्यो मे सीता हनुमान पर परम प्रसन्न होकर उन्हें अजर-अमर होने का आशीर्वाद देती है और उनके इस महनीय कार्य की प्रशंसा करती हुई कृतज्ञता ज्ञापित करती है। इससे सीता की शालीनता, विवेकशीलता एवं सहृदयता का प्रमाण मिलता है।

उभयत्र सीता की अग्निपरीक्षा का वर्णन मिलता है, जिनमें वास्तविक सीता का प्रकट करना और छाया सीता का समाप्त करना ही इस घटना का लक्ष्य प्रतीत होता है। स्वयं अग्निदेव प्रकट होकर सीता की शुद्धि प्रमाणित करते है। राम भी सीता के पातिव्रत से सन्तुष्ट है।

गुजराती में सीता निर्वासन के दो प्रमुख कारण प्रस्तुत किये गये है: प्रथम रजक वृत्तान्त और द्वितीय रावण चित्र वृत्तान्त। आनन्द रामायण मे भी रावण चित्र वृत्तान्त बतलाया गया है। मराठी मे भी उक्त कारण माने गये है। किन्तु उसमे सीता का दोहद (वनवास की इच्छा) भी एक कारण माना गया है। वाल्मीकि मे भी इस दोहद का उल्लेख किया गया है।

गुजराती में सीता के पुत्र कुश तथा लव संग्राम मे सब को पराजित कर देते है किन्तु जब सीता को ज्ञात होता है कि यह तो राम की पराजय है तब वे पुत्रो की भर्त्सना करती है। वाल्मीकि मे भी ऐसा उल्लेख मिलता है। मराठी मे सीता प्रथम तो पुत्रो की वीरता पर प्रसन्न होती है, किन्तु हनुमान तथा सुग्रीव को विपन्न स्थिति मे नही देखना चाहती, अतः उनको मुक्त करने के लिए पुत्रो से संस्तुति करती है।

गुजराती में राम साहित्य के राम वाल्मीकि जी के कथनानुसार पुत्रों सहित सीता को स्वीकार कर लेते है, किन्तु सीता को सत्यता प्रमाणित करनी पड़ती है और वे भूमि में प्रविष्ट होकर उसे प्रमाणित भी कर देती है। मराठी में सीता को तुरन्त यह परीक्षा नही देनी पडती। वे सकुशल राम के साथ पुत्रों सहित राजमहलो मे सुख भोगती है। एक दिन कैकेयी राजसभा मे ही सीता पर कलक लगाती है, फलत. सीता अपनी शुद्धि प्रमाणित करने के लिए भूमि में प्रविष्ट हो जाती है।

इस प्रकार गुजराती साहित्य की सीता और मराठी साहित्य की सीता लगभग एक-सी प्रतीत होती है। दोनो साहित्यो में वे लक्ष्मीरूपा आद्याप्रकृति है। दोनो मे रावण अपने उद्धार के लिए ही उन्हे जगदम्बा मान कर लंका लाता है। रूप-सौन्दर्य की दृष्टि से दोनो साहित्यो में सीता अद्वितीय सुन्दरी के रूप में चित्रित की गयी है। स्वभाव में गुजराती सीता गम्भीर है, उनमें लालित्य सीमित है, किन्तु मराठी की सीता मे लालित्य अधिक है। वे एक स्वाधीनपतिका नायिका सी प्रतीत होती है। उनमें राम के प्रति ही सही क्रीड़ाप्रवृत्ति अधिक प्रतीत होती है। इसी प्रकार उभयत्र असुरमर्दिनी के रूप में सीता अद्वितीय शक्तिशालिनी भी सिद्ध की गयी है।

■ ■

अध्याय ६

दक्षिणांचलीय भाषाओं में श्री सीता

समस्त भारत की एक अखण्ड संस्कृति है, जिसके माध्यम से भारतीय जनता के अन्तर के तार संगुम्फित होकर विश्व के समक्ष एक अद्‌भुत स्वर लहरी छेड़ते रहते है। वैदिक काल से लेकर अधुनापर्यन्त युग प्रवाह की धारा के साथ उसमें विकास होता गया है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति के महान् उन्नायक राम तथा कृष्ण का जीवन लीलाओं को भारत की प्रत्येक प्रान्तीय भाषा ने समादर प्रदान किया है। यद्यपि उक्त दोनों महापुरुषो की लीला भूमि होने का श्रेय उत्तर भारत को ही प्राप्त है, किन्तु दक्षिण भारतीय कवियों एवं मनीषियो ने संकुचित दृष्टिकोण नही अपनाया। उन्होंने उदार दृष्टिकोण रखते हुए उक्त महापुरुषों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है।

दक्षिण भारत में तमिल, तेलगु, कन्नड़ तथा मलयालम ये चार प्रमुख भाषाये बोलचाल तथा साहित्यिक क्षेत्र मे व्यवहृत होती है। इन चारो भाषाओं मे रामचरित्र तथा कृष्णचरित्र से सम्बद्ध विशाल साहित्य समुपलब्ध है। तमिल भाषा इन सभी भाषाओं की अपेक्षा प्राचीन मानी जाती है। न० वी० राजगोपालन के अनुसार तमिल साहित्य ३००० वर्ष प्राचीन है। ईसा पूर्व चतुर्थ शतक तक उसमे काव्य नाटक तथा गीतिसाहित्य की सृष्टि हो चुकी थी।[1]

तमिल का क्षेत्र मद्रास से लेकर उसके दक्षिण में कन्याकुमारी अन्तरीप तक माना जाता है। तेलुगु आन्ध्रप्रान्त की भाषा है और इसका क्षेत्र मद्रास के उत्तर मे विजगापट्टम तक एवं इधर हैदराबाद तक माना जाता है। कन्नड़ मैसूर राज्य की भाषा है तथा मद्रास राज्य के पश्चिम मे अरव समुद्र के तट तक वोली जाती है। मलयालम केरल प्रान्तीय भाषा है। यह दक्षिण मे त्रिवेन्द्रम से लेकर अरव सागर के तटवर्ती क्षेत्रो मे कासरगौड़ पर्यन्त वोली जाती है।

उपर्युक्त भाषाये द्रविड़ परिवार की भाषाये कहलाती है, किन्तु वर्तमान अन्वेषणों से उक्त मान्यता मे कुछ परिवर्तन की सम्भावना प्रतीत होती है। तमिल के

---

१. कंव रामायण (हिन्दी अनुवाद की भूमिका) विहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना (प्रथम संस्करण) स० २०१९ वि०।

अतिरिक्त शेष तीनों भाषाओ में संस्कृत भाषा का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। इस आधार पर विद्वान् इस बात की सम्भावना करने लगे हैं कि सम्भव है ये द्रविड़ भाषाये आर्यभाषाओं से ही प्रसूत हों। अंग्रेजों द्वारा हमारी सांस्कृतिक एकता को नष्ट करने के उद्देश्य से दक्षिण भारतीय भाषायें द्रविड़ संस्कृति से सम्बद्ध कर दी गई हों, तो आश्चर्य क्या ?

प्रस्तुत अध्याय में हम दक्षिणांचल की उपर्युक्त चारो भाषाओं में समुपलब्ध सीता-विषयक सामग्री का आकलन करेगे। यद्यपि इन चारों भाषाओ की सामग्री इतनी अधिक है कि जिन पर अनेक शोध-प्रबन्ध स्वतन्त्र रूप से लिखे जा सकते है और लिखे जा रहे है, फिर भी हम इस प्रबन्ध में उसका संक्षिप्त एवं परिचयात्मक रूप प्रस्तुत करते हुए प्रत्येक भाषा के एक-एक मूर्धन्य ग्रन्थ का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत करेंगे, जिससे दक्षिण भारतीय कवियो के दृष्टिकोण से सीता के महत्व को समझने में सहायता मिल सकेगी। सर्वप्रथम तमिल साहित्य के मूर्धन्य रामकथा ग्रन्थ 'कम्ब-रामायण' के आधार पर इस बात पर विचार किया जायगा कि इस ग्रन्थ मे कवि ने सीता के किस रूप को प्रस्तुत किया है।

(क) तमिल साहित्य में श्री सीता और मुख्य प्रेरणा-स्रोत

वाल्मीकि रामायण के पश्चात् तमिल भाषा मे निबद्ध कम्ब रामायण ही एक ऐसा ग्रन्थ है, जो आधुनिक भारतीय भाषाओ की रामायणों मे सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। यद्यपि इस ग्रन्थ का मूल प्रेरणा स्रोत वाल्मीकि रामायण ही है, जिसको इसी प्रसग में तुलनात्मक ढंग से सिद्ध किया जायगा, किन्तु फिर भी उक्त ग्रन्थ मे कवि ने आवश्यकतानुसार कथा प्रसगों में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये है, जिनसे कवि की मौलिकता पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

'कम्ब-रामायण' में बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक ६ काण्डो के माध्यम से १० हजार से भी अधिक पद्यों में कवि ने रामकथा का गान किया है। इस ग्रन्थ के प्रणेता कविवर कम्बन के रचनाकाल के विषय में विद्वानो में मतैक्य नही है। कुछ विद्वान् इन्हे नवी शताब्दी का और कुछ आधुनिक मनीषी इन्हें बारहवी शताब्दी का कवि मानते है। प्रो० टी० पी० मीनाक्षिसुन्दरम् (तमिल विभागाध्यक्ष, अन्नामले विश्वविद्यालय) कम्बन को द्वादश शतक का ही कवि मानते है।

वर्तमान समय में कम्बन रामायण मे उत्तरकाण्ड भी सपृक्त कर दिया गया है। यह रचना कम्बन के समकालिक ओट्टक्कूतन नामक कवि की मानी जाती है। कम्बन ने अपने प्रेरणा स्रोत के रूप में तीन प्राचीन कवियों का उल्लेख किया है।[1] वहाँ भी

---

१. कम्ब रामायण। बाल०। १। १० छन्द

उसने प्रथम कवि वाग्मी महर्षि वाल्मीकि को ही अपना प्रेरणा स्रोत माना है। प्रस्तुत ग्रंथ के अनुवादक न० वी० राजगोपालन के अनुसार वाल्मीकि के अतिरिक्त कम्बन ने वसिष्ठ तथा बोधायन को रामायण प्रणेताओं के रूप में संकेतित किया है, किन्तु हमारे विचार से बोधायन के स्थान पर व्यास को मानना तर्कसंगत होगा, क्योंकि व्यासप्रणीत अध्यात्मरामायण (संस्कृत) का प्रभाव कम्बन रामायण के कई स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। इसका प्रमाण यथास्थान इसी प्रकरण में प्रस्तुत किया जायगा। जहाँ तक वसिष्ठ रामायण का प्रश्न है, उसका अस्तित्व मान्य है। योगवासिष्ठ रामायण के कर्ता भी तो वसिष्ठ ही माने जाते हैं, जिसका हिन्दी अनुवाद राम प्रसाद निरंजनी ने १७४१ ई० में किया था।[1] डॉ० बुल्के का मत है कि कम्बन ने जिन दो कवियों का संकेत किया है, उनमें एक कवि कुमारदास प्रतीत होते हैं, जिन्होंने आठवीं शताब्दी में जानकीहरण महाकाव्य की रचना की थी, क्योंकि अनेक ऐसे वृत्तान्त कम्बन रामायण में मिलते हैं जो वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलते, अपितु जानकीहरण में मिलते हैं।[2] हमारे विचार से उक्त मत तर्कसंगत है, क्योंकि कुमार-दास का सम्बन्ध दक्षिण भारत से भी प्रतीत होता है।[3]

इस प्रकार कम्बन रामायण में मुख्यतया वाल्मीकि रामायण और गौणतया अध्यात्म रामायण एवं जानकीहरण का प्रभाव मान्य होना चाहिए।

कम्ब रामायण के दशम अध्याय के मिथिला-दर्शन 'पटल' से ही कवि ने सीता का उल्लेख प्रारम्भ किया है। मन्मथ सीता देवी का चित्र खींचना चाहता है और अमृत में अपनी लेखनी डुबोता है, लेकिन वह बेचारा सीता जी के अवयवों के सौन्दर्य को अंकित करने में सर्वथा असमर्थ हो हार कर रह जाता है, ऐसी अनुपम सुन्दरी को अपने अंक में पाकर मिथिला नारी अपने स्वर्णमय प्राचीरों के साथ ऐसी शोभायमान है, जैसे लक्ष्मी का निवासभूत कमलपुष्प ही हो। ऐसी उस नगरी में वे तीनों (विश्वामित्र तथा राम लक्ष्मण) प्रविष्ट हुए।[4]

उक्त उल्लेख द्वारा यह सिद्ध होता है कि कवि सीता को एक अद्वितीय एवं अलौकिक सुन्दरी के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। सीता इतनी सुन्दरी है कि काम भी उनके सर्वांगीण चित्र को उतारने में असफल हो जाता है। वस्तुतः यही तो सौन्दर्य की कसौटी है कि वह क्षण-क्षण परिवर्तित होता रहे।

'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।'

---

1. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त) पृ० ८२५
2. डॉ० बुल्के (रामकथा, पृ० २२२ (१९६२)
3. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा (महाकाव्य प्रकरण)
4. कम्ब रामायण। बा०। १०। ५

कविवर विहारी लाल ने ऐसे ही सौन्दर्य के विषय मे निम्नलिखित दोहा लिखा है।

दो०—लिखन बैठ जाकी सबै, गह-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥ (विहारी सतसई)

वाल्मीकि अथवा अध्यात्म में सीता के ऐसे अनुपम-रूप का चित्रण इस प्रसग मे नही प्राप्त होता। तुलसी के रामचरित मानस मे सीता के इस रूप का आंशिक साम्य इस प्रकार प्राप्त होता है :

जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मदर शृगारू। मथै पाणि निज पकंज मारू॥
येहि विधि उपजै लक्षि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहि सीय सम तूल॥ (रा० मा० बा०)

तुलना करने पर मानस की सीता का सौन्दर्य अधिक प्रतीत होता है, क्योकि वह सम्भवत: साम्य पर आधारित है। काम और अमृत को दोनो ग्रन्थों मे सीता के सौन्दर्य के चित्रण मे एकत्र किया गया है। केवल इसी स्थल पर नही, अपितु अनेक स्थलो पर कम्बन रामायण अथवा रामचरित मानस मे अद्भुत साम्य प्रतीत होता है। जिसके आधार पर कुछ विद्वान तुलसी पर कम्बन का प्रभाव मानते है।[1]

हमारे विचार से महाकवियो की वाणी मे कुछ ऐसी विचित्रता होती है कि वह अनेक भाषाओ एवं अनेक देशो की भिन्नता को मिटा कर अभिन्नता के सूत्रो से सग्रथित होती है। महाकवि तुलसी (हिन्दी कवि) एव महाकवि कम्बन (तमिलकवि) दोनो ऐसे ही प्रातिभ कवि थे, अत: सौन्दर्यानुभूति के अलौकिक क्षेत्र तक दोनो का पहुँच जाना कोई आश्चर्य की बात नही है। इसके अतिरिक्त यह भी सत्य है कि तुलसी ने समस्त 'मानस' काशी मे नही लिखा, अयोध्या और चित्रकूट में भी कुछ अश रचे गये थे। अत: मानस के अनेक स्थलो में कम्बन की रचना से जो साम्य मिलता है, वह काशीवास के समय किसी तमिल महात्मा से कम्ब रामायण सुनने के कारण नही हो सकता।

तुलसी तथा कम्बन की रामायणों के जिन अंशों मे साम्य है, उन अशों के बारे मे यह भी कहा जा सकता है कि संस्कृत की अध्यात्म रामायण का प्रभाव दोनो कवियो

---

१. दाक्षिणात्य विद्वान कहते है कि तुलसीदास जी जब काशी में रहकर मानस की रचना कर रहे थे, उसी समय कुमरगुरुपर नामक तमिलसन्त वहाँ गगा-तट पर तमिलरामायण की व्याख्या हिन्दी में सुनाया करते थे। इस प्रकार तुलसी पर कम्बन का प्रभाव सम्भव है। किन्तु अभी विद्वान इस विषय को सर्वसम्मति से नही स्वीकार करते। (कम्बन रामायण, हिन्दी अनुवाद, भूमिका के आधार पर)

के रामायणों पर प्रतीत होता है। मानस का मूलाधार ग्रन्थ तो अध्यात्म ही है। इस प्रकार मानस तथा अध्यात्म में साम्य होने के कारण मानस तथा कम्व रामायण में भी आपाततः साम्य स्थापित हो गया है, किसी कवि ने एक दूसरे का अनुकरण नहीं किया।

तमिल की सीता लक्ष्मी का अवतार हैं। मिथिला-दर्शन के प्रसंग में कवि ने लिखा है : अव हम सीता जी का वर्णन करना चाहते है, किन्तु कैसे करें ? कमलासन ब्रह्मदेव से लेकर सभी व्यक्ति किसी नारी का उपमान देते समय लक्ष्मी का उल्लेख करते है, वही लक्ष्मी स्वयं सीता का रूप लेकर अवतीर्ण हुई है, तो उनका उपमान कहाँ से और कैसे ढूंढ़ा जाये[1]।

यद्यपि वाल्मीकि में सीता के लक्ष्मी स्वरूप की इतनी प्रतिष्ठा नही पाई जाती, किन्तु युद्धकाण्ड के अन्त में (सर्ग ११७ श्लोक २९) सीता को लक्ष्मी का अवतार घोषित किया गया है। हमारे विचार से यही धारणा विकसित होती हुई कम्बन के रचना काल (१२वी शतक) तक परिपुष्ट हो गयी थी। कम्वन ने सीता की निम्न-लिखित विशेषतायें अंकित की हैं।[2]

(क) पार्वती आदि देवियाँ भी सर्वसद्गुणसम्पन्न सीता को करवद्ध प्रणाम करती हैं।

(ख) राम कन्यागृह की अट्टालिका के अग्रभाग में स्थित मृगनयनी सीता के दर्शन विवाह से पूर्व ही करते हैं।

(ग) सीता के अद्वितीय सौन्दर्य से अचेतन पदार्थ भी द्रवित हो जाते थे, तो चेतन की वात ही क्या कही जाये ?

वालकाण्ड (१०।३५) में कवि ने इसी नगरदर्शन के प्रसंग में राम और सीता का पारस्परिक दर्शन कराया है। दोनों को पारस्परिक दर्शन से अनुरक्त सिद्ध कर पूर्व-राग की अवतारणा करने में कवि सफल हुआ है। वाल्मीकि अथवा अध्यात्म में सीता के इस पूर्वानुराग का उल्लेख नहीं मिलता। हिन्दी की रीतिकालीन रचना 'गोविन्द रामायण' तथा असमीया रामायण (वाल०। अ० ३९) में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है। इस प्रकार नगरदर्शन के प्रसंग में पूर्वराग का वर्णन कम्वन की मौलिक सूझ प्रतीत होती है। जहाँ तक विवाह से पूर्व राम-सीता के अनुराग का प्रश्न है, वह तो सर्वप्रथम महावीर चरित (८वी शताब्दी) के प्रथम अंक में मिलता है। जानकीहरण (सर्ग ७) में धनुर्भंग होने के पश्चात् किन्तु पाणिग्रहरण होने के पूर्व ही सीता विरह-वेदनाग्रस्त चित्रित की गयी है।

कम्वन ने राम और सीता के इस प्रथम दर्शन में शृंगार को आध्यात्मिक रूप दे दिया है। उनके अनुसार सीता और राम दोनों क्षीरसागर में साथ रहते थे, किन्तु

१. कम्व रा०। वा०।१०।२४ २. वही, वाल०। १०।२५,२६,३२

अवतार लेने पर वियुक्त हो गये थे, अब पुनः मिल रहे हैं तो फिर उनके प्रेम का वर्णन करना क्या आवश्यक है।[1] आगे चलकर कवि ने सीता को कामव्याधि से पीड़ित एक साधारण विलासिनी राज कुमारी की भाँति चित्रित किया है। यहाँ सीता में शृंगार का प्राचुर्य देखा जाता है, जिसे मर्यादा की सीमा से बहिर्भूत कह सकते हैं।[2] चन्द्रोदय होने पर कवि ने सीता के उसी विरहिणी रूप का चित्रण किया है, जैसा संस्कृत के प्रसिद्ध महाकाव्य नैषधीयचरितम् की दमयन्ती को चित्रित किया गया है। सीता चन्द्रकिरण रूपी हथौड़े से स्तनों में चोट खाकर अग्नि में गिरी हुई हंसिनी की भाँति कमल पुष्पों की शैया पर तड़पने लगती हैं (१०।७७)। जानकीहरण (सर्ग ७।१, ३४) में भी सीता के पूर्वानुराग एवं व्यथा का प्रायः ऐसा ही चित्रण प्राप्त होता है। कम्बन ने सम्भवतः उसी के अनुकरण पर कुछ हेर-फेर करके सीता का विरहवर्णन किया है।

कम्बन ने सीता को 'भूमिजा' के रूप मे मान्यता दी है। धनुर्भंग के समय शतानन्द जी सीता की उत्पत्ति का वर्णन करते हुये कहते हैं: एक बार हमने यज्ञ करने का उपक्रम करके लौहतुल्य दीर्घशृंगद्वय से भूषित वृषभों के अतिभारी कंधों पर स्फटिकमय जुँआ रखा और उससे असंख्य रत्नखचित हल को बाँधा और उसमें हीरे की बनी फाल लगा कर दृढ़भूमि को जोता। जोतते समय फाल के सिरे पर उदीयमान कान्तिपूर्ण सूर्य की भाँति एक सुन्दरी निकल पड़ी, मानों भूमि स्वयं नारी की आकृति धारण कर निकल आई हो। वह इतनी सुन्दरी थी कि क्षीराब्धि से स्वच्छ अमृत के साथ उत्पन्न लक्ष्मी भी अपने को तुच्छ मान कर दूर हट कर खड़ी हो जायँ तथा हाथ जोड़ कर नमस्कार करें। इस कन्या के गुणों के सम्बन्ध में क्या बताऊँ? सभी सद्गुण इस लतांगी के पास रहकर नवजीवन पाना चाहते हैं और आरोहावरोह करते हुए इसके पास आ पहुँचते हैं। रूप-सौन्दर्य बड़ी तपस्या से ऐसी कन्या को प्राप्त कर सका है। विशाल कर्णाभरणों से अलंकृत इस कन्या के आविर्भाव से अन्य सभी सुन्दरियाँ वैसे ही शोभाहीन हो गयीं, जैसे सूर्य से प्रकाशमान नभ से गंगा के भूमि पर उतर आने से अन्य सरिताएँ प्रभावहीन हो गयी थी।[3]

उपर्युक्त अंश की आलोचना से यह ज्ञात होता है कि कम्बन के अनुसार सीता जी भूमि से उत्पन्न हुई थीं, वे अद्वितीय एवं अलौकिक सुन्दरी होती हुईं सर्वगुण-सम्पन्न थी। वाल्मीकि में कवि ने सूक्ष्म रूप में सीता को 'सुरसुतोपमा' बतलाकर उनकी विशिष्टता का परिचय दिया है:

वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम्॥ (वा० ।७१।२२)

---

१. कम्ब०, रामा०। बाल०। १०।३८ २. वही, १०।३६, ५६

३. कम्बन रामायण। बाल०। १२।१६, १८

जिस समय महाराज दशरथ सम्पूर्ण वरयात्रियो सहित मिथिला पहुँच जाते है, उस समय वशिष्ठ जी की इच्छा से जनक जी सीता को सबके समक्ष प्रस्तुत करते है। इस प्रकरण मे कवि ने सीता के अग प्रत्यंग के सौन्दर्य एवं शृगार प्रसाधनो का चित्रण किया है।[1] सीता के इस रूप को देख कर वशिष्ठ जी भी यह सोचने लगते है कि हमारे तप के फलस्वरूप राम जगदीश्वर है और यह कन्या भी अरुणकमल पर आसीन (लक्ष्मी) देवी ही है।[2] कवि ने सीता की अलौकिक प्रभावशालिता सिद्ध करते हुए लिखा है कि सीता को देखते ही महाराज दशरथ तथा अनेक तपस्वियो के कर प्रणाम मुद्रा में ऊपर उठ गये।[3] यहाँ सीता भी विशेष विनत एव शिष्टाचारप्रवीण सिद्ध की गई है। वे प्रासाद से उतरते ही सर्वप्रथम तपस्वियों को प्रणाम करती है, तदनु दशरथ जी के चरणो का स्पर्श करती है।[4] वे लज्जा के कारण राम के प्रतिबिम्ब को अपने कंकण सँवारने के ब्याज से कटाक्षों से देख लेती है और अब उनकी रही सही शंका भी दूर हो जाती है कि यह वही कुमार है (राम) जिसे मैंने प्रासाद से देखा था अथवा कोई अन्य।[5] वर-कन्या दर्शन की इस प्रथा के पश्चात् जब सीता वहाँ से पुनः राजप्रासाद की ओर जाने लगती हैं, तब उन्हे आंतरिक वेदना का अनुभव होता है।[6] सीता के उक्त वृत्तान्त का चित्रण वाल्मीकि अथवा अध्यात्म में नही मिलता, यह कम्बन की स्वतन्त्र कल्पना प्रतीत होती है। राम के इस वैध दर्शन के अनन्तर रात्रि मे सीता पुनः राम के वियोग में विकल हो जाती है।[7] ऐसा चित्रण जानकी हरण (कुमारदास) नामक संस्कृत महाकाव्य के सप्तम सर्ग मे प्राप्त है। हमारे विचार से इसके प्रणेता कुमारदास सिंहल नरेश थे, उन्होने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना आठवी शताब्दी के अन्त एवं नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में की थी। इस प्रकार १२ वी शताब्दी के कम्बन पर उक्त कवि का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही लगता है। सिंहल तथा दक्षिण भारत का सामीप्य भी तो एक कारण प्रतीत होता है।

सीता जी विवाह के पश्चात् अपनी तीनों सासों को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करती है।[8] इसके अनन्तर कवि ने वही मिथिला में ही पति-पत्नी मिलन का संकेत किया है।[9]

कम्बन ने स्थान-स्थान पर सीता जी को त्रिदेवियों से भी श्रेष्ठ सिद्ध किया है जब महाराज दशरथ राम को युवराज पद प्रदान करने के लिए सभासदो से परामर्श

---

१. वही, बाल०।२० अध्याय
२. वही, बाल०।२०।३२
३. वही, बाल०।२०।३४
४. वही, बाल०।२०।३५
५. कम्ब० । बाल०।२०।३७
६. वही, बाल०।२०।४३
७. वही, बाल०।२१।२, १२
८. वही, बाल०।२१।९६, ९८
९. वही, बाल०।२१।९९

करते हैं, उस समय वशिष्ठ जी कहते हैं : महती कीर्तिमयी जानकी, भूदेवी से भी उत्तम हैं। वे लक्ष्मी, सरस्वती तथा पार्वती से भी उत्तम हैं, रामचन्द्र उस सीता के नयनों से उत्तम हैं, साधारण लोग तथा विद्वद्गण पेय जल तथा अपने प्राणों से भी अधिक राम को चाहते हैं।[1] उक्त उल्लेख से कवि ने सीता को असाधारण महत्व प्रदान किया है। अध्यात्म में भी सीता को आदिशक्ति के रूप में कई स्थलों पर मान्यता दी गयी है।[2]

वाल्मीकि की सीता तो राम के राज्याभिषेक के दिन उन्हें वल्कल वस्त्रधारी देख कर प्रश्नों की झड़ी लगा देती हैं, कम्बन की सीता उन्हें देखते ही स्तब्ध रह जाती हैं और अश्रुधारा बहाती हुई कम्पित स्वर से राम से केवल इतना ही पूछती हैं कि चक्रवर्ती (दशरथ) जी पर कोई विपत्ति आ गयी क्या, बताइये। वे तब तक अधिक व्यथित नहीं होतीं, जब तक राम अपने एकाकी वन गमन के संकल्प को नहीं बतलाते, किन्तु राम के उक्त संकल्प को जानते ही वे विशेष दुःखित हो जाती हैं। वे राम से कहती हैं कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करना अत्यन्त उचित है, किन्तु आप मुझे किस कारण से अयोध्या में ही रहने के लिए कह रहे हैं।[3] वे राम द्वारा वनवास के कष्टों को सुन कर भी नहीं रहना चाहतीं, प्रत्युत इस प्रकार उत्तर देती हैं : आप मेरे प्रति कृपाहीन और प्रेमहीन होकर मुझे छोड़ जाने की बात कह रहे हैं। इस तप के समक्ष प्रलयकालिक सूर्य का ताप भी कुछ नहीं होगा। वह विशाल अरण्य क्या आप के विरह से भी अधिक तापजनक है।[4] इतना कह कर सीता भी वल्कल धारण कर राम का हाथ पकड़ कर खड़ी हो जाती हैं। एक बार पुनः राम यह चेष्टा करते हैं कि सीता साथ न चलें, इसी हेतु वे कहते हैं कि तुम वन के कष्टों को नहीं जानतीं, साथ चलने को तैयार हो, अतः मेरे लिए दुःख उत्पन्न कर रही हो। राम के इन वचनों, से सीता क्रुद्ध होकर कहती हैं कि आपको मेरे कारण ही संकट उत्पन्न होता है, कदाचित् मुझे छोड़ कर जाने में आपको सुख ही सुख है। बस, इतना कहते ही राम चुप हो जाते हैं और उन्हें साथ ले चलते हैं।[5]

इस प्रकार इस वनगमन प्रसंग में कम्बन की सीता वाल्मीकि की सीता से बहुत भिन्न हैं। वाल्मीकि की सीता को साथ चलने के लिए राम को अपशब्द भी कहने पड़ते हैं, शास्त्रीय तर्क भी देने पड़ते हैं और पर्याप्त वाद-प्रतिवाद करना पड़ता

---

१. वही, अयो०मंत्रणापटल, (१४१)

२. तां विद्धि मूल प्रकृतिम्०। (बाल०।१।३४), योगमायापि सीतेति० (बा०।७।६५। ६७२ श्लोक) एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता। (अयो०।५।११) एषा सीता हरेर्माया (५।२३) आदि॥

३. कम्ब०, अयो०।४।२६ ४. वही, अयो० ।४।२८

५. वही, अयो० ।४।३०,३४

है, तब कहीं सफलता मिलती है। इस प्रसंग में कम्बन की सीता एक आदर्श पतिव्रता, प्रेममयी एवं चतुर पत्नी है। उन्हें आत्महत्या करने की भी धमकी नही देनी पड़ती। वे व्यंग वचन बोलने में कुशल है, साक्षात् राम के पुरुषत्व पर प्रहार नही करती। वे प्रणय-कोप से ही कार्य चलाती है, रुष्ट नही होती, उनके वचन मर्यादा का अतिक्रमण नही करते, न उन्हें शास्त्र प्रमाण देने की आवश्यकता पड़ती है। वाल्मीकि की सीता को तो वल्कल धारण करना नही आता था[1] किन्तु कम्बन की सीता इस कार्य में भी कुशल थी, वाल्मीकि की सीता के तो वल्कल वस्त्र धारण करने पर वशिष्ठ कैकेयी को डाटते है, फलतः वे अपने वास्तविक वेष मे ही वन प्रस्थान करती हैं, यही बात अध्यात्म में भी दिखलाई गयी है, किन्तु कम्बन की सीता वल्कल वस्त्र धारण किये ही वन प्रस्थान करती है। इस प्रकार कम्बन की सीता मे वास्तविकता एवं पति-परायणता अधिक प्रतीत होती है। यह कहाँ का न्याय है कि पत्नी अलंकृत होकर रहे और पति तापस वेष मे ?

कम्बन की सीता शिष्ट एवं सहृदय है, वे सुमन्त जी से कहती है कि चक्रवर्ती (दशरथ) जी तथा सासों से मेरा नमस्कार कहियेगा और अपनी प्यारी बहिनो को सन्देश भेजती हैं कि वे मेरी हेमवर्णाभा सारिका तथा तोते को सावधानी से पालती रहें।[2] पक्षियो के प्रति सीता का यह ममत्व उनकी व्यापक सहृदयता का प्रमाण है। वाल्मीकि या अध्यात्म की सीता इस प्रसंग मे इन प्रिय पक्षियों का कुछ भी स्मरण नही करती। हाँ मानस मे सीता की उक्त प्रकृति का अवश्य उल्लेख हुआ है। 'कनक पींजरन राखि जियाये' यह उक्ति सिद्ध करती है कि जनकपुर में भी सीता जी शुक-सारिकाओ के पालन में विशेष रुचि लेती थी।

जब भरत के चित्रकूट आने पर राम द्वारा सीता जी को यह ज्ञात होता है कि चक्रवर्ती दशरथ जी का देहान्त हो गया है, तब वे चौक कर कम्पित होने लगती है, उनके नेत्रों से जल प्रवाह होने लगता है और वे भूमि मे हाथ रख कर विलाप करने लगती है। उन्हे शोकावस्था में देख कर मुनि पत्नियाँ सीता को गंगा स्नान कराती है, इस प्रकार उनके शोक को कम करके राम के पास पहुँचाती है।[3] इस स्थल में भी कम्बन ने सीता की सहृदयता, कोमलता एवं ममत्व का सुन्दर परिचय दिया है। वाल्मीकि की सीता भी इस समाचार को सुन कर अश्रु भर लेती है और बोलने में असमर्थ हो जाती है :

> सा सीता स्वर्गतं श्रुत्वा श्वसुरं तं महानृपम्।
> नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां न शशाकेक्षितुं प्रियम्॥ (वा० रा०।अयो०।१०३।१८)

---

१. वाल्मीकि०, अयो०।३७।१२ २. कम्बन०।बाल०।५।४०

३. वही, अयो०१२।८६, ८८

उन्हें मुनि पत्नियाँ नहीं, स्वयं राम ही सांत्वना देते हैं और सीता निवापांजलिदान में सम्मिलित होती हैं। (१०३।२५)

कम्बन की सीता को राम लक्ष्मण के देखते ही विराध नामक राक्षस अपहृत करता है और आकाश मार्ग से जाने लगता है।[१] जब राम कोदण्ड टंकार उत्पन्न करते हैं, तब वह विलपती हुई सीता को क्षण भर के लिए छोड़ देता है। अन्त में राम द्वारा आहत विराध दोनों भाइयों को लेकर भग चलता है, उस समय सीता जी व्याकुल होकर भूमि में गिर पड़ती हैं, उनके केश खुल जाते है, पुनः सम्हल कर उठती हैं और कहती हैं कि हे राक्षस तुम मातृतुल्य करुण इन कुमारों को छोड़ दो और मुझ को खा डालो।[२] इस उल्लेख से सीता की भीरुता, स्त्रीसुलभ करुणप्रवृत्ति, पतिप्रेम, त्याग एवं बलिदान पर उत्तम प्रकाश पड़ता है। वाल्मीकि में भी विराध सीता का अपहरण करता है और सीता विविध प्रकार से विलाप करती हैं। विराध द्वारा राम लक्ष्मण के अपहृत होने पर वे भी विराध से अपने हरने एवं कुमारो के त्यागने की प्रार्थना करती हुई कहती हैं :

मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति शार्दूलद्वीपिनस्तथा।
मां हरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम ॥ (वा० रा० अरण्य०।४।३)

इस प्रकार कम्बन ने वाल्मीकि के उक्त वृत्तान्त को ही लिया है, किन्तु बुद्धिमत्ता के साथ एक अन्तर उपस्थित कर दिया है, वह यह कि सीता जी विराध से अपने हरने की प्रार्थना तो करती हैं, किन्तु वे अपना उद्देश्य भी व्यक्त कर देती हैं कि मुझे खा डालो। वाल्मीकि में यह उद्देश्य स्पष्ट नहीं हुआ, वैसे अभिप्राय तो यही प्रतीत होता है। ऋक्षों के भक्षण से उन्हें यही अच्छा लगा होगा कि यही विराध राक्षस ही मुझे खा डाले, क्योंकि इससे राम लक्ष्मण की तो सुरक्षा हो जाना निश्चित है।

जब शूर्पणखा राम से प्रणय निवेदन करने के लिए आती है और वह सीता को अपने प्रेमपथ में कंटक समझ कर डाँटती हुई कहती है कि हे राक्षसकुलोत्पन्न ! तू क्यों हमारे बीच आ पड़ी है, तब सीता भयभीत हो जाती हैं और इतनी शीघ्रता से दौड़कर राम के समीप आ जाती हैं कि उनकी सूक्ष्म कटि लचक जाती है और कोमल चरण दुखने लगते हैं। इतना ही नहीं, वे भयाक्रान्त होकर राम की पुष्ट भुजाओं से लिपट जाती हैं।[३] इस प्रकार कम्बन ने यहाँ सीता के स्वभाव में भीरुता और शरीर में कोमलता का सुन्दर संकेत किया है। वाल्मीकि में सीता इतनी भयभीत नहीं हैं। यद्यपि शूर्पणखा सीता का भक्षण करने के लिए आक्रमण करती है, किन्तु

---

१. वही, अरण्य०।१।१९ 　　२. कम्बन०।अरण्य०।१।३८, ३९

३. वही, अरण्य०।अध्याय ५

राम उसे पकड़ लेते हैं (अरण्य०।१८।१६, १७)। अध्यात्म० (अरण्य०।५।१८, १९) मे भी प्राय: ऐसा ही चित्रण है, वहाँ सीता को बचाने वाले लक्ष्मण हैं।

खरदूषण युद्ध के अवसर पर राम शत्रुदल का स्वयं संहार करने की इच्छा से लक्ष्मण की सुरक्षा में सीता को छोड़ देते हैं, उस समय सीता नेत्रों में अश्रु भर लेती हैं, किन्तु कुछ कह नहीं सकतीं। जब युद्ध समाप्त होने पर राम आते हैं तब उनके जी में जी आता है और पुन: अश्रु बरसाने लगती हैं।[१] इस प्रकार यहाँ भी कम्बन की सीता एक आदर्श पतिव्रता भीरु नारी के रूप में प्रस्तुत होती हैं। इस प्रसंग मे वाल्मीकि की सीता निर्भीक है। जब खरयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् लक्ष्मण उन्हें गुहा से निकाल कर राम के समक्ष प्रस्तुत करते हैं, तब सीता राम के दर्शन कर प्रसन्न होती है, उनका आलिंगन करती है।[२] अध्यात्म की सीता तो और अधिक सहृदय है, वे राम का आलिंगन करती हुई उनके शस्त्रव्रणों पर हाथ फेरने लगती है :

सीता रामं समालिंग्य प्रसन्नमुखपंकजा।
शस्त्रव्रणानि चांगेषु ममार्ज जनकात्मजा ।। (अध्यात्म०।अर०।५।३७)

कम्बन की सीता कनकमृग के आगमन के समय वाल्मीकि की सीता की भाँति पुष्पचयन में रत थीं। जब वे इस विचित्र मृग को देखती हैं, तुरन्त उसकी रूप माधुरी पर मुग्ध होकर राम से कहती है : प्रभो ! हमारे आश्रम में अत्युत्तम स्वर्णमय दूर तक प्रकाश फेंकने वाला, माणिक्य तथा रत्नमय सुदृढ़ करों एवं कर्णों से शोभायमान एक हरिण आया है, वह देखने में अत्यन्त सुन्दर है।[३] वाल्मीकि की सीता इस प्रसंग मे अधिक चकित एवं वाचाल है। वे तो राम तथा लक्ष्मण को बुला-बुला कर मृग दिखलाती है और जीवित अथवा मृत किसी भी रूप में उसे प्राप्त करना चाहती है।[४] कम्बन की सीता यह चाहती हैं कि राम स्वयं मृग को पकड़ लाये, वे लक्ष्मण के भेजने के पक्ष में नहीं हैं। इसी हेतु वे मानवती-सी होकर रोने लगती है और पर्णशाला की ओर चल देती है (कम्बन ७ अध्याय)। सीता का उक्त मानवती रूप वाल्मीकि में नहीं मिलता।

जब मारीच हा लक्ष्मण ! हा सीते ! की पुकार कर प्राण त्यागता है, उस समय कम्बन की सीता राम की पुकार के भ्रम से विकल होकर छाती पीटती हुई मूर्छित हो जाती हैं और संज्ञा पाकर पश्चात्ताप करती हुई लक्ष्मण से कहती हैं कि राम विपत्तिग्रस्त हैं, तुम जान कर भी मेरे निकट खड़े हो, क्या यह उचित है। जब

---

१. कम्बन०।अर०५।१८७, १८८

२. तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम्।
बभूव हृष्टा वैदेहीभर्तारं परिषस्वजे।। (वा० रा०।अर०।३०।३७)

३. कम्ब०।अर०।अध्याय ७

४. वा० रा०। अर०।४३ सर्ग

लक्ष्मण उन्हें राम का पराक्रम बतला कर समझाना चाहते हैं, तब वे क्रुद्ध हो जाती हैं, उनके चित्त में मरणतुल्य वेदना उत्पन्न हो जाती है और वे घबरा कर निष्करुण होती हुई लक्ष्मण के प्रति कठोर शब्दावली का प्रयोग करती हुई कहने लगती हैं : तुम्हारा इस प्रकार खड़ा रहना नीतिमार्ग के अनुकूल नहीं है। एक दिन का भी परिचय होने पर सच्चे बन्धु अपने प्राण तक देने को सन्नद्ध हो जाते हैं, किन्तु अपने ज्येष्ठ भ्राता को विपदग्रस्त जान कर भी निर्भय, स्थिर हो। मेरे लिए और क्या गति हो सकती है ? मैं अब अग्नि में गिर कर अपने प्राण त्याग दूँगी।[1]

इस प्रसंग में कवि ने सीता को आदर्श पतिव्रता, भीरु, कोमल, करुण, नीतिज्ञ, अविवेकिनी एवं परुषवादिनी नारी के रूप में चित्रित किया है, किन्तु वाल्मीकि की भाँति न तो उन्होंने लक्ष्मण को छली, भरतप्रेषित, दुष्ट आदि कहलाया और न किसी आपत्तिजनक कामुकता आदि की वृत्ति की आशंका का लक्ष्मण पर आरोप लगवाया।[2] इस प्रकार मूल प्रेरणा भले ही वाल्मीकि से ली हो, किन्तु उसमें यथोचित संशोधन कर कम्बन ने सीता के स्वभाव को संयत बनाया है। वह अपने ग्रन्थ की सीता को वाल्मीकि की सीता की भाँति उग्र होने से सर्वथा सम्हालने में समर्थ हुआ।

कम्बन की सीता भी वाल्मीकि की सीता की भाँति अतिथिपरायणा है। वे संन्यासी के रूप में आगत रावण का स्वागत करती हैं, उसे आसन पर बैठाती हैं और रावण के पूँछने पर अपना विस्तृत परिचय भी देती हैं। वे शिष्टता के साथ रावण का परिचय पूँछती हैं और यह तर्क भी करती हैं कि मुनिश्रेष्ठ, आप वीतराग होकर राक्षसों की नगरी लंका में क्यों रहते हैं। आपको तो अरण्य में तपस्वियों के समीप अथवा जल सम्पत्ति से परिपूर्ण पवित्र प्राकृतिक ग्रामों में रहना चाहिए।[3] इस प्रसंग के आधार पर सीता सात्विक, तर्कशील, विदुषी एवं विवेकिनी सिद्ध होती हैं। उन्हें रावण के वचनानुसार उसकी मनोवृत्ति पर जो सूक्ष्म शंका हुई, वह सर्वथा उचित है। उन्होंने रावण के लंकावास पर पुनः प्रहार करते हुए कहा पापियों से स्नेह करने वाले लोग पवित्र नहीं होते। विचार करने पर यह मानना ही पड़ेगा कि वे भी उस पाप के भागी होते हैं।[4] वे राम के पराक्रम की प्रशंसा करती हैं और रावण द्वारा उसे अस्वीकार करने पर भी राम के पराक्रम का गुणगान करना बन्द नहीं करतीं। रावण के प्रतिरोध से ही उन्हें रावण के छद्मवेषी होने की शंका हो जाती है।

जब रावण स्पष्ट रूप से अपना परिचय देता है, तब सीता के प्राण सूख जाते

---

१. कम्बन०।अर०।८।१, १२

२. वा० रा०।अर०।४५।५, ८ (२१, २६) ३६, ३८

३. कम्बन०।अर०।८।२४, ५१ ४. कम्बन०।अर०। पृ० २६२

है, वे अपने कान बन्द कर लेती है और रावण को श्वान आदि अपशब्द कह कर डाटने लगती है। वे अपने दृढ़ आचरण का घोष करती हुई रावण को शीघ्र ही पलायित हो जाने का परामर्श देती हैं, राम के बाणों का भय भी दिखलाती है।[१] इस प्रकार सीता की बातों की कुछ चिन्ता न करता हुआ रावण उनके चरणो की ओर झुकता है, सीता भयवश सज्ञाहीन होकर भूमि में गिर पड़ती है और रावण परनारी स्पर्श शाप का स्मरण करके आश्रम स्थान की समस्त भूमि को ही उठा कर रथ में रख कर चल देता है।[२]

इस स्थल में कवि ने वाल्मीकि की अपेक्षा मुख्य परिवर्तन यह किया है कि रावण द्वारा सीता का साक्षात् स्पर्श बचाने के लिए आश्रम भूमि को ही खोद कर ले जाने की कल्पना कर ली है। वाल्मीकि में तो सीताहरण के प्रसग में रावण अत्यन्त क्रूरता का परिचय देता है।[३] वह सीता में पूज्य भावना नही रखता था। हमारे विचार से कम्बन को इस परिवर्तन की प्रेरणा भक्ति-भावना के कारण प्राप्त हुई होगी। तिब्बती रामायण (नवी शताब्दी), तत्व सग्रह रामायण (१७ वी शतक) एवं अध्यात्म (अरण्य०।७।५१) में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है। इस प्रकार इस कम्बन ने अध्यात्म से प्रेरणा ली होगी, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। कम्बन एक भक्त कवि प्रतीत होते है. किन्तु वे मायासीता के वृत्तान्त का उल्लेख नही करते, जब कि अध्यात्म में माया सीता का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है।[४] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कम्बन ने अध्यात्म से बहुत कम प्रभाव ग्रहण किया है। कुछ भी हो, उसने वाल्मीकि का अनुसरण इस प्रसंग में भी किया है, स्वरूप परिवर्तन करना तो कवि का अधिकार होता ही है।[५]

कम्बन की सीता रावण द्वारा जटायु की हत्या किये जाने पर बहुत दुखित होती है, वे जाल में फँसी हुयी हरिणी की भाँति चिन्तित, उच्छ्वसित एवं निराश्रित होकर भूमि पर गिर पड़ती है। सीता पश्चात्ताप करती हुई कहती है कि मैने लक्ष्मण के वचनों का तिरस्कार कर उसे बलात् आश्रम के बाहर भेजा। एक सहायक जटायु उसकी यह दशा हुई, अब न जाने विधि कौन-सी विपत्ति ढायेगा। क्या धर्म की पराजय होगी और पाप विजयी होगा। पातिव्रत की रक्षा करना मेरा धर्म है, किन्तु अकुण्ठित शक्तिशाली तथा युद्ध में निपुण मेरे प्रभु का धनुष अब अयशभाजन हो गया। मुझ जैसी पापिनी के जन्म से मेरे कुल में अयश उत्पन्न हो गया।[६] इस प्रकार

१. कम्बन०। अर०। पृ० ३६३
२. वही, अर०। ८।७३, ७५
३. वा० रा०। अर०। ४९ सर्ग
४. अध्यातम०। अर०। ७।२, ४
५. निरंकुशा: कवय: (सूक्ति)
६. कम्बन०। अरण्य०। अध्याय ९ पृ० ४००

यहाँ सीता शोकमग्न, आत्मग्लानि एवं पश्चात्ताप से निपीड़ित एवं धर्मभीरु नारी प्रतीत होती है, उनका कुण्ठाग्रस्त अन्तःकरण अपने भविष्य के प्रति विशेष चिन्तित प्रतीत होता है।

वाल्मीकि की सीता भी मृत्यु से विशेष दुःखित होती है और अपने अभाग्य को कोसती है,[१] किन्तु कम्बन की सीता तो वाल्मीकि की सीता की अपेक्षा अधिक वेदनाग्रस्त प्रतीत होती है। वे मार्ग में विलाप करने के अतिरिक्त रावण को किसी प्रकार के अपशब्द नही कहती। रावण लंका ले जा कर अशोकवन में शिशुपा वृक्ष के नीचे सीता को स्थान देता है और राक्षसियाँ उनकी देख-रेख करती है।[२]

जिस समय हनुमान सीता की खोज करने के लिए प्रस्थान करना चाहते है, उस समय राम उनसे सीता के अगों के लक्षण बतलाते है। यथा : सीता के पैरो की अंगुलियाँ ऐसी है मानो क्षीरसागर में उत्पन्न प्रवाल के खण्डो मे महावर लगाकर उनके ऊपरी भाग में अनेकचन्द्रों को रख दिया गया हो। इसी प्रकार चरण, केशपाश, स्तनयुग्म, कटि, जघन आदि की सुन्दरता का भी वर्णन किया गया है।[३] ऐसा अभिज्ञान वाल्मीकि प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों मे तो नही वर्णित मिलता।

कम्बन० के राम सीता के लिए कुछ अभिज्ञान वचन भी संस्मरण के रूप में हनुमान को कहने के लिए उनसे सुनाते हैं।[४] प्रथम तो मिथिला नगर में कन्यानिवास-सौध में स्थित सीता का प्रथम साक्षात्कार, द्वितीय सीताकृत यह प्रतिज्ञा कि यदि धनुर्भगकर्ता राम न हुए तो मैं प्राण त्याग दूँगी। तृतीय जनक की सभा मे सलज्ज सीता का आगमन, चतुर्थ वनगमन वेला मे सीता के मार्मिक वचन एवं उनका मूर्छित हो जाना, पंचम अयोध्या त्यागते ही सीता द्वारा वन का प्रश्न। इन पंच अभिज्ञानों का उल्लेख उत्तर भारतीय रामायणों मे नही पाया जाता। आंगुलीयक (अंगूठी) का उल्लेख तो प्रायः सभी रामायणों मे प्राप्त होता है।

अशोक वाटिका में हनुमान उन्हें कुम्हलाई हुई संजीवनी लता के समान देखते है। सीता ने नेत्रों का खोलना और बन्द करना भी बन्द कर दिया था। श्री राम का ध्यान करके पृथ्वी पर गिरना, उच्चस्वर से रोना, शरीर का अति संतप्त होना, भयग्रस्त होना, उठना, अकुलाना, दीन होना, राम को नमस्कार करना, शिथिल होना, कम्पित होना, उच्छ्वास लेना तथा अश्रु बहाना ये ही सीता के व्यापार थे।[५] सीता के चित्त में अन्तर्द्वन्द्व व्याप्त रहता है। वे कभी तो यह सोचती है कि मैंने लक्ष्मण को अपशब्द कहे थे, अतः राम ने मुझे बुद्धिहीन समझकर त्याग न दिया हो, कभी अपने

---

१. वा० रा०। अर०। ५२।२, ४
२. कम्ब०। अर० पृ० ४०१
३. वही, पृ० ५१६, ५२०
४. वही, पृ० ५२०, २१
५. कम्बन०।सुन्द०।३।४, ६

पूर्वजन्म के पाप का ही यह परिणाम समझती है। इसी प्रकार वे राम की दिनचर्या का स्मरण कर विकल हो जाती है और अतीत के चलचित्र उनके स्मृति पथ मे आकर उन्हे विकल कर रहे थे।[1] जयन्त वृत्तान्त भी उन्हें रह-रह कर राम की स्मृति दिला रहा था।[2] सीता की इस दयनीय स्थिति का चित्रण वाल्मीकि (सुन्दर०। १५ सर्ग) में भी पाया जाता है।

कम्बन की सीता त्रिजटा राक्षसी से अपनी वेदना का वर्णन करती है। उन्हें उत्तम अंगों के स्फुरण से अपने कल्याण का आभास तो होता है, किन्तु वे अभी तक हनुमदागमन की बात नही जान सकी। इसी हेतु त्रिजटा से अंगस्फुरण का फल पूंछती है।[3] इससे यह ज्ञात होता है कि सीता जी अंगस्फुरण के फलो पर विश्वास करती थी। उन्होने शुभाशुभ दोनो फलों की पूर्वपरीक्षा भी तो की थी।

जिस समय रावण अशोक वाटिका में आकर सीता जी के समक्ष अनुनय विनय करता है, उस समय वे भय से विकम्पित हो जाती हैं, उनके अंग संकुचित हो जाते है और नेत्रों से रक्तप्रवाह होने लगता है। वे अपने प्राणों का मोह त्याग कर रावण की भर्त्सना करती हुई कहती हैं : हे तृण ! तुम्हारे ये कठोर वचन कुलांगनाओं के लिए उचित नही है। हे बुद्धिहीन, मेरु को छेदना हो, नभ को चीर कर उस पार जाना हो, चतुर्दश लोकों को ध्वस्त करना हो, तो भी आर्य राम के बाण समर्थ है, यह जानकर भी तू अनुचित वचन कह रहा है, क्या तू अपने दसो सिर गिराना चाहता है ? तू राम से भयभीत था, अतः उसी समय एक मायामृग प्रेषित कर राम को अनुपस्थित समझकर तू माया से छिप कर आया। अब जीवित रहने की इच्छा करता है, तो मुझे मुक्त कर दे, तू राम का सामना करने में असमर्थ है। तू जटायु से भी जीत न सका तब राम से कैसे जीत सकेगा ?[4] इसी प्रकार सीता रावण की अनेक पराजयों को प्रस्तुत कर उसे बलहीन, कायर एवं दुश्चरित्र सिद्ध करती हुई उसे नीति एवं धर्म का उपदेश देती है।

वाल्मीकि की सीता भी ऐसी ही परुष, निर्भीक एवं धर्मनीतिकुशल है, वे अपने प्राणों की परवाह न करती हुई रावण को जी भर कर खरी खोटी सुनाती हैं। कम्बन में उसी की स्पष्ट छाप है। कवि ने आगे चल कर सीता के अन्तर्द्वन्द्व को उस समय और अधिक तीव्र कर दिया है, जिस समय राक्षसियाँ निद्रामग्न हो जाती है और एकाकिनी सीता चिन्ता के सागर में डूब कर सोचने लगती है। वे कभी तो श्री राम के लंका आने की कामना करती है, कभी उनके दयालु स्वभाव का स्मरण कर आशान्वित होती है, कभी प्राणों पर ही आक्रोश व्यक्त करती हैं। उन्हें अपनी कुलीनता एवं

१. वही, सुन्दर०। पृ० ४८,४९
२. वही, सुन्दर०।३।२९
३. वही, सुन्दर०। पृ० ५०
४. वही, सुन्दर। पृ० ६०

लज्जाशीलता पर भी खेद है, आत्मनिन्दाजन्य दुःख का तो कहना ही क्या है ? वे सोचने लगती हैं कि परगृहोसित मुग्ध सीता को राम कैसे स्वीकार करेंगे, अतः मेरा जीवन ही व्यर्थ है। वे एक वार सहन कर सकती हैं कि राम लक्ष्मण कलंकित जीवन-यापन करेंगे, किन्तु अपने यशस्वी विदेहवंश का कलंकित होना उन्हें असह्य प्रतीत होता है। वे इस कलंक का एकमात्र उपाय अपने शरीर त्याग को ही समझती हुई व्यथित हो जाती हैं।[1]

इस प्रकार कम्बन की सीता अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त पतिव्रता एवं विकल विरहिणी है, जिनमें वेदना की प्रवल वह्नि प्रज्ज्वलित है। स्वाभिमान, प्रतिष्ठा, पतिप्रेम, आभिजात्य, आत्मग्लानि एवं नैराश्य ने उन्हें प्राणत्याग की वलिवेदी तक पहुँचा दिया है। यद्यपि वाल्मीकि की सीता की भी लगभग यही स्थिति है, किन्तु कम्बन ने तो उस स्थिति से भी एक पद आगे कर सीता का मुमूर्षु रूप प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। कुंठा के नग्न रूप को उपस्थित कर इस कवि ने जीवन की एक ऐसी जटिलता प्रस्तुत की है, जिसके समक्ष सीता जैसी सती नारी ही टिक सकती है।

कम्बन की सीता अशोक वाटिका में उस समय हनुमान को प्रत्यक्ष करती है जब कि वे मरण का निश्चय कर माधवीलता के पास पहुँच जाती हैं। हनुमान के परिचय देने पर भी उन्हें विश्वास नहीं होता, वे करुणा एवं कोप से भर जाती हैं, किन्तु उनकी अन्तरात्मा हनुमान के वचनों से उन्हें जितेन्द्रिय मुनि अथवा देवता समझती है। अन्य तर्क करने के पश्चात् सीता उसे निश्छल समझ कर वार्ता प्रारम्भ करती हैं।[2] हनुमान से उनका विस्तृत परिचय प्राप्त कर सीता के कृश अंग प्रफुल्लित हो जाते हैं और वे पुनः प्रत्यय हेतु हनुमान से राम के अंगों का परिचय पूँछती हैं। हनुमान पूर्ण परिचय देने के पश्चात् राम द्वारा वतलाये गये पंच अभिज्ञान वतलाते हैं, जिनको सुन कर सीता को पूर्ण विश्वास हो जाता है कि यह रामदूत है।[3]

वाल्मीकि की सीता भी आत्महत्या के पूर्व ही हनुमान का प्रत्यय करती हैं वे अपेक्षाकृत अधिक तर्कशील हैं। वे भी राम के अंगों के लक्षण पूँछती हैं, नर वानर संगति का वृत्तान्त पूँछती हैं और अन्ततः मुद्रिका प्राप्त करने पर ही पूर्ण विश्वस्त होती हैं। कम्बन की सीता मुद्रिका प्राप्त कर इतनी मग्न हो जाती है कि वे कभी उसे चूमती, कभी अंगों में लगाती और कभी सूँघने लगती हैं। वे हनुमान के इस कार्य के लिए विशेष कृतज्ञ हैं, क्योंकि यह मुद्रिका क्या थी, सीता के लिए प्राण थी।[4] सीता हनुमान से प्रसन्न होकर उन्हें अमर होने का वर देती हैं और हनुमान को माता, पिता देवता आदि कह कर कृतज्ञता ज्ञापन करती हैं। जब हनुमान उनसे सुग्रीव मैत्री

---

१. कम्बन, सुन्दर०।५। पृ० ६६,६७ २. वही, सुन्दर० पृ० ६६
३. वही, सुन्दर०। पृ० ७३ ४. कम्बन० पृष्ठ ७४

का पूर्ण वृत्तान्त बतला कर सीतान्वेषण प्रयास की चर्चा करते है, उस समय सीता का मन दु:ख तथा आनन्द से पूर्ण हो जाता है। कम्बन ने तो यहाँ तक लिखा है कि सीता की अस्थियाँ भी पिघल उठती हैं, मन पिघल उठता है और पुनः वे दीनता का अनुभव करने लगती है।[१] इस प्रसंग में वाल्मीकि की सीता संयत है। वे राम की मनोवृत्ति एवं कार्यकलाप जानने के लिए अनेक प्रश्न करती है।[२] उन्हें मुद्रिका दर्शन से हर्ष, लज्जा एवं सन्तोष का अनुभव होता है।

कम्बन की सीता हनुमान के लघुशरीर को देख कर उनके द्वारा समुद्र पार करने पर आश्चर्य व्यक्त करती हुई पूँछती है कि तुमने तपोबल से समुद्र पार किया अथवा किसी मंत्र सिद्धि के प्रभाव से।[३] फलतः हनुमान को अपना विशालतम रूप प्रदर्शित करना पड़ता है। वाल्मीकि की सीता ऐसी शका नही करती, वे हनुमान के विक्रम की ही प्रशंसा करती है, उन्हे समर्थ और प्राज्ञ मानती है तथा यह कहती है तुम प्राकृत वानर नही हो।

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम्॥
नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ। (वा० रा०। सु०। ३६।७, ९)

इतना अवश्य है कि वे भी कम्बन की भाँति हनुमान के लघुशरीर पर शका करती है, जिससे प्रेरित होकर हनुमान उन्हें अपने विराट शरीर को दिखला कर आश्वस्त करते है। कम्बन० की सीता विराट रूप देखने के पश्चात् उनकी पर्याप्त प्रशसा करती हैं। उन्हें विश्वास हो जाता है कि अब मै मर भी जाऊँ तो कोई बात नही। मुझे सताने वाले राक्षसो का समूल विनाश होगा। मै मायाबन्धन से भी मुक्त हो गयी। अपने पति के सुन्दर चरणों को भी प्राप्त हो गई। अब मेरा यश फैलेगा, अयश नही होगा, इस प्रकार कहती हुई सौन्दर्य एवं कान्ति से पूर्ण लक्ष्मी के समान आनन्दित हो जाती है।[४]

उक्त प्रसंग के आधार पर कम्बन की सीता को अपने पातिव्रत्य की चिन्ता प्रतीत होती है और यशःकामना तथा यश-सम्पत्ति के लिए उनका अन्तःकरण विशेष चिन्तित लगता है। शरीर की चिन्ता या उसके प्रति लगाव का अंश उनमे तभी तक रहता है, जब तक मुद्रिका की प्राप्ति नही हो जाती।

वाल्मीकि के हनुमान की भाँति कम्बन के हनुमान भी अपनी पीठ पर बैठाकर सीता के ले चलने का प्रस्ताव करते है। इतना ही नही, वे यहाँ तक कहते है कि मै लंकानगरी तक को उखाड़ कर ले जा सकता हूँ और अनुधावी राक्षसों का एक हाथ

१. कम्बन०। सुन्दर० पृ० ७७
२. वा० रा०।सुन्दर० ३६वाँ सर्ग
३. कम्बन०। सुन्दर० पृ० ७७
४. कम्बन सुन्दर० पृष्ठ ७९

से बध कर सकता हूं।[1] सीता हनुमान के वचनो को सुन कर उनकी शक्ति पर विश्वास करती है, किन्तु विनम्रता के साथ कहती है कि मै अज्ञ और मन्दबुद्धि स्त्री होने के कारण अनुचित मानती हूं। सीता यह भी शंका करती है कि अनुधावी राक्षसों के साथ न तो तुम युद्ध ही कर सकोगे और न मेरी रक्षा ही कर सकोगे। उन्हे यह भी चिन्ता है कि हनुमान के साथ जाने से राम का विजयी धनुष कलंकित हो जायगा और चोरी-चोरी जाना भी तो छल करना है। उन्हें लंका से जाना तभी स्वीकार है, जब श्री राम अपने बाणों का पराक्रम प्रदर्शित करते हुए रावण का सपरिवार संहार कर दें। वे हनुमान से स्पष्ट कहती है कि जब तक लका शत्रुओं के अस्थियो के पर्वत से न भर जायगी, तब तक मैं कुलवती की महिमा को, सच्चारित्र्य को, और अस्खलित पातिव्रत्य को किस प्रकार प्रमाणित कर सकूंगी ? मै पीड़ाजनक राक्षसो की बात ही क्या, अनन्त लोको को भी अपने शाप से भस्म कर देती, किन्तु वैसा करना पवित्र मूर्ति राम की धनुर्विद्या की कुशलता को कलकित करना होता। सीता अपने न चलने का अन्यतम मुख्य कारण बतलाती हुई कहती है कि पंचेन्द्रियो पर संयम पाने पर भी तुमको यह ससार पुरुष ही कहता है। उस उत्तम वीर राम के अतिरिक्त अन्य किसी का स्पर्श करना मेरी देह के लिए अनुचित है। यदि उस नीच रावण ने मेरा स्पर्श कर लिया होता, तो प्राण त्याग देती, किन्तु वह तो अपने नाश के भय से मुझे भू-भाग सहित उठा लिया था। इतना कह कर सीता विभीषण की पुत्री त्रिजटा द्वारा बतलाई हुई रावण के शाप की कहानी सुनाती है और पंचवटी का वह भू-भाग जिसमे उनकी पर्णकुटी बनी हुई थी, जिसे रावण खोद कर ले आया था, दिखलाती है।[2]

इस प्रकार यहाँ कम्ब की सीता चतुर, विनम्र, तर्कशील, स्वाभिमानिनी, वीरबाला, पतिव्रता, आदर्शवादिनी, निर्भीक, सरुप, कुलीन, सच्चरित्र, पतिपरायणा, गौरवमयी, शक्तिमयी एव विवेकमयी प्रतीत होती है। वाल्मीकि की सीता इस प्रसंग में विवेक, तर्क, पातिव्रत्य आदि का परिचय देती है, किन्तु वे रावण को शाप देने की अपनी क्षमता का वर्णन नही करती और न यह बतलाती है कि रावण ने अपहरण के समय भी मेरा स्पर्श नही किया। वे तो स्पष्ट कहती है कि अपहरण के समय रावण का स्पर्श तो विवशता के कारण हुआ था, स्ववश होकर मै परपति का स्पर्श नही कर सकती।[3] शेष अन्य बातों मे कम्बन की सीता वाल्मीकि की सीता से ही प्रभावित प्रतीत होती है।

कम्बन की सीता हनुमान से सन्देश देते समय अत्यन्त विनम्र, करुण एवं पति-परायणा प्रतीत होती है। वाल्मीकि की सीता की भाँति वे भी अपने जीवन की

---

१. वही, सुन्दर० पृष्ठ ८०,८१ २. कम्बन०। सुन्दर०।६।८१, ८२
३. वा० रा०। सुन्दर०। ३७।६३

अवधि एकमास बतलाती हैं। वे एक वीर पत्नी की भाँति ही कहती है कि मैं भले ही राम के योग्य पत्नी न होऊँ, किन्तु उन्हें निर्दय होने पर भी अपनी वीरता की लज्जा रखने के लिए प्रयत्न करना ही होगा।[1] वे लक्ष्मण की वीरता पर विशेष विश्वस्त प्रतीत होती हैं, अतः लक्ष्मण के लिए सन्देश देती हुई हनुमान से कहती हैं : प्रशसनीय जयशील उन कनिष्ठ बन्धु लक्ष्मण से यह एक वचन कहना, महिमामय (राम) की आज्ञा से वे मेरी रक्षा करते थे। अब बीच मे आये हुये इस दारुण बन्धन से मुझे मुक्त करना भी उन्ही का कर्तव्य है।[2] वाल्मीकि की सीता इतना दैन्य नही प्रकट करती, तब हनुमान से लक्ष्मण की वीरता, आज्ञाकारिता, नैतिकता, धर्मपरायणता प्रभृति गुणों की प्रशंसा करती हुई उन्हें कुशल सन्देश तो भेजती हैं, किन्तु अपने उद्धार करने के लिए वे राम से ही प्रार्थना करने को कहती है :

रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा।
त्रातुमर्हसि वीर त्व पातालादिव कौशिकीम्॥ (वा० रा०। सुन्दर०।३८।६८)

कम्बन की सीता अपने सन्देश मे कुछ बातो में एकदम भिन्न प्रतीत होती है। यथा : सीता कहती है कि हे हनुमान! राम के कानों तक यह बात पहुँचा देना कि जब उन्होंने मिथिला में मेरा पाणिग्रहण किया था, तब उन्होने वचन दिया था कि मैं इस जन्म में तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री का वरण नही करूँगा। इसके अतिरिक्त सीता यह भी निवेदन करने के लिए कहती है कि यदि लंका में मेरी मृत्यु हो जाये, तो राम ही मुझे अगले जन्म मे पति के रूप मे प्राप्त हों। मुझे खेद है कि मै राम को सिहासनारूढ़ स्थिति में नही देख सकूंगी।[3] वाल्मीकि की सीता इन बातों को नही कहती, वे अधिक दृढ़ एवं सहिष्णु है। इस प्रकार यहाँ कम्बन की सीता दैन्य एवं नैराश्य से ग्रस्त हैं, उनमें विनय तथा नम्रता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

कम्बन की सीता प्रत्यभिज्ञान के रूप में दो वृत्तान्त बतलाती है, तदनु चूड़ामणि प्रदान करती है। प्रथम वृत्तान्त के रूप में तो जयन्त वृत्तान्त और द्वितीय वृत्तान्त के रूप में शुकी वृत्तान्त। शुकी वृत्तान्त इस प्रकार है : सीता ने एक बार अपनी शुकी का नामकरण करने की इच्छा से राम से पूंछा कि इसका क्या नाम रखूँ, उत्तर में राम ने कहा था की इसका नाम मेरी निर्दोपिणी माता कैकेयी के शुभ नाम पर रखो।[4] वाल्मीकि की सीता जयन्त वृत्तान्त ही बतलाती हैं, शुकी वृत्तान्त कम्बन० की स्वकीय कल्पना है। इसी प्रकार चूड़ामणि देने का उल्लेख उभयत्र है, किन्तु कम्बन०

---

१. कम्बन। सुन्दर०। ६ अध्याय पृ० ८३
२. कम्बन०। सुन्दर। ६ अध्याय पृ० ८३
३. कम्बन०। सुन्दर०। ६ अध्याय पृ० ८३
४. वही, सुन्दर पृ० ८८

की सीता उस मणि के विषय में कुछ नहीं वतलाती, जव कि वाल्मीकि की सीता सांकेतिक रूप से उसका इतिहास भी वतलाती है।[१] कम्वन की सीता राक्षसियों के पूँछने पर भी हनुमान का परिचय नहीं वतलाती।[२] इससे उनकी नीतिकुशलता का प्रमाण मिलता है। वाल्मीकि की सीता भी हनुमान का परिचय न वतला कर उसे राक्षसी माया कहती हैं।[३] इस सीता की छाप ही कम्वन की सीता में मिलती है।

कम्वन की सीता को जव त्रिजटा द्वारा यह समाचार मिलता है कि मेघनाद ने हनुम.न को वांध लिया है, तव वे अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने· लगती है, उन्हें प्राणों की आशा धूमिल प्रतीत होती है। वे हनुमान के प्रति इतनी करुण है, जैसे कि किसी हंसिनी का शावक किसी व्याध के जाल में फँस गया हो और वह विकल हो। सीता सोचती हैं कि मैंने इस हनुमान को प्रलयपर्यन्त चिरायु रहने का आशीर्वाद दिया था, वह तो सत्य होकर रहेगा, किन्तु खेद है कि लंका के विध्वंस करने में इतना पराक्रम दिखलाने के पश्चात् यह वन्दी हुआ[४]। इससे यह सिद्ध होता है कि सीता हनुमान पर कितनी वात्सल्यमयी थीं, उनकी शक्ति तो सर्वथा प्रमाणित थी, किन्तु उन्हें हनुमान के वन्धनजन्य अयश पर सर्वाधिक खेद था। वाल्मीकि की सीता को उक्त वृत्तान्त नही वतलाया जाता, अतः उनकी विचारधारा अस्फुट ही रह जाती है।

इसी प्रकार जव सीता जी को यह समाचार मिलता है कि हनुमान की पूंछ में आग लगा दी गयी, तव उनके चित्त में दुःख एवं क्रोध का एक ही साथ उदय हो जाता है और वे अग्निदेव से प्रार्थना करती हुयी कहती है: अग्निदेव! मातृतुल्य करुणामय! वायुमित्र! अतिक्षुद्र. श्वानतुल्य क्रूर राक्षस हनुमान् को कष्ट दे रहे है, तो क्या तुम उस पर दया न करोगे? तुम संसार के साक्षी हो, तुम सर्वज्ञ हो। यदि मैं पातिव्रत्य से युक्त हूँ तो तुम उसको अपने ताप से न जलाओ, मैं तुम्हे नमस्कार करती हूँ।[५] सीता जी की इस प्रार्थना को सुन कर अग्नि हनुमान के लिए शान्त हो जाते है, हनुमान इस चमत्कार से चकित रह जाते है। इस प्रकार यहाँ कम्वन की सीता की अलौकिकता तो सिद्ध ही होती है, उनकी दयालुता तथा कृतज्ञता पर भी प्रकाश पड़ता है।

वाल्मीकि की सीता भी हनुमान की पुच्छाग्नि के शान्ति हेतु चार श्लोकों द्वारा अग्नि से प्रार्थना करती है।[६] वे पतिशुश्रूषा, तप, एकपत्नीत्व, रामकृपा,

१. वा० रा०। सुन्दर० ।३६।२
२. कम्वन०। सुन्दर०, पृ० ६४
३. वा० रा०। सुन्दर० ।४२।८, १०
४. कम्वन०। सुन्दर०, पृ० १३४
५. वही, सुन्दर०, पृ० १४५
६. वा० रा०। सुन्दर०।५३ सर्ग। २८, ३१

स्वसौभाग्य, रामप्रतीति एवं स्वसच्चरित्रता आदि को सत्यश्रावण के रूप में स्मरण करती हुई अग्नि को शान्त करने की प्रार्थना करती है। इस प्रकार कम्बन की सीता की अपेक्षा यहाँ सीता का व्यक्तित्व अधिक प्रस्फुट हो सका है।

कम्बन की सीता अत्यन्त निर्भीक होकर अपने निश्चय पर दृढ़ रहती है। जब रावण अशोक वाटिका में जाकर उन्हें अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है, उस समय वे रावण की डट कर भर्त्सना करती है। वे कहती है : मैं भोजन के बिना भी इस देह की रक्षा करती हुई, अपयश का भाजन बन कर, तेरे सम्मुख निर्लज्ज होकर जीवित हूँ, वह इसीलिए कि दोषहीन, गुणों से भूपित उन पुण्यमूर्ति राम के दर्शन करूँ। युद्ध क्षेत्र में जब तू पीठ दिखला कर भागेगा, तब रक्त वर्ण के मेरुतुल्य अनुज लक्ष्मण तेरा पथ रोके खड़े रहेंगे और तेरे समस्त सिरों को भूमि पर गिरा कर, सारी राक्षस सेना को परास्त करके मेरे प्रियतम खड़े रहेंगे, उस समय उनके रूप की शोभा को देखने की आशा से मैं जीवित हूँ।[१]

सीता के इन शब्दों में उनकी निर्भीकता, पतिपरायणता आदि गुणो पर प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त वे ऐसी वीरबाला सिद्ध होती हैं, जिनमें रावण से प्रतिशोध लेने की तीव्र भावना विद्यमान है, यशोलिप्सा हेतु उनका चित्त तड़प रहा है और उनके चित्त में अपने वीर पति राम तथा आदर्श देवर लक्ष्मण के अविचल शौर्य के प्रति भी दृढ़ निष्ठा प्रतीत होती है। इस प्रसंग में वाल्मीकि की सीता भी निर्भीक है, किन्तु वे धर्मनीति का आश्रय लेकर रावण से बात करती है, अपने दृढ़ पातिव्रत्य का श्रवण करती है और न मानने पर उसके सपरिवार नष्ट हो जाने की धमकी भी देती है (युद्ध सर्ग २१)।

कम्बन की सीता की यह विशेषता है कि रावण उन्हें वशीकृत करने के लिए मारुत नामक राक्षस को जनक बना कर सीता के समक्ष उपस्थित करता है, फिर भी सीता धर्म से नहीं डिगती। यद्यपि भ्रमवश अपना पिता समझकर अनेक प्रकार से विलाप करती है, कभी कहती हैं कि क्या सत्य मिट गया, क्या संसार को शाप देकर भस्म कर दूँ, क्या माया और छल ही बलवान् है, फिर भी वे अपना विवेक नही खो देती। उन्हें खेद है कि उनके कारण पिता जनक की यह दुर्गति हुई। वे अपने पिता के गुणों का स्मरण कर विलाप करती है : हे पिता जी ! आप अतिथियों को भोजन देकर तत्पश्चात् भोजन करते थे, आपने विविध धर्म-कर्म किये, विरोधी शत्रुओं का दमन किया, उत्तम यज्ञों का सम्पादन किया, तुम जैसे वीर की बलिष्ठ भुजायें शत्रुओं द्वारा आबद्ध कर ली गईं, हाय आपकी इस दुर्दशा को देख कर मैं जीवित हूँ।[२]

---

१. कम्बन रामायण। सुन्दर०, पृ० ३३१। २. वही, युद्ध०। पृ० ३३३, ३४

सीता एक वीर पुत्री के रूप में कहती हैं कि हे पिता जी ! इन शत्रुओं के हाथ में पड़ने के पूर्व आपकी मृत्यु हो जाती तो अच्छा होता। आपने राजमंडली में सर्वोत्तम स्थान पाया था अब अयश के पात्र बन गये। न मैं पुत्री होती और न आपकी यह दुर्दशा होती। मेरा कर्त्तव्य था कि मैं अभी तक प्राण त्याग देती, ऐसा न करके मैंने आप सबको पतित बनाया। हाय मैं नरक में पडूंगी, तो भी क्या मेरा उद्धार होगा। लंका के सब शत्रुओं को मिटाकर मैं अपार आनन्द नहीं पा सकी। अपने प्रभु के चरणों को सिर पर नहीं धारण कर सकी। दीर्घकाल से इस बन्धन में पड़कर दुःख भोग रही हूँ। तुम्हारे वंश को ही मैंने मिटा दिया। अयोध्या के राजवंश की कीर्ति को भी मैं खा गई।[1]

इस प्रकार इस प्रसंग में सीता अत्यन्त आक्रोशमयी प्रतीत होती हैं। वे आत्म-ग्लानि में तप कर मुमूर्षु हो रही हैं। इन्हें शत्रुसंहार न देख पाने का हार्दिक खेद है, पतिदर्शन की तीव्र उत्कंठा ही उनके विलाप का केन्द्र-बिन्दु है।

जब वह मायामय जनक सीता जी से कहता है कि तुम रावण को स्वीकार कर लो, उस समय सीता जी अपने कानों को बन्द कर लेतीं हैं, उन्हें क्रोध आ जाता है और वे तर्कबुद्धि से यह सोचने लगती हैं कि मेरे पिता अपने प्राणों की रक्षा के उद्देश्य से ऐसी बातें नहीं कह सकते, अतः यह कोई माया है। वे उस माया रूपधारी जनक को डाँटती हुई कहती हैं। तुमने जो बातें कहीं, उनसे धर्म का विनाश होगा, परम्परा विच्छिन्न होगी, क्षत्रियोचित वीरता विनष्ट हो जायगी, सत्य मिट जायगा, अयश उत्पन्न होगा, वेद के विधान स्खलित हो जायेंगे, सदाचार घट जायगा, देवों का प्रभाव कुंठित हो जायगा। विचार करने में सन्देह होता है कि क्या तुम जनक हो। चाहे अपनी संतति मिट जाय, अपने प्राण भी चले जायँ, शूल आकर वक्षस्थल का भेदन कर दे, तो भी महापुरुष ऐसे सुयश के साथ जीवन बिताना चाहते हैं, जिसको सुन कर मन को सन्तोष हो। कोई भी क्षत्रिय नीति के विरुद्ध रह कर अप्रकट रूप में अनेक लोगों की निन्दा का विषय बन कर जीवन बिताना उचित नहीं मानेगा। अहो ! यह कैसा पाप है ! तुम्हारे बन्धुजन, इस विशाल धरती के रहने वाले सभी प्राणी मेरी आँखों के सामने भले ही मिट जायँ, तो भी मैं नीति और चारित्र्य से हीन होकर नहीं जीवित रहूँगी। मैं सहस्रनामा ब्रजस्कन्ध (राम) की दासी हूँ। क्या मैं प्राणरक्षा के लोभ से लज्जा का परित्याग कर इस श्वान (रावण) को आँख उठा कर देखूँगी।[2] यहाँ पर कम्बन ने सीता के चरित्र में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया है। वे अत्यन्त आदर्शमयी पतिव्रता नारी के रूप में चित्रित की गयी हैं। उनकी तार्किक बुद्धि माया को समझने में सर्वथा सक्षम सिद्ध हुयी है। सीता धार्मिकता की

---

१. कम्बन०। युद्ध०। पृ० ३३३, ३४   २. वही, युद्ध०। अध्याय १९, पृ०३३९

प्रतिरूप हैं, उन्हें परम्परा रक्षा परमप्रिय है। वे एक सच्ची क्षत्राणी हैं, अतः वे आत्म-समर्पण को कायरता मानती हैं। सत्य और यश उनके कीर्तिस्तम्भ हैं, वेदों पर उनकी अविचल निष्ठा है और प्राण कंठगत होने पर भी वे सदाचार का उल्लंघन नही कर सकती। उन्हें देवों पर भी निष्ठा है। वे सर्वथा निष्पाप है और पाप प्रवृत्ति वाले किसी भी व्यक्ति को तिरस्कृत करने की क्षमता रखती है। उन्हें इस बात का स्वाभिमान है कि वे राम जैसे वीर की धर्मपत्नी है। वाल्मीकि में सीताविषयक उक्त वृत्तान्त नही मिलता। सम्भवतः वाल्मीकि (युद्ध०) के मायासीता जैसे प्रसंगो से प्रेरणा पाकर कम्बन ने मायाजनक की नवीन उद्भावना की है और वह इतनी सजीव एक सशक्त है, जिससे सीता के दृढ पातिव्रत्य का जीता-जागता रूप खडा हो जाता है।

कम्बन की सीता का कृत्रिम जनक के प्रति यह कथन कितना सशक्त है: तुम मेरे पिता नही हो यह निश्चित है। यदि तुम सचमुच मेरे पिता होते, तो विजयमाला धारी प्रभु (राम) के धनुष की जय बोल कर उनके मुक्त करने पर मुक्त होने की इच्छा करते। यदि मुक्त होना सम्भव नहीं होता, तो मरने को तैयार रहते। तुमने तो अवाच्य वचन कहे, अतः चिर अयश के भागी बने।[1]

सीता के उक्त कथन से उनकी दूरदर्शिता, तार्किकबुद्धि तथा आदर्शवादिता सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त महाराजा जनक के आदर्शचरित्र का भी सकेत मिलता है जो वीर सहिष्णु, साहसी, त्यागशील, वाग्मी तथा चिरयशस्वी थे। इन लक्षणों के अभाव से ही सीता कृत्रिम जनक के छद्मवेष को पहचानने में सक्षम होती है। जब सीता इस कृत्रिम जनक की भर्त्सना करती है, तब रावण उन्हें भय प्रदर्शित करता हुआ, उन्ही के समक्ष कृत्रिम जनक को मारने को कटार निकाल लेता है। इस प्रदर्शन पर भी सीता निर्भीक होकर रावण से कहती है: तुझमें मारने की शक्ति नही है। अब इसे भी तू नही मार सकता। इतना ही नही, इस ससार को भी नही मार सकता। तू तो मेरे प्रभु के शरों से ही अपने बन्धुजन सहित मरेगा। मै इस दुःख से मुक्त होकर शाश्वत-यश की पात्री बनूँगी।[2] इस कथन से सीता की निर्भीकता तो सिद्ध होती ही है, साथ ही उनकी ओजस्विता, वाग्मिता एवं पातिव्रत्यादि गुणों पर भी प्रकाश पड़ता है। वे जानती है कि रावण एक कामी व्यक्ति है, जो अपनी पाप-प्रवृत्ति के कारण पतित हो गया है, इसी कारण इस कृत्रिम जनक पर भी प्रहार नही कर सकता। उन्हें शास्त्रों की वाणी पर विश्वास है कि पापी अपने पाप से नष्ट हो जाता है और साधु समत्व के कारण भय से मुक्त हो जाता है।[3] इस प्रकार उन्हें अपने पति राम की अक्षुण्ण शरशक्ति पर भी दृढ़ विश्वास है।

---

१. कम्बन। युद्ध०। अध्याय १६। ६८   २. वही, युद्ध०। १६।७०

३. हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलु साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते।

श्रीमद्भा०।१० स्क०

मायाजनक का उक्त वृत्तान्त संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य उत्तर भारतीय साहित्य में नहीं प्राप्त होता। सम्भवतः कम्बन ने सीता के आदर्श चरित्र को और अधिक परिष्कृत करने के लिए इस कथानक की उद्भावना की है। लौकिक दृष्टि से रावण जैसे आततायी के लिए ऐसी माया करना सम्भव भी था। जब मायामृग, मायासीता तथा माया जन्य विभिन्न छल किये जा सकते हैं तो मायाजनक की सम्भावना भी की जा सकती थी।

जिस समय मेघनाद युद्धक्षेत्र में लक्ष्मण को धराशायी कर देता है और राम अपने बन्धु लक्ष्मण की यह दशा देखकर स्वतः संज्ञाहीन हो जाते हैं, उस समय रावण की प्रेरणा से राक्षसियाँ सीता को पुष्पक में बैठाकर युद्धभूमि में ले जाती हैं। वहाँ राम लक्ष्मण की उक्त दशा देखकर सीता जी अत्यन्त व्यथित होकर रुदन करने लगती हैं, जिनके रुदन को श्रवण कर पार्वती, लक्ष्मी, दुर्गा तथा देवांगनायें भी रो पड़ती हैं।[१] इससे सीता के शक्ति स्वरूप का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। वे कभी तो धर्म को, कभी नियति को, कभी यम को और कभी अपने को कोसती हुई विलाप करती हैं। उन्हें राम का शील तथा स्वभाव याद आता है। वे सोचती हैं कि माता कौशल्या जीवित नहीं रहेंगी। कैकेयी को कठोर हृदया-समझ कर सोचती हैं कि राम को वन में प्रेषित करने का उसका यही उद्देश्य था। सीता केवल राम के लिए ही नहीं, अपितु लक्ष्मण के लिए भी विलाप करती हैं और अन्ततः राम के शरीर पर गिर कर प्राण त्यागने के लिए उद्यत हो जाती हैं।[२]

वाल्मीकि की सीता इस प्रसंग में दुखित होती हुई भी तर्कशील हैं। उन्हें अपने अंगों में वैधव्य के कोई लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते, इसके अतिरिक्त भविष्य-वेत्ताओं ने उनके राज्याभिषेक की भविष्यवाणी की थी, वह असत्य कैसे हो सकती है, इन बातों को सोचती हुई व्यथित हो जाती हैं। वे माता कौशल्या का सर्वाधिक चिन्तन करती हैं, किन्तु कैकेयी के बारे अपने विचार नहीं व्यक्त करती।[३] इसी ग्रन्थ से प्रेरणा लेकर कम्बन ने भी उक्त वृत्तान्त का वर्णन किया है। कम्बन रामायण तथा वाल्मीकि दोनों ग्रन्थों में त्रिजटा सीता को सान्त्वना देकर शान्त करती हुई चित्रित की गई है। अन्तर यह है कि कम्बन की सीता में आत्मग्लानि एवं कुण्ठा नहीं दूर हो पाती। त्रिजटा के समझाने पर भी वे कहती हैं: स्त्रीजनोचित लज्जा का मैंने पहले ही त्याग कर दिया, एक गृहिणी बन कर रहने योग्य सम्पूर्ण सद्गुणों का त्याग किया, फिर भी अपने धनुर्धर पति राम की पुनः प्राप्ति की आशा से अभी तक जीवित

---

१. कम्बन० । युद्ध० । २२। ५ २. वही, युद्ध० । २२। पृ० ४३०, ३१
३. वा० रा० । युद्ध० ।४८।२, २०

रही। अब सम्मान रहित इस शरीर का त्याग कर देना, मेरे लिए अत्यन्त सुलभ है।[१] वालमीकि की सोता इतनी ग्लानि नही प्रदर्शित करती, वे कम्बन की सीता की तुलना में अधिक विवेकशील प्रतीत होती है।

कम्बन रामायण में इन्द्रजित एक मायासीता की रचना करता है और संग्राम भूमि में दूर से राम पक्ष को दिखला कर उस रोती-चिल्लाती हुई सीता का वध करता है।[२] इससे राम, लक्ष्मण, हनुमान तथा सभी सैनिक विकल होते है और अन्त में विभीषण वाटिका में जाकर सीता के दर्शन कर लौटते है और सब को यह विश्वास दिलाते हैं कि इन्द्रजित ने मायासीता का वध किया है वास्तविक सीता तो जीवित हैं। वालमीकि मे भी इन्द्रजित राम दल को मोहित करने के उद्देश्य से माया सीता का वध करता है।[३] इस प्रकार कम्बन का यह प्रसंग भी मूलतः वालमीकि से प्रेरित है।

रावण वध के पश्चात् राम की आज्ञा से हनुमान सीता के पास जाकर विजय का समाचार सुनाते है जिसे सुन कर सीता एक क्षण मूक रहती है और हनुमान के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करती हैं।[४] जब हनुमान सीता से यह आज्ञा माँगते है कि मै त्रिजटा को छोड़कर इन दुष्टा राक्षसियों का वध करना चाहता हूँ, तब सीता जी अपनी दयालुता एवं क्षमाशीलता का परिचय देती हुई उन राक्षसियों को अभयदान देती है और हनुमान से कहती है कि मेरे पाप-परिणाम के कारण ही मुझे कष्ट मिले हैं। ये सभी राक्षसियाँ मंथरा के समान क्रूर नही हैं। क्रूर, पापशील एवं विवेकशील इन राक्षसियो को दुःख मत दो।[५]

वाल्मीकि की सीता भी विजय का समाचार प्राप्त कर हनुमान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हैं। यहाँ भी हनुमान क्रूर राक्षसियों के हनन करने की इच्छा प्रकट करते हैं, किन्तु सीता उन्हें क्षमा करने की बात कह कर अपनी दयालुता तथा उदारता का परिचय देती हैं। वे अपने कष्टों का कारण अपना दुर्भाग्य ही समझती हैं।[६] इस प्रकार वाल्मीकि की सीता का प्रतिविम्ब कम्बन की सीता पर भी पड़ता हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार जब सीता जी राम के समक्ष जाने को उद्यत होती है, तब वे अपने मूलरूप में ही उपस्थित होना उचित समझती हुई विभीषण से कहती है : हे वीर ! यह उचित होगा कि देवता, मुनि, हमारे प्रभु (राम) तथा कुलीन पातिव्रत्य से युक्त दिव्य स्त्रियाँ मुझें इसी दशा में देखे, जिस दशा में मै यहाँ अब तक रही। उसके पश्चात् जैसे तुम कह रहे हो, वैसे आभूषण धारण

---

१. कम्ब० । युद्ध० । २२।३१
२. कम्ब० । युद्ध० । अध्याय २५
३. वा० रा० । युद्ध० । ८१ सर्ग
४. कम्बन० । युद्ध० । पृ० ५६३
५. कम्बन० । युद्ध० । पृ० ३७।५६४
६. वा० रा० । युद्ध० ११३।१८,४५

करना संगत होगा।[1] वाल्मीकि की सीता भी अपने मूलरूप में चलने की इच्छा प्रकट करती हैं।[2] इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में सीता के एक ही विचार चित्रित किये गये हैं। जब विभीषण उनसे राम की आज्ञा का संकेत करते हैं, तब वे अलंकृत होकर भी चलने के लिए उद्यत हो जाती हैं। वाल्मीकि में तो सीता के शृंगार करने का संक्षिप्त उल्लेख पाया जाता है, किन्तु कम्बन में विस्तृत वर्णन किया गया है। वहाँ तो मेनका, रंभा, उर्वशी प्रभृति देवांगनाओं द्वारा सीता के शृगार करने का उल्लेख मिलता है।[3] ऐसा वर्णन करने से सीता के शक्तिस्वरूप की पुष्टि हुई है। वाल्मीकि की सीता को उक्त-गौरव नहीं प्राप्त हो सका।

कम्बन की सीता राम के समक्ष प्रस्तुत होते ही अश्रु भर लेती हैं और पातिव्रत्य की मूर्ति बन कर राम के चरणों में प्रणाम करती हैं। यहाँ वाल्मीकि की सीता में विस्मय, हर्ष और स्नेह की त्रिवेणी प्रवाहित होती हुई चित्रित की गई हैं। दोनों ग्रन्थों में राम द्वारा सीता को कटुवचन कहे जाने का उल्लेख मिलता है। कम्बन के राम कहते हैं: तुम नीतिभ्रष्ट राक्षस की विशाल लंका में निवास करती थी, वहाँ दबी पड़ी थी, षड्रस भोजन के लोभ में जीवन सुरक्षित किये रही। चारित्र्य नष्ट हो जाने पर भी तुम्हारे प्राण नही निकले। अब तुम संकोचहीन होकर यहाँ क्यों आई हो? क्या यह सोचती हो कि राम मुझे प्यार करेगा। मैंने समुद्र पार किया, रावण का सपरिवार संहार किया, वह अपने यश के लिए किया, न कि तुम्हें पुनः प्राप्त करने के लिए। इसी प्रकार सीता के चरित्र, गुण, गौरव आदि पर अनेक आक्षेप करते हैं, जिन्हें सुनकर सीता जी स्तम्भित होकर रुदन करने लगती हैं।[4]

इस प्रसंग में वाल्मीकि के राम अधिक कठोरता का वर्ताव करते हैं। वे तो सीता से यहाँ तक कहते हैं कि तुम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव अथवा विभीषण में अपना मन लगाओ। (युद्ध०।११५।२२, २३) कम्बन ने इतनी मात्रा में अपशब्द नहीं बतलाये।

कम्बन की सीता राम द्वारा कहे गये अपशब्दों को सुन कर राम पर क्रोध नही करतीं, अपितु दुःख ही प्रकट करती हैं। वे राम से कहती हैं कि: मैंने इतने दिनों तक जो क्लिष्टतप किया, सच्चरित्रता की सुरक्षा की, यह सब इसलिए कि आप उन्हें स्वीकार न करें? यदि आप मुझे पतिव्रता नहीं समझते, तो कौन देवता आपके विचारों को परिवर्तित कर सकता है। अब मेरे लिए मृत्यु ही अन्तिम उपाय है, मेरा भाग्य भी ऐसा ही है।[5] वाल्मीकि की सीता तो राम को सरुप होकर स्त्रीत्व

१. कम्बन० पृ० ५६४ २. वा० रा०। युद्ध० ११४।११
३. कम्बन० युद्ध०। ३७। पृ० ५६५ ४. कम्बन०। युद्ध०।३७। पृ० ५६७
५. कम्बन०।युद्ध० ३७, पृ० ५६८

प्रदर्शितकर्त्ता तक कह डालती हैं।[१] उनमें कम्बन की सीता जैसा दैन्य नही है और न वे भाग्य को ही कोसती है।

अन्ततः सीता जी की आज्ञा एवं राम के सकेत से लक्ष्मण अग्नि प्रकट करते है और सीता अग्नि को प्रमाण कर कहती है : हे अग्निदेव ! मन, वचन तथा कर्म, इन त्रिकरणों में से यदि मै किसी से भी कलकित होऊँ—तो तुम मुझे भस्म कर दो।[२] ऐसा कहकर प्रभु को प्रणाम करती हुई सीता अग्नि में प्रवेश करती है। अग्नि सीता जी के पातिव्रत्य की अग्नि से निस्तेज हो गया और श्री राम की दुहाई देता हुआ, अंजलिबद्ध होकर सीता को साथ लेकर प्रकट हुआ और राम से कहने लगा : आपने मेरी निर्बलता का विचार किये बिना पातिव्रत्य के दिव्य तेजोमय अग्नि से मुझे दग्ध कर दिया। मैने कुछ अपराध नहीं किया था, किन्तु आपने मुझ पर भी वैसा ही क्रोध किया।[३] कम्बन ने सीता की महत्ता को और अधिक प्रदर्शित करने के लिए सीता के तेज से अग्नि को निस्तेज चित्रित किया है, किन्तु कवि की प्रेरणा का मूलस्रोत वाल्मीकि का उक्त प्रसग ही है।

जब राम अग्नि से पूछते है कि दुराचारिणी नारी की रक्षा तुमने क्यों की, तब अग्निदेव कहते है : जब इस लोकमाता का पातिव्रत्य मुझे जलाने लगा, तब उसे न सहन कर मैं मंद पड़ गया। हे सर्वोत्तम ! मेरी यह दशा देखकर भी क्या तुम इन पतिव्रता पर संशय करते हो। वेदों का कथन है कि कुलीन स्त्रियाँ विवाह बन्धन से यदि पृथक् होने की संकटापन्न स्थिति मे पड़ जाये या उनके चारित्र्य के सम्बन्ध में कोई संदेह उत्पन्न हो जाये तो तुम उनकी पवित्रता की रक्षा करना, क्योंकि विवाह कृत्य तेरे सम्मुख किया जाता है। असत्य रहित हनुमान के वचन आपने नही माने और सीता को स्वीकार नहीं किया, अब मेरी आज्ञा से इस पतिव्रता को स्वीकार करो।[४]

इस प्रकार कम्बन की सीता का पातिव्रत्य वाल्मीकि की सीता से कही अधिक दीप्त एवं प्रमाणित है। दोनों ग्रन्थों में शिवादि देव सीता के सतीत्व की प्रशसा करते है, किन्तु कम्बन ने उस प्रशंसा में और अधिक वृद्धि कर दी है।

कम्बन रामायण में उक्त युद्धकाण्ड तक की ही सामग्री प्राप्त है। उत्तरकाण्ड की रचना कम्बन के पश्चात् ओट्टक्कूतन नामक किसी कवि ने की है, जिसमें रजक वृत्तान्त के आधार पर सीतात्याग का वर्णन किया गया है, किन्तु शेष कथानक वाल्मीकि पर ही आधारित है।

कम्बन रामायण के प्रस्तुत सीता विवेचन में हमने आद्योपान्त वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है, जिससे यह बात बिल्कुल स्पष्ट

१. वा० रा०, युद्ध०, ११६, १४
२. कम्बन०, पृ० ५६६
३. कम्बन युद्ध०, पृ० ५६६
४. कम्बन० युद्ध०, पृ० ३७।५६६

हो गयी है कि कम्बन की रचना का मुख्य प्रेरणास्रोत वाल्मीकि ही है यह बात दूसरी है कि कम्बन ने कई स्थानों पर वाल्मीकि की सीता की अपेक्षा अपनी सीता में वैशिष्ट्य उत्पन्न किया है। किसी भी महाकवि के लिए आत्मदेन के रूप में ऐसा करना समीचीन ही नही, अपितु आवश्यक भी होता है। उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह नवीन मान्यताओं एवं परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करता हुआ काव्य रचना करे। कम्बन ने इसी गुरुतर उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए अपने ग्रन्थ की रचना की है।

संक्षेप में तमिल की सीता लक्ष्मी का अवतार है, दुर्गा, पार्वती, आदि शक्तियाँ भी उनकी सेवा करती है, किन्तु उनका यह अलौकिक रूप सर्वत्र प्रकट नही हुआ। वे अधिकांश एक आदर्श पतिव्रता मानवी हैं, वे मिथिला में राजप्रासाद से ही कुमार राम के दर्शन कर उन पर आसक्त हो जाती हैं और यह प्रतिज्ञा कर लेती हैं कि यदि इस कुमार के अतिरिक्त कोई द्वितीय व्यक्ति धनुर्भंग भी करेगा तो मैं उसका वरण न कर प्राण त्याग दूंगी। वे पूर्वानुराग के कारण कामवेदना से पीड़ित होती हैं और राम का वररूप में प्राप्त करने के लिए विभिन्न देवों एवं देवियों से प्रार्थना करती हैं। उनका प्रेमीहृदय धनुप की कठोरता से भयभीत है, उन्हें अपने पिता जनक के प्रण पर भी आक्रोश है। सीता विवाह के पूर्व वशिष्ठ आदि के समक्ष अधिकृत रूप में राम के दर्शन पाती हैं, किन्तु अपनी लज्जाशील प्रकृति के कारण उन्हें व्याज दर्शन से ही सन्तोष करना पड़ता है।

कम्बन की सीता रामवनवास के समय स्वयं ही वल्कलवस्त्र धारण कर वन-गमन के लिए प्रस्तुत हो जाती है, इससे उनका पातिव्रत्य एवं चातुर्य स्पष्ट प्रतीत होता है। राम के रोकने पर वे परुप नही हो जाती, अपितु प्रणय कोप से भर कर केवल इतना ही कहती हैं कि मेरे ले चलने में ही आपको कष्ट होगा। वे एक आदर्श सेविका की भांति पथ मे राम की सेवा करती है, सुकुमारी होती हुई भी कष्टों को सहन करती है। प्रकृति के प्रति उनका असीम अनुराग है। वन पर्वत, लता, पादप तथा सरिताये उन्हें आनन्दित करती है। वे कुतूहलमयी नारी है, मारीच के कपट रूप पर मुग्ध होकर वे राम को ही उसका वध कर उसका चर्म लाने अथवा जीवित पकड़ लाने का आदेश देती हैं। सीता अतिथि-सत्कार में निपुण है, वे यतिवेपधारी रावण का भी सम्मान करती है। उन्हें धर्म, नीति एवं मर्यादा का सदैव ध्यान रहता है और अपने प्रियतम वीर राम के पराक्रम पर दृढ़विश्वास रहता है। वे रावण द्वारा अपहृत तो होती हैं, किन्तु रावण उनका स्पर्श नहीं करता, अपितु आश्रमभूमि भाग सहित उन्हें लंका ले जाता है। सीता हनुमान पर वात्सल्यमयी हैं, किन्तु वे उनकी पीठ पर बैठकर चोरी से राम के समीप नही आना चाहतीं, क्योंकि वे आदर्श पतिव्रता

एवं वीरबाला हैं। वे कृत्रिम जनक की प्रार्थना पर भी धर्म का परित्याग नहीं करती, अपितु अपनी तर्कबुद्धि से उसे छली समझकर उसका तिरस्कार करती हैं। उनके स्वभाव में दैन्य एवं कुण्ठा का वास हो गया है, फिर भी वे जन्म-जन्मान्तर में राम को ही पतिरूप में चाहती हैं। लंका से उद्धृत होने पर वे अग्निपरीक्षा द्वारा अपनी शुद्धि प्रमाणित कर गौरवान्वित होती हैं। इस प्रकार तमिल सीता श्रेय की मूर्ति हैं, वे देवी होती हुई आदर्श पतिव्रता, सुशील एवं सच्चरित्र नारी हैं।

(ख) तेलुगु साहित्य में श्री सीता और तमिल साहित्य की सीता से तुलना

तेलुगु भाषा में विपुल राम साहित्य की सृष्टि हुई। विद्यारत्न निडदवोलु वेंकट राव (रीडर तथा तेलुगु विभागाध्यक्ष, मद्रास विश्वविद्यालय) के अनुसार तेलुगु में राम कथा से सम्बद्ध रचनाओं की संख्या लगभग तीन चार सौ तक है। पुराण, प्रबन्ध द्विपद, शतक, वचन, यक्षगान, दंडक, पदगीत एवं कीर्तन, मतलब यह है कि आज तेलुगु में महाकाव्य जैसे शास्त्रीय रूप से अपढ़ ग्रामीण जनता के द्वारा गाये जाने वाले लोकगीतों तक में रामकथा उपलब्ध है। साहित्य रचना के रूप में रामकथा साहित्य का प्रारम्भ तेरहवीं सदी में हुआ और उस समय से उस साहित्य की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। इस प्रकार तेलुगु साहित्य के सभी युगों में राम-कथा विशेष आकर्षण की वस्तु रही है। आज भी जब तेलुगु साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ जन्म ले चुकी हैं और जन्म ले रही हैं, तेलुगु भाषा के कई प्रसिद्ध आधुनिक कवियों ने रामकथा को शास्त्रीय पद्धति पर लिखा है और लिखने में लगे हैं।[१]

यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि तेलुगु किस प्रान्त की भाषा है और इसके नामकरण का क्या इतिहास है, अतः संक्षिप्त रूप में इस विषय पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा। ए० सी० कामाक्षिराव के अनुसार विदेशी पंडितों के द्वारा 'इटालियन आफ दि ईस्ट' कही जाने वाली तेलुगु भाषा द्राविड भाषा परिवार की समृद्ध एवं साहित्यसम्पन्न भाषा है। वैसे तो इसके तीन नाम है : तेलुगु, तेनुगु और आन्ध्रमु, किन्तु तेलुगु शब्द का ही अधिकाधिक प्रयोग होता है। आन्ध्र शब्द पहले जातिपरक था, किन्तु बाद को वह देशपरक हुआ और निदान आन्ध्र देश की भाषा आन्ध्रमु कहलाती है।[२] आन्ध्र प्रदेश में सम्प्रति २० जिले आते हैं। पहली अक्टूबर १९५३ से तेलुगुभाषी जनता का आन्ध्र नाम से एक नया राज्य बना। इसमें मद्रास राज्य के श्रीकाकुलम, विशाखापट्टणम, पूर्वीगोदावरी, पश्चिमीगोदावरी, कृष्णा, गुंटूर, नेल्लूर, अनन्तपुर, कडपा, कर्नूल, चित्तूर तथा बल्लारी जिले के तीन ताल्लुके

---

१. रंगनाथ रामायण (हिन्दी अनुवाद) परिचय (राष्ट्रभाषा परिषद् पटना)

२. वही : प्रस्तावना

शामिल किये गये। राज्य पुनर्गठन के फलस्वरूप हैदराबाद के आदिलाबाद, वारंगल, करीमनगर, मेदक, हैदराबाद, नलगोंडा, खम्मपेट तथा महबूबनगर जिले, जो कि पहले तेलंगाना क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध थे, आन्ध्र प्रदेश में मिल गए है।[1] इसकी उत्तरी सीमा उत्तर पूर्व बरहमपुर से प्रारम्भ कर उत्तर में गोदावरी नदी के किनारे होती हुई निजामाबाद के कुछ उत्तर तक चली गई है। इसकी दक्षिणी सीमा मद्रास के उत्तर में लगभग ३० मील से प्रारम्भ कर कोलार तक है और पूर्व में समुद्र तट तक यह प्रदेश फैला हुआ है। १९६१ की जनगणना के अनुसार आन्ध्र प्रदेश की जनसंख्या तीन करोड़, उनसठ लाख तेरासी हजार चार सौ सैतालिस थी और इसका क्षेत्रफल उसी वर्ष के विवरणों के आधार पर १,०६,२८६ वर्ग मील था।[2]

यहाँ तक इतना स्पष्ट हो चुका है कि तेलुगु भाषा आन्ध्र प्रान्त की भाषा है। अब इसके नाम पर विचार करना उचित है। तेलुगु शब्द का अर्थ माधुर्य होता है। यह भाषा उकारान्त प्रधान है, जिससे इसमें माधुर्य का होना स्वाभाविक है। तेलुगु शब्द के निर्माण के विषय में अनेक मत प्रचलित है।

एक मत यह है कि आन्ध्र में श्रीशैली, कालहस्ती तथा द्राक्षाराम नामक तीन प्रसिद्ध शिवलिंग तीर्थ हैं उनके मध्य भूभाग का नाम त्रिलिंग देश है। यही त्रिलिंग शब्द तेलुगु के रूप में परिवर्तित हो गया है। द्वितीय मत यह है कि प्राचीनकाल में गंगातट से लेकर उड़ीसा के कटक तक का भूभाग उत्तरकलिंग तथा गोदावरी तक का प्रान्त दक्षिणकलिंग के नाम से पुकारा जाता था। ये तीन कलिंग ही त्रिकलिंग और त्रिलिंग कहलाये, त्रिलिंग से ही तेलुगु का उद्भव हुआ।[3] अन्य मत भी है, किन्तु हमारे विचार से द्वितीय मत ही सर्वाधिक समीचीन प्रतीत होता है।

तेलुगु साहित्य के विस्तृत क्षेत्र में सीता विषयक सामग्री का प्राचुर्य है। यहाँ पर सामान्यतया ऐतिहासिक क्रमानुसार उसका सामान्य परिचय दिया जा रहा है, तत्पश्चात् तेलुगु की प्रतिनिधि रचना 'रंगनाथ-रामायण' के आधार पर सीता-विषयक विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की जायगी।

सर्वप्रथम महाकवि तिक्कना के पितामह मन्त्रीभास्कर एक रामायण के रचनाकार माने जाते है, उन्होंने अरण्यकाण्ड तक उक्त ग्रन्थ की रचना की थी। इसी कारण इनके नाम के साथ 'भास्कर-रामायण' का उल्लेख किया जाता है। वस्तुतः यह ग्रन्थ हुलक्किभास्कर की रचना है। महाकवि तिक्कना का स्थितिकाल (सन् १२२० से १२९० ई०) तेरहवी शताब्दी माना जाता है। इन्होने निर्वचनोत्तर रामायण

१. तिलगू साहित्य का इतिहास पृ० ३ (बालशौरि रेड्डी) प्र० सं० १९६४
२. तिलगू साहित्य का इतिहास, पृ० १ (बालशौरि रेड्डी) प्र० सं० १९६४
३. वही, पृ० ८ (आन्ध्र प्रदेश)

की रचना की है, जिसमें वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की मुख्य कथावस्तु ग्रहण की है। इस ग्रन्थ में १० आश्वासों के माध्यम से कवि ने रावणजन्म, सीता वनवास, लवकुशवृत्तान्त आदि का वर्णन किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सीता परित्याग का अंश अत्यन्त करुण एवं प्रभावशील प्रतीत होता है, कवि के राम एक साधारण मानव हैं।

इसके पश्चात् गोनबुद्धा रेड्डी (सन् १२७० ई०-१३२५ ई०) ने अपने पिता पांडुरंग विट्ठलनाथ के नाम पर रंगनाथ रामायण की रचना देशी द्विपद छन्द में की। तेलुगु साहित्य में यह रामायण अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्राचीन मानी जाती है। कुछ लोग रंगनाथ को इसका प्रणेता मानते हैं किन्तु डॉ० कट्टिमंचि रामलिंगा रेड्डी ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस रामायण के प्रणेता रंगनाथ नहीं, गोनबुद्धा रेड्डी ही हैं।[1] इस रामायण की सीता का विस्तृत विवरण इसी अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा।

तेलुगु साहित्य में भास्कर रामायण विशेष प्रसिद्ध है। मूलरामायण (वाल्मीकि) के प्रथम अनुवाद के रूप में इसे मान्यता प्राप्त है। वैसे तो एर्राप्रेगड़ा ने प्रथम अनुवाद प्रस्तुत किया था, किन्तु वह कृति आज अप्राप्य है। इस भास्कर रामायण के चार कर्ता माने जाते हैं: हुलक्कि भास्कर, मल्लिकार्जुन, रुद्र देव तथा अय्यलार्य।[2] हुलक्किभास्कर ने इस ग्रन्थ के अरण्यकाण्ड एवं युद्धकाण्ड की रचना ११३९ पद्यों में की थी।[3] मल्लिकार्जुन भट्ट ने भास्कर रामायण के बालकाण्ड, सुन्दरकाण्ड तथा किष्किंधाकाण्ड की रचना की थी। इसी प्रकार कुमार रुद्रदेव ने उक्त ग्रन्थ के अयोध्या काण्ड की रचना की थी। अय्यलार्य ने युद्धकाण्ड के अवशिष्ट भाग की पूर्ति १३५६ पद्यों में की थी।

भास्कर रामायण केवल वाल्मीकि रामायण का अनुवाद ही नहीं है, उसमें अनेक पुराणों एवं लोककथाओं की सामग्री का भी प्रयोग किया गया है, जिससे उसमें चमत्कार उत्पन्न हो गया है। एर्राप्रेगड़ा (१२८५-१३५५ ई०) की रामायण अप्राप्त है, किन्तु सर्वलक्षण सार संग्रह नामक एक लक्षण ग्रन्थ में उसके कुछ पद्य उद्धृत किये हुये मिलते हैं। यह ग्रन्थ वाल्मीकि का संक्षिप्त अनुवाद प्रतीत होता है।[4] अन्नमाचार्यूलु नामक कवि (१४२३-१५०२ ई०) की द्विपद रामायणमु भी एक प्रसिद्ध रचना मानी जाती है, जिसमें कवि ने परम्पराप्राप्त रामकथा का वर्णन किया है। पिनवीरना (१४२५-९० ई०) प्रसिद्ध ग्रन्थ जैमिनी भारतमु के रचयिता माने जाते हैं। इस ग्रन्थ में रामाश्वमेध के प्रसंग में सीता के उत्तर चरित्र पर सुन्दर विवरण मिलता है। रामभद्र कवि (१५३०-८० ई०) का रामाभ्युदय काव्य भी एक उत्तम प्रबन्ध काव्य माना जाता है, जिसमें सीता विषयक प्रभूत सामग्री उपलब्ध है।

---

१. तेलुगु साहित्य का इतिहास, पृ० ८४
२. वही, पृ० ८६
३. वही, पृ० ८७
४. वही, पृ० ९३, ९४

तेलुगु साहित्य में कवयित्री 'मोल्ला' द्वारा प्रणीत रामायण अतिप्रख्यात है। वस्तुतः तेलुगु की अनेक रामकथाओं में 'रंगनाथ-रामायण' के पश्चात् इसी ग्रन्थ का सर्वाधिक महत्व माना जाता है। इनका स्थितिकाल कृष्णदेव राय (१४८७-१५३० ई०) का ही काल माना जाता है। इस ग्रन्थ में कवयित्री ने सीता के अद्भुत सौन्दर्य, उनके अप्रतिम पातिव्रत्य आदि का अत्यन्त हृदयहारी चित्रण प्रस्तुत किया है। १६२५ ई० के लगभग एलकूचि वाल सरस्वती ने 'राघवयादव पांडवीयमु' नामक श्लेषप्रधान काव्य की रचना की, जिसमें वाल्मीकि के आधार पर कवि ने सीता के चरित्र का सुन्दर प्राविधान किया है। रघुनाथराय (१६००-१६३१ ई०) ने 'जानकी-परिणय' नामक यक्षगान एवं 'रघुनाथ-रामायण' नामक चम्पूकाव्य की रचना की थी। इस ग्रन्थ में चार आश्वास तथा ४६७ गद्य-पद्य है। यह ग्रन्थ संस्कृत राम नाटकों से प्रभावित होता है। रंगराजम्मा कृत 'रामायण-संग्रह' भी प्रबन्ध युग या रायल युग की सुन्दर रचना मानी जाती हैं।

तेलुगु साहित्य का अर्वाचीन युग १७०१ ई० से १८५० ई० तक माना जाता है।[1] इस युग में सह्रा जी का 'सीता-कल्याणमु' यक्षगान विशेष प्रसिद्ध हुआ। तिम्म-कवि (१६९०-१७५७ ई०) की रचना अच्च तेलुगु रामायण एक परम्परापोषित कृति मानी जाती है। जग्ग कवि (१७००-१७६०) ई० ने जानकी जी के विवाह का सरस चित्रण 'जानकी-परिणय' नामक रचना में प्रस्तुत किया है। लक्ष्मण कवि (१७००-१७८० ई०) का रामविलास भी एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है। इसी समय वीर राघव ने 'यादव राघव पांडवीयमु' नामक श्लेप प्रधान रचना मे रामचरित्र पर भी सुन्दर प्रकाश डाला है। तेलुगु साहित्य मे कंकटि पापिराजु द्वारा विरचित उत्तर-रामायण नामक ग्रन्थ अपना अनुपम स्थान रखता है। इसमे कवि ने सीतात्याग का अत्यन्त करुण चित्रण प्रस्तुत किया है। तेलुगु में महाभारत तथा भागवत के पश्चात यह काव्य विशेप समादृत माना जाता है। पेदरामात्युडु कविकृत 'शिवरामाभ्युदय' एक द्व्यर्थक काव्य है, इसमे श्लेप द्वारा राम तथा शिव का कथानक वर्णित है। परशुराम पंतुल सिंगपूर्ति की रचना 'सीतारामांजनेयसम्पादमु' में वेदान्त के सिद्धान्तों को तीन आश्वासों में कथात्मकरूप देकर कवि ने चमत्कार उत्पन्न किया है। सोमशेखर की 'रामकृष्णार्जुनरूप नारायणीयमु' रचना भी एक सश्लिष्ट कृति है, जिसमें कवि ने एक ही साथ राम, कृष्ण तथा अर्जुन की कथायें चार आश्वासों में वर्णित की है। त्यागराज (१७६४-१८४६ ई०) एक रामभक्त कवि थे। उन्होंने 'सीताराम-विजय' नामक यक्षगान की सृष्टि कर अमरकीर्ति अर्जित की है। लक्ष्मण (१७७०-१८४० ई०) की रचना 'लंकाविजय' (रावणदम्भीय) एक विचित्र रचना है, जिसमें कवि ने अपने

१. तेलुगु साहित्य का इतिहास, पृ० १८०

क्षेत्रापहारक धर्मराय को रावण कल्पित कर रामायण कथा का द्व्यर्थीरूप प्रस्तुत किया है।

राम कृष्ण (१८४१) कवि ने भी एक 'अध्यात्म रामायण' की रचना की थी, जिसमें परम्परागत रामकथा वर्णित है। इस युग के कवि अनन्तराजुजन्नय तथा काणादपेद्दन सोमयाजी ने क्रमशः रामकथाभिराम (१० आश्वास) तथा 'अध्यात्म रामायण' की रचना की है, जो विशेष विख्यात हैं। गोपीनाथमु वेंकट (१८२०-१८६०) ने संस्कृतरामायण का तेलुगु रूपान्तर 'गोपीनाथ-रामायण' के नाम से किया है। यह रचना तेलुगु रामायणों मे अत्यन्त उत्कृष्ट मानी जाती है। सूर्यप्रकाश कवि (१८०८-७३ ई०) की रचना 'सीताराम चरित' छः आश्वासो में लिखित उत्तम प्रबन्ध काव्य माना जाता है। व्यासमूर्ति शास्त्री (१८६०-१९१६ ई०) ने संस्कृत के अनर्घराघव का तेलुगु रूपान्तर प्रस्तुत किया। अध्यात्मरामायणमु भी इनकी उत्तम रचना मानी जाती है। जयन्ति रामय्या (१८६०-१९४१ ई०) ने 'आन्ध्र चम्पू रामायण' तथा 'बाल-रामायण' की रचना की, जो इस समय विशेष प्रसिद्ध है।

वर्तमान समय में आन्ध्र वाल्मीकि की उपाधि से विभूषित बाबिलि कोलनु-सुब्बराय (१८६३-१९३९ ई०) की 'रामायण' अति प्रसिद्ध है। यह रचना वाल्मीकि रामायण का यथामातृक अनुवाद है। पुरुषोत्तम कवि (१८६३-१९३८ ई०) ने 'अद्भुतोत्तर रामायण' की रचना कर विशेष ख्याति प्राप्त की है। लक्ष्मीनरसिंह राव (१८६५-१९४० ई०) के दो नाटक 'विजय राघवम्' तथा 'कल्याण राघवम्' भी तेलुगु के आधुनिक नाटकों में प्रसिद्ध है। लक्ष्मीनरसिंहम् (१८६७-१९४६ ई०) की 'सीताकल्याण' रचना भी महत्वपूर्ण मानी जाती है। तेवप्पेरुमाल्लय्या (१८७२-१९२१ ई०) ने गद्य में रामायण की रचना की थी।

इस प्रकार १३वी शताब्दी से लेकर अब तक तेलुगु में एक विस्तृत राम-साहित्य की सृष्टि हुई है, जिसका विश्लेषण कई शोध प्रबन्धों का विषय है। हम तेलुगु के प्रतिनिधि रामकाव्य के रूप में यहाँ पर 'रंगनाथ रामायण' को आधार मान कर सीता का स्वरूप प्रस्तुत करेंगे।

रंगनाथ रामायण तेलुगु साहित्य का एक ऐसा सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है, जो राम-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। श्री ए० सी० कामाक्षिराव ने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना के अनुरोध पर इसका हिन्दी गद्य में रूपान्तर किया है। प्रस्तुत अध्ययन में हम उसी के सन्दर्भो का विवरण देंगे। इसी तमिल की कम्बन रामायण के सन्दर्भ भी न० वी० राजगोपाल द्वारा हिन्दी गद्य में अनूदित कम्ब रामायण : भाग १, पृ०१, ५४४ (भाग २ पृ० १) से देंगे।

रंगनाथ रामायण 'वाल्मीकि रामायण' का अनुवाद मात्र नही है। स्थूल रूप

से वाल्मीकि रामायण की कथा तो इसमें आ गई है, किन्तु उसके कवि ने बीच-बीच में ऐसे प्रसंग भी जोड़े हैं, जो कदाचित् उस समय तक जनता के बीच लोककथाओं के रूप में प्रचलित हो चुके थे। सुलोचना वृत्तान्त, कालनेमि वृत्तान्त प्रभृति अनेक कथानक इस बात के प्रमाण हैं। इस ग्रन्थ में बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड पर्यन्त रामायण कथा का मनोरंजक वर्णन किया गया है।

रंगनाथ की सीता भी वाल्मीकि की सीता की भाँति अयोनिजा हैं। जनक जी उनकी उत्पत्ति का परिचय देते हुए विश्वामित्र जी से कहते हैं: मैंने यज्ञ करने का संकल्प करके भूमि को शुद्ध करने के लिए जब उसमें हल चलाया, तो मुझे हल की फाल रेखा में एक मंजूषा मिली। हर्षपुलकित होकर जब मैंने उसे खोला तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। उसमें एक अत्यन्त प्रभा समन्वित कन्या निकली। मैंने उसका नाम सीता रखा और उसे अपनी पुत्री मान कर बड़े प्रेम से उसका लालन-पालन करने लगा।[१]

कम्बन की सीता भी अयोनिजा हैं। उसमें शतानन्द (जनक के पुरोहित) सीता की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं, इतना ही नहीं, वे सीता को भूमिजा बतलाकर उनके रूप-गुण-सौन्दर्यादि का भी वर्णन करते हैं।[२] रंगनाथ की सीता तो विवाह के पूर्व राम के लिए विशेष चिन्तित नहीं प्रतीत होती, किन्तु कम्बन की सीता तो मिथिला दर्शन के प्रसंग में अपने प्रासाद से ही राम के दर्शन कर अनुरक्त हो जाती हैं। उन्हें कामज्वर पीड़ित करता है और वे राम के वियोग का अनुभव करती हुई विलाप करने लगती हैं।[३] इस प्रकार रंगनाथ की सीता कम्बन की सीता की तुलना में अधिक मर्यादित हैं। इतना अवश्य है कि वे भी राम के प्रति स्निग्ध थी। जिस समय उनकी परिचारिकायें राम के कुल, रूप, शौर्यादि का वर्णन करती हैं, तब उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे कानों में सुधा की वृष्टि हो रही हो। उनके शरीर मे रोमांच हो जाता है, उन्हें प्रीति तथा भीति का अनुभव होने लगता है। वे लज्जावनत होकर मौन खड़ी रह जाती हैं। सखियाँ उनका विविध प्रकार से शृंगार करती हैं और वे अपनी माता के साथ कनक सौध के गवाक्ष से धनुर्भंग के लिए तत्पर राम के दर्शन करती हैं।[४] इस प्रकार रंगनाथ की सीता में लज्जा, अनुराग, गाम्भीर्य एवं शालीनता के एक साथ दर्शन होते हैं।

रंगनाथ तथा कम्बन दोनों कवियों ने सीता को लक्ष्मी का अवतार माना है।[५]

---

१. रंगनाथ रामायण, बालकाण्ड (अध्याय ३२) गोनबुद्ध रेड्डी (हिन्दी अनुवाद) १९६१ ई०
२. कम्बन०, बाल०, १२।१६,१८
३. वही, बा० १०।३५,७८
४. रंग०। अ० ३३
५. वही, बाल०। ३५ सर्ग

कम्बन ने तो स्थान-स्थान पर सीता के लक्ष्मीरूप का उल्लेख किया है, किन्तु रंगनाथ ने विवाह के समय ही सीता को लावण्यमयी, श्रेष्ठ गुणवती, जगन्माता तथा आदिलक्ष्मी का अवतार माना है। सौन्दर्य के विषय में कवि का कहना है कि उस देवी के सौन्दर्य का वर्णन करना किसके लिए सम्भव है। वे भूषणों के लिए आभूषण थी, भूदेवी के समान थीं, रत्नाकर की मेखला थी, गन्धवती (पृथ्वी) और वसुमती थी।[1] कम्बन की सीता भी अद्वितीय सुन्दरी के रूप में चित्रित की गयी है। वे पाणि-ग्रहण के पूर्व एक बार वशिष्ठ आदि गुरुजनों के समक्ष सभा में बुलाई जाती है, वहाँ उन्हें राम के दर्शन होते हैं।[2] रंगनाथ की सीता को वैधानिक रूप से सभा के समक्ष राम के दर्शन का अवसर पाणिग्रहण के समय ही मिल पाता है। मधुपर्क की विधि तक सीता विवाह-मण्डप में परदे के पीछे ही रहती है। जब जनक संकल्प करते हुए राम से कहते है : हे राम ! मेरी पुत्री सद्धर्मचारिणी सीता को अग्नि के समक्ष ग्रहण करो। तब पर्दा हटाया जाता है और सीता की दृष्टि पति के चरण कमलों पर स्थित हो जाती है।[3] इससे सीता की सलज्जता पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है।

रंगनाथ की सीता को कौसल्यादि सासों का आशीर्वाद मिथिला में सुलभ नही होता, किन्तु कम्बन की सीता को मिथिला में ही जनवास मे स्थित सासों से आशीर्वाद मिलता है।[4] रंगनाथ की सीतादि बधुएँ अयोध्या पहुँचने पर उत्तम माताओं का आशीर्वाद ग्रहण करती हैं और मातायें बधुओं का मधुर स्वभाव एवं उनकी कुशलता को देख कर सन्तुष्ट होती है।[5] इससे यह सिद्ध होता है कि रगनाथ की सीता में कार्य कुशलता एवं स्वभावमाधुरी विशेष मात्रा मे विद्यमान थी।

राम राज्याभिषेक के समय राम की महत्ता तो दोनों ग्रन्थों में पाई गई है, किन्तु राम के साथ सीता की महत्ता का उल्लेख रंगनाथ ने नही किया। इस प्रसंग मे कम्बन ने वशिष्ठ जी द्वारा सीता को भूदेवी से भी उत्तम, यहाँ तक कि लक्ष्मी तथा सरस्वती से भी उत्तम कहलाया है।[6]

रंगनाथ में राम और सीता के नव वैवाहिक जीवन के आनन्द का उल्लेख मिलता है। दम्पति युग्म के अट्टालिकाओं क्रीड़ासौधों, चन्द्रकान्तशिलाओं, शीशमहलों शयनागारों, जुही की पुष्पशय्याओ, नानावृक्षोपशोभित उपवनों, क्रीड़ापर्वतों, सरोवरों, लतागृहों, धवलवितानों एव सैकतप्रदेशों में आमोद-प्रमोद करने के चित्रण से कवि ने आगे आने वाले वनवास के दुःखों की उत्तम पृष्ठभूमि तैयार की है।[7] सुखो की

१. वही, बाल० । ३५ सर्ग
२. कम्ब० । बाल० । २०।३२, ४३
३. रंगनाथ । बाल० । ३६ सर्ग
४. कम्बन० । बाल० । अध्याय २१।१९८
५. रंगनाथ । बाल०।३८
६. कम्ब० । अयोध्या० ।१।४१
७. रंगनाथ । बाल० ।३८ सर्ग

उपलब्धि के पश्चात् दुःख का ही क्रम आता है।[1] कम्बन में राम-सीता के उत्तम सुखद जीवन के आमोद-प्रमोद का वर्णन नहीं मिलता।

जब सीता को वनवास की सूचना मिलती है, तब उनका चित्त सम्भ्रम-पूर्ण हो जाता है। वे वाल्मीकि की सीता की भाँति ही राम को राजचिन्हों से सुशोभित न देख कर उनसे उनकी मुखमलिनता का कारण पूंछती हुई अनेक प्रश्न करने लगती हैं। उन प्रश्नों से यह ज्ञात होता है कि सीता जी को राज्याभिषेक विधि का पूर्ण ज्ञान था। राम उनसे वनवास का वृत्तान्त बतला कर उन्हें माताओं के समीप रहने का आदेश देते हैं। राम का यह आदेश सीता को रुचिकर नहीं लगता। वे प्रचंडवायु से विकम्पित कदली की भाँति कम्पित होने लगती हैं, दुःख से उनका शरीर कान्तिहीन हो जाता है और वे पति से गद्‌गद स्वर में कहती हैं : हे प्राणेश ! यदि यह सच है तो मैं भी इसी क्षण आप के साथ चलूंगी। मैं आपके वियोग में जीवित नहीं रहूँगी, मेरे प्राण मुझ में नहीं रहेंगे, आप मुझे अपने साथ अवश्य ले चलिए।[2]

इस प्रकार इस प्रसंग में सीता का पतिप्रेम उनके सरल नारीत्व को लेकर मुखर हो गया है। माता कौशल्यादि की सेवा का यह उपेक्षा भाव अधिक स्पृहणीय तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु सतीत्व की दृष्टि से उचित ही प्रतीत होता है। जब राम वन की दुर्गमता का वर्णन कर पुन: सीता को सान्त्वना देकर उन्हें अयोध्या में ही छोड़ जाना चाहते हैं, तब सीता विनम्रभाव से साथ चलने का आग्रह करती हुई कहती हैं : हे नाथ ! पति का भाग्य ही सती स्त्रियों की रक्षा करने में समर्थ है। आप मेरे प्रभु हैं, मेरे देव हैं, तथा मेरी पुण्यगति हैं। श्रेष्ठ स्वर्ग सुख का उपभोग करने की अपेक्षा निश्चल मन से, अत्यन्त भक्तियुक्त होकर आपके चरणारविन्दों की सेवा करना ही मेरे लिए सुखदायक है। हे राजन् सदृश जगदैकवीर आपकी रक्षा में रहते हुए, इन्द्र भी मेरी ओर सिर उठा कर नहीं देख सकेगा। मैं आपके साथ वल्कल धारण करके पैदल चलूंगी और पर्वतों तथा नदी सरोवरों के दर्शन करूंगी। चाहे जो कुछ भी हो, आप मुझे अपने साथ अवश्य ले चलिए।[3]

सीता इतनी निर्भीक हैं कि उन्हें राम के रहते हुए किसी भाँति से भय नहीं प्रतीत होता। वे अपने जाने में ज्योतिषियों की भविष्यवाणी का भी तर्क देती हैं। वेदविदों ने कहा है कि मेरे भाग्य में वनवास लिखा है, अतः मैं आपके चरणों की सेवा करती हुई आपके साथ ही रहूँगी, मुझे मत छोड़िये, मेरी भक्ति का विचार कीजिये।[4] वाल्मीकि की सीता ने भी ज्योतिषियों की भविष्यवाणी का तर्क उपस्थित

---

१. सुख-दुख रात-दिवस की नाईं, (मानस)
२. रंगनाथ। अयो०। ६
३. रंगनाथ रामायण। अयो०, पृ० ८६
४. वही, पृ० ८६

किया है, किन्तु उनमें तर्क, तर्क लगता है और रंगनाथ की सीता का तर्क भावना लगता है, वह विनय एवं भक्ति से परिपुष्ट है।

कम्बन की सीता राम को देख कर केवल इतना ही पूँछती है कि चक्रवर्ती जी पर कुछ विपत्ति आ गई क्या ? वे रंगनाथ की सीता की भाँति अनेक तर्क नही करती। वे वनगमन की बात सुन कर उदास नही होती, किन्तु जब राम उन्हें अयोध्या में रहने के लिए कहते हैं, तभी उदास होती हैं। राम के इस कथन में उन्हे राम में कृपाहीनता एवं प्रेमहीनता का ही आभास होता है, जिसे वे स्पष्ट रूप से कह भी देती हैं।[1]

इस प्रसंग मे रंगनाथ की सीता अधिक मुखर है। वे अपने को पितृप्रदत्त सहधर्मचारिणी बता कर राम के साथ जाने मे ही धर्म का निर्वाह मानती है। वे राम के बिना अयोध्या में एक क्षण भी रहना उचित नही समझती। वे राम से कहती है : आप एक ऐसे आदर्श का पालन कीजिये, जो पति-पत्नी के अनुकूल हो। यदि आप मुझे छोड़ कर वन जायेंगे, तो मै अग्नि, जल अथवा विष द्वारा आत्महत्या कर लूँगी, अतः आप मेरी मृत्यु देख कर वन जायँ।[2] कम्बन की सीता न तो ऐसी धमकी देती और धर्मादि के तर्क-वितर्क करती है, वे अत्यन्त भोली-भाली भावुक धर्मपत्नी है। रंगनाथ की सीता वन चलने के लिए तो आग्रह मात्र करती है, किन्तु कम्बन की सीता उनसे एक पद और आगे है। वे तो वल्कलवस्त्र धारण कर राम का हाथ पकड़ कर सब के समक्ष खड़ी हो जाती है।[3] जब राम कहते हैं कि तुम मेरे लिए कष्ट उत्पन्न कर रही हो, तब वे कोपयुक्त होने पर भी इस प्रकार प्रणयपूर्ण वचन कहती हैं : आपको मेरे कारण ही संकट उत्पन्न होता है, कदाचित् मुझे छोड़ कर जाने में आपको सुख ही सुख है।[4]

इस प्रकार दोनों ग्रन्थों की सीताओं का तुलनात्मक विवेचन करने पर यह सिद्ध होता है कि रंगनाथ की सीता वाल्मीकि से अधिक प्रभावित है, उनमें तर्क एवं दुराग्रह पर्याप्त मात्रा में है, जब कि कम्बन की सीता में प्रणयभार अधिक है, तर्क के स्थान पर भावुकता अधिक है। दोनों ग्रन्थों के कवियों ने वाल्मीकि जैसी परुषता नहीं दिखलाई, न तो राम को कोई ऐसा अपशब्द कहलाया, जो कि आपत्ति-जनक प्रतीत होता हो। रंगनाथ की सीता को तो वल्कलवस्त्र धारण करना ही नही आता। कैकेयी ने उन्हें दो वल्कलवस्त्र दिये थे, जिनमें से एक तो वे अपने कंधे पर डाल लेती हैं और द्वितीय को हाथ में ही लिए रह जाती हैं, अन्ततः राम ही उन्हे वस्त्र पहनाते है। वशिष्ठ जी की आज्ञा से सीता वल्कलवस्त्र त्याग देती है और सुन्दर

१. कम्बन। अयो०। ५, पृ० २२४ २. रंगनाथ। अयो०।६, पृ० ६०
३. कम्बन०। अयो०। ४। ३० ४. वही, ४।३४

वस्त्राभूषणों सहित वन प्रस्थान करतीं हैं।[1] कम्बन की सीता वल्कलवस्त्र धारण किये ही वन प्रस्थान करती हैं। उन्हें वशिष्ठ की उक्त कृपा का वरदान नहीं मिलता। इसी प्रकार कम्बन की सीता को कौशल्या माता द्वारा किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती, किन्तु रंगनाथ की सीता को तो कौशल्या जी पातिव्रत धर्म का उपदेश भी देती हैं, जिसके उत्तर में सीता कहती हैं : हे माता जी ! मैं अवश्य पति के अनुकूल होकर भक्ति के साथ उनकी सेवा करूँगी और धर्म के मार्ग पर चलूँगी। पति की प्रसन्नता जिस रमणी को प्राप्त नहीं है वह चक्रहीन रथ के समान और तारहीन वीणा के समान है। वह पुत्रवती, पुण्यवती होने पर भी अत्यन्त दुःखित रहेगी, अतः यदि पति को प्रिय हो, तो मैं अपने प्राणों को भी सहर्ष न्योछावर कर दूँगी।[2]

सीता के उक्त कथन से उनकी भक्ति, धर्मपरायणता, पतिप्रेम, सेवाभावना, विनम्रता, त्यागशीलता एवं कर्तव्यपरायणता का आदर्श प्रतिष्ठित हुआ है। कम्बन की सीता को ऐसा कहने का अवसर ही नहीं मिला। जब सुमन्त लौटने लगते हैं, उस समय कम्बन की सीता दशरथ जी एवं कौशल्यादि माताओं को प्रणाम करती हैं और उर्मिला तथा श्रुतकीर्ति आदि बहनों को सन्देश देती हैं कि वे मेरे शुक तथा सारिका को सावधानी से पालें।[3] रंगनाथ की सीता इस प्रसंग में इतनी सहृदय नहीं प्रतीत होतीं। वे सुमन्त से कुछ भी नहीं कहतीं, जब कि राम तथा लक्ष्मण कुछ सन्देश भी देते हैं। इस प्रकार तुलना करने पर कम्बन की सीता रंगनाथ की सीता की तुलना में अधिक सहृदय हैं। रंगनाथ की सीता को तो न परिवार की चिन्ता है न शुकसारिकादिक की, वे तो अपने राम में ही रमी हैं। उन्हें पारिवारिक चिन्ता नहीं सताती। वे गंगा जी से सकुशल लौटने एवं पूजा करने की बात कहती हैं,[4] किन्तु कम्बन की सीता केवल स्नान ही करती हैं, कोई मनोरथ नहीं करतीं।[5] रंगनाथ की सीता यमुनापार सिद्धवट से भी कार्यसिद्धि की प्रार्थना करती हैं,[6] कम्बन की सीता ऐसा नहीं करतीं। इस प्रकार रंगनाथ की सीता सकुशल लौटने के लिए लालायित हैं, वे विभिन्न देवी-देवताओं से प्रार्थना भी करती हैं, किन्तु कम्बन की सीता भविष्य के लिए इतनी सचेष्ट एवं चिन्तित नहीं प्रतीत होतीं। जयन्त वृत्तान्त का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में एक-सा प्रतीत होता है। रंगनाथ रामायण में चित्रकूट पहुँचते ही उक्त घटना घटित होती है और कवि वहीं पर उसका उल्लेख करता है, किन्तु कम्बन में चित्रकूट की इस घटना का उल्लेख सुन्दरकाण्ड में हनुमतसन्देश के प्रसंग

---

१. रंगनाथ। अयो०। १४ सर्ग
२. रंग०। अयो०। १६ सर्ग, पृ० ६६
३. कम्ब०। अयो०। ५।४०
४. रंग०। अयो०। १९
५. कम्ब०, पृ० २३७
६. रंग०। अयो०। सर्ग १९

में किया गया है, जैसा कि वाल्मीकि जी ने किया है। सीता के स्तनों में चंचुप्रहार करने का उल्लेख उभय ग्रन्थों में पाया जाता है।

रंगनाथ की सीता में प्रकृति के प्रति असीम अनुराग है। वे चित्रकूट आश्रम में रहकर वहाँ के अनेक मनोरंजक दृश्यों को देख कर प्रमुदित रहती हैं। कम्बन की सीता में प्रकृति के प्रति इतना अनुराग नही प्रतीत होता। जव भरत के चित्रकूट पहुँचने पर सीता जी को दशरथ की मृत्यु का समाचार मिलता है, तव रंगनाथ की सीता लक्ष्मण सहित मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती है।[1] कम्बन की सीता इस वृत्तान्त को सुनकर चकित रह जाती है, तदनु अश्रु बरसाती हुई शोकाब्धि में निमग्न हो जाती हैं। अन्ततः मुनि पत्नियाँ ही उन्हें सम्हालती तथा गंगा स्नान कराकर उनका शोक कम करती है।[2] इस प्रकार दोनों ग्रन्थों की सीताओं में इस पारिवारिक शोक का प्रभाव पड़ा है।

रंगनाथ की सीता वाल्मीकि की सीता की भाँति अत्रिपत्नी अनुसूया जी से पातिव्रत्य धर्म के उपदेश के साथ ही साथ अनेक अंगराग, सदाविकसित पुष्प एवं अप्रतिहतवस्त्र प्राप्त करती हैं।[3] कम्बन की सीता को यह सौभाग्य ही नही प्राप्त होता। विराध द्वारा सीता के अपहरण करने का वृत्तान्त दोनों ग्रन्थों में वर्णित है। अन्तर यह है कि रंगनाथ की सीता को विराध क्रुद्ध होकर आकाश से पृथ्वी पर गिराना चाहता है, किन्तु राम सीता को छटपटाती हुई देख कर उन्हें गरुड़ास्त्र की सहायता से पृथ्वी पर उतार लेते हैं।[4] कम्बन में विराध सीता को गिराता नही, उन्हें छोड़ कर युद्धरत होता है। जव विराध राम लक्ष्मण को उठा कर वनपथ की ओर भगने लगता है, तब रंगनाथ की सीता केवल विलाप ही करती है, विराध से कुछ कहती नही, किन्तु कम्बन की सीता अधिक विकल हो जाती है। वे उस राक्षस से यह प्रार्थना करती है कि तुम राम लक्ष्मण को छोड़ दो और मुझे खा डालो।[5] इस प्रकार विराध के प्रसंग में रंगनाथ की सीता कम्बन की तुलना में अधिक व्यथित प्रतीत होती हैं, उनमे इतना विवेक ही नही रह जाता है कि वे उस राक्षस से कुछ कहती।

रंगनाथ की सीता वाल्मीकि की सीता की भाँति अहिंसा पर विशेष आस्था करती हैं। सुतीक्ष्ण आश्रम पहुँचते समम पथ में वे राम से कहती है कि आप धनुष त्याग दे, इससे प्राणियो की हिंसा होती है। राजधर्म तथा तपश्चर्या में विरोध है।[6] कम्बन की सीता कभी ऐसी वात नही कहतीं। इस प्रकार हम देखते है कि रंगनाथ

---

१. रंग० । अयो० । २८, पृ० ११८
२. कम्बन । अयो० । ८२ । ८६, ८८
३. रंग० अरण्य०, १ सर्ग
४. वही, पृ० १२७
५. कम्ब०, १ । ३६
६. रंग० । अरण्य० । सर्ग ५, पृ० १२६

की सीता इस प्रसंग में भी वाल्मीकि की छायामात्र प्रतीत होती हैं। कम्बन ने तो उनमें अनेक परिवर्तन भी कर दिये हैं।

शूर्पणखा वृत्तान्त के प्रसंग में रंगनाथ की सीता को शूर्पणखा कुलहीन एवं गुणहीन बतलाती हुई विकृतरूपिणी कहती है। इतना ही नहीं, वह सीता को निगलने के लिए उनके पास जाने लगती है, किन्तु राम उसके अभिप्राय को जानकर सीता को अपने पास बुला लेते हैं।[१]

कम्बन में शूर्पणखा मन से तो सीता के अद्वितीय सौन्दर्य की प्रशंसा करती है, किन्तु बाह्य रूप में वह सीता को मांसभक्षिणी, मायाविनी, वंचकराक्षसी कहती है। वह अपने और राम के बीच व्यवधानकारिणी सीता को धमकाती है। सीता उससे भीत होकर दौड़ती हुई राम की पुष्ट भुजाओं का आलिंगन करने लगती है।[२]

इस प्रकार तुलना करने पर रंगनाथ की सीता कम्ब० की सीता की तुलना में कुछ अधिक निर्भीक प्रतीत होती है और उनके प्रति राम का स्नेह भी अपेक्षाकृत अधिक लक्षित होता है। कम्बन की सीता से उनमें भीरुता ही नही अपितु सुकुमारता की भी कमी प्रतीत होती है। कम्बन की सीता तो इतनी तीव्रगति से दौड़ी थी कि उनकी सूक्ष्म कटि लचक गई थी और चरण भी दुखने लगे थे।[३]

रंगनाथ की सीता पुष्पचयन में बड़ी रुचि रखती है। जब मारीच मृग रूप में वहाँ पहुँचता है, तब वे पर्णशाला के समीप इसी कार्य में संलग्न रहती है, किन्तु मृग के अद्भुत रूप को देख कर विस्मित हो जाती हैं। वे राम को उस मृग का दर्शन कराती हुई उनसे मृत या जीवित किसी भी स्थिति में उसके ले आने की प्रार्थना करती हैं।[४] यह वर्णन भी वाल्मीकि के अनुसार किया गया है। कम्बन की सीता तो मृग के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर पुष्पचयन से विरत हो जाती है और राम से प्रार्थना करती हैं कि यह मुझे चाहिये। जब लक्ष्मण मृग को पकड़ लाने के लिए जाना चाहते हैं, तब प्रेमाग्रह करती हुई राम से कहती हैं कि क्या आप नही पकड़ लायेंगे। इतना कहती हुई अश्रु भर लेती हैं और पर्णशाला की ओर चल पड़ती हैं।[५]

इस प्रकार तुलना करने से स्पष्ट होता है कि दोनों ग्रन्थों में सीता पुष्पचयन में रागवती प्रतीत होती हैं। अन्तर यह है कि कम्बन की सीता अधिक मानिनी भावुक, प्रणयवती एवं मुग्धा प्रतीत होती हैं। रंग० की सीता में आग्रह तो है किन्तु दुराग्रह नही, जैसा कि कम्बन की सीता में है।

---

१. वही, अरण्य० । ११ सर्ग
२. कम्बन । अरण्य । अध्याय ५, पृ० ३३०
३. वही, पृ० ३३०
४. रंग० । अर० । १७ सर्ग, पृ० १५०
५. कम्ब । अर०, पृ० ३८४

रंगनाथ की सीता मारीच की हा लक्ष्मण ! ध्वनि सुनकर भयभीत होकर मूर्च्छित हो जाती है, उनका धैर्य खो जाता है और वे लक्ष्मण से कहने लगती है : हे अनघ ! क्या तुम उनकी आवाज नही सुन रहे हो, या सुनना नही चाहते हो, या तुम्हें सुनाई नही पड़ता ? तुम तो किंचित भी विचलित नही हो, दुखी नही हो ? यह कैसी बात है ? ऐसा न हो कि वे राक्षसों के फन्दे में पड़ गये हों, अत: तुम अविलम्ब उनके पास जाओ । जब लक्ष्मण उन्हें समझाते है तब वे क्रुद्ध होकर कहने लगती हैं : हे लक्ष्मण ! तुम तो राम के परमभक्त हो, आज तुम इतने नीच क्यों हो गये ? श्रीराम के पुकारने पर भी तुम भयंकर शत्रुवत चुप हो ? क्या यह उचित है ? मेरा अनुज बुद्धिमान है, उत्तम है, यह सोचकर तुम्हारा विश्वास करके वे यहाँ से गये है, तुम ऐसा पापाचरण क्यों करते हो ?[1] इतना ही नही सीता और अधिक परुषभाषिणी बनकर कहती है : हाँ मैं जानती हूँ, असुरों की माया से राम का वध होगा, इसे अच्छी प्रकार जानकर अनुचित बुद्धि से निश्शंक हो अपने भाई को दिये हुये वचन की अवहेलना करते हुए मुझे प्राप्त करने का विचार कर रहे हो या कदाचित यह सोचते हो कि मैं सीता को कैकेयी सुत (भरत) को सौंप दूँगा । अपने इस शरीर में मुझे अब प्राणों को रखना उचित नही प्रतीत होता । मैं तुरन्त गोदावरी में डूब कर प्राण त्याग करूँगी ।[2]

इस प्रकार रंगनाथ की सीता अविवेकिनी, स्त्रीस्वभावा, चंचल, परुष एवं शंकालु प्रतीत होती हैं । वे लक्ष्मण जैसे सच्चरित्र आज्ञाकारी सेवक को भी छली एवं दुश्चरित्र समझने का भ्रम करती है । उनमें भरत जैसे महात्मा पर भी राज्यलोभी एवं बन्धुद्वेषी होने का सन्देह बना रहता है । इनकी तुलना में कम्बन की सीता कुछ संयत हैं । वे भी हा लक्ष्मण की ध्वनि को सुन कर मूर्च्छित हो जाती हैं और लक्ष्मण से कहती है कि तुम्हारा यहाँ खड़ा रहना नीति मार्ग के अनुकूल नही है । वे भी प्राण त्यागने की धमकी देती है ।[3] किन्तु न तो लक्ष्मण के चरित्र पर आक्षेप करती है और न भरत के लिए ही कुछ कहती है ।

रंगनाथ की सीता के वचन सुन कर लक्ष्मण क्रुद्ध तो होते हैं, किन्तु जाते समय वे कुटी के चारों ओर सप्तरेखायें खीच देते है और सीता से कह देते है कि इन रेखाओं के पार मत जाइयेगा । यदि कोई इन्हें लांघ कर अन्दर आयेगा, तो उसी क्षण उसका मस्तक शतधा विदीर्ण हो जायेगा । इतना ही नही, वे जाते समय सीता की सुरक्षा का भार अग्नि को सौप देते हैं, तब सीता को प्रणाम कर प्रस्थान करते है ।[4]

कम्बन में भी लक्ष्मण जी सीता जी के वचनों से असन्तुष्ट हो जाते है, किन्तु

---

१. रंग० । अर० । १८, पृ० १५२, १५३ २. रंग० । अरण्य । १८ सर्ग

३. कम्ब० । अरण्य । ८।१२, १३ ४. रंग० । अरण्य, पृ० १५३

वे उनकी रक्षा हेतु न तो सप्तरेखायें खींचते हैं और न तो अग्नि को ही रक्षा का उत्तरदायित्व सौंपते हैं, अपितु सीता से सावधान रहने की पूर्वसूचना देते हैं और चलते-चलते जटायु को उनका संरक्षक बना कर प्रस्थान करते हैं।[1]

रंगनाथ की सीता मुनिभक्त हैं। वे कपटी मुनि रावण को संयमी समझ कर उसे करबद्ध प्रणाम करती हैं। उनमें यह विवेक नहीं रह जाता कि मैं सप्तरेखाओं का उल्लंघन न करूँ। फलतः उनके बाहर आकर रावण का स्वागत सत्कार करती हैं, पूँछने पर अपना परिचय भी देती हैं।[2] कम्बन की सीता भी रावण को यति मान-कर उसका स्वागत करती हैं और अपना पूर्ण परिचय देती हैं।[3] रंगनाथ की सीता तो रावण के यतीत्व पर शंका नहीं करतीं, किन्तु कम्बन की सीता उसके कपटी होने की शंका से उससे अनेक प्रश्न करती हैं।[4] जब रावण सीता को अपना ऐश्वर्य बता कर लुभाना चाहता है, तब रंगनाथ की सीता भीत होकर भी उसे अपशब्द कहती हैं, सर्वनाश होने का भय दिखलाती हैं, तुरन्त लंका लौट जाने का परामर्श देती है।[5] कम्बन की सीता रावण से अपने दृढ़ पातिव्रत्य की बात कह कर रावण को रामबाण का भय दिखलाती हैं और अपशब्द भी कहती हैं।[6]

रंगनाथ की सीता रावण के भयानक रूप को देख कर मूर्च्छित हो जाती हैं, उसी अवस्था में रावण उन्हें अपने रथ में बैठा कर आकाश मार्ग से प्रस्थान करता है। किन्तु कम्बन में तो रावण परनारीशाप का स्मरण कर सीता का स्पर्श नहीं करता, वह अपनी बलिष्ठ भुजाओं की शक्ति से पर्णकुटी के एक योजन भूभाग को खोद कर उठा लेता है और पर्णकुटी सहित आकाश मार्ग से प्रस्थान करता है।[7] इस प्रकार रंगनाथ की सीता रावण के स्पर्श से बचती नहीं, किन्तु कम्बन की सीता रावण के स्पर्श से सदैव बची ही रहती हैं।

रंगनाथ की सीता पथ में राम का स्मरण कर अनेक प्रकार से विलाप करती हैं, कभी तो वे अपनी रक्षा के लिए पुकारती हैं, कभी रावण को खरी-खोटी सुनाती हैं, कभी अपने को और कभी दुर्भाग्य को कोसती हैं। वे लक्ष्मण को अभिमानधनी एवं सौजन्य की मूर्ति मानकर अपने द्वारा कहे गये अपशब्दों पर खेद प्रगट करती है और उन्हें अपनी रक्षा के लिए स्मरण करती हैं। उसी समय उन्हें कैकेयी के कुकृत्य का भी स्मरण आता है, वे कभी गोदावरी से कभी वृक्षों से, कभी भूमाता से कभी तपस्वियों से

---

१. कम्बन। अरण्य, पृ० ३८८ — २. रंग०। अरण्य। १६ सर्ग

३. कम्ब०, पृ० ३६० — ४. वही, पृ० ३६१, ६२

५. रंग०। अरण्य, पृ० १५५ — ६. कम्बन, पृ० ३६३

७. कम्ब०। अरण्य। अध्याय ८।७४, ७५

एवं कभी वन के पशु-पक्षियों से त्राण माँगती है।[१] कम्बन की सीता भी ऐसा ही विलाप करती प्रतीत होती हैं।[२]

रंगनाथ की सीता जटायु से अपनी सहायता के लिए प्रार्थना करती हैं[३] किन्तु कम्बन की सीता की सहायता के लिए जटायु स्वतः आ जाता है, व्यक्तिगत रूप से सीता उसे नही बुलातीं। जटायु की मृत्यु होने पर रंगनाथ की सीता दुखित होकर राम नाम लेती हुई विलाप करने लगती हैं,[४] कम्बन की सीता अगतिक होकर विलाप करती हैं उन्हें धर्म एवं पातिव्रत्य की यह दुर्दशा देख कर बड़ी चिन्ता होती है।[५] रंग० की सीता को रावण सर्वप्रथम अपने महलों में ले जाकर अपना वैभव दिखलाता है, किन्तु सीता एक तृण खण्ड हाथ में लेकर रावण की उपेक्षा करती हुई कहती हैं : मूर्ख ! तुम्हारा यह पाप तुम्हें यों ही नहीं छोड़ेगा, वह भयंकर अग्नि बन कर तुम्हें दग्ध कर देगा। तुम और तुम्हारे बन्धु-बान्धव अब बहुत दिनों तक जीवित नही रह सकेंगे।[६] इस कथन से सीता की निर्भीकता एवं सच्चरित्रता का प्रमाण मिलता है। कम्बन में रावण सीता को सीधे अशोकवन में ही ले जाता है।

रंगनाथ में सीता की प्राप्ति के लिए राम ब्रह्मास्त्र का सन्धान करना चाहते हैं, किन्तु लक्ष्मण की प्रार्थना से उक्त अध्यवसाय से विरत हो जाते हैं।[७] कम्बन में राम सीता के लिए इतने अधीर नही हैं। रंगनाथ में राम हनुमान को मुद्रिका देते है और अपना कुशल समाचार सुनाने के लिए हनुमान को आदेश देते हैं, वे किसी के प्रकार के सीता के अंगचिन्हों का संकेत नहीं करते[८] किन्तु कम्बन मे राम मुद्रिका देकर सीता के अगों की पहिचान भी बतलाते हैं और अभिज्ञानस्वरूप कुछ वचन भी कहते हैं।[९] इससे यह सिद्ध होता है कि कम्बन के राम सीता के सौन्दर्य एवं उनके चरित्रों से विशेष प्रभावित थे, इसकी तुलना में रंगनाथ के राम सीता के अंग सौन्दर्य का चित्रण करने की आवश्यकता नहीं समझते और न ही अभिज्ञान वचन कहते हैं।

रंग० में हनुमान लंका में जाकर सीता की स्थिति को देखते हैं, वे व्रतों के कारण क्लान्त, शोक के कारण कृश, वेदना से दग्ध, अश्रु प्रवाह से स्नात एवं जीवन के प्रति विरक्त प्रतीत होती थी। अनेक वस्त्र मलिन हो गए थे, वे असहाय होकर एक हाथ अपने कपोलों पर लगाये हुए बैठी थीं। उनके मुख से राम का नाम निकल रहा था।[१०]

---

१. रंग०, अर० ।२० सर्ग
२. कम्ब० । अर० । अ० ६
३. रंग० । अर०, २१ सर्ग
४. वही, २१ सर्ग
५. कम्ब०, पृ० ४००
६. रंग० । अर०, २२ सर्ग
७. वही, २५ सर्ग
८. वही, किष्कि०, १५ सर्ग
९. कम्ब० । कि०, १२ सर्ग
१०. रंग० । सुन्दर०।६, पृ० २२७

कम्बन की सीता की भी प्रायः यही स्थिति थी। वे अतीत की घटनाओं का स्मरण करती हुई विशेष चिन्तित प्रतीत होती थीं। रंग० की सीता की अपेक्षा उनमें दैन्य एवं पश्चात्ताप की मात्रा अधिक थी।[1] रंग० की सीता के समक्ष अशोक वाटिका में रावण आता है और सीता उसे देखते ही दिग्भ्रान्त सी हो जाती हैं, वे अपने अंगों को सिमेट कर संकुचित हो जाती हैं।[2] वाल्मीकि की सीता भी इसी प्रकार आतंकित प्रतीत होती हैं। कम्बन की सीता भी रावण के आगमन से भयभीत, कम्पित, संकुचित एवं विकल प्रतीत होती प्रतीत होती हैं।[3] जब रावण सीता के समक्ष प्रणय-प्रस्ताव करता है तब रंग० की सीता एक तृण को हाथ में लेकर रावण की भर्त्सना करती हुई कहती हैं : हे पापी ! मेरे पति को धोखा देकर तुम मुझे यहां ले आये हो, तुम उसे पराक्रम मानकर गर्व करते हो ? परस्त्री समागमी का ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है, आयु क्षीण हो जाती है। राम मनुज मात्र नहीं, वे तुम्हारा विनाश करेंगे।[4] इस प्रकार यहां सीता निर्भीक, पतिव्रता, धर्मशील एवं नीति कुशल नारी प्रतीत होती हैं, उन्हें अपने पति की वीरता पर दृढ़ विश्वास है। इस प्रसंग में कम्बन की सीता रावण के प्रति अति कर्कश प्रतीत होती हैं। वे उसे बुद्धिहीन, क्रूर, कायर, भीरु, मरणासन्न, तृण आदि कह कर उसका तिरस्कार करती हैं और धर्म मार्ग का निरूपण करती हैं।[5] दोनों ग्रन्थों में रावण सीता के लिए दो मास की अवधि देता है, किन्तु अन्तर यह है कि रंग० की सीता को मन्दोदरी बचा लेती है, अन्यथा रावण क्रुद्ध होकर उनका प्राणान्त कर देता, कम्बन में रावण इतना क्रुद्ध नहीं होता।

रंग० की सीता राक्षसियों के धमकाने पर क्रुद्ध एवं दुखित होकर अपने दृढ़ पतिव्रत्य की बात कहती हैं, वे राक्षसियों के द्वारा प्रयुक्त अपशब्दों को अनुचित ठहराती हैं। इतना ही नहीं, वे अपने को लक्ष्मी, पार्वती, सावित्री एवं रति के समान पतिव्रता बतलाती हैं। वे राक्षसियों से कहती हैं : तुम चाहो तो मेरा वध कर डालो, तीक्ष्ण खड्ग से मेरा सिर काट डालो, मैं राम के सिवा किसी अन्य को स्वीकार नहीं कर सकती।[6] कम्बन की सीता धीर हैं, ये राक्षसियों के वचनों को सुनकर स्वल्प भी विचलित नहीं होतीं। वे राक्षसियों के अज्ञान एवं रावण की निष्ठुरता को सोच कर अश्रु बहाती हुई हँसने लगती हैं।[7] कम्बन की सीता को राक्षसियाँ भी अधिक कष्ट नहीं देतीं, पर रंग० की सीता को वे अधिक कष्ट देती हैं,

---

१. कम्बन । सुन्दर० । अध्याय ३
२. रंग० । सुन्दर० । ७ सर्ग
३. कम्बन । पृ० ५८ (भाग २) ।
४. रंग० । सुन्दर० । ८ सर्ग
५. कम्बन । सुन्दर० । ४।६०,६२ पृ० (भाग २)
६. रंग, सुन्दर० । १० सर्ग
७. कम्बन । सुन्दर० । ४, ८०

फलतः सीता भूमि पर लोट जाती हैं और बार-बार राम, लक्ष्मण तथा माता कौशल्या का नाम लेकर उच्च स्वर से रोदन करने लगती है।[१]

कम्बन की सीता आत्मग्लानि एवं वेदना के कारण आत्म-हत्या के लिए माधवी वृक्ष के पास पहुँच जाती हैं, उसी समय हनुमान उनके समक्ष प्रकट हो जाते है।[२] रंग० की सीता भी आत्मघात के लिए केशो को कंठ में बाँध लेती है, किन्तु उसी समय शुभ शकुन होते हैं और वानर रूप में हनुमान प्रकट हो जाते है।[३]

रंग० की सीता एक लघु वानर के रूप में हनुमान को देख कर दुखित होती हुई कहती है : हाय ! मैने स्वप्न मे एक वन्दर देखा है। भगवान् करे इस स्वप्न का अशुभफल काकुत्स्थवंशियों को न मिले। इसके अनन्तर वे इन्द्र, बृहस्पति तथा अग्नि आदि देवों से प्रार्थना करने लगती हैं।[४] इस प्रकार यहाँ सीता कुछ उन्मादग्रस्त, परिवारक्षेमप्रिया एव आस्तिकता की मूर्ति प्रतीत होती हैं। वे राम की कथा सुनाने पर भी सहसा हनुमान पर विश्वास नही कर लेती। कम्बन की सीता इस प्रसग मे करुण तथा कोप से पूर्ण हो जाती हैं, किन्तु हनुमान को भली प्रकार समझने पर वे उन्हें सज्जन समझ कर उनसे वार्ता करने लगती है।[५]

रंग० में सीता इतनी सतर्क है कि वे राम की अंगूठी देखकर भी हनुमान पर विश्वास नहीं कर पाती। वे हनुमान से उनका परिचय, राम तथा लक्ष्मण का रूप परिचय आदि पूँछती है, तभी उनका विश्वास करती है। वे मुद्रिका को अपने वक्ष से लगाकर आनन्दाश्रु बरसाती हुई क्षण भर के लिए मूर्च्छित हो जाती है।[६] कम्बन की सीता भी मारुति से राम के अंग लक्षण पूँछती हैं और मुद्रिका पाने पर उसे अपने अंगों में रखकर आनन्द मनाती है। वे उसे सूँघती, आलिगन करती, बार-बार देखती और उसे प्राणवत् प्रिय मानती हैं।[७] दोनों ग्रन्थों में सीता हनुमान के प्रति विशेष कृतज्ञ है और उनको अनेक आशीर्वाद देती है। कम्बन की सीता विशेष भावुक प्रतीत होती हैं।

हनुमान द्वारा अपनी पीठ पर बैठा कर ले चलने के प्रस्ताव को सीता जी स्वीकार नही करती। वे परपुरुष का स्पर्श करना पाप समझती है। इसके अतिरिक्त चोरी से जाना भी तो अनुचित है, यह कहकर अपनी नीतिवादिता का भी आदर्श उपस्थित करती हैं। रंग० की इस सीता की तुलना में कम्ब की सीता अधिक तर्कशील है। वे हनुमान के प्रस्ताव को कई कारणों से अस्वीकृत कर देती है।[८] रावण का

---

१. रंग० सुन्दर १०, पृ० २२४
२. कम्ब० सुन्दर०, पृ० ६८
३. रंग० सुन्दर० १२
४. रंग० सुन्दर० १२ सर्ग
५. कम्बन सुन्दर० ५, पृ, ६८
६. रंग० सुन्दर० १३ सर्ग
७. कम्ब० । सु०, पृ० ७३, ७४
८. वही, पृ० ८२

संहार करना उनका लक्ष्य है, वे वीरबाला हैं, अतः युद्ध चाहती हैं, यशोलिप्सा भी उनमें कम नहीं है।

रंग० की सीता हनुमान से काक वृत्तान्त बतलाकर राम के कृपालु स्वभाव की प्रशंसा करती हैं और हनुमान से कहती हैं कि मेरी ओर से प्रभु से यही निवेदन करना कि विवाह की वेदी पर, अग्निदेव को साक्षी बना कर, सदैव मेरी रक्षा का वचन देकर आप मुझे लाये थे, किन्तु अब मेरी उपेक्षा करके आपने मुझे असहाय कर दिया। अपनी स्त्री को दूसरे के हाथ में खोकर चुप बैठे रहना पौरुष नहीं कहलाता।[1] इससे कीर्ति में कलंक लगेगा, इसका मुझे बड़ा दुःख है। मेरे प्राण और मन उन्हीं पर केन्द्रित हैं। इस कथन से सीता का अनन्य पति प्रेम, धार्मिक निष्ठा एवं ओजस्वी-स्वभाव सिद्ध होता है, वे उपेक्षित न होकर भी उपेक्षित बन कर प्रियतम राम को दयार्द्र करने का प्रयास करती हैं। रंग० की सीता हनुमान् से लक्ष्मण के प्रति भी संदेशा देती हुई दीन प्रतीत होती हैं। उन्हें इस बात का बड़ा खेद रहता है कि उन्होंने लक्ष्मण को अपशब्द कहे थे। वे दीन होकर लक्ष्मण को भी दुतदयालुता दिखलाने का सन्देश देती हैं।[2] कम्बन की सीता भी इसी प्रकार लक्ष्मण की कृपा चाहती हैं और हनुमान से उन्हें सन्देशा भेजती हैं। राम को संदेशा देते समय वे रंग० की सीता से भी अधिक दीन एवं निराश प्रतीत होती हैं। वे जन्मान्तर में ही सही, किन्तु राम से मिलने की कामना करती हैं और अपने दुर्भाग्य को कोसती हैं।[3]

रंग० की सीता हनुमान को प्रत्यभिज्ञान रूप में केवल चूड़ामणि ही देती हैं,[4] किन्तु कम्बन की सीता चूड़ामणि देने के अतिरिक्त शुकी वृत्तान्त तथा काक वृत्तान्त भी बतलाती हैं।[5] इससे कम्ब० की सीता रंग० की सीता की तुलना में अधिक विवेकशील प्रतीत होती हैं।

रंग० की सीता को जब यह ज्ञात होता है कि हनुमान की पुच्छ में आग लगा दी गई, तब वे अत्यन्त दुःखित होकर जल का स्पर्श करती हैं और एक पवित्र स्थान पर खड़ी होकर अग्निदेव से इस प्रकार प्रार्थना करती हैं : हे पवनमित्र ! हे वैश्वानर ! हे वरद ! यदि वे (राम) रावण का वध करेंगे, यदि मैं पतिव्रता हूँ, यदि महाराज जनक समस्त प्राणियों के प्रति समदर्शी हैं, यदि वेद सत्य हैं, तो आप परमशीतल होकर उस श्रेष्ठ वानर की रक्षा करें।[6] इस प्रकार यहाँ कवि ने सीता को एक अलौकिक शक्ति सम्पन्न नारी, आदर्श पतिव्रता, करुण, कृतज्ञ एवं आभिजात्य कुलवधू

---

१. रंग० । सु० । १४ सर्ग
२. वही, १४ सर्ग
३. कम्ब० । सुन्दर०, पृ० ८३
४. रंग० । सुन्द० । १४ सर्ग
५. कम्ब० । सुन्द० । अध्याय ६
६. रंग० । सुन्दर० । २४०, पृ०

के रूप में प्रस्तुत किया है। कम्बन की सीता भी हनुमान की इस स्थिति को सुनकर विकल हो जाती हैं और उनकी सुरक्षा के लिए अग्निदेव से अपने पातिव्रत्य की साक्ष्य देकर निवेदन करती है, वे राम या जनक की साक्ष्य नहीं देतीं।[१]

संग्राम भूमि मे विद्युज्जिह्व नामक मायावी राक्षस द्वारा बनाये गये राम के धनुष एवं उनके सिर को दिखला कर रावण सीता को आतंकित करना चाहता है, किन्तु आकाशवाणी सीता को यह सुनाकर सान्त्वना देती है कि तुम विचलित न हो, यह माया का सिर है। इतना होने पर भी सीता जी शोक प्रकट करती है। उन्हें कैकेयी का कुकृत्य याद आ जाता है और वे राम के गुण, शील आदि का स्मरण कर विलाप करने लगती है। अन्त में सरमा राक्षसी वास्तविकता बताकर उन्हें शान्त करती है।[२] कम्वन की सीता के समक्ष इतना संकट नही आता, न यह घटना ही घटित होती है। उनके समक्ष तो माया जनक प्रस्तुत किया जाता है, जिसे देख कर पहले तो सीता विलाप करती है, किन्तु तदनन्तर उसके अधार्मिक तथा स्वार्थी वचनों को सुनकर उसका तिरस्कार करती हुई उसे अपना पिता नही मानती।[३] रग० की सीता के समक्ष ऐसी माया नही उपस्थित होती।

रंग० की सीता को नागपाशबद्ध राम लक्ष्मण दिखलाये जाते है, जिससे सीता दारुण विलाप करती हुई अपने सौभाग्यचिह्नों को असत्य मानती है और कौशल्या के प्रति सर्वाधिक ममत्व प्रकट करती है। अन्त में त्रिजटा उन्हे समझा-बुझा कर धैर्य दिलाती है।[४] कम्ब० में भी सीता युद्धभूमि में राम लक्ष्मण की इस दशा को देखकर विलाप करती है, उनका आक्रोश रंग० की सीता से भी अधिक द्रवित करने वाला है[५]। वे कभी भाग्य को कभी नियति को और कभी धर्म को उपालम्भ देती है। अन्त में त्रिजटा उन्हे सान्त्वना देती है।

इन्द्रजित द्वारा माया सीता के वध का वृत्तान्त भी दोनों ग्रन्थो में प्राय: एक-सा वर्णित है। अन्तर यह है कि वध के समय रंग० की माया सीता राम राम पुकारती है और कम्बन की सीता रक्षक कह कर त्राण माँगती हैं।[६] रंगनाथ में हनुमान राम की आज्ञा से विजय और कुशल का समाचार बतलाने के लिए लंका जाते है और सीता जी से सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाते है, जिसे सुनकर सीताजी हनुमान के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हुई परम प्रसन्न होती हैं। जब हनुमान सीता को सताने वाली राक्षसियो के बध करने की आज्ञा माँगते है, तब सीता अपनी महत्ता, गौरव एवं

१. कम्ब० । सुन्दर०, पृ० १४५
२. रग० । युद्ध० । ३५ सर्ग
३. कम्ब० । युद्ध० । १६ अध्याय (मायाजनकपटल)
४. रंग० । युद्ध० । ४७ सर्ग
५. कम्ब० । युद्ध० । २२ अध्याय
६. रंग० । युद्ध० । १०० सर्ग तथा कम्बन, युद्ध० ४५१ पृ०

स्वभाव के अनुकूल कहती हैं : वाणचालक के रहते हुये वाण को दोषी ठहराना उचित है ? दासियों का वध करना कदापि उचित नहीं। मैंने अपने पापों के फलस्वरूप यह सब विपत्ति पाई। इसके लिए ये कैसे दोषी हैं। हे पुण्यचरित ! महान् व्यक्ति पापियों पर भी दया दिखलाते हैं। अतः हे वानरोत्तम ! इनका वध करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है।[1] इस प्रकार यहाँ सीता के स्वभाव में राम जैसे महापुरुष की भार्या होने का दिव्यगुण विद्यमान प्रतीत होता है। यह नीति भी है कि पराजित के प्रति विजयी को नम्रता का वर्ताव करना चाहिए।[2] वाल्मीकि में भी सीता की इस उदारता का उल्लेख मिलता है। कम्बन में भी सीता हनुमान से विजय का समाचार प्राप्त कर आनंदित होती हैं और हनुमान के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है।[3] इसमें भी हनुमान जी सीता से राक्षसियों के वध की आज्ञा माँगते है, किन्तु रंग० की सीता की ही भाँति कम्बन की सीता भी राक्षसियों को क्षम्य समझ कर हनुमान से कहती हैं कि इन्होंने रावण की इच्छा से मुझे कठोर वचन कहे अन्यथा इन्होंने क्या कष्ट दिया। ये कष्ट तो मेरे पापों के परिणाम है। ये राक्षसियाँ कुब्जा के समान क्रूर नहीं हैं, अतः इन विवेकशून्य पापशीलाओं को क्षमा करो।[4]

रंगनाथ में राम की आज्ञा से विभीषण लंका जाते हैं और अपनी पत्नियों को सीता जी के पास भेज कर राम के समीप चलने का आग्रह कराते हैं। विभीषण की अन्तःपुरीय स्त्रियों के आग्रह पर सीता मंगलस्नान करके शिविका में आरूढ़ हो राम के पास पहुँचती है, उस समय राम के दर्शन से उनके शरीर से स्वेदविन्दु उत्पन्न हो जाते हैं, आनन्द से हृदय अभिभूत हो जाता है, अश्रुप्रवाह होने लगता है, चिरविरहाग्नि शान्त हो जाती है। इस प्रकार एक साथ ही उनमें भय, प्रीति एवं लज्जा का संचार हो जाता है और वे सिर झुकाये खड़ी रहती है।[5]

कम्ब० में विभीषण स्वयं सीता जी से चलने का निवेदन करता है और सीता उससे वास्तविक भेष में ही चलने का विचार व्यक्त करती हैं,[6] जैसा कि वाल्मीकि में वर्णन मिलता है। इस प्रकार कम्बन की सीता रंग० की सीता की अपेक्षा अधिक जागरूक हैं और अपनी कष्ट-सहिष्णुता का प्रदर्शन करना चाहती है। कम्बन की सीता शिविका पर नहीं, विमान पर चढ़कर राम के समीप आती है और उनमें भी करुणादि भाव प्रबल दिखलाई पड़ते है।

---

१. रंग० युद्ध०, १५३ सर्ग
२. विजित विपक्ष के समक्ष नत नीति है। (सिद्धराज) मैथिली०
३. कम्बन०, युद्ध०, ३७, पृ० ५६३ ४. वही, पृ० ५६४
५. रंग० युद्ध०, १५५ सर्ग ६. कम्ब० (युद्ध) पृ० ५६४

दोनों ग्रन्थों मे राम सीता को कटु वचन कहते हैं।[1] रंग० की सीता राम के कटु वचनों को सुनकर एकबारगी तिलमिला उठती है, क्षोभ, दुःख एवं क्रोध से पूर्ण होकर राम से इस प्रकार कहती है : हे देव ! क्या आप मेरा हृदय नही जानते ? क्या आप सर्वज्ञ नही हैं ? बाल्यावस्था में आप मुझे ले आये और तब से मेरा पालन-पोषण तथा रक्षण करते रहे। आप ऐसे कठोर वचनों से मुझे क्यों दुःखी बना रहे है ? मैं कहाँ, आप कहाँ और आपके ये वचन कैसे ? मैने भूमाता के गर्भ से जन्म लिया, उसके पश्चात् महाराज जनक ने मुझे पाल-पोस कर बड़ी किया, पुनः मै आप जैसे नृप-शिरोमणि की पत्नी हुई। क्या चंचल चित्त वाली स्त्रियों का-सा व्यवहार मेरे लिये कभी सह्य हो सकता है ? पुरुष अविश्वसनीय स्त्रियो के प्रति जैसे वचन कहते है, वैसे वचन आपने मेरे प्रति कहे है। क्या यह आपके लिए उचित है ? यदि आपको मुझ पर विश्वास नही था, तो जिस दिन मेरा पता जानने के लिए हनुमान को भेजा था, उसी दिन आप कहला भेजते, तो मैं निराश होकर तत्क्षण प्राण त्याग देती।[2]

इस प्रकार इस प्रसंग में सीता जी क्रुद्ध, दैन्यपूर्ण, विनत, तर्कपूर्ण एव धर्म-वादिनी के रूप मे प्रस्तुत हुई हैं, उनका पतिप्रेम राम के कठोर वचनो के कारण क्षुब्ध हो गया है। कम्बन की सीता भी इस प्रसग में क्षुब्ध हैं। वे अपने पातिव्रत्य में इतनी दृढ़ एवं मुखर है कि समस्त पृथ्वी में अपने को ही सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता कहती है। वे राम के इस दुर्व्यवहार मे भी अपने दुर्भाग्य को मूलकारण मानती है। वे रंग० की सीता की अपेक्षा वाणी से संयमित है। वे यह नहीं कहती कि यदि मुझे ज्ञात होता कि आप मुझे न अपनायेगे तो मै प्राण त्याग देती।[3]

रगनाथ की सीता अपने सतीत्व की परीक्षा के लिए अनेक देवादिको को प्रणाम करती हुई कहती है : मैंने मन, वचन, कर्म से राजा राम के सिवा और किसी का स्मरण नही किया है। यदि मैंने ऐसा किया हो, तो मै इस अग्नि को सहन नही कर सकूँगी और सब के समक्ष इसी अग्नि में भस्म हो जाऊँगी।[4] ऐसा कह कर वे अग्नि मे प्रवेश करती हैं, और अग्निदेव उन्हें गोद मे लेकर प्रकट होते है और उनकी प्रशंसा करते हुये राम को अर्पित करते है।[5] कम्बन में भी सीता ऐसी ही निर्भीक होकर अग्नि मे प्रवेश करती है, किन्तु वे रगनाथ की सीता की अपेक्षा अधिक तेजस्विनी प्रतीत होती हैं, अग्नि उनके तेज से घर्षित होकर राम से निवेदन

१. रंग० पृ० ४५६ तथा कम्ब० पृ० ५६७
२. रंगनाथ (युद्ध) १५५ सर्ग ४५७ पृ०
३. कम्ब० (युद्ध) पृ० ५६८
४. रंगनाथ (युद्ध) १५६ सर्ग
५. रंगनाथ (युद्ध) १५७ सर्ग

करता हुआ कहता है कि आपने मुझे सीता के पातिव्रत्य तेज से दग्ध करा दिया। इस प्रकार अग्नि के वचनानुसार राम सीता को स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार तमिल के प्रतिनिधि ग्रन्थ कम्ब० रामायण की सीता के साथ तेलुगु के प्रतिनिधि ग्रन्थ रंगनाथ रामायण की सीता की तुलना करने पर यह प्रतीत होता है कि कम्ब० की सीता में अलौकिकता अधिक है, वे रमा या लक्ष्मी ही हैं, किन्तु रंगनाथ रामायण की सीता प्रायः मानवी हैं, उनमें अधिकांश वाल्मीकि रामायण की सीता की छाप है। स्वभाव की दृष्टि से रंगनाथ रामायण की सीता की तुलना में कम्ब० रामायण की सीता अधिक विनम्र एवं सुशील हैं। पातिव्रत्य की पराकष्ठा उभयत्र दर्शनीय है। रंगनाथ रामायण की सीता तो रावण के स्पर्श से मुक्त नहीं कही जा सकतीं, किन्तु कम्ब० रामायण की सीता अपहरणकाल में भी रावण-स्पर्श से मुक्त रही हैं। इस प्रकार तमिल की सीता आदर्श की मूर्ति हैं, तो तेलुगु की सीता आदर्शोन्मुख-यथार्थ की मूर्ति हैं।

(ग) मलयालम साहित्य में श्री सीता और तेलुगु की सीता से तुलना

मलयालम भापा दक्षिण भारत के सुदूरवर्ती दक्षिणी पश्चिमी प्रदेश केरल में बोली जाती है। इसे केरली कहने का यही मुख्य कारण है। मलयालम भापा तमिल से मिलती-जुलती है, अतः कुछ विद्वान तो मलयालम को तमिल भापा की एक शाखामात्र मानते हैं। भापाशास्त्री इस मत से सहमत नहीं हैं, वे इन दोनों भापाओं की सत्ता पृथक-पृथक रूप में ही मानते हैं, भले ही ये दोनों एक कुल की हों।[१]

अन्य द्रविड़ भापाओं की भाँति मलयालम में भी राम साहित्य की सृष्टि हुई है, जिससे सीता जी के जीवन एवं उनके स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यहाँ उसका सामान्य परिचय प्रस्तुत है।

मलयालम की प्राचीनतम रामकथा 'राम-चरित' एक सुन्दर गीतकाव्य है। इस ग्रन्थ के रचयिता तिरुविताकूर के राजा श्री वीर राम वर्मा माने जाते हैं। प्रस्तुत रचना का मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण है। इसकी कथावस्तु युद्धकाण्ड से सम्बद्ध है, कई स्थानों पर तो कवि ने वाल्मीकि का अक्षरानुवाद भी प्रस्तुत किया है। इस प्रकार इसमें सीताविपयक मौलिक सामग्री का अभाव है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल १२वीं सदी माना जाता है,[२] कुछ व्यक्ति इसे १४वीं शतक की रचना मानते हैं।[३] इस रचना के पश्चात् चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य 'कण्णश रामायण' की रचना हुई। इसके प्रणेता कण्णश पणिक्कर (रामपणिक्कर) नामक विख्यात कवि माने

१. मलयालम साहित्य का इतिहास (डॉ० के भास्करन नायर १९६१), द्वि० सं०) पृ० २ २. वही, पृ० १३

३. भापा साहित्य चरित्रम् (भाग १, पृ० १७२) (आर० नारायण पणिक्कर)

जाते हैं। कण्णश शब्द करुणेश का विकृत रूप है। सम्भवत: कवि के स्वभाव के कारण उनका यह उपनाम विशेष प्रसिद्ध हुआ हो। इनकी रामायण भी वाल्मीकि रामायण से अनुप्राणित है। इतना अवश्य है कि कवि ने इस ग्रन्थ में स्वेच्छया घटनाओं को घटाया-बढ़ाया है। इस प्रकार वाल्मीकि के अनुवाद के रूप में ही इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि होने के कारण इससे भी सीता-विषयक नवीन सामग्री नहीं प्राप्त होती।

'रामायण चम्पू' केरल साहित्य का शृंगार माना जाता है। वाल्मीकि रामायण ही इसका आधार ग्रन्थ है, किन्तु इसके प्रसिद्ध प्रणेता कविवर पुनमनपूतरि (१५वीं शतक) ने अपनी प्रतिभा के अनुसार कथानकों को घटाया-बढ़ाया है। इस ग्रन्थ में राम जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक का वृत्तान्त सरस शैली मे वर्णित है, किन्तु सीता के स्वरूप पर इसमें किसी नवीनता का उल्लेख नहीं मिलता।

मलयालम के राम साहित्य में महाकवि एषुत्तच्छन (१५२६ ई०-१७२६ ई०) द्वारा प्रणीत 'अध्यात्म रामायण' का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। उक्त ग्रन्थ संस्कृत अध्यात्म रामायण का अनुवाद है, अत: इस ग्रन्थ में भी सीता का वही स्वरूप वर्णित है, जो संस्कृत की अध्यात्म में मिलता है। कवि श्री एषुत्तच्छन (शिक्षा देने वाला गुरु या पिता) एक उच्चकोटि के भक्त एवं दार्शनिक थे, अत: उनकी इन विशेषताओं के कारण उक्त रचना भी अत्यन्त रोचक एवं महनीय बन गई है। इन्होंने 'उत्तर रामायण' नामक किसी अन्य ग्रन्थ की भी रचना की थी, जिसमें सीता वनवास का कथानक वाल्मीकि के आधार पर वर्णित है। नंपुरान कवि की 'रामनाट्टम' नामक कृति दृश्य काव्य होने के कारण केरल में विशेष लोकप्रिय हुई है। वारियर कवि (१८ वी शतक का प्रारम्भ) केरल के प्रसिद्ध कवि माने जाते है। इन्होंने 'रामपंचशति' नामक रचना से विशेष ख्याति अर्जित की थी। केरल के भक्त कवियो में शंकुण्णि कैयम्मल (१८ वी शतक) का नाम भी समादृत है। इन्होंने 'रामकर्णामृत' नामक एक उत्तम रामकाव्य की रचना की थी।

केरल के प्रसिद्ध कवियों में 'कुमारनाशान्' का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इनका जन्म १८७२ ई० में चिरयिनकीप तहसील के कायिक्करा नामक ग्राम मे हुआ था। इन्होंने 'बाल रामायणम्' एवं 'चिन्ताविष्टयाय सीता' जैसी विशिष्ट कृतियाँ निर्मित कर केरल के आधुनिक राम साहित्य को गौरवान्वित किया है। 'चिन्ताविष्टयाय सीता' नामक कृति में कवि ने उत्तर रामायण की कथा को आधार बना कर रामकथा की तीव्र आलोचना की है। इस ग्रन्थ की सीता केवल मानवी है। मूर्खों की बात मान कर श्रीराम अपनी प्रेयसी सीता को हिंस्रजन्तुओं से परिपूर्ण वन में छोड़ देते है। इस अवसर पर कवि ने सीता के उग्र विचारों का भी जी खोल कर चित्रण किया है। सीता अपने पति राम के इस कृत्य से रुष्ट होने पर भी उनसे विदा लेकर सदैव के

लिए इस धरती को त्याग देती हैं। इस प्रकार यह खण्ड-काव्य मनोवैज्ञानिक पद्धति पर लिखा गया है, जिसमें करुण रस की स्रोतस्विनी प्रवाहित है।

केरल के प्रतिभाशील कवियों में श्री वल्लतोल नारायण मेनोन (१९१० ई०) का नाम अद्वितीय है। इन्होंने रामकथा से सम्बद्ध 'किलिक्कोचल' नामक सुमधुर कृति की रचना की है। इसके अनुसार सीता एक दिन उद्यान में खेल रही थी। उस समय वाल्मीकि के आश्रम से दो शुक बालायें आकर अपने स्वर में रामायण-कथा सुनाने लगीं। जब उन्होंने यह गाया कि श्री रामचन्द्र जी सीता जी को वरण करेंगे, तो सीता जी उठ खड़ी हुईं, दौड़ती हुई माँ के पास जाकर पूछा : ये तोते क्या गाते हैं? बस इतनी ही कथावस्तु है, किन्तु अपनी सरसता के कारण उक्त कृति भाषा योषा के गले में चन्द्रहारवत् सुशोभित है।[1]

वल्लतोल से प्रभावित होकर कुञ्जिरामन नायर ने अनेक भक्ति-प्रधान रचनायें की हैं। 'श्री रामचरितम्' इनकी एक ऐसी रचना है जिसमें कवि ने भक्ति-भाव से प्रेरित होकर रामचरित का वर्णन किया है।

इस प्रकार मलयालम साहित्य में रामसीता का कथानक अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। यही कारण है कि द्वादश शताब्दी से लेकर अधुनापर्यन्त रामकथा से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। यद्यपि मलयालम में प्रायः वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्मरामायण के अनुवाद प्रस्तुत किए गए हैं, किन्तु कवियों ने अपनी प्रतिभा का परिचय न दिया हो, ऐसी बात नहीं है। चिन्ताविष्टयाय सीता तथा किलिक्कोचल रचनायें सीता के विषय में सर्वथा नवीन प्रकाश डालती हैं। इन ग्रन्थों में कवियों ने सीता के मानवी रूप का मनोवैज्ञानिक उद्घाटन करने में विशेष सफलता पाई है। वर्तमान समय में एपुतच्छन कवि की 'अध्यात्म रामायण' सर्वाधिक प्रचलित है। उसमें सीता के उसी रूप का चित्रण है, जो संस्कृत की अध्यात्म रामायण में प्राप्त होता है।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि मलयालम के राम साहित्य में महाकवि एपुतच्छन की रचना अध्यात्म रामायण का प्रमुख स्थान है। इसी प्रकार तेलुगु के राम साहित्य में राजा गोनुबुद्ध द्वारा प्रणीत रगनाथ रामायण का भी सर्वोपरि महत्व है। सुविधा की दृष्टि से मलयालम तथा तेलुगु साहित्य की सीता का तुलनात्मक विवेचन करने में हम उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों को विचार-सरिणि में रखते हुए अपना मन्तव्य स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

मलयालम की सीता लौकिक होती हुई भी अलौकिक है, किन्तु तेलुगु की सीता मानवी है। दोनों में सीता की पार्थिव उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। मलयालम की

---

१. मलयालम साहित्य का इतिहास, पृ० १४७

अध्यात्म के अनुसार जब जनक जी सीता आदि कन्याओं के दान का संकल्प कर चुकते हैं, तब सीता की उत्पत्ति बतलाते हुए वशिष्ठादि से कहते हैं :

मैं एक बार यज्ञभूमि के संशोधनार्थ हलकर्षण कर रहा था। उस समय हल के अग्रभाग से (सीता से) एक शुभलक्षणा कन्या प्रकट हुई। उस कन्या में पुत्रीभाव से मेरा स्नेह हो गया और मैंने यह कन्या अपनी पत्नी को सौंप दी।[1] तेलुगु की रंग० में जनक जी विश्वामित्र जी से विवाह के पूर्व ही सीता की उत्पत्ति का वर्णन करते है। उनके अनुसार जनक जी यज्ञार्थ भूमिशोधन के लिए हल चला रहे थे, उसी समय हल की फाल रेखा में एक मंजूषा मिली थी, जिससे सुन्दरी कन्या सीता प्रकट हुई थी।[2] मलयालम की सीता के विषय में तो नारद जी ने जनक से स्पष्ट बतलाया था कि राम परमेश्वर है और दशरथ पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए है और तुम्हारी पुत्री सीता योगमाया है, अतः तुम यत्नपूर्वक सीता का विवाह राम से करो।[3] तेलुगु की सीता के विवाह के विषय मे जनक जी को कोई ऐसी सूचना नही थी। यही कारण है कि उन्होने विश्वामित्र से स्पष्ट कहा था कि यदि राम अपनी आश्चर्यजनक शक्ति से उस शिवधनुष का संधान कर सके, तो मै अपनी पुत्री का विवाह उनके साथ कर दूंगा।[4] इस प्रकार मलयालम की सीता लक्ष्मी स्वरूपा है और तेलुगु की सीता मानवी हैं।

दोनों रामायणों में सीता का पुष्पवाटिका वृत्तान्त उपेक्षित है। मलयालम की सीता धनुर्भंग के समय अपनी कोई प्रतिक्रिया नही व्यक्त करतीं, किन्तु तेलुगु की सीता परिचारिकाओ से राम के कुल, रूप, शौर्यादि का वर्णन सुन कर अतीव आनन्दित होती है। उनमें प्रीति तथा भय का संचार हो जाता है। वे लज्जा से अभिभूत होकर मौन हो जाती है। इतना ही नही, उनमें राम के दर्शन के लिए इतनी उत्कंठा थी कि वे अपनी माता के साथ कनक भवन में जाकर गवाक्ष से उनके दर्शन करती है।[5] इस प्रकार मलयालम की सीता शान्त एवं गम्भीर हैं और तेलुगु की सीता मे मानवीय दुर्बलताये भी हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर तेलुगु की सीता में यथार्थ के दर्शन होते है, उनमें कृत्रिमता नही प्रतीत होती, जब कि मलयालम की सीता मे कृत्रिमता की झलक मिलती है। मलयालम की सीता धनुर्भंग होते ही स्वर्णमयी माला लेकर राम पर माल्यार्पण करती है,[6] तेलुगु की सीता ऐसा नही करती। मलयालम की सीता प्रायः स्थल-स्थल पर देवी मानी गई हैं, किन्तु तेलुगु की सीता को कवि ने पाणिग्रहण के समय ही जगन्माता, आदिलक्ष्मीस्वरूपा एवं भूदेवीसमा के रूप में

१. अध्यात्म०। बाल०। ७

२. रंगनाथ। बाल०। ३२ अध्याय

३. अध्यात्म०। बाल०। ७

४. रंगनाथ। बाल०। ३२

५. वही, बाल०। ३३

६. अध्यात्म। बाल०। ६

राम वन गये है ? यदि इतने पर भी आप मुझे त्याग कर जाते हैं तो मैं आपके ही समक्ष प्राण त्याग दूंगी।[1]

इस प्रकार मलयालम की सीता पतिव्रता, भीरु, स्नेहिल, सहिष्णु, साहसिक, सेविका, सन्तुष्टा, तपस्विनी, विदुषी एवं बहुश्रुत प्रतीत होती हैं। उनमें प्रणय के कारण नारीत्व की यह दुर्बलता अवश्य प्रतीत होती है कि वे राम के वनगमन के पूर्व ही प्राण त्याग देने की धमकी देती हैं। तेलुगु की सीता भी वनवास की आज्ञा से विकम्पित हो जाती है और राम से यह प्रार्थना करती है कि आप मुझे अपने साथ वन ले चलें। वे स्त्रियों के लिए पति को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाती हैं। उनके चित्त में रामचरणारविन्द की सेवा का भाव ही प्रमुख है। वे वल्कल वस्त्र धारण कर राम के साथ पदयात्रा के लिए प्रस्तुत हो जाती है। मलयालम की सीता की भाँति वे भी बतलाती हैं कि ज्योतिषियों ने मेरे वनवास की भविष्यवाणी की है। वे भी राम की सेवा करने का वचन देती है, कन्दादि के भोजन से सन्तुष्ट रहने की बात कहती हैं। मलयालम की सीता यह नही कहती कि मेरे पिता ने मुझे आपको अग्नि के समक्ष सहधर्मचारिणी के रूप में अर्पित किया था, किन्तु तेलुगु की सीता ऐसा कहती हुई राम का एकाकी जाना असत्यनिष्ठ एवं अनुचित ठहराती है। इसी प्रकार तेलुगु की सीता भी मलयालम की सीता की भाँति कहती हैं कि यदि आप मुझे वन न ले चलेंगे तो मैं अग्नि, जल अथवा विष द्वारा आत्महत्या कर लूंगी। आप मेरी मृत्यु देख कर वन जायें, त्याग कर नहीं।[2]

इस प्रकार तेलुगु की सीता मलयालम की सीता के समान होती हुई भी कुछ अधिक उग्र प्रतीत होती है। मलयालम की सीता तो केवल अपने प्राण त्याग देने की बात कहती हैं किन्तु तेलुगु की सीता विषादि का नाम लेकर प्राण त्यागने के लिए अधिक तत्परता दिखलाती है। इनमें नारी स्वभाव की यह अज्ञानता कुछ अधिक प्रतीत होती है।

मलयालम की सीता वनप्रस्थान के समय अरुन्धती को हार तथा आभरण दान में दे देती हैं,[3] इससे उनकी उदारता, दानशीलता एवं गुरुता का प्रमाण मिलता है।[4] तेलुगु में भी सीता अपने पति राम की आज्ञा से स्वर्णरत्नादि आभूषण अपने प्रिय-परिजनों को दान देती है।[5]

मलयालम की सीता वल्कलवस्त्र परिधान करना नही जानतीं, उन्हें स्वयं राम पहनाते हैं, अन्ततः वशिष्ठ के हस्तक्षेप करने पर सीता जी को वल्कल वस्त्र नही

---

१. अध्यात्म० । अयो० । ४
२. रंग० । अयो० । ६
३. अध्यात्म० । अयो० । ४
४. वही, अयो० । ४
५. रंग० । अयो० । १० अध्यात्म । अयो० । ५

पहनने पड़ते ।[१] तेलुगु की सीता को तो कैकेयी दो वल्कलवस्त्र देती हैं। सीता सोचने लगती हैं कि पता नहीं, वनवासी मुनि इन्हें कैसे धारण करते हैं। वे एक वस्त्र अपने कन्धे पर डाल लेती हैं और दूसरे वस्त्र को हाथ में ही लिए खड़ी रहती हैं, फलतः राम उन्हें वल्कल पहना देते हैं। अन्त में वशिष्ठ कैकेयी को डाँटते हैं और उनके वल्कल उतराकर उन्हें सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत कराकर विदा करते हैं।[२] इस प्रकार उभयत्र सीता भोली-भाली, लज्जाशील एवं सरलस्वाभावा नारी प्रतीत होती हैं।

मलयालम की सीता वन चलते समय माता कौशल्या की शिक्षा एवं आशीर्वाद नहीं प्राप्त कर पातीं, किन्तु तेलुगु की सीता तो कौशल्या से पातिव्रत धर्म का उपदेश प्राप्त करती हैं और उत्तर में उन्हें यहाँ तक विश्वास दिलाती हैं कि यदि मेरे पति को मेरे प्राण भी चाहने होंगे, तो मैं उन्हें भी सहर्ष दान कर दूँगी। इसी प्रकार से लक्ष्मण पर स्नेह करने के लिए भी वचनबद्ध हो जाती हैं और माता जी से आशीर्वाद प्राप्त करती हैं।[३]

मलयालम की सीता पथ में गंगा जी को देख कर प्रणाम करती हुई स्नान करती हैं किन्तु कोई वर नहीं चाहतीं। तेलुगु की सीता गंगा से यह वर माँगती हैं कि मैं पति तथा देवर सहित सकुशल लौट कर आऊँ, तो मैं आपकी पूजा करूँगी।[४] इससे तेलुगु की सीता मलयालम की सीता की तुलना में नारी प्रवृत्ति के अधिक समीप प्रतीत होती हैं। रंगनाथ की सीता यमुना पार करने पर अक्षयवट के दर्शन करती हैं और कार्यसिद्धि हेतु उसकी प्रार्थना भी करती हैं।[५] किन्तु मलयालय की सीता को ऐसा शुभ अवसर नहीं मिलता।

मलयालम की सीता चित्रकूटवास काल में काकरूपधारी इन्द्रसुत जयन्त द्वारा आक्रान्त होती हैं। जयन्त उनके पादांगुष्ठ (पैर के अंगूठे) को मांस के लोभ से विदीर्ण करता है,[६] किन्तु तेलुगु की सीता के स्तनों पर प्रहार होता है। इसी अपराध के कारण उसे एकनयन होना पड़ता है। वाल्मीकि में भी ऐसा ही उल्लेख पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत की अध्यात्म रामायण का प्रभाव होने के कारण मलयालम रामायण के प्रणेता एषुतच्छन कवि ने भी भक्ति-भावना के कारण स्तनों के स्थान पर चरणों पर चंचुप्रहार होने का उल्लेख कर दिया है।

मलयालम की सीता करुण स्वभाव की पारिवारिक नारी हैं, जब उन्हें दशरथ जी की मृत्यु का समाचार मिलता है, तब वे अत्याधिक विलाप करती है।[७] तेलुगु की

---

१. अध्यात्म० । अयो० ।५
२. रंगनाथ । अयो । १४
३. रंगनाथ । अयो० । १६
४. रंगनाथ । अयो० । १६
५. रंगनाथ । अयो० । १६
६. अध्यात्म । सुन्दर० । ३
७. अध्यात्म । अयो० । ६

सीता तो इस वज्राघात से मूर्च्छित हो जाती है।[1] इससे यह सिद्ध होता है कि सीता उभयत्र करुणमूर्ति एवं परिवार प्रेम प्रधान नारी प्रतीत होती है, किन्तु मलयालम की सीता अधिक सहिष्णु अथवा विवेकशील है, वे दशरथ मृत्यु के समाचार को सुन कर मूर्च्छित नहीं होती।

अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचकर मलयालम की सीता मुनि पत्नी अनुसूया को दण्डवत प्रणाम करती है और अनुसूया उन्हें वात्सल्य के साथ आलिंगित करके उन्हें विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दो कुण्डल और दो रेशमी वस्त्र प्रदान करती हैं। अनुसूया जी सीता को एक ऐसा अंगराग भी प्रदान करती है, जो सदैव अक्षय रहता था। इसके अनन्तर वे सीता को पातिव्रत धर्म का मौलिक आदेश प्रदान करती है।[2] इस प्रकार यहाँ सीता जी विनीत, मृदुभाषिणी, आस्तिक, विवेकशील, शिष्ट एवं गम्भीर प्रतीत होती है। तेलुगु की सीता इस प्रसंग मे प्रायः इसी प्रकार शिष्ट एव विनीत है। उन्हे भी अनसूया जी से पातिव्रतधर्मोपदेश के साथ ही अगराग नथा दिव्य वस्त्र एवं पुष्प प्राप्त होते है। मलयालम में अनसूया जी सीता जी से विवाह वृत्तान्त नही पूछती किन्तु तेलुगु मे वे विवाह-वृत्तान्त पूँछती हैं, फलतः अपने भूमिजा रूप से लेकर विवाह पर्यन्त जीवन का सूक्ष्म परिचय देकर सीता अपनी मृदुभाषिता से अनसूया को विशेष प्रवाहित कर लेती है।[3]

मलयालम की सीता विराध के हाथ नही पड़ने पाती, जैसे ही वह सीता को पकड़ने के लिए उनकी ओर झपटता है वैसे ही राम हँसते हुये अपने वाण द्वारा उसकी भुजा का छेदन कर देते है।[4] तेलुगु रामायण में तो विराध सीता को आकाश में उड़ा ले जाता है और राम के प्रहार से क्रुद्ध होकर सीता को भूमि की ओर फेंक देता है, जिसे राम गरुड़ अस्त्र की सहायता से भूमि में उतार कर बचा लेते है।[5] इस प्रकार मलयालम की सीता की तुलना मे तेलुगु की सीता को अधिक आपत्तियो का सामना करना पड़ता है।

मलयालम की सीता कोमल एवं दयाशील तो है, किन्तु वे राम को यह परामर्श कभी नही देती कि आप धनुष त्याग दीजिये, इससे हिंसा होती है, परन्तु तेलुगु की सीता अधिक शान्तिप्रिय एवं अहिंसक है। वाल्मीकि की सीता भी ऐसा ही परामर्श देती है।[6] वे कहती है कि मेरा मन आप द्वारा की जाने वाली हिंसा से अति खिन्न है, अतः आप यह कर्म छोड़ दीजिये। जब राम उन्हे समझाते है कि तुम्हारा मार्ग ब्राह्मणों का है, क्षत्रियों का नही, तब वे उनकी बात स्वीकार भी कर लेती है।

---

१. रंगनाथ। अयो०। २६ | २. अध्या०। अयो०। ९
३. रंगनाथ। अर०। १ | ४. अध्यात्म। अर०। १
५. रग०। अर०। ३ | ६. रंगनाथ। अर०। ५

शूर्पणखा प्रसंग में सीता पर आक्रमण करने के लिए दौडती हुई शूर्पणखा लक्ष्मण द्वारा विरूप कर दी जाती है। मलयालम में शूर्पणखा सीता को दुर्वचन नहीं कहती, किन्तु तेलुगु में वह सीता को कुरूप, गुणहीन तथा कुलहीन भी कहती है। वह एक बार अपने प्रयत्न के विफल होने पर किसी अन्य क्षण में सीता पर आक्रमण करना चाहती है, फलतः लक्ष्मण उसे विरूप बना देते है।[1]

खर युद्ध के समय राम की आज्ञा से लक्ष्मण जी सीता को साथ में लेकर एक गुहा में छिप जाते हैं और युद्ध-समाप्ति पर पुनः आते हैं, ऐसा वर्णन मलयालम तथा तेलुगु दोनों भाषाओं की रामायणों में मिलता है। अन्तर यह है कि मलयालम की सीता राम के अंगों में शस्त्रव्रणों को देख कर उनके अंगों में हाथ फेरने लगती हैं, इससे उनकी आत्मीयता, करुणा, स्नेह एवं दाम्पत्य प्रेम पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है।[2] तेलुगु की सीता राम के वर्णन से प्रसन्न अवश्य होती है किन्तु वे इतनी करुणा का प्रदर्शन नही करती।[3]

मलयालम की सीता से राम एकान्त में कहते हैं कि भिक्षुरूप से रावण तुम्हारे समीप आयेगा, अतः तुम एक वर्षपर्यन्त अग्नि में वास करो और अपनी छाया के रूप में इस कुटी में रहो। राम की आज्ञा से सीता ऐसा ही करती हैं।[4] इस प्रकार छाया-सीता का वृत्तान्त मलयालम रामायण में प्राप्त होता है, इससे सीता की अलौकिकता सिद्ध होती है किन्तु तेलुगु की सीता प्रायः मानवी ही है, अतः उनके चरित्र में कवि ने यह वृत्तान्त नही प्रस्तुत किया।

मलयालम की सीता कनकमृग को देखकर विनयपूर्वक राम से यह निवेदन करती है कि आप इसे बाँधकर ले आएँ, यह मेरे लिये क्रीड़ामृग होगा।[5] तेलुगु की सीता इस प्रसंग में अत्यन्त कुतूहलपूर्ण हैं। वे जीवित या मृत किसी भी रूप में उसे ले आने की इच्छा प्रकट करती हैं।[6] इस प्रकार तुलना करने पर तेलुगु की सीता मलयालम सीता की तुलना में अधिक मुखर एवं चंचल प्रतीत होती हैं, उनमें भविष्य के विलासी जीवन की लालसा झाँकती हुई प्रतीत होती है। वे उस मृग के प्रदर्शन से सासों तथा भरतादि के मनोरंजन की भी कल्पना करती हैं।

मलयालम की सीता मरणोन्मुख मारीच के हा लक्ष्मण ! इस प्रकार के वाक्य को सुनकर भीत एवं सविग्न होकर लक्ष्मण से कहती है कि हे लक्ष्मण ! तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भ्राता असुरों से पीड़ित हैं। क्या तुम राम के, हा लक्ष्मण ! इन वचनों को नही सुन रहे ?[7] तेलुगु की सीता भी इस प्रसंग में दुखित प्रतीत होती है, किन्तु

---

१. रंग० । अर० । ११
२. अध्या० । अर० । ५
३. रंग० । अर० । १२
४. अध्या० । अर० । ७
५. अध्यात्म । अरण्य । ७
६. रंगनाथ । अरण्य० । १७
७. अध्यात्म० । अर० । ७

विशेषता यह होती है कि सीता भयभीत होकर मूच्छित होती है और भूमि पर गिर पड़ती है और चेतना आने पर विकलतापूर्ण दृष्टि से चारों ओर देखती हुई धैर्य खोकर तड़पने लगती है।[१] लक्ष्मण के समझाने पर मलयालम की सीता क्रुद्ध होकर लक्ष्मण को दुर्वचन कहती है : हे दुर्बुद्धे ! तू अपने भाई को विपत्तिग्रस्त देखना चाहता है। प्रतीत होता है कि तुम्हें राम के नाश की कामना करने वाले भरत ने भेजा है। तुम राम के नाश होने पर मेरे लेने के लिए आये हो, किन्तु तुम मुझे नहीं प्राप्त कर सकते। मै अभी तुम्हारे समक्ष ही प्राण त्याग रही हूँ। राम नही जानते थे कि तुम इस प्रकार उनकी स्त्री के अपहरण करने में उद्यत हो। मैं राम के अतिरिक्त तुम्हारा या भरत का अथवा किसी अन्य का स्पर्श न करूँगी।[२]

इस प्रकार यहाँ मलयालम की सीता अविवेकिनी, शंकालु, कटुभाषिणी एवं परुप प्रतीत होती है। तेलुगु की सीता भी लक्ष्मण के लिए कठोर वचन कहती है। उनके कथनानुसार लक्ष्मण अवसरवादी, नीच, छली, भयकरशत्रु, पापी, कूटनीतिज्ञ एवं कामी है।[३] सीता इस प्रसंग में मलयालम की सीता की विचारधाराओं से पूर्णतया मिलती है। उनके इन विचारों का कारण उनका कठोर सतीत्व या दृढ़ पतिप्रेम ही है, अन्यथा सामान्य नारी की भाँति उनके चरित्र में इन अवगुणो का कोई स्थान नहीं था।

मलयालम की सीता के कठोर वचनों को सुनकर लक्ष्मण उन्हे चण्डी कह कर धिक्कारते है और उन्हें नष्ट होने की शाप देते हुए वनदेवियों को सौप कर चल देते है।[४] तेलुगु साहित्य में भी लक्ष्मण जी सीता के कठोर शब्दों से क्षुब्ध दिखलाये गये है, किन्तु न तो वे सीता को कठोर शब्द कहते और न शाप ही देते है। वे चलते समय सीता को समझाते है और पर्णशाला के चारो ओर सात रेखायें खीचकर सीता की सुरक्षा का उत्तम प्रबन्ध भी करते है।[५]

मलयामय की सीता रावण को यतिरूप में देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करती है और भोजन के लिए कन्दमूल भेट करती है। रावण के पूँछने पर वह आत्मपरिचय देती हुई उसका परिचय पूँछती है। रावण का परिचय पाकर वे भीत होकर उसकी भर्त्सना करती है कि तुम नष्ट हो जाओगे।[६] तेलुगु की सीता भी इसी प्रकार यति-वेषधारी रावण का अतिथि सत्कार करती हैं, अपना परिचय देती है और रावण का भी परिचय पूछती हैं। रावण का परिचय पाकर वे भी भयभीत होती है और एक तृण हाथ में लेकर रावण की भर्त्सना करती है। वे रावण को श्वानवत समझकर उसे लंका लौटने का परामर्श भी देती हैं। सीता रावण को शृगाल, मशक एवं काक

१. रंग० । अर० । १८
२. अध्यात्म० । अर० । ७
३. रंग० । अर० । १८
४. अध्या० । अर० । ७
५. रंग० । अर० । १८
६. अध्यात्म० । अरण्य० । ७

आदि के समान तुच्छ कह कर उसे सर्वनाश की धमकी देती है।[1] इस प्रकार मलयालम की सीता की अपेक्षा तेलुगु की सीता अधिक निर्भीक एवं धैर्यशालिनी प्रतीत होती हैं, उनमें अपने पति राम के पराक्रम का दर्प है, दृढ़ विश्वास है। वे आभिजात्य के आधिक्य के कारण ही रावण का डटकर तिरस्कार करती है। मलयालम की सीता में इतना आभिजात्य नहीं प्रकट हो सका।

मलयालम की अध्यात्म रामायण में रावण सीता का अपहरण तो करता है, किन्तु उनका स्पर्श नहीं करता, वह सीता के पैरों के नीचे की भूमि को नखों से खोद कर उन्हें उठा लेता है और अपने रथ में डालकर तुरन्त आकाशमार्ग से चल देता है।[2] तेलुगु में तो सीता रावण का विकराल रूप देखकर मूर्च्छित हो जाती है और इसी दशा में रावण उन्हें अपने रथ पर रखकर आकाश मार्ग से चल देता है।[3] सीता का करुण-क्रन्दन दोनों भाषाओं की रामायणों में प्राप्त होता है। सीता राम एवं लक्ष्मण का नाम ले लेकर विलाप करती हैं। मलयालम की सीता तो उसी लक्ष्मण को त्राहि माम् कह कर पुकारती है, जिसे उन्होंने पर्याप्त कटु वचन कहे थे, वे अपने कहे हुए कटुवचनों के लिए क्षमायाचना भी करती हैं।[4] तेलुगु की सीता अपनी रक्षा के लिए लक्ष्मण का स्मरण न कर राम का स्मरण करती हैं, उन्हें लक्ष्मण के लिए प्रयुक्त किये गये अपने कटुवचनों का पश्चात्ताप है। वे लक्ष्मण को अभिमानधनी एवं सौजन्यमूर्ति के रूप में स्मरण करती हुई उनसे क्रोध त्यागने एवं अपनी रक्षा करने की प्रार्थना करती हैं।[5] इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में सीता करुण, विपन्न, विनीत एवं साध्वी नारी के रूप में चित्रित की गयी हैं। परिताप की दृष्टि से तेलुगु की सीता अधिक वेदनाग्रस्त प्रतीत होती है। वे अनेक देवताओं, नदियों, पर्वतों, वनदेवियो, पशु-पक्षियों आदि से भी त्राण माँगती हैं।[6]

मलयालम की सीता को वाटिका में स्थित हनुमान देखते हैं कि वे भूतल की के समान प्रतीत होती हैं। उनका शरीर कृश हो गया है, सिर मे केवल एक वेणी सुशोभित है, उनके वस्त्र मलिन हो गये हैं, वे पृथ्वी में पड़ी हुई शोच रही हैं और राम नाम की रट लगाये हुए हैं।[7] तेलुगु की सीता भी क्लान्त, कृश, वेदनाग्रस्त, विरक्त एवं अश्रुमुखी चित्रित की गई हैं। उनके भी वस्त्र मलिन हो गये थे और उपवास के कारण उनका शरीर क्षीण हो गया था। अन्तर केवल यही प्रतीत होता है कि वे राम नाम की रट नही लगाये हुए थी, किन्तु इससे कोई विशेष अन्तर नही

---

१. रंगनाथ०। अरण्य०। १६ २. अध्यात्म०। अरण्य०। ७
३. रंगनाथ०। अरण्य०। १६ ४. अध्यात्म०। अरण्य०। ७
५. रंगनाथ०। अरण्य०। २० ६. रंगनाथ०। अरण्य०। २०
७. अध्या०। सुन्दर०। २

पडता ।[१] इस प्रकार सीता उभयत्र वेदना-प्रधान विरहिणी एवं आदर्श पतिव्रता-पत्नी के रूप में चित्रित की गई है ।

मलयालम की सीता के समक्ष आकर रावण प्रणय-प्रस्ताव करता है, उस समय तृण की ओट करके सीता उसे फटकारती हुई कहती है कि राम से डर कर तूने भिक्षु का रूप बनाया और मुझे हर लाया, तू इस पाप का फल शीघ्र ही पायेगा और राम लका में आकर तुम्हारा सपरिवार संहार करेंगे ।[२] तेलुगु की सीता इस प्रसग में रावण से अधिक आतंकित प्रतीत होती है और एक तृण तोड़कर हाथ में लेती हुई उसी को सम्बोधित कर उत्तर देती है वे रावण को नीच, छली एवं मुमुर्षू तो कहती है, किन्तु रावण द्वारा राम की निन्दा सुन कर रोने लगती है, कुछ कह नहीं पाती ।[३] उभयत्र सीता के लिए दो मास की अवधि का उल्लेख मिलता है, किन्तु राक्षसियों की तर्जना के प्रसंग में मलयालम की सीता मौन है । उन्हे आन्तरिक कष्ट होता है और वे एक वृक्ष की शाखा को पकड कर बहुत विलाप करती है ।[४] तेलुगु की सीता इस प्रसंग में राक्षसियों से कहती है कि चाहे मेरा वध करो या काट डालो किन्तु मैं राम के अतिरिक्त और किसी का वरण नहीं कर सकती । उनके इन वचनों को सुन कर राक्षसियाँ उन्हें विविध कष्ट देती हैं ।[५] इतना कष्ट मलयालम की सीता को नही दिया जाता । तेलुगु की सीता यहाँ निर्भीक, दृढपतिव्रता एवं अतिसहिष्णु प्रतीत होती है ।

मलयालम की सीता दुःखातिरेक से अपनी लम्बी वेणी द्वारा आत्महत्या करने का विचार करती है, उसी समय हनुमान उन्हें रामकथा सुनाने लगते है, जिसे सुन कर सीता विस्मित होकर कहती है कि जिसने यह मधुर कथा सुनाई हो, वह प्रकट हो जाये । जब लघु वानर के रूप से हनुमान प्रकट हो जाते है, तब वे अविश्वास से मुख नीचा कर लेती है । अन्ततः हनुमान उन्हे समस्त वृत्तान्त बतला कर राम की मुद्रिका भेंट करते है, तब सीता जी को उन पर विश्वास होता है और वे हनुमान को सन्देश देती है, प्रत्यभिज्ञान के रूप में चूड़ामणि देकर जयन्त वृत्तान्त भी बतलाती है । सीता हनुमान के लघु शरीर को देख कर शका करती है कि तुम राक्षसो से कैसे युद्ध कर सकोगे, उनके इस सन्देश का निवारण करने के लिए हनुमान उन्हें विराट रूप प्रदर्शित करते है ।[६]

तेलुगु में भी हनुमान उसी समय प्रकट होते है, जब सीता अपने केशो को कंठ में बाँधकर आत्महत्या के लिए प्रस्तुत हो जाती है । हनुमान के लघु वानररूप को देख

---

१. रग० । सुन्दर० । ६
२. अध्या० । सुन्दर० । २
३. रंग० । सुन्दर० । ८
४. अध्या० । सुन्दर० । २
५. रंग० । सुन्दर ० । १०
६. अध्यात्म । सुन्दर० । ३

कर उन्हें भी अविश्वास होता है, किन्तु जब हनुमान उन्हें मुद्रिका अर्पित करते हैं, तब सीता हनुमान पर विश्वास करती है और उसकी पुष्टि हेतु राम लक्ष्मण के अंग लक्षण पूछती हैं। मुद्रिका पाने पर वे मलयालम की सीता की अपेक्षा अधिक भावुक हो जाती हैं। मुद्रिका को चूमती, सूंघती और हृदय से लगाती है। इसी प्रकार हनुमान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन में भी वे मलयालम की सीता से कुछ अधिक प्रतीत होती है। इसी प्रकार मलयालम की सीता लक्ष्मण के लिए कोई विशेप सन्देश नही देती, पर तेलुगु की सीता अपने द्वारा प्रयुक्त कटु शब्दों के लिए क्षमा याचना का सन्देश देती है। वे लक्ष्मण की दया याचना करती है। उन्हे हनुमान के विराट् रूप देखने पर ही सन्तोप होता है और वे प्रत्यभिज्ञान के रूप मे केवल चूड़ामणि प्रदान करती है।[1] इस प्रकार दोनों भापाओं में सीता एक पतिव्रता, सुशील, कृतज्ञ एवं आदर्श नारी प्रतीत होती है। उभयत्र हनुमान उन्हे साथ चलने के लिए प्रोत्साहित करते है, किन्तु पतिपरायणा सीता ऐसा करना उचित नही समझती। मलयालम की सीता हनुमान के चलते समय उनसे कहती है : यदि राम अपने बाणो से पुल बाँधकर या समुद्र को सोखकर वानरों के साथ आकर युद्ध में रावण का संहार करें और मुझे साथ ले चले, तब उनकी अमरकीर्त्ति हो सकती है, अत: हे वीर ! तुम जाओ, तब तक मै प्राण धारण किये रहूँगी।[2] इससे उनकी यशोलिप्सा, कष्टसहिष्णुता एवं आभिजात्य पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। तेलुगु की सीता अपने संदेश में अधिक मुखर एवं स्पष्टवादिनी हैं। उनके मन तथा प्राण राम पर केन्द्रित है, उन्हे राम द्वारा अपनी उपेक्षा किये जाने का दु:ख है, अत: वे अपनी रक्षा के लिए राम के पौरुप पर भी आक्षेप करती है।[3]

जिस समय हनुमान की पूँछ में अग्नि लगा दी जाती है, उस समय मलयालम की सीता कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त नही करती, किन्तु तेलुगु की सीता तो अपने सतीत्व की साक्ष्य देकर अग्निदेव से शीतल हो जाने की प्रार्थना करती है।[4] इस वृत्तान्त से तेलुगु की सीता का आदर्श चमक उठा है। अग्नि का शीतल हो जाना, उनके सतीत्व का प्रमाण बन गया है। इसके अतिरिक्त अपने उपकारी हनुमान के प्रति सीता जी ने जो सहानुभूति दिखलाई, उससे उनकी कृतज्ञता का भी प्रमाण मिलता है। महापुरुप राम की आदर्शपत्नी सीता के लिए इतना आदर्श नितान्त आवश्यक था।

मलयालम की सीता के समक्ष रावण कोई छल नही प्रस्तुत करता, किन्तु तेलुगु सीता के समक्ष तो वह राम के मायानिर्मित सिर तथा धनुप को दिखाकर उन्हें निराश करना चाहता है, जिसे देखकर सीता बहुत दु:खित होती हैं और आकाश-

---

१. रंगनाथ० । सुन्दर० । १४ सर्ग
२. अध्या० । सुन्दर० । ५
३. रंगनाथ० । सुन्दर० । १३, १४
४. रंगनाथ । सुन्दर०, पृ० २४०

वाणी द्वारा रहस्य को जानने पर भी उनका चित्त व्यथाग्रस्त रहता है ।[१] मलयालम की सीता को रावण नागपाशबद्ध राम लक्ष्मण के दर्शन कराकर उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास नही करता, किन्तु तेलुगु की सीता के समक्ष यह समस्या भी आती है। सीता जी राम की विपन्नस्थिति को देख कर विविध प्रकार से विलाप करती है।[२] इसी प्रकार मलयालम में इन्द्रजीत द्वारा माया सीता के वध करने का वृत्तान्त नही मिलता, किन्तु तेलुगु मे यह वृत्तान्त मिलता है।[३] इस स्थल में माया सीता अत्यन्त करुण एवं दयनीय रूप में प्रस्तुत की गई है। मलयालम में इन्द्रजीत के वध होने पर रावण निराश-सा हो जाता है और सीता पर किसी प्रकार का कोप नही करता, किन्तु तेलुगु में रावण इतना क्रुद्ध हो जाता है कि वह सीता का वध करने के लिए भी उद्यत हो जाता है। सीता उसकी क्रुद्ध दृष्टि से सहम जाती है और शोकाधिक्य के कारण मूर्च्छित हो जाती है। अन्त में सुपार्श्व नामक राक्षस रावण को सीता की हत्या से विरत करता है।[४]

मलयालम रामायण मे जिस समय हनुमान सीता के पास राम विजय का समाचार लेकर पहुँचते है सीता परम प्रसन्न होती है और हनुमान को आशीर्वाद देती हुई उनसे राम के दर्शन कराने का आग्रह करती है। तेलुगु में भी सीता हनुमान की सेवा से कृतज्ञ है, वे उनकी प्रशंसा करती हुई आशीर्वाद देती है। मलयालम की सीता के समक्ष हनुमान राक्षसियों के संहार करने की समस्या नही प्रस्तुत करते, किन्तु तेलुगु की सीता के समक्ष यह समस्या आती है और वे उदारतापूर्वक दुष्ट राक्षसियो के संहार को अनुचित ठहराती है। इससे सीता की उदारता, दयालुता एवं क्षमाशीलता जैसे गुणों का सुन्दर प्रमाण मिलता है।[५]

मलयालय मे वास्तविक सीता को प्रकट करने एवं माया सीता को भस्म करने के उद्देश्य से ही राम उन्हें कुछ अपशब्द कहते है।[६] परिणामस्वरूप सीता राम की परिक्रमा करती है और सभी देवो को साक्षी देकर अपने पातिव्रत्य की शपथ लेती हुई अग्नि में प्रवेश करती हैं। तदनन्तर अनेक इन्द्रादि देव राम की स्तुति करते है और अग्निदेव अपनी गोद में सीता जी को लेकर प्रकट होते है और यह कहते है कि तपोवन मे आपने मुझे जो सीता सौंपी थी, उसे आप ग्रहण करें। अग्नि की बात सुनकर राम सीता को स्वीकार करते है।[७]

तेलुगु मे भी राम सीता को अपशब्द कहते है, जिन्हें सुनकर सीता व्यथित हो

---

१. रंग०, युद्ध० । ३५
२. वही, युद्ध० । ४७
३. वही, युद्ध० । १०० सर्ग
४. वही, युद्ध०, पृ० ३९४, ९५
५. वही, युद्ध० । १५३
६. अध्यात्म० । युद्ध० १२
७. वही, युद्ध० । १२

जाती हैं। वे मलयालम की सीता की भाँति चुपचाप इन कटु वचनों को सुनकर ही नही रह जातीं, अपितु राम को उसी प्रकार डटकर उत्तर भी देती हैं।[1] यहाँ कवि ने सीता को स्पष्टवादिनी, आदर्शपतिव्रता एवं तर्कशील धर्मभीरु नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। अन्त में सीता अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए देवादिकों को प्रणाम कर पातिव्रत्य श्रावण करती हुई अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है। अन्त मे अनेक देव राम की स्तुति करते हैं और अग्नि सीता को क्रोड मे लेकर उनके सतीत्व की प्रशंसा करते हुए उन्हें राम को समर्पित करते हैं।[2]

इस प्रकार मलयालम की सीता आदिशक्ति हैं, उनकी छाया का ही अपहरण होता है, किन्तु तेलुगु की सीता लक्ष्मी होती हुई भी मुख्यतया मानवी हैं। वे मलयालम की सीता की अपेक्षा अधिक कष्टों को भोगती हैं। शेष पातिव्रत्यादि गुण उभयत्र विद्यमान हैं। वे तपस्विनी एवं सहिष्णुता के साथ ही साथ आदर्श धर्मपत्नी भी है।

(घ) कन्नड़ साहित्य में श्री सीता और मलयालम साहित्य की सीता से तुलना

कन्नड़ मैसूर राज्य की भाषा है और मद्रास राज्य के पश्चिम में अरब समुद्र के तट तक बोली जाती है। इस भाषा में ९वी शताब्दी के पूर्व की कोई रचना नही प्राप्त होती। जहाँ तक कन्नड़ में सीता साहित्य का प्रश्न है, उसका प्रारम्भ ११वी शताब्दी से ही माना जाता है। जैनकवि नागचन्द्र जिन्हें अभिनव पम्प कहते है उन्होने पम्प रामायण या रामचन्द्र चरित पुराण नामक ग्रन्थ की रचना इसी समय की थी। कन्नड़ राम-साहित्य में इस ग्रन्थ का अपना एक स्वतन्त्र स्थल है। इसी के आधार पर कन्नड़ में अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु को लेकर कवि ने उसमें पर्याप्त अन्तर कर दिया इसका एकमात्र कारण धार्मिक आग्रह है। इस ग्रन्थ में पुत्रेष्टि यज्ञ का कोई उल्लेख नही किया गया। वशिष्ठ और विश्वामित्र जैसे प्रमुख मुनियों का नामोल्लेख ही नही किया गया। हनुमान समुद्र का उल्लंघन नहीं करते अपितु विमान में चढ़कर उसे पार करते हैं। कवि ने जैनधर्मीय आग्रह के कारण राम द्वारा वालि का वध न कराकर उसे सन्यास लिवा दिया है। यदि राम द्वारा वालि का वध दिखलाया जाता, तो अहिंसा के सिद्धान्त का उल्लंघन होता, क्योंकि राम तो जैनधर्म में त्रिषष्ठि शलाका पुरुष के अन्तर्गत माने जाते है। सम्भवतः इसी हेतु राम के हाथों रावण का भी वध नही कराया गया, अपितु लक्ष्मण द्वारा ही रावण वध कराया गया है।

इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता यह है कि रावण को इसमें जितेन्द्रिय तथा धर्मात्मा शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह परस्त्रीगमन को निषिद्ध मानता

---

१. रंग०। युद्ध०। १५५ २. वही, युद्ध। १५७

है, किन्तु वही सीता को देख कर उस पर आकृष्ट हो जाता है, इस प्रकार व्रतच्युत होने के कारण ही उसका सर्वनाश होता है।

पम्प रामायण के आधार पर १६वी शताब्दी में कुमुदेन्दु कविकृत रामायण तथा देवप्प कृत राम विजय चरित नामक रचनायें प्रणीत हुई है। इनमें भी जैनधर्मानुसारिणी रामकथा के दर्शन होते हैं। १६वी शताब्दी में ब्राह्मण धर्म के सिद्धान्तों के अनुकूल तोरवै निवासी नरहर नामक कवि ने रामायण की रचना की, जो तोरवै रामायण के नाम से कन्नड़ साहित्य में विशेष प्रसिद्ध है। इसी परम्परा में विस्तृत राम-साहित्य की रचना हुई, किन्तु मौलिकता का अभाव रहा। १६वी शताब्दी की रचना 'जैमिनि भारत' कर्नाटक की लोकप्रिय कृति मानी जाती है। यह रचना कविवर लक्ष्मीश की है, उन्होने संस्कृत ग्रन्थ जैमिनि भारत का अनुवाद ही कन्नड़ में प्रस्तुत किया है। इसके अन्तर्गत 'जैमिनि अश्वमेध' नामक पर्व के अन्तर्गत सीतात्याग का करुण कथानक अत्यन्त प्रभावशील ढंग से व्यक्त किया गया है।

१८वी शताब्दी में कविवर देवचन्द्र ने रामकथावतार नामक ग्रन्थ में जैनधर्मानुसारी रामकथानक प्रस्तुत किया है। १९वी शताब्दी मे चन्द्रसागर वर्णी ने जिन रामायण की रचना भी उसी परम्परा में की है। १९वीं शताब्दी मे ही मुद्दण नामक कवि ने रामाश्वमेध नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमे सीता त्याग का कथानक एव लवकुश युद्ध प्रभृति घटनाओ का रोमाचक चित्रण किया गया है। इस प्रकार कन्नड़ मे रामसीता कथा विशेष लोकप्रिय रही है।

कन्नड़ साहित्य मे रामकथा से सम्बद्ध जितने भी ग्रन्थ है, उनमे नरहरि कृति तौरवे रामायण का विशिष्ट स्थान है। इसी प्रकार सीता चरित्र के उतरार्द्ध का चित्रण करने वाले ग्रन्थो में जैमिनि अश्वमेध भी विशेष सिद्ध है। इस प्रकार उक्त दोनों ग्रन्थों के आधार पर कन्नड की सीता का स्वरूप प्रस्तुत किया जायगा। मलयालम सीता साहित्य मे कविवर एषुतच्छन कृत अध्यात्म रामायण एक प्रमुख एव प्रसिद्ध रचना मानी जाती है, अतः कन्नड़ साहित्य की सीता के साथ मलयालम साहित्य की सीता की तुलना करने के लिए हम अध्यात्म रामायण को ही आधार ग्रन्थ के रूप में मान्यता देगे।

तोरवै रामायण मे वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्यपाठ का विशेष प्रभाव पड़ा है, किन्तु इसमे भक्ति-भावना की मात्रा अधिक है। यह ग्रन्थ आनन्द रामायण की अनेक कथाओ से प्रभावित है। उदाहरणार्थ रावण का शिव धनुष के नीचे दब जाना, चित्रकूट में कैकेयी द्वारा पश्चात्ताप व्यक्त करना आदि। वैसे मौलिकता की दृष्टि से अनेक प्रसंग कवि की देन के रूप में माने जा सकते है, जैसे अत्रि मुनि द्वारा जयन्त के शाप का वृत्तान्त आदि।

कन्नड़ की तोरवै रामायण में जनक जी हल चलाते समय भूमि के नीचे एक कमल सरोवर में स्वर्णपद्म पर आरूढ़ पुत्री को देखते हैं। इस अद्भुत दृश्य को देख कर जनक जी भयभीत हो जाते हैं और लक्ष्मी के इस पवित्र स्थान को छोड़ देने का विचार करते हैं, इतने में ही नारद जी आकर वतलाते हैं कि इस कन्या की सुरक्षा करो, सीता नाम से यह कन्या प्रसिद्ध होगी और विष्णु ही मानवावतार लेकर उसे ग्रहण करेंगे। इसके विवाह हेतु शिव धनुष को पण के रूप में प्रस्तुत करना और जो वीर धनुप चढ़ा दे उसी को यह कन्या दे देना।[1]

मलयालम की अध्यात्म रामायण में सीता की उत्पत्ति का यह रूप नही मिलता। वहाँ जनक जी यज्ञार्थ भूमि का कर्पण करते है, हल के अग्रभाग से एक पुत्री प्राप्त होती है, जनक उसी को कन्या के रूप में स्वीकार करते हैं। साम्य यह है कि तोरवै की भाँति अध्यात्म में भी नारद जी आते है और परमेश्वर रूप राम के साथ उक्त कन्या के विवाह करने का परामर्श देते है।[2] इस प्रकार कन्नड़ की सीता पद्मजा हैं और मलयालम की सीता भूमिजा है, किन्तु दोनों के पति राम सामान्य मानव नही, अपितु साक्षात् परमात्मा ही हैं।

तोरवे रामायण में श्रीराम अभिज्ञान के रूप में मुद्रिकादान के अतिरिक्त जयन्त वृत्तान्त तथा चित्रकूट के जल-विहार का कथानक वतलाते है, इससे सीता की विहारप्रियता का भी संकेत मिलता है।[3] अध्यात्म में जल-विहार की घटना का उल्लेख नही मिलता, शेप दो अभिज्ञानों का उल्लेख मिलता है।

तोरवै में वास्तविक सीता का अपहरण नही होता। लक्ष्मण की अनुपस्थिति में अग्नि तथा अन्य देवगण सीता को अग्नि के गढ़ में रख कर उनका एक अश पर्णशाला में रख देते हैं, उसी का अपहरण होता है।[4] अध्यात्म में भी सीता का अग्निवास वर्णित है, किन्तु वहाँ देवों की उपस्थिति का वर्णन नही मिलता।[5] इस प्रकार कन्नड़ तथा मलयालम दोनों की प्रतिनिधि रामायणों में सीता के कृत्रिम रूप का ही अपहरण दिखलाया गया है। उनके अलौकिक रूप की प्रतिष्ठा उभयत्र देखने को मिलती है, इसके अतिरिक्त सीता की अग्निपरीक्षा में भी उभयत्र अलौकिवता दिखलाई पड़ती है, क्योंकि वास्तविक सीता तो अग्नि से ही प्रकट होनी थी।

तोरवै में इन्द्रजीत एक माया सीता को युद्ध क्षेत्र में लाकर उसका वलिदान कर देता है। वलि के समय सीता रोती, तड़पती और अनेक प्रकार से विलाप करती है। यह कथानक वाल्मीकि में भी प्राप्त होता है। विभीषण के परामर्श से हनुमान

---

१. तोरवै। १। १६
२. अध्यात्म। बाल०। ६ सर्ग
३. तोरवै। ५। ६
४. तोरवै। अरण्य०। संधि। ६
५. अध्यात्म०। अरण्य०। ७ सर्ग

लंका जाते है और अशोक वन में सीता को सकुशल देख कर लौटते है। इसके पश्चात् विभीषण जैसे ही उस माया सीता के शव का स्पर्श करते हैं वह शव अन्तर्धान हो जाता है।[1] अध्यात्म में माया सीता के इस रूप का कोई उल्लेख नही मिलता।

सीता विषयक अन्य वृत्तान्तों में उभयत्र वाल्मीकि की सीता का परिमार्जित रूप ही वर्णित है। दोनों भाषाओं में सीता एक आदर्श पतिव्रता, सुशील, सच्चरित्र एवं धर्मपरायणा पत्नी के रूप में प्रस्तुत की गई है। भक्ति के आवरण के कारण उभयत्र सीता के उस परुष रूप को छिपाया गया है, जो वाल्मीकि में प्रस्तुत किया गया है। उभयत्र सीता रावण की भर्त्सना करती हुई उसे राम की तुलना में तुच्छ एव शक्ति-हीन छद्मवेषी मानती है।

सीता त्याग के कथानक के लिए जैमिनि अश्वमेध का कन्नड़ में अनुवाद विशेष प्रसिद्ध है। इसमें ग्रन्थ के २५वें अध्याय से लेकर ३६वे अध्याय पर्यन्त १० अध्यायों के माध्यम से सीतात्याग की कथा वर्णित है।

जैमिनि अश्वमेध के अनुसार सीता जी दस सहस्रवर्ष पर्यन्त गर्भ नही धारण करती इसके पश्चात् वे गर्भवती होती है।[2] गर्भ के पंचम मास लगने पर राम को स्वप्न होता है कि सीता भागीरथी के तट पर अनाथवत विलाप कर रही है, लक्ष्मण उन्हें इस अवस्था में छोड़ गए हैं। जगने पर राम वशिष्ठ जी को बुलाते है और वशिष्ठ से पूर्णस्वप्न-वृत्तान्त बतलाते है। वशिष्ठ जी उन्हें पुंसवन-संस्कार करने का परामर्श देते है। इस उत्सव में जनक भी जाते है और राम को अपना राज्य देकर वनवास की शरण लेते है।[3] मलयालम में सीता वनवास की उक्त भूमिका का उल्लेख नही मिलता।

राम एकान्त में एक दिन सीता से दोहद के विषय में प्रश्न करते है, सीता कहती है : अनघ ! आपकी कृपा से मेरी सभी इच्छाये परिपूर्ण हैं, किन्तु मै चाहती हूँ कि भागीरथी तट में जाकर रहूँ, जहाँ ऋषि तथा ऋषिपत्नियाँ मृगचर्म धारण कर निवास करती है :

> तव प्रसादान्मे कामः परिपूर्णः सदा नव।
> परं भागीरथी तीरे गंतुमिच्छामि राघव ।। (जै० अश्व०, २६,३०)

राम सीता के इन वचनों को सुन कर उनका परिहास करते है कि क्या १४ वर्ष वन में रह कर इच्छा शान्त नही हुई ? यह तुम्हारा प्रथम दोहद है, अतः निष्फल कैसे

---

१. तोरवै। ६,। ४१

२. दशवर्ष सहस्राणि राज्यं चक्रे स राघवः।
प्रजां न लेभे सीतायां पालय पूर्वजस्थितिम् ।। (जैमिनिअश्वमेध, २६। १)

३. जैमिनि अश्व०। २६, ४। २७

करूँ ? तुम प्रातः भागीरथी तट के लिये प्रस्थान करोगी।[1] इसी प्रसंग में रजक-वृत्तान्त का भी उल्लेख मिलता है। एक रजक की पत्नी अपने पति से बिना पूँछे ही पिता के घर चली गई थी और वहाँ चार दिन रही, तदनन्तर उसका पिता उसे पतिग्रह भेजने आता है, किन्तु वह रजक उसे अस्वीकार करता हुआ कहता है कि क्या आप लोग मुझे राम समझते हैं ? जिन्होंने राक्षसों के गृह में रहती हुई सीता को स्वीकार कर लिया। राम तो राजा हैं, समर्थ हैं, ऐसा कर सकते है, किन्तु मैं नही करूँगा।

जामाता हस्तमुद्यम्य रामोऽहमिति नोमतिः।
राक्षसानां गृहे सीतां वसन्तीमाजहार यः॥ (जै० अश्व०, २६।४६)

राम अपने चर से सीता विषयक इस परिग्रह को सुन कर चिन्तित होते हैं कि यद्यपि जानकी अग्नि द्वारा शुद्ध हैं, किन्तु फिर भी यदि लोक इसकी निन्दा करता है, तो मैं इसका त्याग करूँ या नहीं।

शुद्धापि जानकी वह्नौ लोकेऽस्मिन् परिगर्ह्यते।
तस्मात्त्यजेय नो वेत्ति चिर दध्यौ स जानकीम्॥ (जै० अश्व, २६,५२)

राम के इस कथनानुसार सीता परम पवित्र एव साध्वी सिद्ध होती है, उनकी अग्नि-परीक्षा से राम संतुष्ट थे। राम अपने बान्धुओं को सीता त्याग का सकल्प बतलाते है। भरत जी राम के इस संकल्प का विरोध करते हैं और कहते है कि हमारे पिता दशरथ जी ने कहा था कि सीता परमपवित्र हैं, इसने हमारे कुल को निर्मल बनाया है। क्या आप पिताजी के इन वचनों को भूल गये :

इमां शुद्धां विद्धि पुत्र जानकी भर्तृतत्पराम्।
अस्याश्चरित्रेण कुलं नः सर्वं विमलीकृतम्॥ (जै० अश्व। २७। ७, ८)

राम इन वचनों की सत्यता तो स्वीकार करते हैं, किन्तु कीर्ति की रक्षा के लिए सीता का निर्वासन ही उचित ठहराते हैं। लक्ष्मण तो राम से इतने कुपित हो जाते है कि वे सीता को जगन्माता कह कर उनका त्याग सर्वथा अनुचित बतलाते है :

भार्या कलहतः कश्चिन्मातरं त्युक्तमर्हति।
तथा त्वं सर्वलोकस्य जननी हातुमिच्छसि॥ (जै० अश्व० २७। २८, २९)

शत्रुघ्न तो और अधिक कटु होकर राम के इस संकल्प की निन्दा करते है, किन्तु राम अपने सकल्प पर दृढ़ रहते हैं। वे लक्ष्मण से सीता को वन में त्याग आने की प्रार्थना करते हुये उनके चरणों तक की वन्दना करने लगते हैं।

सीता परित्याग भवो दोषो मम तवास्तु न।
नौमि ते चरणौ भ्रातः सीतां मुंचसरित्तटे॥ (जै० अश्व०। २७। ३९)

---

१. जैमिनि अश्वमेध, २६। ३२

इधर सीता यही समझती है कि मेरे दोहद की पूर्ति के लिए मुझे राम वन भेज रहे है। उन्हें अपने त्याग की वात नही ज्ञात होती। वे मुनियो तथा उनकी पत्नियो को सम्मानित करने के लिए विचित्र वस्त्र, अगरु, चन्दन आदि सामग्री एकत्र करती हैं। इससे उनकी सात्विक एवं सरल मानसिक प्रवृत्ति का पता चलता है। वे इतनी पति परायणा है कि देय सामग्री के साथ ही राम की स्वर्णमंडित चरणपादुकायें साथ ले जाना नही भूलती :

> पादुके रामचन्द्रस्य सौवर्णमणि विचित्रिते।
> एवं सस्थाप्य वस्तूनि श्वश्रूं प्रष्टुमथो ययौ ॥ (जै० अश्व०। २७। ५२)

उक्त प्रमाण से सीता जी कितनी शिष्ट एव विनीत प्रतीत होती है। वे माता कौशल्या की आज्ञा लेना नही भूलती। जव कौशल्या वन में कष्टो को असाध्य वतलाती है, तब सीता कहती है : मेरे पति वनवासी राम ने कंटकों का मर्दन किया है, निर्मल हैं, वानरो को उन्होंने ही जिलाया था। उनका स्मरण करते-करते मैं वन में दुःख न पाऊँगी। राम नाम जपने पर ओठ सूखेंगे नही, मैने मन, वचन तथा कर्म से आपकी सेवा की है :

> राम नाम जपन्त्याश्च ममोष्ठौ शुष्यतः कथम्।
> मनोवाक्कर्मभिः सेवा युष्मदीया कृता मया ॥ (जै० अश्व०। २७। ६०)

इस प्रकार सीता यहाँ एक आदर्श पतिव्रता, कष्टसहिष्णु, सुशील, सेवारत एवं निष्ठा-वती प्रतीत होती है। उनकी भक्ति अविचल है, कितनी आस्था है? वे चलते समय कौशल्या को ही नहीं अपितु कैकेयी तथा सुमित्रा को भी प्रणाम करती है, इससे उनकी शिष्टता का प्रमाण मिलता है। सीता जी शकुनों तथा अपशकुनो पर भी विश्वास करती है। जब वे वन के लिए प्रस्थान करती है और उन्हें अनेक अपशकुन होते है, तब वे विस्मित होकर लक्ष्मण से कहती है : हे लक्ष्मण ! इन भयप्रद चिह्नो को देखो श्रृगाली और श्रृगाल तथा अन्य वन्य जीव हमारा मार्ग रोक कर खड़े हो जाते हैं। कौशल्या माता के आनन्ददायक पुत्र राम का कल्याण हो, उनकी भुजाओ मे शक्ति हो और वे दीर्घजीवी हों।

> पश्य लक्ष्मण चिन्हानि शिवा गोमायवो मृगाः।
> मार्गमावृत्यतिष्ठन्ति रुदन्ति भयसूचकाः ॥
> परं स्वस्त्यस्तु रामाय कौशल्या हर्षकारिणे।
> तस्य बाह्वोर्वलं भूयादायुष्यं परिवर्धताम् ॥ (जै० अश्व०। २८। ६, ७)

सीता के उक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि वे अपशकुनों के कारण अपने कल्याण की चिन्ता नही करती, अपितु प्रियतम राम की चिन्ता करती है। इससे उनका अगाध पतिप्रेम प्रमाणित होता है, सती नारी की निष्ठा की पुष्टि होती है। इसी प्रकार

गंगा के ऊपर तट पर केवल भयंकर वन की भीषणता को देख कर वे चिन्तित हो जाती हैं और सोचने लगती हैं कि यहाँ आश्रम के कोई लक्षण नही दिखलाई पड़ते। वेदध्वनि भी नही सुनाई पड़ती, सम्भवतः इसलिए ऐसा है कि मैं बुद्धि से राम का त्याग कर चुकी हूँ। पवित्र व्यक्ति ही पवित्र आत्माओं का दर्शन कर पाते है, अतः मुझे मुनिपत्नियाँ तथा मुनि पुत्र भी दिखलाई नही पड़ते। मुझ रामपराङ्मुखी को वनवासियों के अग्नि होम के दर्शन कैसे हो सकते है।[1]

सीता के उक्त कथन से उनमें नैराश्य, वेदना एवं भय का संचार प्रतीत होता है। उनमे अपने प्रति एक प्रकार की घृणा अथवा हीनभावना प्रतीत होती है। सम्भवतः लोकापवाद के कारण सीता में उक्त भावना उत्पन्न हो गई थी।

भागीरथी तटवर्ती भीषण वन में पहुँचकर ही लक्ष्मण सीता से यह रहस्य उद्घाटित करते हैं कि आप राम द्वारा लोकापवाद के कारण परित्यक्त है, फिर भी भागीरथी दर्शन के दोहद की पूर्ति के लिए यह किंकर यहाँ तक आपको ले आया है। लक्ष्मण के इन कठोर वचनो को सुनते ही सीता मूर्च्छित होकर भूतल में गिर पड़ती है।[2] लक्ष्मण के प्रयास से उन्हें पुनः संज्ञा प्राप्त होती है और वे उनसे कहने लगती हैं: हे लक्ष्मण ! दण्डकारण्य में विराध द्वारा अपहृत मुझ सीता की तुमने ही रक्षा की थी, इस गहन वन में मुझे अकेली छोड़ कर तुम कैसे जाओगे ?[3] फलमूलादि द्वारा तुमने हमारी परिचर्या की, मेरे लिए विचित्र पर्णशाला का निर्माण किया, अव तुम्हारे बिना इन क्रियाओं को कौन करेगा ?[4]

इस सम्वाद से यह प्रतीत होता हैं कि सीता जी लक्ष्मण की कर्मठता, वीरता एवं सेवाभावना से कितनी प्रभावित है। उन्हें लक्ष्मण पर दृढ़ विश्वास है, वे उनका ऋण स्वीकार करने में कितनी मुखर हैं। सीता अपने त्याग में राम को दोष नहीं देतीं, वे कर्मफलवादिनी होकर अपने पूर्वकर्मों को ही दोष देती हैं।

न दोषस्तस्य रामस्य ममायमिति चिन्तये।
अथवा प्राक्तनानां हि विपाको मम कर्मणाम्। (जै० अश्व०। २८।५१)

सीता इस दुःख में भी धैर्य नही खोती, वे लक्ष्मण को समझाती हुई कहती हैं: जो देव गर्भ में रक्षा करता है, जिसमें लंकाधिवास में मेरी रक्षा की, वही मेरी रक्षा करेगा, तुम दुःख मत करो। तुम मेरी सास कौशल्या से कह देना कि मैं इस वन में

१. जैमिनि अश्वमेध। २८। २४, ३१ २. जै० अश्व०। २८। ३६
३. त्वयाहं दण्डके त्राता विराधांकगता पुरा॥ (वही। २८। ४१)
४. फलमूलाम्बुभिः शुद्धैः परिचर्या कृता त्वया।
पर्णशाला विचित्रास्तामदर्थमुपकल्पिताः॥
इदानीं त्वदृते तास्ताः कः करिष्यति लक्ष्मण॥ (जै० अश्व०। २८। ४२, ४३)

विचरण करती हुई भी आपकी चरणों की चिन्ता करती रहूँगी।[1] सीता जी को अपना यह त्याग अत्यन्त दुःखद प्रतीत हुआ, वे इस दारुण कार्य मे लक्ष्मण जैसे दयालु व्यक्ति की नियुक्ति को अनुचित ठहराती हुई कहती है कि इस कार्य के लिए भ्रातृहन्ता सुग्रीव को अथवा रावणद्रोही वलवान विभीषण को नियुक्त करना चाहिए था, व्यर्थ ही राम ने तुम्हें यहाँ भेजा :

> व्यापारे ऽस्मिन् कथं राम स्त्वां कृपालुमयोजयत् ।
> प्रेरणीयः स सुग्रीवः कठिनो भ्रातृ घातकः ॥
> विभीषणो वा वलवान् रावणद्रोह कारकः ।
> यो यत्र विषये दक्षः स तत्र विनियोज्यते ॥
> वृथा त्वां प्रेरयामास त्यागे मम रघूद्वह ॥
>
> (जै० अश्व० ।२८।५६, ५८)

उक्त प्रसंग में सीता का राम के प्रति प्रवल आक्रोश प्रकट होता है। उनके वचन व्यंगात्मक हैं, उन्हें सुग्रीव तथा विभीपण जैसे बन्धुद्रोही रुचिकर नही लगते, भले ही वे अपनी सहायता करने वाले हों, क्योंकि सीता का जीवन नैतिक विश्वासो में पला है, कोमल हृदय में कठोरता का अनुभव तो अवधपुरी आने पर ही किया था। जव लक्ष्मण उन्हें वन में छोड़ कर चले आते है, तव सीता अत्यन्त हृदयद्रावक विलाप करती है। उन्हें अपना यह त्याग बहुत खल गया।

> हा पापं किं मयाचीर्णं यस्त्यक्ता गहने वने ।
> जनकस्य कुले जाता दत्तास्मै राघवे पुरा ॥ (जै० अश्व० २८ । ६५)

उन्हें यह खलता था कि मैं जनक जैसे तपस्वी के पवित्र कुल में उत्पन्न हुई और राम जैसे महापुरुष के साथ मेरा विवाह हुआ, फिर भी न जाने किस अपराध के कारण मेरा परित्याग कर मुझे इस घनघोर वन में छोड़ दिया गया। सीता के करुणविलाप को सुनकर जड़-जंगम सभी दुःखित होते हैं।[2] सीता मुक्तकेशी होकर भमि में लोटने लगती हैं। वे सोचती है कि यदि मैं यहाँ प्राण परित्याग करूँगी, तो भ्रूणहत्या का पाप लगेगा।[3] इस प्रकार इधर-उधर कुश कंटकाकीर्ण भूमि मे भटकती है, पैरों से रुधिरस्राव होने लगता है। उक्त प्रसंग में सीता का चित्त दुःख से तो पूर्ण है किन्तु उनका विवेक जाग्रत है। वे धर्मभीरु है मातृत्व का उत्तरदायित्व उन्हे मरने भी नहीं देता। वाल्मीकि ऋषि आकर उनका परिचय पूँछते है, तव वे अपना परिचय

---

१. जै० अश्व० । २८ । ५३, ५४ २. जै० अश्व०, २८ । ६७, ७०

३. विचेष्टन्ती मुक्तकेशा भूमौ पांसुभिरावृता ।
यदि प्राणानिमान् हास्ये भ्रूणहत्या भविष्यति ॥ (जै० अश्व० । २८ । ७३)

देती हुई, यह भी कह देती हैं कि पता नहीं किस कारण मेरा त्याग किया गया है।[1] इस प्रकार उन्हें अपना यह अहैतुक त्याग अत्यन्त उद्वेजक प्रतीत हुआ है।

वाल्मीकि के आश्रम में जाकर सीता सबको नमस्कार करती हैं और उनसे आशीर्वाद ग्रहण करती हैं। आश्रम में रहकर वे नित्य ही वाल्मीकि की चरण वन्दना करती हैं और उत्तम कथायें सुनती हैं। उसी आश्रम में कुश और लव नामक दो पुत्रों को जन्म देकर सीता आश्वस्त होती हैं।

जब अश्वमेधीय अश्व के विषय में राम की सेना के साथ लव का युद्ध होता है और लव संग्राम में मूर्च्छित हो जाता है, तब सीता जी इस दारुण वृत्तान्त को सुनकर अत्यन्त व्यथित होकर कहती हैं: यदि मैं मन, वचन तथा कर्म से राम में तत्पर हूँ तो मेरा पुत्र रण में सकुशल हो।

> मनसा कर्मणा वाचा यदाहं रामतत्परा।
> तेन सत्येन मे पुत्रो लवोऽस्तु कुशली रणे॥ (जै० अश्व०। ३१। ७)

सीता जी का मातृहृदय अपने पुत्र की विपन्नावस्था को सोचकर फूट पड़ता है। वे रोती हुई कहती हैं कि उन पापी महारथियों ने मेरे एकाकी पुत्र को कैसे मारा? मेरा पुत्र लव मुझसे बिना पूँछे ही चला गया, हा पुत्र! तुम्हारा चन्द्रमुख बाण-विद्ध हो गया। उन शूरों को तुम बालक पर प्रहार करते समय दया नहीं आई? क्या करूँ? न तो वाल्मीकि जी हैं और न बलवान् कुश ही है, इस प्राप्त दुःख को किससे कहकर सुनाऊँ?[2] इतने में कुश आ जाता है और सीता उससे पूर्ण वृत्तान्त बतला कर मूर्च्छित लव को छुड़ा लाने की आज्ञा देती हैं।

सीता हनुमान् पर सदैव कृपा करती रही हैं। लव-कुश युद्ध भूमि से सुग्रीव तथा हनुमान को मूर्च्छावस्था में पकड़कर सीता के पास लाता है, उस समय सीता उनके छोड़ देने की संस्तुति करती हुई लव से कहती हैं।

> मानितौ वानरौ मुंच रणमध्ये च पुत्रक।
> मां निरीक्ष्य मृता वेतौ जीवहीनौ भविष्यतः॥ (जै० अश्व०। ३६। ७४, ७५)

अन्त में वाल्मीकि जी वरुण लोक से आकर सब का मिलाप करा देते हैं। वे राम से कहते हैं कि हे रघुनन्दन! ये तुम्हारे दोनों पुत्र हैं, इन्हें स्वीकार कीजिये और यदि सीता को निर्दोष मानते हों तो उन्हें भी ले जाइये।[3] तत्पश्चात् राम के यज्ञ में वाल्मीकि दोनों पुत्रों सहित सीता को लेकर उपस्थित होते हैं और राम उन्हें स्वीकार

---

१. त्यक्तास्मि तेन रामेण न जाने केन हेतुना। (जै० अश्व०। २९। ४)
२. जै० अश्व०। ३१। ७, १२
३. मन्यसे यदि सीतां च निर्दोषां नेतु मर्हसि।

कर लेते हैं। इतनी ही कथावस्तु जैमिनि अश्वमेध में वर्णित है। इसमें सीता निर्याण का उल्लेख नही मिलता।

इस प्रकार कन्नड़ तथा मलयालम दोनों भाषाओं में सीता एक आदर्श पतिव्रता एवं अलौकिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। शील सद्व्यवहार एवं चरित्र की दृष्टि से उभयत्र समानता प्रतीत होती है। दोनों में सीता के राम एक पत्नीव्रती हैं, सीता को उनका हार्दिक स्नेह प्राप्त है, वे मायावपु से ही नर चरित्र करते है। सीता तो लक्ष्मी का रूप हैं, उनके वास्तविक रूप की सुरक्षा अग्नि में हुई है, इसी कारण अन्त में अग्निपरीक्षा भी ली जाती है।

सीता त्याग के प्रसंग में कन्नड़ की सीता अधिक करुण प्रतीत होती है। उनमे राम के प्रति अनुराग तो है किन्तु आक्रोश भी कम नही है। उन्हें अपना आकस्मिक त्याग अत्यन्त दुःखद प्रतीत हुआ है। मलयालम की सीता मे त्यागजन्य इतनी वेदना नही प्रतीत होती।

अध्याय ७

लोकसाहित्य के आलोक में श्रीसीता का स्वरूप

(क) लोकसाहित्य के आलोक में सीतातत्त्व के प्रवेश के कारण एवं काल विवेचन

जनमानस में उमड़ती हुई भावनाएँ एवं मान्यताएँ लोककवियों के कण्ठ से अनायास ही फूट पड़ती हैं। इनमें जनता के हृदय का प्रवल स्पन्दन छिपा रहता है। समाज के यथार्थ जीवन के निर्मल स्रोतों का कलनादी स्वर कर्णकुहर में प्रविष्ट होकर किस प्रकार हृत्तन्त्री को झंकृत कर देता है, इस रहस्य का पता लगाने के लिए हमें लोकगीतो का अध्ययन करना चाहिए।

ये लोकगीत अपने अन्तराल में हमारी अमूल्य संस्कृति को सुरक्षित वनाये रहते हैं। इनमें कृत्रिमता का आवरण नही होता, किसी प्रकार का आडम्वर नही होता, वन्ध का वन्धन नही होता। ये तो स्वाभाविक ढंग से फूटकर स्वच्छन्दगति से प्रवाहित होते हैं और अपने अस्तित्व से समाज का मनोरंजन ही नही करते, अपितु क्षणभर के लिए सिसकती एवं तड़पती हुई मानवता के मर्मस्थान को सान्त्वना प्रदान करते हैं। विविध पर्वो, त्योहारो एवं उत्सवों के अतिरिक्त ये गीत प्रकृति के समस्त रूपों को आत्मसात करते हुए दैनिक जीवन में मानवता के श्रम का परिहार भी करते चलते हैं।

यहाँ स्वभावतः यह जिज्ञासा होती है कि लोकगीतों का प्रचलन कव से हुआ होगा। इस सम्वन्ध में मेरी निश्चित धारणा है कि लोकगीतों का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन भाषा की उत्पत्ति है। इसका कारण यह है कि मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो अपनी अनुभूतियों को व्यक्त किये विना रह नही सकता। सृष्टि के आरम्भ से ही उसमें राग-द्वेष वर्तमान रहा है और भविष्य में भी इससे परे हो जाना असम्भव है। जो व्यक्ति राग-द्वेष से परे होते भी हैं, वे सामान्य मानव का प्रतिनिधित्व नही करते, उन्हें हम देवकोटि में परिगणित करते हैं। यह देखा गया है कि हम अपनी अथवा सामाजिक अनुभूतियों को मानस पटल पर अंकित करते है और सुस्वर न होने पर भी कुछ न कुछ गुनगुनाया करते है। आदि मानव सृष्टि में भी यह प्रवृत्ति रही होगी और जव उसके पास सामाजिक देन के रूप में भाषा का स्वरूप प्रस्तुत हो गया होगा, तव उसने लोकगीतों के रूप में इन अनभूतियों को वाणी दी होगी।

वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उस काल में यज्ञोत्सवों एवं विविध संस्कारों में गीत गाये जाते थे। उन्ही लोकगीतों के परिष्कृत रूप को ही सामवेद के नाम से संग्रहीत किया गया होगा। विविध सूक्तों एवं संवादो में इन लोकगीतों की झलक का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार लोकगीतों की परम्परा अतिशय प्राचीन प्रतीत होती है।

बौद्ध जातकों में गाथाओं के नाम से जो भी साहित्य प्राप्त है, निश्चित रूप से वह उस समय के लोकगीत का ही स्वरूप है। जनता में संगीत के माध्यम से उपदेश देने की प्रथा प्राचीन है। संगीत हृदयावर्जक होता है और उसका प्रभाव हृदय में अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है। इसी कारण बौद्धभिक्षुओं ने गाथाओं द्वारा अपने धर्म का प्रचार किया और सफलता भी प्राप्त की। इससे ज्ञात होता है कि लोकसाहित्य किसी प्रकार का भी साधन बन सकता है।

इन लोकगीतों में लोकप्रसिद्ध अनेक कहानियाँ भी अनुस्यूत रहती थीं। उदाहरणार्थ आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण की रचना के पूर्व ही राम और सीता का कथानक लोकगीतों के रूप में प्रचलित था, जिसे सूत तथा कुशीलव गाया करते थे। इससे उनकी जीविका चलती थी। यह प्रवृत्ति आज भी देखी जाती है। भर्तृहरि की लोकप्रिय कथा को सुन्दर स्वरों में गाकर भिक्षाटन करने वाले आज भी विद्यमान हैं। महर्षि वाल्मीकि ने इन्ही प्रचलित आख्यानो का संग्रह कर अपने महाकाव्य का निर्माण किया होगा।[1]

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि लोकगीतों के रूप में सीताराम का कथानक वाल्मीकि की मूल रचना के पूर्व ही शताब्दियों से विख्यात रहा है। मूल रामायण का रचनाकाल ईसा से पूर्व पाँचवीं शताब्दी माना जाता है।[2] पार्जिटर के अनुसार तो वाल्मीकि की मूल रचना १६०० ई० पू० में ही हो चुकी थी, जैसा कि ग्रन्थ की अन्तरंग परीक्षा से सिद्ध होता है।[3] उक्त मतों के आधार पर यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि लोकगीतों के क्षेत्र में सीता जी का प्रवेश कम से कम ६०० वर्ष ई० पू० अवश्य हो चुका था और इसकी प्राचीनतम अवधि १७०० ई० पू० तक स्वीकार की जा सकती है।

यहाँ यह प्रश्न भी स्वाभाविक प्रतीत होता है कि यदि लोकगीतों में सीता का इतना प्राचीन उल्लेख था, तो उसका अस्तित्व कहाँ है? उत्तर पक्ष से इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि लोकगीत इस शताब्दी तक मौखिक रूप में ही जनपरम्परा के कण्ठों से सुने जाते रहे हैं। आज भी इतना विस्तृत लोकभाषा साहित्य उपेक्षित पड़ा

---

१. रामकथा : डॉ० बुल्के पृ० २७ तथा संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० ८

२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० १२   ३. वही, पृ० १२

है। कतिपय लोकभाषाओं में ही कुछ विद्वानों ने इनका संग्रह किया है। खेद है कि हमारी लोकसंस्कृति के पहरेदार ये गीत सदैव उपेक्षित ही रहे। लाखों की संख्या में इनकी जीवन लीला समाप्त हो गयी। जैसे लोकभाषायें अपना प्राचीन रूप परित्याग कर नवीन रूप धारण करती गयी, वैसे ही प्राचीन लोकगीतों की जीवन गाथा भी समाप्त होती गई।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि लोकसाहित्य में सीता का प्रवेश-काल कम से कम ई० पू० ५०० वर्ष मान्य है किन्तु तब तक तो अवतारवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा भी नहीं हुई थी। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि श्रीकृष्ण का अवतारी रूप ई० पू० ३०० वर्ष के लगभग मान्य हुआ[1] और राम का ईश्वरीय रूप वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की रचना के पूर्व। सम्भावना यह की जाती है कि प्रथम शताब्दी पूर्व रामावतार की भावना प्रचलित हो गयी थी। कालिदास के समय (प्रथम शतक ई० पू०) में राम तथा जानकी के नाम से अनेक तीर्थस्थल प्रसिद्ध हो गये थे। मेघदूत का यक्ष रामगिरि में ही शरण लेने आया था।[2] वहाँ का जल जनकतनया सीता के स्नान के कारण परमपवित्र माना जाता था। इस उल्लेख के आधार पर हम कह सकते हैं कि सीता तत्व ने लोकसाहित्य में भी ई० पू० प्रथम शताब्दी के लगभग प्रवेश प्राप्त कर लिया था। कालिदास के समय के सीता विषयक लोकगीत तो प्राप्त नहीं है, किन्तु इतना प्रमाण तो अवश्य दिया जा सकता है कि लोकगीतों के रूप में उदयन कथा के विशेषज्ञ ग्राम्यवृद्ध अवन्ती में विद्यमान थे।[2] इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि कालिदास के समय लोकगीत पर्याप्त प्रिय थे। जहाँ तक उदयन कथा की प्राचीनता का प्रश्न है, रामायण के रचनाकाल के लगभग माना जा सकता है क्योंकि कालिदास से ही नहीं, अपितु कौटिल्य (चतुर्थ शताब्दी ई० पू०) से भी पूर्ववर्ती महाकवि भास ने स्वरचित स्वप्नवासवदत्तम् नामक नाटक में उदयन को ही कथानायक बनाया है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आदर्श पत्नी के रूप में तो साहित्य ने (५०० ई० पू०) वाल्मीकि रामायण के रचनाकाल तक सीता को प्रतिष्ठा प्रदान की थी किन्तु सीता तत्व के रूप में उनकी मान्यता रामायण के क्षेपकों के निर्माण होने के समय से पूर्व ही अर्थात् ईसा की प्रथम शताब्दी तक अवश्य हो चुकी थी। इस समय के लोकगीतों ने सीता जी के उदात्तचरितों की अमूल्य लड़ियाँ लुटाकर जनता का मनोरंजन किया होगा, पर उनका इतिहास कहाँ है? अस्तु मानवी सीता के सम्बन्ध में तो लोकगीत रामायण की रचना से पूर्व ही मुखरित हुए और लक्ष्मी सीता के सम्बन्ध में प्रथम शताब्दी ईसवी के लगभग।

---

१. तैत्तिरीय आरण्यक (१०, १, ६) तथा अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट, पृ० ६३ (एच० चौधरी) २. मेघदूत, श्लोक १-जनकतनया स्नान पुण्योदकेषु।

लोक साहित्य में सीता का प्रवेश काल और सीतातत्व का प्रवेशकाल, दोनों भिन्न-भिन्न हैं, जैसा कि उपर्युक्त अनुच्छेद में सिद्ध किया जा चुका है। यहाँ इस बात पर विचार करना शेष है कि लोक साहित्य में सीतातत्व के प्रवेश के कौन प्रमुख कारण माने जा सकते है।

सीतातत्व से हमारा तात्पर्य सीता जी के उस रूप से है, जब मे वे केवल मानवी न रहकर लक्ष्मीस्वरूपा वैष्णवी शक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त करने लगी थीं। लोक साहित्य में इस सीता तत्व के प्रवेश के निम्नलिखित प्रधान कारण माने जा सकते है।

(क) आदर्श पातिव्रत्य, (ख) करुण जीवन, (ग) वैष्णवीरूप,
(घ) नारी जीवन, (ङ) निष्कलंकता, (च) लोकप्रसिद्धि,
(छ) आभिजात्य, (ज) दिव्य गुण, (झ) प्रभविष्णुता,
(ञ) लोकोपकारिता।

उपर्युक्त कारणो का विश्लेषण करना अपेक्षित है, जिससे यह स्पष्ट हो सकता है कि वस्तुत: ये कारण किसी भी चरित्र को इसी प्रकार लोकप्रिय बनाने मे सक्षम है या नहीं।

(क) **आदर्श पातिव्रत्य**—लोकगीतों के सृजन में नारी जाति का प्रमुख स्थान है और भारतीय परम्परा में नारी का सतीत्व उसके पूज्य होने के लिए नितान्त आवश्यक वस्तु है। श्री सीता का सतीत्व प्राचीनकाल से ही इतना प्रसिद्ध रहा है कि स्वत: नारी जाति के लिए गर्व की वस्तु है। इस कारण लोकगीतो मे नारी वर्ग ने श्री सीता के लोकपावन आदर्श को प्रतिष्ठित किया। उनके चरित्र गायन के माध्यम से ललनावर्ग में पतिनिष्ठा एवं सदाचार की दिव्य ज्योति जलाई और अप्रत्यक्ष रूप से यह शिक्षा ग्रहण की कि प्रत्येक नारी को सती सीता जी के आदर्शो को ग्रहण करना चाहिये।

(ख) **करुण जीवन**—सीता जी का जीवन तपस्या की तीव्र अग्नि मे तप कर शुद्ध कांचन बन गया था। करुणा ने तो मानो सीता का ही रूप धारण कर भारतीय नारी को कष्ट-सहिष्णुता तथा पतिभक्ति का पाठ पढाया था। विवाह के पश्चात् राजमहलों के सुखो का स्वल्प अनुभव करते ही चतुर्दश वर्ष का भीषण वनवास, वन के विविध क्लेशों के साथ संघर्ष, रावण द्वारा अपहरण, दुस्सह पति वियोग, क्षणदाचरो के दुश्शासन में रहकर जीवन निर्वाह आदि ऐसी घटनाये थी, जिन्होने सीता जी के जीवन को करुण रस से आकण्ठमग्न कर दिया। इतना ही नही उन्हें प्रतप्त अग्नि की भीषण लपटों में प्रविष्ट होकर अपने सतीत्व का ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित करना पड़ा, फिर भी क्रूर नियति को सन्तोप नही हो सका। उन्हे गर्भवती होने पर

भी लोकापवाद के कारण भीषण कांतार में परित्यक्त किया गया। एक राजकुमारी की यह दुर्दशा, एक चक्रवर्ती की पुत्रवधू की यह स्थिति, एक सती नारी का यह अपमान, नारी जाति को बहुत बुरी तरह खल गया होगा और आज भी नारियाँ राम के इस कठोर व्यवहार को जी भर कर कोसती हैं। सीता के करुण जीवन पर उनकी अश्रुमालायें वरस पड़ती हैं। सीता पर पुरुष जाति का यह अत्याचार यहीं तक सीमित नहीं रहा। उन्होंने राम के कुलांकुर लवकुश का भरण-पोषण किया। महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रह कर अपनी आपत्ति के दुर्धर्ष दिनों को कितनी सहिष्णुता के साथ एक-एक कर के काट दिया, फिर भी अश्वमेध यज्ञ में राम द्वारा स्वर्ण निर्मित सपत्नी को देखकर उनका हृदय विदीर्ण हो गया। उन्होंने जननी वसुन्धरा से पार्थना की तू विदीर्ण हो जा। सव के देखते-देखते पृथ्वी विदीर्ण हो गई और एक दिव्य सिंहासन निकला, जिसमें समारूढ़ होकर वह सती सदैव के लिए राम को पश्चात्ताप करने के लिए छोड़कर चली गई। सचमुच भवभूति का यह कथन 'अपि रोदति ग्रावा दलत्यपि वज्रस्य हृदयम्, सीता की करुण स्थिति का सच्चा निदर्शन है। सीता की विपत्ति को देखकर शिलाये रोती हैं और वज्र का भी हृदय विदीर्ण हो जाता है। सीता जी के इस करुण जीवन से नारी जीवन को वड़ी सहानुभूति है। यही कारण है कि लोकगीतो मे सीता जी से सम्वद्ध जितने गीत गाये जाते हैं, उनमें करुण रस प्रधान गीतों का ही वाहुल्य है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से नारियाँ भाव प्रधान होती हैं, उसमे पुरुष की अपेक्षा करुणा का विशिष्ट स्थान होता है। वे करुणा से विशेष प्रभावित होती है। इन तथ्यों के कारण प्राचीन काल से नारी जाति ने सीता के करुण जीवन को गीतों मे उप-निवद्ध किया और समय-समय पर उन्हें गाकर अपने भार ग्रस्त जीवन को हलका वनाने में उसका सदुपयोग किया और भविष्य में भी करती रहेंगी। मेरे विचार से लोकगीतों में सीता के समावेश के जितने भी कारण हो सकते हैं, उनमे यह कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

(ग) **वैष्णवी रूप**—सीताराम विषयक अलौकिक आस्था ई० पू० प्रथम शताव्दी में ही जन्म ले चुकी थी। वाल्मीकि रामायण की रचना के पूर्व ही लोकाख्यान के रूप में राम कहानी प्रचलित थी, किन्तु जव से सीता में वैष्णवी शक्ति का आरोप हो गया, तव से उनके प्रति श्रद्धाभाव की सृष्टि होने लगी। सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा हम देवों के गुणगान करना अधिक पसन्द करते हैं। अस्तु, जव सीता जी देवी के रूप में मान्य हो गईं तव उनके गीत कल्याणकारक एवं सुखद भी समझे जाने लगे। फलत: लोकगीतों में सीता जी का विशिष्ट स्थान हो गया।

(घ) **नारी जीवन** - नारियों को नारी जीवन से विशेष सहानुभूति होती है, विशेषत: उस स्थिति में जवकि वे नारी को निरापराध समझती हो और पुरुष वर्ग उस

पर अपनी निर्ममता प्रदर्शित कर रहा हो। सीता जी के विषय में यह प्रसिद्धि प्राचीन-काल से ही चली आती है कि उन्हें पवित्र होने पर भी राम ने लोकापवाद के कारण निष्कासित किया था। इसके अतिरिक्त उनके लिए वनवास की आज्ञा न होने पर भी उन्होने पतिसेवा हेतु वन मे रह कर अनेक कष्ट सहे। रावण की प्रताड़ना भी सही, अग्नि परीक्षा देने पर भी उनकी शुद्धि पर सन्देह किया गया। इतना दलित जीवन व्यतीत करने वाली सती साध्वी पर नारी की सहानुभूति आवश्यक थी। सहृदय पुरुष वर्ग भी सीता के इस दलित-जीवन से प्रभावित हुआ, फलतः लोकगीतो में सीता जी का महत्वपूर्ण स्थान सुरक्षित हो गया।

(ङ) **निष्कलंकता :** सीता जी की निष्कलंकता भी उनकी लोकप्रियता का कारण है। उन्होंने स्वप्न मे भी राम के अतिरिक्त परपति की चाहना नही की। रावण के विविध प्रलोभनो पर भी ध्यान नही दिया।

मन्दोदरी आदि सब रानी।
तव अनुचरी करौ प्रण मोरा। एक बार विलोकु मम ओरा॥ (रामचरित मानस)

उनका यह आदर्श नारी जीवन के लिये अनुकरणीय है। इसी कारण लोकगीतो में नारी जगत ने सीता को अपनाया।

(च) **लोक प्रसिद्धि :** एक पत्नीव्रती राम और आदर्श पतिपरायणा सती सीता की कहानी लोकाख्यान के रूप में ईसा से एक सहस्र वर्ष पूर्व से प्रचलित थी, किन्तु अवतारवाद की प्रतिष्ठा होते ही वह और अधिक प्रसिद्ध हो गई। लोक-जीवन ने उनके चरित्र से कुछ सीखा, हृदय ने उसे श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया, अतः लोकगीतों में उनकी प्रतिष्ठा हो गई।

(छ) **आभिजात्य :** प्राचीन काल से नारी जीवन के प्रति कुछ उपेक्षा सी चली आती है। पुरुष वर्ग ने उसे दासी के रूप में माना था, अपनी पशु प्रवृत्ति की सतुष्टि का साधन समझा। वैसे तो सीता के समान न जाने कितनी सुन्दरियाँ सिसक-सिसक कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुकी है और कर रही हैं, किन्तु कौन उनके गीत गाता है? गीत गाना तो दूर रहा, उनका नाम भी समाज के किसी पृष्ठ पर अंकित नही है। यदि सीता भी किसी साधारण व्यक्ति की पत्नी होती, साधारण व्यक्ति की पुत्री होती और साधारण व्यक्ति की पुत्रवधू होती, तो आज उनको भी समाज भूल गया होता, कोई उनके गीत न गाता, परन्तु सीता राम जैसे आदर्श राजकुमार अथवा परमात्मा की पत्नी थीं, स्वतः लक्ष्मी का अवतार थी, योगिराज विदेह की पुत्री थी और चक्रवर्ती दशरथ की पुत्रवधू थी। इन सब कारणों से उन्हें विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई और लोकगीतों में उन्हें वह स्थान साहित्य मे मिला।

(ज) **दिव्यगुण :** लोक मे गुणों की प्रतिष्ठा सदैव रही है। स्त्री हो या पुरुष

अपने आदर्श गुणों के द्वारा वह समाज में सम्मान प्राप्त करता है। सीता जी के विषय में भी यह लोकप्रसिद्धि रही है कि वे सुकुमारी राजकुमारी होती हुई भी वन में पति के साथ पदाति भ्रमण करती रही। पतिसेवा उनके जीवन का व्रत था, सहिष्णुता, नम्रता, शिष्टता, सदाचार, विवेक, लज्जा, प्रेम, विश्वास आदि दिव्यगुण उनके व्यक्तित्व में पूर्णत: समाविष्ट थे। इस प्रकार सीता जी का व्यक्तित्व भारतीय नारी के लिए आदर्श, अनुकरणीय एवं श्रद्धास्पद बन गया। इस कारण लोकगीतों की अज्ञात कवियित्रियों ने उन्हें लोकगीतों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

(झ) प्रभविष्णुता : सीता जी के चरित्र में प्रभविष्णुता का आधिक्य उन्हें लोक के समीप ले आया है। इसमें उनके आन्तरिक एवं वाह्य व्यक्तित्व दोनों ही कारण हैं। त्याग मानव जीवन का आभूषण है। सीता जी ने अपना जीवन त्यागमय बनाया। पतिसेवा हेतु अयोध्या के समस्त वैभव ठुकरा दिये, वनवासी जीवन में अपने शारीरिक सौन्दर्य का भी ध्यान नहीं दिया, अपने पारिवारिक व्यक्तियों के पास जाकर मिलने का अवसर नहीं खोजा, तपस्विनी वन कर कंचनकाया सुखा डाली, बड़े से बड़े प्रलोभनों के समक्ष सतीत्व का त्याग नही किया और सब से बड़ी बात यह कि पति द्वारा बार-बार प्रपीड़ित होकर भी एक बार भी उनकी निन्दा हेतु एक शब्द भी नही कहा। ऐसी महनीया नारी कहाँ है? उनके इन चरित्रो का प्रभाव जनता पर पड़ना स्वाभाविक था, अत: वे लोकगीतों में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकी।

(ञ) लोकोपकारिता : समाज मे वे ही व्यक्ति जनमानस मे प्रतिष्ठित हो पाते हैं जिनका जीवन उस जनता को कुछ प्रदान करता है। सीता का जीवन नारी जगत का पथप्रदर्शक है, इससे लोक का अतीव कल्याण हुआ। नारियों को इससे यह शिक्षा मिलती है कि जब सीता जैसी नारी ने कष्ट उठाया, यातनायें सही, फिर भी आपत्ति काल में धैर्य का परित्याग नही किया और पति द्वारा कष्ट देने पर भी उन पर अश्रद्धा नही व्यक्त की, उनकी अवहेलना कर कुमार्ग में पग नही बढाया, तो हमे भी करुण सहिष्णुता का पालन करते हुए पतिपरायणता का आदर्श सीखना चाहिए। सीता के इस लोककल्याणकारी व्यक्तित्व के कारण समाज में उनकी प्रतिष्ठा हुई और लोकगीतों में उनका विशिष्ट स्थान बन गया। उनके जीवन का सर्वांगीण विवेचन करने से ज्ञात होता है कि वह लोकरंजक भी है। उनके जीवन के विभिन्न अगो को लोकगीतो में गाकर नारियाँ अपना मनोरंजन करती हैं, थोड़ी देर के लिए व्यक्तिगत कठिनाइयों को भूलकर करुणरस की आनन्दलहरी में निमग्न हो जाती है।

उपर्युक्त कारणों पर विचार करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मुख्यतया सीता जी को लोकगीतों में इसलिए विशेष स्थान दिया गया है कि वे पतिपरायणा' कष्ट सहिष्णु, करुण रसपूरित, आदर्श पत्नी तथा लक्ष्मीस्वरूपा आदिशक्ति है, उनके

जीवन चरित्र से लोकशिक्षण एवं लोकमनोरंजन होता है, अतः लोकगीतों ने ही नही अपितु साहित्य ने भी उन्हें असाधारण प्रतिष्ठा देकर गौरवान्वित किया है। उनकी यशोगाथा केवल भारत मे ही नहीं, अपितु विदेशों में भी व्याप्त है। लोकजीवन को इतनी अधिक मात्रा में प्रभावित करने वाली किसी नारी का इतिहास विश्वसाहित्य में प्राप्त नही है।

(ख) लोकसाहित्य के विविध भेदों में सीता विषयक मान्यतायें

विगत पृष्ठों मे हम इस वात पर विचार कर चुके है कि किन कारणों से सीता जी को लोकगीतों मे स्थान मिला और उस क्षेत्र में उनके प्रवेशकाल का क्या इतिहास है। लोकसाहित्य के अन्तर्गत विपुल भावराशि बिखरी हुई पड़ी है जिसके सकलन एवं आलोडन की नितान्त आवश्यकता है। भारत इतना विशाल देश है, जहाँ अनेक रूपता मे एकरूपता विद्यमान हैं। प्रत्येक प्रान्त की एक भाषा है और उस प्रान्त में भी अनेक उपभाषाएँ है, जिनका अलिखित साहित्य ग्रामीण कृषकों एव ग्रामीण वालाओं के कण्ठ से फूटता हुआ मानस को आन्दोलित कर देता है। इन लोकगीतों में भारत की आत्मा की झंकार श्रवण करने को मिलती है। भारतीय संस्कृति का वास्तविक स्वरूप इन लोकगीतो मे अकित रहता है। इनमें मानवजीवन को प्रभावित करने की अतुलनीय शक्ति होती है।

यद्यपि भारतीय उपभाषाओं के अन्तर्गत सीताचरित से सम्बद्ध लाखों गीत उपलब्ध है, किन्तु वे स्वतन्त्र अध्ययन के विषय बनाये जा सकते है। इस व्यापक शोध प्रवन्ध के अन्तर्गत तो हम कतिपय लोकभाषाओं के लोकगीतों के माध्यम से यह प्रदर्शित करने की चेष्टा करेगे कि लोकगीतों मे सीता का कौन-सा स्वरूप विशेष अगीकृत हुआ है। भारतीय लोकगीतों की अपनी विशेषता यह है कि सीता के विषय मे लगभग एक प्रकार की धारणाये सबमें विद्यमान है। किसी भी लोकभाषा के गीत ऐसे नही है, जिसमें सीता के द्वितीय वनवास के करुण चित्र न उतारे गये हों। सामान्य विपयों में अन्तर भी दृष्टिगोचर होता है किन्तु प्रभविष्णु अंश लगभग एक समान ही अंकित किये गये है।

लोकभाषाओं में भोजपुरी का एक विशिष्ट स्थान है और सम्भवतः लोकगीतों की दृष्टि से भी इसकी धनाढ्यता एवं महत्ता की तुलना करने वाली कोई अन्य उप-भापा न होगी।

डॉ० ग्रियर्सन ने भोजपुरी के विषय में लिखा है कि गंगा से उत्तर इस भाषा (भोजपुरी) की सीमा मुजफ्फरपुर जिले के पश्चिमी भाग की मगही है। फिर उस नदी के दक्षिण इसकी सीमा गया और हजारीवाग की मगही से मिल जाती है। वहाँ से यह सीमान्त रेखा दक्षिण-पूर्व की ओर हजारीबाग की मगही भाषा के उत्तर घूमकर

सम्पूर्ण राँची पठार और पलामू तथा राँची जिले के अधिकांश भागो मे फैल जाती है। दक्षिण की ओर यह सिंघभूमि की उरिया और गगपुर स्टेट की तद्देशीय भाषा से परिसीमित होती है। यहाँ से भोजपुरी की सीमा जसपुर रियासत के मध्य से होकर राँची पठार के पश्चिमी सरहद के साथ-साथ दक्षिण की ओर जाती है। जिससे सरगुजा और पश्चिमीय जसपुर की छत्तीसगढ़ी भाषा से इसका विभेद होता है। पलामू के पश्चिमीय प्रदेश से गुजरने के बाद भोजपुरी भाषा की सीमा मिर्जापुर जिले के दक्षिणीय प्रदेश मे फैल कर गंगा तक पहुँचती है। यहाँ यह गंगा के बहाव के साथ-साथ पूर्व की ओर घूमती है और बनारस के निकट पहुँचकर गगापार कर जाती है। इस प्रकार मिर्जापुर जिला के उत्तरीय गांगेय प्रदेश के केवल अलाभाग पर ही इसका प्रसार रहता है। मिर्जापुर के दक्षिण में छत्तीसगढ़ी से इसकी भेंट होती है, परन्तु उस जिले के पश्चिमी भाग के साथ-साथ उत्तर की ओर घूमने पर इसकी सीमा पश्चिम में पहले बघेली और फिर अवध की अवधी से जा लगी है।[1]

भोजपुरी के क्षेत्र के अन्तर्गत बस्ती, गोरखपुर, चम्पारन, सारन, बनारस, बलिया, आजमगढ़, मिर्जापुर तथा गाजीपुर जनपद आते है। इतने विशाल भूभाग की लोकभाषा भोजपुरी के लोकगीतों का आधिक्य स्वाभाविक है। हम सर्वप्रथम इसी लोकभाषा भोजपुरी के लोकगीतो के माध्यम से सीता विषयक सामग्री प्रस्तुत कर रहे है।

भोजपुरी में सीता विषयक मान्यतायें

भोजपुरी में सीता' के जगज्जननी रूप को अपेक्षा उनका लोकनारी रूप ही अधिकांश रूप में गृहीत हुआ है। वे राम की पत्नी महाराज दशरथ की पुत्रवधू एवं जनक की पुत्री के रूप में ही गायी गई है। उनके जीवन के युगल पक्षो में से (सुख-दु:ख) सुखद पक्ष का चित्रण तो अत्यल्प मात्रा में हुआ है किन्तु उनके जीवन का दु:खद पक्ष अत्यन्त व्यापक रूप से चर्चित किया गया है। सुविधा एवं जीवनक्रम की दृष्टि से भोजपुरी के सीता विषयक गीतों का वर्गीकरण इस प्रकार होगा :

(क) वैवाहिक गीत, (ख) विदागीत, (ग) सुखद गीत,
(घ) वनवास गीत, (ङ) हरण गीत, (च) अयोध्या प्रत्यागमन गीत,
(छ) त्याग गीत।

(क) वैवाहिक गीत

राजा जनक अइलें नहाई के मनही उदासल हो।
कवन चरितर आजु भइले धनुषतर लीपल हो ॥१॥

---

१. लिंगुइस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, भाग २, जिल्द ५, पृ० ४४, संस्क० १९०३

हम नाहीं जानी लाए हरी पूछिल सीता जी से हो ।
सीता के सखियाँ वहुत हुतीं जनक जी के आँगन हो ।।२।।
जनक जी सीता के वुलाईले जाँघ वइठाईले हो ।
वेटी कवने हाथ धनुष उठवलू कवने हाथे लिपलू हो ।।३।।
वाये हाथे धनुहा उठाईला दहीने हाथे लीपिला हो ।
इहे चरितर आजु भइले धनुहातर लीपल हो ।।४।।
जनक मने पछितावेले मने मे दुखित होले हो ।
अव सीता रहली कुवारी जनम कइसे वीतहि हो ।।५।।
काहे के वावा पछिताल्त तू मन में दुखी होल हो ।
अव हम पूजवों भवानी तू राम वर पाइवि हो ।।६।।
कचन थरिया गढ़ावेली आरती सजावेली हो ।
चलू न सखी फुलवरिया त पूजी भवानी हो ।।७।।
घुमरि घुमरि सीता पूजेली पूजेली भवानी हो ।
परसन होई न भवानी त पूरई मनोरथ हो ।।८।।
देवी जी हसेली ठठाइ के वड़ा रे परसन से हो ।
पुजिहै मन के मनोरथ राम वर पावेलू हो ।।६।।[1]

उपर्युक्त गीत के अनुसार एक दिन सीता जी ने धनुप को वाँये हाथ से उठा कर दाहिने हाथ से उसके नीचे लेपन कर दिया था, जिससे जनक जी ने चिन्तित होकर पूरा वृत्तान्त पूँछा । पिता द्वारा सीता के विवाह की चिन्ता करने पर सीता कहती है कि आप चिन्ता न करे मैं भवानी की आराधना कर राम को वर के रूप में प्राप्त करूँगी। तत्पश्चात् सीता जी भवानी-पूजन करती हैं और राम को पति के रूप मे प्राप्त करने का वरदान प्राप्त करती हैं ।

आलोचना—उक्त गीत के अनुसार सीता जी के विपय मे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :

(१) सीता जी में अपार ऊर्जा थी । उनकी इसी शक्ति के कारण जनक को धनुर्भंग का प्रण करना पडा था ।

(२) सीता जी मे स्वच्छता के प्रति विशेप रुचि थी, वे गार्हस्थ्य विज्ञान मे कुशल थी ।

(३) सीता जी में आस्तिकता एवं साधना-शक्ति का अपार वल था ।

---

१. भोजपुरी लोकगीत में करुणरस (विवाह के गीत १७), पृ० ४६८, ६६ द्वितीय संस्क० १६६५ ई० श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह (हिन्दी सा० सम्मे० प्रयाग)

(४) सीता जी के मन मे राम के प्रति आकर्षण विद्यमान था।

एक लोकगीत के अनुसार विवाह के समय सीता जी पत्र लिख कर भेजती है कि हे राम ! आप सज कर आइये। प्रत्युत्तर मे राम भी लिखते है कि सीता ! तुम शृंगार करो, मैं अवश्य आऊँगा।

सीता जे चिठि लिखि भेजेली हरि झूमरी।
अब उमड़ि ना आई सिरि राम खेलबि हरि झूमरी ॥३॥
राम जे चिठि लिखि भेजेले हरि झूमरी।
अब सीता सुन्दरि करसु सिंगार खेलबि हरि झूमरी ॥४॥

(भोजपुरी लोकगीत, पृ० १३२ : डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय)

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सीता जी मुखर थी, वे अपने पति को अलकृत रूप मे देखना चाहती थी। मनोवैज्ञानिक धरातल से सोचने पर यहाँ सीता जी एक सामान्य विवाहोत्सुका बालिका प्रतीत होती ह।

एक लोकगीत के अनुसार सीता जी अपने पिता जी के प्रण पर क्षुब्ध है। कविवर तुलसी न तो इसका सकेत मात्र किया है,[१] किन्तु लोकगीत मे तो सीता जी अपनी माता जी से ही कह रही है :[२]

सिया प्रन कठिन कठोर ए माई ॥टेक॥
पिता जनक जी स्वयम्वर ठनले, रचि के माड़ो छाई।
देस देस के भूप सब अइले, ताहि बिच धनुहा देत ओठगाई ॥१॥
पहिले रावनु बानासुर अइले, तिल भर भूमि न सकेले छोड़ाई।
राजा जनक वचन एक बोलते, करि करुना बिलखाई ॥२॥

यह यथार्थ है कि बालिकायें अपनी माता से निश्छल एव निस्सकोच होकर बात करती है, पिता से वैवाहिक समस्या का इस प्रकार प्रस्तुतीकरण आज भी सर्वत्र सम्भव नही है। यहाँ लोकगीत में इसी यथार्थ का मनोवैज्ञानिक उद्घाटन किया गया है।

(ख) विदागीत : विवाह के पश्चात् सीता जी विदा होने वाली है, सखियाँ उनके विरह मे चिन्तित है कि कल सूर्योदय बेला मे ही लक्ष्मी सीता चली जायँगी और जनकपुर सूना हो जायेगा।[३]

सबेरे उठि बबुई जइहै ससुरिया।
आज के दिन सोहावन ए सखिया लगनि मुहूरति धरिया। सबेरे उठि० ॥१॥
आजु के भवन भयावन लागे, छछनत बड़ी महतरिया। सबेरे उठि० ॥२॥

---

१. सुमिरि पिता प्रन मन अति क्षोभा। (मानस। बा० कां०)
२. भोजपुरी लोकगीत, पृ० ३०५ (गोड़गीत २) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय।
३. भोजपुरी लोकगीत मे करुण रस (श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिह) पृ० ३१६ द्वितीय सस्करण

आजु के दिनवा से सग छुटत बा भेटहु भरि अकवरिया । सवेरे उठि० ॥३॥
भइल उदास वास लछिमा बिनु, धनि धनि अवधनगरिया । सवरे उठि ॥४॥
बरवा विलोके लोग समे, धान धनि जनक नगरिया । सवर उठि० ॥५॥
बोलु भगवान जानकी सीता, चरण कमल बलहरिया । सबेरे उठि० ॥६॥

इस गीत के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सीता जी सखियो के मध्य कितनी प्रिय थी और लोकजीवन मे व केवल जानकी ही नही, अपितु लक्ष्मी के रूप मे भी मान्य थी ।

पुत्री की विदा-वेला मे माताओं का हृदय करुणा के उद्गारो से पूर्ण हो जाता है । विवेकशील पिताभी उस समय करुणा की अजस्रधार मे प्रवाहित हो जाता है । जब महर्षि कण्व जैसे वशी भी पुत्री शकुन्तला की विदा-बेला मे विकल हो जाते है, तो दूसरे का कहना ही क्या है ? एक लोकगीत मे जनक जी की दशा देखिये :[1]

मड़वा का वास धइले जनक जो बोलत बानी सुनु साता वाति हमार ।
तोहारी सासुइया सीता, जगत के अपरा, मानताड़े सकल ससार ॥
सेहू सासु पारी गारी हमरा के दीह जनि उन कर जवाव ।
कलसा का ओते ओते बोले ली मन्दागिनि सुनी रउरा सीता जी के बाप ॥
हमरा सीता के नाथ रउरा आनि दीहां तबै रहिहै प्रान हमार ।
मड़वा के बास धइले बोले ले जनक सुनी सीता जी के माय ।
जेकर सीता जी हई सेही लेले जाला वात ना रहिहे हमार ॥

तात्पर्य यह कि विदा के समय जनक जी सीता जी को समझाते हुए कहते है कि सीता ! तुम्हारी सास ससार ऊपर है, वे हमे गाली देंगी, पर तुम उत्तर न देना । यह सुनकर सीता की माता मन्दाकिना कहती है कि आप मेरी सीता को वापस ला दें, अन्यथा मेरे प्राण न रहेंगे । इस पर जनक जी कहते है कि सीता जिसकी है वह उसे लिये जा रहा है, मेरी वात वहाँ नही रहेगी ।

उक्त गीत के आधार पर यह प्रतीत होता है कि सीता जी की सास (सम्भवत:) (कैकेयी) कलहप्रिया के रूप मे विख्यात थी । सीता जी की माता मन्दाकिनी (सुनयना अथवा कोई विमाता) का प्रेम उन पर विशेष था । पिता जनक शील एव संकोच की मूर्ति थे और जानकी विशेष गम्भीर थी ।

सीता का विवाह सम्पन्न हो जाता है, वे पिता जनक से सुखपूर्वक अयोध्या के राज्य भोगने का आशीर्वाद माँगती है । जनक इन्हे दूध नहाने एव पूतो फलने का आशीर्वाद तो देते है, किन्तु यह भी वतला देते है कि वारह वर्ष के लिए राम का वनवास होगा और रावण तेरा अपहरण करेगा । सीता इस दुखद भविष्यवाणी से

१. भोजपुरी लोकगीत में करुणरस (श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह), पृ० ४६०

व्यथित होकर कहती है कि पिता जी ! यदि यही वचन आपने पूर्व कहे होते, तो मैं विष खाकर प्राण खो देती। जनक जी भाग्यवाद के आधार पर उन्हे समझाते हैं। अयोध्या लौटने पर राम को अप्रसन्न देखकर माता जी कारण पूछती हैं, राम कहते हैं (माता जी) सीता का विवाह सोने के सिधोरे मे रखे सिन्दूर से हो गया, मुझे तीनों लोक दहेज मे मिल गये, किन्तु मेरे भाग में वनवास लिखा है।[1]

> भइल विआह परल सेनुर हाथ जोरि सीता ठाढ़ रे।
> अइसन असीस दीह मोरे बाबा विलसों अयोध्या के राजु रे ।। ५ ।।
> दुधुवा नहाओ बेटी पुतवन फरिह कोखियन झालर लागु रे।
> बरह बरसि राम वन के सिधरिहै तोहरा के रावन हरिलेइ रे । ६ ।।
> ... .
>
> सोने से सिधोरवा माई'सीता के विअहली दायज मिलल तीन लोक रे।
> लक्ष्मी सीता मोरे घर अइली हमरा लिखल वनवास रे ।। १३ ।।

उपर्युक्त लोकगीत के आधार पर यह प्रतीत होता है कि सीता जी को वनवास का भविष्य जनक जी ने ही वतला दिया था और राम को भी यह वात वही से ज्ञात थी। इसके अतिरिक्त सीता जी की शिष्टता, निश्छल मनोवृत्ति आदि बातो का भी आभास हो जाता है।

(ग) सुखद गीत

जिस प्रकार मानव जीवन में सुख के दिनो की सख्या कम और दुःख के दिनों की संख्या अधिक होती है, इसी प्रकार इन भोजपुरी लोकगीतों मे भी सीता के सुखद गीत स्वल्प मात्रा में और दुःखद गीत अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। होली के पर्व मे सीता राम से फाग खेलती है। राम के हाथ मे पिचकारी है और सीता के हाथ में गुलाल है। रंग के स्थान पर गंगाजल का प्रयोग हो रहा है और वालुका गुलाल के स्थान पर प्रयुक्त हो रही है।[2]

> राम के हाथ कनक पिचकारी सीता के हाथे अवीर ।। ३ ।।
> गंगा के जल के रंग वनत वा वालू के उड़त अवीर ।। ४ ।।
> रसिया डालि गइल हो, हमरा आँखिन में लाल अवीर ।। ५ ।।

उक्त गीत के आधार पर सीता के चरित्र पर यह प्रकाश पड़ता है कि वे भी विनोद-प्रिय थी, किन्तु उनके विनोद में भी भारतीय संस्कृति की पवित्रता विद्यमान थी। उनकी व्यक्तिगत होली में गंगाजल तथा गंगारज का प्रयोग होता था।

---

१. भोजपुरी लोकगीत में करुणरस, पृ० ५२०, २१

२. भोजपुरी लोकगीत भाग २, पृ० १३७। गीत झूमर, २८

(घ) वनवास गीत

जिस समय राम वन प्रस्थान करने के लिए उद्यत होते है, उस समय सती साध्वी सीता राम के साथ वन जाने के लिए तत्पर है। वे राम की इच्छा या उनका अनुमोदन न प्राप्त कर सकने पर माता कौशल्या से आग्रह करती हुई कहती है :[1]

हम रघुवर सगे जाइव माई।
वन ही में जाइव, वन फूल खाइव, वन ही में विपत्ति गवाइवि माई ॥१॥
कदमूल लछुमन ले अइहैं, वन ही मे भोजन वनाइवि माई। हम रघुबर० ॥२॥
कूस डाभ लछुमन ले अइहैं, वन ही में सथरी विछाइव माई। हम रघुवर० ॥३॥
फिरि घुमि रघुवर जव अइहै थाकल, वन ही में चरन दवाइव माई।
हम रघुवर० ॥४॥

प्रस्तुत गीत में सीता जी का पतिप्रेम कितना प्रवल होकर झाँक रहा है ? उन्हें पति के संग वन में कदमूल-फल खाकर विपत्ति विताना स्वीकार है। कुशकास की शैय्या वनाकर भूमिशयन करना भी स्वीकार है। इससे उन्हें एकमात्र लाभ यह है कि जव राम इधर-उधर से थक कर आयेगे, तब उन्हें चरण सेवा का सुअवसर प्राप्त होगा। पतिसेवा एवं कष्टसहिष्णुता की कैसी मार्मिक अभिव्यक्ति है। ऐसे मधुर ग्रामगीतों पर शतशः कृत्रिम काव्य न्यौछावर किये जा सकते है।

इसी प्रकार निम्नलिखित एक अन्य गीत में सीता का आग्रह दुराग्रह की सीमा तक पहुँच जाता है, वे अवध मे रहने के लिए स्पष्ट अस्वीकार करती हैं और अधिकाधिक कष्ट सहने के लिए उद्यत हो जाती हैं।[2]

रघुवर संग जाइवि, हम ना अवध रहइव।
जौ रघुवर रथ चढ़ि जैहैं, हम भुइये चलि जाइवि। हम ना० ॥१॥
जौं रघुवर हो वन फल खइहै, हम फोकली विनि खाइव। हम ना० ॥२॥
जौ रघुवर के पात बिछइहै, हम भुइयाँ परि जाइवि। हम ना० ॥३॥

वन पथ मे सुकुमारी सीता चलती है, किन्तु तीव्र गति से राम के साथ चल नही पाती, अतः वे राम से मन्द-मन्द चलने का अनुरोध करती है। वे श्रान्त है, माता कौशल्या के छूटने का दुःख है और आभूषण भी तो छूट गये है।

धीरे चल हम हारी ए रघुवर। टेक।
एक त छुटेला मोर नाक के नथिनवा, दोसर छुटेले महतारी ए रघुवर ॥१॥

---

१. भोजपुरी लोकगीत के करुणरस (पृ० ३७७, भजन २०) यही भाव पृ० ३६४ (भजन ८)
२. वही (पृ० ५८३) मार्ग चलते समय के गीत १, (यही भाव) पृ० १७९ (राग जंतसार गीत ४)

एक ता छुटेला मोर गरे के हंसुलिया, दोसर छुटेला झीन सारी ए रघुवर ।।२।।
एक ता छुटेला नगर अयोध्या, दोसर छुटेला महतारी ए रघुवर ।।३।।
एक ता छुटेला मोर गोड़ के गोड़हरा, दोसर छुटेला झीन सारी रघुवर ।।४।।
(भोजपुरी लोकगीत, पृ० १६४, १० कजली)

उपर्युक्त गीत से यह ध्वनित होता है कि सीता जी सुकुमारी है उन्हे जननी कौशल्या, अयोध्या नगरी तथा अपने वस्त्राभूषणो के भी छूटने का दुःख है। सीता जी आभूषण-प्रिया थी, इसका संकेत मानस में भी किया गया है।[1]

वनपथ में सीता जी केवल राम की ही सेवा नही करती थी वे लक्ष्मण जी की भी समुचित सुविधा का ध्यान देती थी। जब राम लक्ष्मण को प्यास लगती थी, तब सीता जी अपने अमृत तुल्य मधुर वचनों से उन्हें जल पिलाती थी।[2] (यथा)

राम लछमनुवा बनवा के चलले,
सीता चलली संग लोर ।
राम लछमनुवा को लगली पियसिया,
सीता देलीं अमरित घोल ।।

(ङ) हरणगीत

भोजपुरी में इस प्रसंग के भी मार्मिक गीत प्राप्त हैं। रावण यति का वेष बना कर सीता का अपहरण करता है। सीता ने मर्म वचन कह कर लक्ष्मण को स्वय कुटी से बाहर भेजा था, अस्तु उनका दोप क्या? असहाय सीता विलख-विलख कर रोती कहती है।[3]

विलखि विलखि के रोवेली माई जानकी मोके रवना हर ले जाई।
जटवा बढ़ाइ के भभूति रमाइ के तिलक विराजे ललार रे माई ।।१।।
हथवा कवडल गरवा मे माला हरि के भजन भल गाई।
जोगिया के रूप धइ रवना पिसचवा हमके हर ले लेइ जाई ।।२।।
हे लछुमन मोरे देवरू दुलरुवा तोहरे न दोस कछु आई।
मरम वचन हम तोहरा के कहिली बहियाँ के वल.चलिजाई ।।३।।
जाहु जाहु वदरा कहिह सनेसवा राम लखन दूनौ भाई।
नाथ सग्न गहि विपति गवाई ले एहि अवसर जाई ।।४।।

---

१. एक वार चुनि कुसुम सुहाये। निजकर भूपण राम वनाये।
सीतहि पहिरायेउ प्रभु सादर। वैठे फटिकसिला परमादर ।।
२. भोजपुरी लोकगीत, पृ० २६० गीत विरहा, संख्या ५४।
३. भोजपुरी लोकगीत में करुणरस, पृ० ३३७ गीत राग झूमर संख्या ५२।

विचार करने पर ज्ञात होता है कि रामायण की सीता की भाँति इस लोकगीत में भी सीता विलाप करती है, अन्तर यह है कि मानस में सीता बादलों से राम लक्ष्मण को सन्देश नहीं भिजवाती, किन्तु इस लोकगीत में तो वे विक्षिप्तावस्था तक पहुँच कर बादलों के द्वारा संदेश भेज कर अपनी विपत्ति सुनाती है।

एक अन्य लोकगीत में सीता प्रकारान्तर से रावण द्वारा अपने अपहरण पर रुदन करती हुई कहती है।[1]

> हे रघुनन्दन असुर निकन्दन कब लेबो मोर खबरिया राम।
> रवना हरले हमें लिहले जाला नगरिया लंका राम।
> रथवा चढ़ाई अकास उड़वले सूझत नाही डगरिया राम ॥ १ ॥
> जनकपुर नगर नइहर छूटेले अवध नगरिया राम।
> ससुरा के सुख कुछऊ न जनलौ हो गइलों बन के अहेरिया राम ॥ २ ॥
> जनकराय अस बपवा हमरो पुरुष राम राम धनुधरिया राम।
> हाय रघुनन्दन असुर निकन्दन कब लेव मोर खबरिया राम ॥ ३ ॥

इस गीत के अनुसार सीता जी जनकपुर तथा अवधपुर दोनों के छूटने से विशेष व्यथित हैं। उन्हें राम के धनुर्धर होने एवं पिता जनक के महान् प्रतापी होने का गर्व था और यह स्वाभाविक भी है। अन्ततः वे पिता की भी आशा छोड़ कर असुर-संहारक राम का ही आश्रय लेती है।

(च) अयोध्या प्रत्यागमन गीत

भोजपुरी के बारहमासा विशेष प्रसिद्ध है। इनके अन्तर्गत भी रामकथा का वर्णन समास शैली में प्रस्तुत किया गया है :[2] (यथा)

> फागुन में रंग होली मचैला, उड़ेला गुलाल अबीर।
> रावन मारि के सीता उबारे, पार उतरि गइले रामजी बीर ॥ १ ॥

इस गीत के अनुसार राम ने फागुन मास में रावणवध पश्चात् सीता सहित अयोध्या प्रस्थान किया था, किन्तु एक अन्य गीत में वे अगहन (मार्गशीर्ष) मे अयोध्या प्रस्थान करते चित्रित किये गए है।[3]

> कातिक जामवन्त सभ आई, सभ देवतन के सीस नवाई।
> चलली जानकी माथ नवाई, देवता साथ चलले जानकी माई ॥१०॥
> अगहन आगर जानकी अइली, फौदन बहुत साथ मे लिहली।
> जीतले लंका नगारा बजाई, तबही त राम अवधपुर जाई ॥११॥

---

१. भोजपुरी लोकगीत में करुण रस, पृ० ५२५, पूरबी गीत १

२. भोजपुरी लोकगीत, पृ० १८७

३. भोजपुरी लोकगीत, पृ० १७६

इस लोकगीत के अनुसार लंका से प्रस्थान करते समय सीता जी सबको प्रणाम करती हैं, इससे उनकी शिष्टता पर प्रकाश पड़ता है। सीता के साथ देवगणों के भी चलने का उल्लेख होने से उनके शक्ति स्वरूप पर भी प्रकाश पड़ता है।

(छ) त्याग गीत

सीता जी के जीवन का यह अन्तिम चरण अत्यन्त रोमांचक तथा करुण रस से ओतप्रोत है। लोकगीतों में यह प्रसंग अत्यन्त विस्तृत एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसमें लोक कवियों ने प्रबन्धात्मकता की ओर भी ध्यान दिया है।

सीतात्याग के विभिन्न कारण साहित्यक ग्रन्थों में विलिखित हैं, उनमें एक कारण सीता द्वारा रावण के चित्र का निर्माण करना भी माना जाता है। एक लोकगीत में इसी का उल्लेख इस प्रकार मिलता है :[1]

ननदी भउजिया दुनो पानी के गइली अरे ! दूनो पानी के गइली हो।
भउजी ! जवन रावनवा तोहे हरलेसि उरेहि देखावहु हो ॥ १ ॥
जौ मै रावना उरेहवि उरेहि देखाइब हो।
सुनि पइहैं बिरन तोहार त देसवा निकसिहइं हो ॥ २ ॥

यद्यपि इस लोकगीत में राम की भगिनी शान्ता का स्पष्ट नाम नहीं लिखा, केवल इतना ही लिखा है कि सीता ने अपनी ननद के दुराग्रह पर रावण का चित्र बनाना स्वीकार किया और यह शंका पूर्व ही व्यक्त कर दी थी कि यदि राम ऐसा सुन पायेंगे तो मुझे देश से निकाल देंगे, किन्तु शान्ता ही ननद के रूप में प्रख्यात थी, अतः यह कलंक उन्हीं पर मढ़ा जाता है। शान्ता चित्रनिर्माण की बात राम से बतला देती हैं और राम क्रुद्ध होकर लक्ष्मण से सीता को वन में निर्वासित कर आने का आदेश देते हैं।

आओ हो लक्षमनु भइया विपतिया के नायक हो।
सीता जी के देसवा निकासहु रावना उरेहइं हो ॥१२॥

अन्ततः न चाहते हुए भी लक्ष्मण वनान्तर पार करते हुये वृन्दावन पहुँचते हैं, वहाँ सीता जी को प्यास लगती है। उन्हें लक्ष्मण चन्दन के वृक्ष के नीचे बैठा कर जल लेने जाते हैं, इतने मे उन्हें नींद आ जाती है। लक्ष्मण लौट कर कदम्ब के पत्ते का दोना बना कर उसमें जल भर कर प्रसुप्तावस्था मे ही सीता को छोड़ कर चले आते है। जगने पर सीता विलाप करती हुई कहती है—

कहाँ गइले लछमनु देवरु त हमे ना बतवलेनि हो ॥१८॥
हिय भरि देखितौं नजर भरि रोइतौं हो।
सामी के दीहितों सदेसवा काहे अस कठोर भइली हो ॥१९॥

उक्त गीत में सीता की करुणा पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। वे कहती है कि मेरे देवर

---

१. भोजपुरी लोकगीतों में करुणरस, पृ० ११६, ११७

लक्ष्मण कहाँ गये ? उन्होंने मुझे जाते समय बतलाया क्यों नही ? मैं उन्हें हृदय भर कर देखती, नजर भर कर रोती और स्वामी को सन्देशा भेजती कि वे क्यो इतने कठोर हो गये है ।

गर्भवती सीता चिन्तित हैं कि आज ही मेरे पुत्र का जन्म होगा, किन्तु कोई सहायक नही । इस विपत्ति की रात में मेरे साथ कौन जागेगा और कौन मेरे बच्चे का नाल कटायेगा ।

अब के मोरे आगे पीछे बइठी त के लट खाली रे हो ।
के मोरी जागइ रयनिया त नरवा कटावइ के हो ।।२०।।

इस चिन्तित अवस्था में तपस्विनी बालाये निकल कर सीता को आश्वस्त करती है । ऊषा काल में सीता के बच्चों ने जन्म लिया, सीता लकड़ी के प्रकाश में पुत्रों का मुख देखती है और पुत्रों को सम्बोधित करती हुई कहती है कि पुत्रो ! विपत्ति में तुम लोगो ने जन्म लिया । यदि तुम अयोध्या में उत्पन्न होते, तो आज महाराज दशरथ वस्त्र लुटाते और कौशल्या आभूषण न्यौछावर करती :

तू पूता ! भइल विपतिया में बहुते संसतिया मे हो ।।२३।।
कुसवे ओढ़न पूत, कुसवै के डासन, वन फल भोजन हो ।
जो पूता होतेउ अजोधिया वही पुर पाटन हो ।।२४।।
राजा दशरथ पटना लुटइते कौसिला रानी आभरन हो ।

नारी जीवन की वेदना इन पंक्तियों से फूट-फूट पड़ती है निःस्वार्थ प्रेम की इतनी गहरी टीस तो साहित्य के बड़े-बड़े ग्रन्थों में भी देखने को नही मिल सकती ।

अन्ततः वन का नाई बुलाया जाता है और अयोध्या में रोचना भेजी जाती है । सीता जी रोचना देने के लिए बारी से कहती हैं : पहले राजा दशरथ को देना, फिर कौशल्या रानी को देना और तीसरे देवर लक्ष्मण को, परन्तु मेरे प्रियतम राम को न बताना ।

पहिले दिह्यो राजा दशरथ, दूसरे कौसिला रानी हो ।
तीसरे रोचन देवरा लछुमन प पिया न जनाइहउ हो ।।२६।।

प्रस्तुत पंक्तियों में सीता जी प्रथम तो सम्माननीय ससुर एव सास को रोचना देने के लिए कह कर आदर्श का पालन करती हैं, किन्तु अपने प्रियतम राम को पुत्रोत्पत्ति का वृत्तान्त भी बतलाने के लिए मना करती है । इसमें उनके हृदय का आक्रोश व्यक्त होता है । पति के प्रति उनका जो अनन्य प्रेम था, वही तो आक्रोश बन गया है । राम का यह व्यवहार उन्हें वस्तुतः बहुत खला होगा । वे एक बार भी तो उनसे यह नहीं कह पाईं कि आप इतने कठोर क्यों हो गये ।

बारी अयोध्या जाकर सीता की पुत्रोत्पत्ति का मंगलात्मक समाचार देता है ।

रोचना से जगमगाते लक्ष्मण के मस्तक को देख कर राम पूछते हैं कि किसके घर पुत्र उत्पन्न हुआ है ? लक्ष्मण कहते हैं कि भाभी सीता ने वृन्दावन में नन्दलाल को जन्म दिया है । यह सुन कर राम के नेत्रों से निरन्तर जलधारा प्रवाहित होने लगी, पीताम्बर भीगने लगा और उन्होंने नाई को बुलाया :

भइया ! महर-महर करे माथ रोचन कहं पायउ हो ।
भइया ! केकरा भइले नन्दलाल त जिअरा जुड़ाइल हो ॥२९॥
भउजी त हमरी सीता रानी बसेली बिन्दावन हो ।
उन्हहीं के भइले नन्दलाल रोचन सिरधारी ले हो ॥३०॥
हाथ केर दतुअन हाथे रहे मुख केरा मुखे रहे हो ।
ढुरे लागी मोतिअन आंसु पितम्मर भीजे लागेला हो ॥३१॥

नाई सीता की विपत्ति बतलाता है कि कुश का बिछौना कुश की ओढ़नी और वन्यफल ही भोजन है सीता ने सन्तान का मुख देखने के लिए लकड़ी जला कर प्रकाश किया था—

राजा कुस रे ओढ़न कुरा डासन वन फल भोजन हो ।
साहब ! लकड़ी के कइली अंजोर सन्तति मुख देखली हो ॥३३॥

यह सुनकर राम द्रवित हो जाते हैं और वे लक्ष्मण को सीता लौटा लाने के लिए वन भेजते हैं किन्तु सीता लक्ष्मण से कहती हैं : लक्ष्मण ! तुम अपने घर लौट जाओ । मैं अब अयोध्या नही जाऊँगी । जो ये नन्दलाल जीते रहेंगे, तो राम ही के कहलायेगे :

चलिजा लखन ! घरे अपना त हम नाही आइब हो ।
लखन ! जो रे ई जीहें नन्दलाल त उनही के कहइहंइ हो ॥३६॥

सीता के इस कथन में भी आन्तरिक पीड़ा, राम के प्रति स्वल्प उद्वेजना एवं आक्रोश व्यक्त होता है, फिर भी वे पत्नी ही नही एक आदर्श सती है, अतः वे पुत्रों के आधार पर राम के नाम का भावी प्रभाव सूचित करती हैं । वस्तुतः उनका जीवन अभिशाप की आँच मे सतप्त होकर गल रहा था, उन्हे जीवन के प्रति यदि कुछ ममत्व था, तो अपने पुत्रों के लिए । पति के प्रति आक्रोश होने पर भी एक गम्भीर प्रेमधारा अब भी प्रवहमान थी, किन्तु आक्रोशजन्य वेदना उसे अन्तःसलिला सरस्वती की भाँति छिपाये हुये थी ।[1]

एक अन्य लोकगीत के अनुसार अश्वमेध की पूर्ति हेतु श्री राम कुलगुरु वशिष्ठ जी को सीता के पास आश्रम मे भेजते है । सीता जी वशिष्ठ जी एव उनके

१. नोट : प्रस्तुत त्यागगीत शीर्षक की ३६ लड़ियाँ है, ये भोजपुरी लोकगीत मे करुणरस नामक पुस्तक से उद्धृत की गई है । पृ० ११६, ११८ (राग सोहर गीत नं० ८)

अनुगामी लक्ष्मण जी का यथोचित स्वागत करती हैं और वशिष्ठ जी उनसे अयोध्या लौट चलने का प्रस्ताव करते हैं। सीता जी उत्तर देती हुई कहती है :

सबकर हाल गुरु ! जानी ला अजान अस पूछीला हो।
गुरु ! अस कै राम मोहि डहले कि कैसे चित्त मिलिहइ हो ।।७।।
अगिया में राम मोहि डललनि, लाइ भूंजि कढ़लनि हो।
गुरु ! गरुए गरभ से निकसलनि त कइसे चित मिलिहइ हो ।।८।।
राउर कहल गुरु ! करबों परग दुई चलबो हो।
गुरु ! अब न अजोधिया जाइवि विधिना मिलावहिं हो ।।९।।

कैसी विडम्बना है ? सीता का अन्तःकरण राम के प्रति कितना आक्रोशपूर्ण है ? वे गुरुदेव की आज्ञा से अयोध्या की ओर दो पैर तो रखती है, किन्तु लौट कर अयोध्या चलने को तैयार नहीं होती। वे ब्रह्मा से भी निवेदन करती हैं कि अब (राम से) मिलन न हो तो अच्छा है।

जब गुरुदेव भी सीता जी को लौटाने में असमर्थ होते हैं, तब राम स्वय सीता जी को मनाने जाते हैं। आश्रम के समीप ही लव-कुश गुल्ली डंडा खेलते हुए मिल जाते हैं। उनसे उनका धुंधला-सा परिचय पाते ही राम के नेत्रों में निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। आगे बढ़कर देखते हैं कि एक छोटा तथा घना कदम्ब का वृक्ष है, उसी के नीचे सीता जी अपने केश सुखवा रही थीं। जैसे ही नेत्रों से नेत्र मिलते हैं, राम उनसे क्रोध त्याग कर अयोध्या चलने के लिए अनुनय विनय करते हैं।

रानी छोड़ देहु जिअरा विरोग, अजोधिया बसावहु हो।
सीता ! तोरे बिनु जग अँधियार त जीवन अकारथ हो ।।१७।।

सीता जी की आँखों में वियोग भर जाता है, वे राम को निर्निमेष दृष्टि से देखने लगती हैं। देखते ही देखते पृथ्वी विदीर्ण होती है और मुख से बिना कुछ बोले ही सीता उसमें समा जाती हैं यथा :

सीता अँखिया में भरली विरोग त एकटक देखली हो।
सीता धरती में गइली समाइ कुछू नाही बोलली हो ।।१८।।

इस लोकगीत में राम के प्रति सीता जी का अत्यन्त गम्भीर स्नेह व्यक्त किया गया है। विरहणी सीता जहाँ राम को देखना भी नहीं चाहती थी, वहाँ सम्मुख आते ही हृदय पराजित हो जाता है, कण्ठ रुँध जाता है और करुणा की इतनी पराकाष्ठा हो जाती है कि पृथ्वी भी फट जाती है और सीता सदैव के लिए अपनी माँ की गोद में समा जाती हैं। इस गीत में राम का मर्यादा पुरुषोत्तम का रूप सीता की करुणा से धुल गया है प्रेम की चोट खाकर कुचल गया है और प्रतीत होता है कि राम पश्चात्ताप और निराशा की नदी में निमग्न होकर खाली हाथ अयोध्या लौट पड़े।[1]

---

१. भोजपुरी लोकगीत में करुणरस (राग सोहर गीत सं० ९), पृ० १२२, १२४

एक लोकगीत के अनुसार जब सीता वन के लिए प्रस्थान करती है, उस समय उन्हें अपशकुन हुए। उन्होंने लक्ष्मण से इन दुर्निमित्तों की ओर संकेत किया। लक्ष्मण स्पष्ट रूप में बदला देते हैं कि श्री राम ने आपको वन में त्याग आने का आदेश दिया है। सीता द्वारा कारण पूछने पर लक्ष्मण बतलाते हैं कि धोबी के अपवाद के कारण राम ने ऐसा किया है। सीता उत्तर देती हुई लक्ष्मण से कहती हैं :

अजस मोटरिया देवरु ! हमरे लिलरवा,
प्रभु के सुजसवा सब होखे हो राम ॥९॥
जो नाही रहतै देवरु ! हमरी गरभिया,
एहि छन देई दिहितीं जिउआ हो राम ॥१०॥

सीता का चरित्र कितना महनीय है। यद्यपि उन्हें यह वनवास प्राणान्तक कष्ट दे रहा है किन्तु वाह रे जननी ! पुत्रों का मोह मरने भी नहीं देता। उसी राम के वंश को गति देने के लिए सीता जीवित रहीं, जिस राम ने उन्हें अनेक कष्ट दिये और अन्ततः त्याग भी दिया वह भी ऐसी अवस्था में जब कि सीता जी आसन्नप्रसवा थीं।

वन में अकेली सीता को छोड़ कर लक्ष्मण अयोध्या लौट आते हैं और इधर सीता के करुणक्रन्दन से वन के पक्षी भी उनसे सहानुभूति प्रकट करते हैं। वाल्मीकि जी आकर सीता को आश्वासन देते हैं।[1]

जगत जननि माता धरु धीरजवा हो।
तोरे लागि कुटिया छवइबो हो राम ॥१६॥
चलु चलु सीता देई हमरो बहिनिया हो।
सब भाँति सुखवा पहुँचइबो हो राम ॥१७॥

अपरिचित वाल्मीकि जी सीता की कुटी छवाने के लिए आश्वासन देते हैं। वे उन्हें बहिन कह कर सम्बोधन देते हैं। यहाँ यह बात विचारणीय प्रतीत होती है कि वाल्मीकि जी तो अवस्था में जनक जी से न्यून न रहे होंगे, अतः पुत्री कहना अधिक संगत होता। संभवतः महात्मा लोग स्त्रियों को माई या बहिन ही कहते हैं, यही कारण है कि वाल्मीकि जी सीता को अपने से छोटी समझ कर माई कहना अनुचित मानते हैं, अतः बहिन कहना संगत है।

निष्कर्ष यह कि भोजपुरी गीतों के अनुसार सीता जगज्जननी भी है और एक राजकुलवधू भी हैं। उनके जीवन मे अभिशाप ने इतने अत्याचार किये कि समस्त वरदान व्यर्थ सिद्ध हुये। वे बाल्यावस्था से ही राम को वर के रूप में चाहती थीं एवं गौरी की आराधना से उनकी कामना पूर्ण हुई थी। उनका पातिव्रत्य आदर्श एवं अनुकरणीय रहा। वनपथ में राम की आदर्शसेविका के रूप में उन्होंने अपने समस्त

१. भोजपुरी लोकगीत में करुणरस, पृ० २०१, २०२ (राग जतसार गीत), स० ४

सुखों की परवाह नहीं की। यति वेषधारी रावण द्वारा छलपूर्वक अपहरण होने पर भी उन्होंने (सीता) सतीत्व की रक्षा की। अग्निपरीक्षा देकर अपनी शुद्धि का प्रमाण दिया और यहाँ तक कि गर्भवती होने पर एक धोबी के लोकापवाद के कारण अथवा शान्ता के कहने पर रावण का चित्र बनाने के कारण उन्हें निर्जन वन में छोड़ दिया गया। किसी प्रकार वाल्मीकि के आश्रम में रह कर उन्होंने अपने पुत्रों का लालन-पालन किया। अन्त में राम के द्वारा मनाने पर उनका अन्तःकरण करुणा से विदीर्ण हो गया और पृथ्वी माता ने अपनी पुत्री को सदैव के लिए अपनी क्रोड में विलीन कर लिया। इसी प्रकार भोजपुरी लोकगीतों में सीता का करुणरूप अत्यन्त सरस एवं उदात्त है। वे भारत की एक आदर्श नारी हैं।

मैथली लोकगीतों में सीताविषयक मान्यतायें

मैथिली लोकगीतों में भोजपुरी लोकगीतों की भाँति स्वारस्य विद्यमान है। डॉ० अमरनाथ झा ने लोकगीतों की प्रशंसा में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं :

इन सरल पदों में देश की यथार्थ दशा वर्णित है, यहाँ की संस्कृति इनमें सुरक्षित है। सभ्यता तो वाह्य आडम्बर है, कल तुर्कों की थी आज अंग्रेजों की है। भारतीयता हमारे गाँव के रहने वालों में है, जो शहरों के क्षणभंगुर आभूषणों से अपने स्वाभाविक रूप को छिपा नहीं चुके हैं, जिनमें युगों की वेदना सहन करने की शक्ति है, जो सुख-दुख में, हर्ष विषाद में जगत्स्रष्टा को भूलते नहीं हैं, जो वर्षा के आगमन से प्रसन्न होते हैं, जो खेतों में जाड़े गर्मी में, प्रकृति देवी के निकट, अपना समय बिताते हैं। इन गानों में हम मनुष्य जीवन के प्रत्येक दृश्य को देखते हैं, कन्या के ससुराल चली जाने पर माता के करुण स्वर सुनते है, पुत्र के जन्म पर माता-पिता के आनन्द की ध्वनि पाते हैं, खेतों के बह जाने पर हताश किसान के क्रन्दन, ब्याह के अवसर पर बधाई के गान, गृहिणी के विरह की व्यथा, सन्तान की असामयिक मृत्यु पर मूकवेदना अर्थात् मानसिक जीवन की नैसर्गिक कविता का रसास्वादन करते हैं।[१]

मैथिली लोकगीतों के विवेचन के पूर्व मैथिली भाषा अथवा मिथिला प्रान्त की सीमा का विवेचन भी असंगत न होगा। एक मैथिली कवि ने यह सीमा इस प्रकार प्रस्तुत की है :[२]

गंगा बहथि जनिक दक्षिण दिशि पूर्व कौशिकी धारा।
पश्चिम बहथि गंडकी, उत्तर हिमवत वल विस्तारा॥
कमला त्रियुगा अमृता धेमुरा वागवती कृत सारा।
मध्य बहथि लक्ष्मण प्रभृति से मिथिला विद्यागारा॥

---

१. मैथिली लोकगीत (श्री राम इकबाल सिंह) राकेश (भूमिका, पृ० ३) द्वि० सं० सं० २०१२।
२. वही, भूमिका पृ० ३

वस्तुतः दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, चम्पारन, उत्तर भागलपुर तथा उत्तर मुंगेर जनपद मिथिला के अन्तर्गत माने जाते हैं। इस प्रकार मिथिला का क्षेत्रफल २२.५०० वर्गमील माना जाता है। मैथिली साहित्य का इतिहास प्राचीन है, वह आठवीं शताब्दी से उपलब्ध हो रहा है। मैथिली में सीताविषयक लोकगीत विशेष सुन्दर हैं: यहाँ उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

मैथिली लोकगीतों में सीता विषयक गीतों को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं:

(१) स्वयम्वर गीत, (२) विवाह गीत, (३) त्यागगीत, (४) पुत्रोत्पत्ति गीत।

स्वयम्वर गीत

इन गीतों के अनुसार सीता स्वयम्वर में देश-देश के भूपति बुलाये गये थे और धनुर्भंग करना ही वर की योग्यता घोषित कर दी गई थी। श्री राम तथा लक्ष्मण गुरुवर विश्वामित्र के साथ ताड़का का संहार करते, पथ में अहल्या का उद्धार करते हुए मिथिला पहुँचते हैं:[१]

राजा जनक जी यज्ञ कियो सखि, धनुषा देल धराय।
जे भूप इहौ धनुषा तोरय सिया बिआहव ताहि।
भला सिर मटुकी शोभय लाल ध्वजा॥
सिया स्वयम्वर पाती फिरि गेल, सब जग राज मझार।
राम लछन यग पूरन कारन, चले मुनी के साथ।
भला कठ झिमझिम झिमझिम बाज रहे॥

गुरु की आज्ञा लेकर राम लक्ष्मण जनक की पुष्पवाटिका में जाते हैं, जहाँ सीता जी से भेंट होती है और इसी प्रकार रामायण में वर्णित कथावस्तु के आधार पर ही विवाह हो जाता है। इस लोकगीत में कोई नवीनता नहीं है।

एक अन्य लोकगीत के अनुसार एक दिन सीता जी धनुष के नीचे लेपन कर देती हैं, जनक को बड़ा आश्चर्य होता है और वे कहते हैं कि सीता कुमारी रहेगी, इसका जन्म कैसे बीतेगा।[२]

भल कयलौं आहे सीता भल कयलौं, धनुष तर लीपल हे।
एहि विधि रहब कुमार, जनम कोना बीतत है॥

सीता जनक को आश्वासन देती हैं कि मैं वर प्राप्ति के लिए भवानी पार्वती की पूजा करूँगी और वे ऐसा करती भी हैं।[३]

---

१. मैथिली लोकगीत, पृ० १०२ सम्मरि, सीता स्वयम्वर गीत १।
२. वही, पृ० १२४ (सम्मरि ५)
३. वही, पृ० १२४ सम्मरि ५

हम नहिं जानल बावा कि पूजब भवानिय है।
घुरमि घुरमि सीता पूजथि कि पूजथि भवानिय हे ॥

प्रायः ऐसा ही वर्णन भोजपुरी लोकगीतों मे भी किया गया है। इसके आधार पर सीता के चरित्र पर यह प्रकाश पड़ता है कि सीता जी स्पष्टवादिनी थी और विवाह के प्रति स्वय जागरूक थी। पार्वती देवी पर उनकी आस्था थी, वे कष्टसहिष्णु, आस्तिकता की मूर्ति एव साधनापथ पर दृढ़व्रतशीला नारी की ही भाँति दृढ़ थी। भोजपुरी मे स्पष्टतः उन्होंने राम को वर रूप में प्राप्त करने का निश्चय स्वयं जनक जी से बतला दिया था, किन्तु मैथिली मे ऐसा न करके उनकी शालीनता एवं सकोच की मर्यादा सुरक्षित रखी गई। भोजपुरी तथा मैथिली दोनों के लोकगीतों मे सीता जी जनक जी को बाबा सम्बोधन देती हैं। इसका रहस्य क्या हो सकता है? वस्तुतः वे तो पुत्री रूप मे ही थी और जनक उनके बाबा तो थे नहीं। हमारे विचार से जनक जी की अवस्था अधिक थी, अतः ग्रामगीतो मे उन्हें बाबा की पदवी प्रदान की गयी है।

उपर्युक्त लोकगीत में ही अगली पंक्तियों मे यह एक उल्लेखनीय घटना घटित होती हुई वर्णित है। सीता जी तपस्या में निरत थी राम तथा लक्ष्मण घोड़ों पर सवार होकर सीता के पास पहुँचते है और लक्ष्मण उनसे भाउज (भ्रातृजाया) कहकर पूछते हैं कि तुम्हारे ऊपर कौन ऐसा सकट आया है, जिससे तुम भवानी की पूजा करती हो।[1] यथा :

हम तोरा पुछु सीता तुअ मोरा भाउज हे।
कओन संकट तोरा घेरल पुजिए भवानिय हे ॥

सीता जी लक्ष्मण के इस सम्बोधन से रुष्ट नही होती, वे उत्तर देती है कि हे बाबू लछुमन कहने में तो लज्जा आती है। धनुष का सकट मुझे घेरे है, अतः मै भवानी की पूजा करती हूँ।[2] यथा :

कहइत आहे बाबू लछुमन कहइत लजाऊ हे।
धनुष संकट हमें घेरल पुजिए भवानिय हे ॥

सीता के मुख से उक्त वचन सुन कर लक्ष्मण कहते है कि हे सीता जी! आप आरती, धूप-दीप तथा सखी सहेलियो को लौटा दें। आप अयोध्या की रानी बनें और आनन्द करे। तात्पर्य यह कि इस कार्य के लिए पूजा की आवश्यकता नहीं, क्योंकि राम तो निश्चित रूप से धनुष तोड़ देंगे।[3]

फेरि दिइ आहे सीता आरति, फेरि दिअ धुप दीप हे।
फेरि दिअ सखिया सलेहर जनकपुर नन्दिनी हे।
होयब अजोध्याक रानी कि तुरही बजाएब हे ॥

---

१. २. ३. मैथिली लोकगीत, पृ० १२५ (सीता स्वयंम्वर, सम्मरि ५)

यहीं से लोकगीत समाप्त हो जाता है। पता नहीं सीता ने अन्तिम उत्तर किस रूप में दिया। प्रतीत होता है कि उक्त लोकगीत पूर्ण नहीं है। संग्रहकर्ता को इतना ही प्राप्त हो सका है। उक्त गीत सम्वाद द्वारा सीता के जीवन पर पर्याप्त नवीन सामग्री प्राप्त होती है, जिसके निष्कर्ष इस प्रकार हैं :

(क) विवाह के पूर्व ही सीता जी राम के प्रति अनुरक्त थीं, अन्यथा लक्ष्मण उन्हें भाउज कहने का साहस न करते।

(ख) लक्ष्मण को बाबू कह कर सम्बोधन करने में गीतकार ने आधुनिकता का समावेश कर दिया है। सीता जी कभी ऐसा सम्बोधन कर सकती थीं? सम्भवतः उनके समय शालीनता का बन्धन बहुत अधिक था।

विवाह गीत

मैथिली में विवाहगीतों मे नवीन सामग्री प्राप्त होती है, प्रायः जिसका उल्लेख साहित्य में नही मिलता। विवाह के समय राम कहते हैं कि हमारे यहाँ अयोध्या में सुवर्णमण्डप, स्वर्णमुकुट तथा स्वर्ण कलश हैं, अतः उन्हें मँगवा लिया जाये, सीता ओट से निवेदन करती हुई कहती है—हमारे विवाह में कुश-बाँस तथा पत्तियों का मण्डप होगा, पुष्पमुकुट होगा और मृत्तिका का कलश होगा। इस आधार पर ज्ञात होता है कि इस लोकगीत की सीता सादगी की ओर विशेष रुचि रखती थीं, उन्हे वैभव स्वीकार नही था। अथवा सीता जी को प्राकृतिक साधनों से विशेष प्रेम था। बाह्य आडम्बर से उन्हे विराग था। कारण स्पष्ट है विदेह की तनया होकर अगर उन्होने ऐसा कहा, तो सर्वथा पैतृक स्वभाव के अनुकूल ही कहा :[1]

मरवा के ओते आते सीता मिनति करथि,
सो आमीजी में अरज हमार हे।
सोने का मरउवा से बिआह न होइल,
इकरी के माड़व छवाव हे ॥

+ + +

मउरी क ओते-ओते सीता मिनति करथि
सो आमी जी स अरज हमार हे।
सोने क मउरिया स बिआह न होयल
फुलवा के मउर मँगाव हे ॥

× × ×

कलसा के ओते-ओते सीता मिनति करथि,
असो आमीजी स अरज हमार हे।

---

१. मैथिली लोकगीत, पृ० १३१

सोने क कलसा से विआह न होयल,
माटी के कलस मंगाउ हे ।।

उपर्युक्त गीत के आधार पर सीता विशेष मुखर प्रतीत होती है। विवाह के समय कन्यायें तो वुलाने पर भी नही वोलतीं, सीता जैसी कन्या के लिए तो कहना ही क्या है। सम्भवत: इस लोकगीत में वर्तमान कन्याओं का प्रतिविम्व है, जो सुशिक्षित होती हुई सादगी पसन्द होती हैं।

त्याग गीत

इन गीतों का सम्वन्ध सीता परित्याग से है, जिस समय वे राम द्वारा परित्यक्त होकर वाल्मीकि जी के आश्रम में रहती थी, इस प्रसग को लोकगीतों मे अतिशय प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। सीता की अग्निपरीक्षा होने पर भी लोक को सन्देह वना ही रहा। इसके निवारणार्थ राम ने सीता जी से कहा कि नैहर से तुम्हारा निमन्त्रण आया है, तुम लक्ष्मण के साथ जाओ। सीता कहती हैं कि नैहर में न मेरी माँ है, न मेरा सहोदर भाई और न मेरे पिता ऋषि जनक हैं, मैं वहाँ किसके वल पर जाऊँ ?[1]

दुअरे से अएले रघुलाल कि धनि के वोलाओल हे।
धनि अएलो नइहरवा के ने ओत कि हमें तुंहु जाएव हे।
नय मोरा नइहर में माए भइया सहोदर हे।
प्रभु जी नए रे जनक रिसि वाप ककरा वल जाउअ हे ।।

सीता के इस कथन में कितनी गम्भीर निराशा है ? करुणा साकार होकर वोलती प्रतीत होती है। वे पति राम के इस कथन से भी सम्भवत: अधिक सत्यता नही समझती, क्योंकि उनके कथनानुसार उन्हें पूछने वाला जनकपुर में था ही कौन ? माता-पिता तथा सहोदर भ्राता इनमें से कोई भी तो शेष नही था। सीता के इतने निवेदन करने पर भी राम छलपूर्वक लक्ष्मण के साथ उन्हें वन प्रेपित कर देते हैं। मार्ग में प्रसव पीड़ा से व्यथित सीता को त्याग कर लक्ष्मण लौट आते हैं। अकेली सीता विलाप करती हुई कहती हैं :[2]

ललना कहि मोरा आगु पाछु होयल केहि रे नार छीलत रे।
ललना केहि लेत सोने के हँसुलिया हृदय जुरायत रे ।।

उनसे इस विलोप को सुन कर वनदेवियाँ आती हैं और अपने अचल से सीता के मुख को पोंछ कर कहती हैं—सीता ! हम तुम्हारी देखभाल करेगी, हम तुम्हारे पुत्र का नाल काटेंगी और हमी तुमसे पुत्रजन्म की वधाई में सोने की हंसुलिया लेगी, इस प्रकार तुम्हारी लालसा पूर्ण होगी।[3]

१-२-३. मैथिली लोकगीत, पृ० ५३

वन से निकललि वनसपतो अँचरे लोर पोंछथि रे।
ललना हम सीता आगु पाछु होयव हमें नार छीलव रे ॥
ललना हमें लेव सोने के हँसुलिया हृदय जुरायव रे।

उपर्युक्त गीत में सीता को वनदेवियाँ आश्वासन देती हैं, किन्तु भोजपुरी लोकगीतों में ऋषिपत्नियों का उल्लेख है। गीत की आत्मा से यह ध्वनि निकलती है कि सीता जी में मातृत्व कितना गम्भीर था। वे पुत्र के नाल काटे जाने के लिए चिन्तित थी, इतना ही नहीं पुत्रोत्सव में पुरस्कार देने की भी प्रवल कामना उनके मन में वर्तमान थी।

राम सीता का परित्याग तो कर देते हैं, किन्तु लक्ष्मण के लौटने पर वे आतुर होकर पूछते हैं—लक्ष्मण ! सीता के समाचार वतलाओ। वह निर्वासि होकर वन मे चली गई ? मेरा हृदय विरहाग्नि से जल रहा है। मैंने समस्त रात्रि वैठे ही वैठे विता दी है, नेत्रों से निद्रा दूर हो गई है। तुम यहाँ हो, तुम्हारी भाभी वन में है। हे लक्ष्मण ! उसका हृदय कितना कठोर हो गया है ?[1]

कहु ने सिया जी क वतिया हे लछुमन,
भवन छोड़ अली वनहि पठअली ।
विरह दगध भैल छतियाँ
सगरि राति हल वइसि गम अली
नीद गैल हुनि अँखिया
भाय छथि भवन भाउज छथि वन वन
केहन कठिन भैल छतिया हे लछुमन।

राम के पश्चात्ताप के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि राम उलटा सीता को कठोर कह रहे हैं ? निर्वासित किया राम ने, इसमें सीता का क्या अपराध ? क्या राम को यह कहने का अधिकार शेप रहा कि सीता जी कठोर है ? सम्भवत: लोकगीतकार ने राम की कठोरता का आवरण सीता पर लादने की असफल चेप्टा की है। वस्तुत: करुणहृदया सीता कठोर हो सकती थी ? परित्यक्ता के लिए कोई मार्ग था ?

पुत्रोत्पत्ति गीत

इन गीतों का सम्वन्ध सीता के पुत्र लव तथा कुश की उत्पत्ति से ही है। लोकगीतानुसार वन का नापित आकर राम को पत्र देता है और पुत्रोत्सव मनाये जाने का स्थान वाल्मीकि आश्रम वतलाता है। राम कुछ वोल नहीं पाते। माता

---

१. मैथिली लोकगीत, पृ० ३२३

कौशल्या नाई को अँगूठी एवं सुमित्रा माता मोतियों का हार पुरस्कारस्वरूप प्रदान करती है। लक्ष्मण जी सिर की पगड़ी देते है और पुरवासी जयकार करते है।

इन लोकगीत से यह प्रतीत होता है कि सीता जी रामचन्द्र से इतनी अप्रसन्न नही थी। भोजपुरी लोकगीत में तो सीता ने नाई से स्पष्ट कहा है कि राम से पुत्रोत्पत्ति का समाचार न वतलाना।

इस प्रकार मैथिली लोकगीतो में मुख्यतया सीता जी एक परित्यक्ता मानवी है। उनके नैहर में कोई सगा स्नेही शेप नही रह गया। वे अपने पति राम द्वारा विना पूर्व सूचना के वन मे त्याग दी जाती है। पति के इस व्यवहार से दुखित होने पर भी वे उनके लिए एक भी कटुशब्द नही कहती। उनकी विपत्ति मे वनदेवियाँ ही सहायक होती है। वे सहिष्णु, तपस्विनी, वात्सल्यहृदया पतिपरायणता पत्नी है। उन्होने पति के रूप में राम की प्राप्ति हेतु तप किया था, किन्तु स्पष्ट रूप से राम के नाम की घोपणा नही की। इससे वे लज्जाशील भी प्रतीत होती है। वे अवला नही थी, अवला वनाई गई थी, अन्यथा उनमें तो धनुष उठा लेने की भी विचित्र शक्ति विद्यमान थी। उन्हे सरल जीवन स्वीकार था, वाह्याडम्वर के प्रति वे अपने पति राम की इच्छा का भी विरोध कर सकती थी। आराधना मे उनकी सुदृढ़ आस्था थी। उनमें प्रेम का गम्भीर सागर उद्वेलित था वह भी एकमात्र श्रीराम के लिए। ऐसी सती नारी ने अभिशाप की लपटों में स्वर्ण जैसा तेजस्वी शरीर गला दिया, किन्तु लोक ने उनकी वास्तविक प्रतिष्ठा की, मृत्यु के पश्चात्।

इसी प्रकार बुन्देलखण्डी, ब्रज, निमाड़ी, अवधी, मालवी, हरियाणी, राजस्थानी मेवाती और हाड़ोसी में भी सीता विपयक लोकगीत विद्यमान है, इनमें भी सीता के करुण रूप की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। इन गीतो की सामान्य विशेषता यह है कि नारी जाति के कोमल एवं सरल हृदय ने सीता को एक आदर्श सती, किन्तु अभिशप्त नारी के रूप से स्वीकार किया है। वे सीता की व्यथा के गीत गाते-गाते अश्रु वरसाने लगती है। उनकी सारी सहानुभूति सीता के साथ केन्द्रित हो जाती है और पुरुप जाति के द्वारा किये गये निष्ठुर व्यवहारों की भर्त्सना करने मे वे कोर कसर नही रखती, भले ही वे मर्यादापुरुषोत्तम राम ही क्यों न हो।

लोकगीतों की सीता वात्सल्यमयी है, उन्हें लवकुश जैसे राजकुमारों के आश्रम में जन्म लेने का खेद रहता है। वस्तुतः वे इन्ही पुत्रों के लिए अभिशप्त जीवन भोगती है, अन्यथा जीवित रहने की आवश्यकता ही क्या थी? धन्य है वह मातृ-हृदय, जो अपने पुत्र के क्षेम-कुशल के लिए क्या नही कर सकता, कौन से दुःसह दुःख को हँसते-हंसते नही सहन कर सकता? इसीलिए शास्त्रकारों ने जननी को स्वर्ग से भी अधिक गौरव प्रदान किया है :

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

■ ■

अध्याय ८

उपासना के क्षेत्र में श्रीसीतातत्व

उपासना के क्षेत्र में श्री सीतातत्व का प्रवेश कब से हुआ ? यह एक मौलिक प्रश्न है, जिसके समाधान की नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती है। जिस प्रकार राधातत्व का उपासना के क्षेत्र में प्रवेश होने के पूर्व साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश हो चुका था,[1] उसी प्रकार सीतातत्व का भी प्रवेश प्रथम साहित्य के क्षेत्र में तत्पश्चात् उपासना के क्षेत्र में हुआ।

प्रस्तुत अध्याय में इसी तथ्य का विश्लेषण किया जायगा और तत्पश्चात् विभिन्न सम्प्रदायों में श्री सीतातत्व की उपासना के वैविध्य पर प्रकाश डाला जायगा। इस प्रसंग के सन्दर्भ में उपासना शब्द के अर्थ या व्युत्पत्ति पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा, जिसके आधार पर उपासना के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण सम्भव हो सकेगा।

(क) उपासना का अर्थ तथा उद्देश्य

उपासना शब्द (उप + आस् + युच् + टाप्) उप उपसर्गपूर्वक आस्=उपवेशने धातु से कृदन्तीय युच् प्रत्यय करने के पश्चात् स्त्रीलिंग के बोधक टाप्=आ प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। लिंगानुशासन के नियमानुकूल युच् प्रत्यय जिस प्रकृति के पश्चात् लगता है, वह प्रकृति उक्त प्रत्यय से संपृक्त होकर जो शब्द रूप धारण करती है, वह शब्द नित्य स्त्रीलिंग होता है।[2] इस प्रकार उपासना शब्द भी नित्य स्त्रीलिंग है।

उप उपसर्ग का समीप अर्थ प्रसिद्ध ही है और आस धातु उपविष्ट होना या बैठना इस अर्थ में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार दोनों का समुदित अर्थ समीप बैठना सिद्ध हुआ। लोक व्यवहार में भी दृष्टिगोचर होता है कि जो व्यक्ति जिसके पास जाकर बैठता है, उन दोनों में पारस्परिक प्रेम की मात्रा न्यूनाधिक रूप में अवश्य होती है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर प्रायः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जो व्यक्ति जिसके समीप बैठता है, वह अपनी अपेक्षा उसके महत्व को कुछ अधिक रूप में स्वीकार करता है।

---

१. भारतीय वाङ्मय में श्री राधा (पं० बलदेव उपाध्याय)

२. सिद्धान्त कौमुदी (लिंगानुशासन प्रक०-भट्टोजि दीक्षित)

उदाहरणार्थ छात्र को अन्तेवासी इसी हेतु कहते है कि वह गुरु के अन्ते = समीप बस कर विद्याध्ययन करता है। (अन्ते वसति तच्छील:=अन्तेवासी छात्र:)।

जब हम किसी के महत्व को स्वीकार करते हैं, तब उसमे श्रद्धाबुद्धि अथवा पूज्यबुद्धि भी मानते है। उदाहरणार्थ हम राम, कृष्ण, बुद्ध आदि का महत्व स्वीकार करते है, अतः इनके प्रति हमारी श्रद्धा अथवा पूज्य भावना भी है। इस विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि हम जिसकी उपासना करते हैं, उसके प्रति हमारे हृदय मे श्रद्धा तथा पूज्य-भावना अथवा प्रेम-भावना अवश्य होती है।

आज के मनोविज्ञान के अनुसार श्रद्धा तथा पूज्य-भावना एव प्रेम भी स्वार्थ-मूलक सिद्ध हो चुके हैं, भले ही स्वार्थ के स्वरूप में अन्तर हो। सन्तप्रवर तुलसी ने तो १७वी शती में ही उक्त अनुभूति प्राप्त कर ली थी :

स्वारथ लागि करहि सब प्रीती।
सुर नर मुनि की याही रीती ।। (रामचरित मानस)

अस्तु, उपासना भी स्वार्थमूलक सिद्ध होती है। भक्ति के क्षेत्र मे निष्काम भावना का नाम भले ही लिया जाये, किन्तु क्या भक्त अपने आराध्य का सामीप्य अथवा दर्शन अथवा मुक्ति नही चाहता ? भरत जैसे आदर्श भक्त ने श्री राम से कहा था :

दर्शन तृप्त न आज लगि, प्रेम पियासे नैन। (रा० मानस, अ० का०)

महाकवि सूर जैसा भक्त तो अपने आराध्य से अविद्या दूर करने के लिए प्रार्थना करता है, जिसके गर्भ में मुक्तिभावना व्याप्त है।

अब हौ नाच्यों वहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल ।।
... .
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल ।। (सूरसागर)

भक्त प्रवर तुलसी तो अपने आराध्य की शक्ति श्री सीता जी से भी अपने उद्धार हेतु सस्तुति कर देने के लिए निवेदन करते हैं :

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मोरियो सुधि दयाइयो कछु करुण कथा चलाइ ।। (विनय पत्रिका)

मीरा भी अपना दरद मिटाने के लिए बैद समलिया का स्मरण करती रही।

इस प्रकार निष्कर्ष यह निकलता है कि भक्ति का क्षेत्र भी यथार्थरूप मे निष्काम नही माना जा सकता। वस्तुतः इस प्रकार का स्वार्थ उत्तमकोटि का स्वार्थ माना जाता है, निन्द्यकोटि में नही आता है। भौतिक कामना ही बन्धन मे आवद्ध करती है, वह त्याज्य है और मुक्ति-कामना बनाती है, अतः वह ग्राह्य है। यही सतोगुणी कामना है। राजसी-एव तामसी कामना अग्राह्य होती है।

इस प्रकार उपासना का सम्बन्ध इसी सतोगुणसम्पन्न कामना से हुआ। उपासना

किसकी होती है ? पूजास्पद, प्रेमास्पद या श्रद्धास्पद की। उपासना का पात्र मनुष्य भी हो सकता है और देव भी, किन्तु देव की तुलना में मनुष्य अल्पशक्ति एवं अधिक स्वार्थरत माना गया है, अतः उपासना भी नर की तुलना में देव की प्रशस्त मानी जाती है। इसी वरिष्ठता के कारण उपासना का सामान्य अर्थ किसी देवी-देवता की पूजा, अर्चा, वन्दना या साधना समझा जाता है।

समीप बैठना (उपासना) दो प्रकार से सम्भव है : (१) प्रत्यक्ष, (२) अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष उपासना में साधक या उपासक अपने उपास्य का चर्मचक्षुओं से दर्शन करता है और उसकी अर्चना में निमग्न होकर आनन्दानुभूति प्राप्त करता है। यदि उपास्य चेतनस्वरूप नरादि है तो उससे वार्तालापादि द्वारा आत्मीयता स्थापित करता है।

अप्रत्यक्ष उपासना मुख्यतया देवादिकों की होती है, इसे मानसिक उपासना भी कह सकते हैं। इसमें उपासक अपने उपास्य की मूर्ति अपने हृदय में कल्पित कर लेता है और मानसिकपूजन वन्दनादि द्वारा उसे रिझाने का पूर्ण प्रयास करता है। मूर्ति की कल्पना सगुण उपासना में ही सम्भव है, निर्गुण में नहीं। निर्गुण की उपासना में अन्तःसाधना पर बल दिया जाता है, जिसे गीता में इस प्रकार कहा गया है :

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ (गीता)

तात्पर्य यह कि उपासना का शाब्दिक अर्थ समीप बैठना प्रत्येक दृष्टिकोण से संगत है। चाहे मनुष्य की उपासना हो या देव की और देव भी चाहे निर्गुण हो या सगुण। प्रत्यक्षोपासना में शरीर से समीप बैठना सम्भव है और परोक्षोपासना में मानसिक रूप से।

उपासना शब्द के अन्य अर्थ भी होते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है :

पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणाः समाः।
वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्याप्युपासना ॥ (अमरकोष २। ७। ३४, ३५)

अर्थात् पूजा, नमस्या, अपचिति, सपर्या, अर्हणा, वरिवस्या, शुश्रूषा, परिचर्या और उपासना ये सभी समानार्थक शब्द हैं। वैदिक संहिता में उपासना के अर्थ में अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। यथा :

(क) अर्चा शक्राय शाकिने (ऋक् १।५४।२)
(ख) अराधि होता स्वर्निषत्त (ऋक् १।७०।८)
(ग) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे (ऋक् १।१०१।६)
(घ) वन्दामहे त्वा (ऋक् ३।८।६)
(ङ) भर्गो देवस्य धीमहि (ऋक् ३।६२।१०)
(च) अग्ने स्तोमं मनामहे (ऋक् ५।१३।२)

(छ) अग्नि विश ईलते (ऋक् १०।८०।६)

(ज) त्र्यम्बकं यजामहे (ऋक् ७।५६।१२)

यहाँ पर रेखांकित शब्द उपासना अर्थ में ही प्रयुक्त हुए है। उपासना का भक्ति के साथ अभेद सम्बन्ध माना जाता है। यथा 'यस्य देवे परा भक्तिः' (श्वेताश्व० ६।२३)। वस्तुतः उपासना व्यापक शब्द है और भक्ति व्याप्य है, इस बात पर इसी अध्याय में विचार किया जायगा।

विश्वप्रकाश कोश मे उप उपसर्ग के अनेकार्थो पर प्रकाश डाला गया है :

उपः सामर्थ्यदाक्षिण्यदोषाख्यानात्ययेषु च।
आचार्यकरणे दाने व्याप्तावारम्भ पूजयोः ।।
तद्योगेऽपि च वीप्सायां भरणार्थोपमार्थयोः।
उपो हीनेऽधिके प्रोक्तो ऽयासन्ने ऽयुपकीर्तितः।। (विश्व। अव्य०। पृ० १६८)

उपर्युक्त जिन १७ अर्थो में (सामर्थ्य, चतुरता, दोष, कथानक, समाप्ति, गुरुदीक्षा लेना, दान, व्याप्ति, आरम्भ, पूजा, सहयोग, पुनरावृत्ति, भरणपोषण, उपमा, हीन, अधिक आसन्न) उप का प्रयोग होता है, उन सबका सम्बन्ध उपासना शब्द से भी हो सकता है। *यथा : सामर्थ्य बैठना = शक्ति अर्जित करना, चतुरता बैठना = ज्ञानवृद्धि, दोष बैठना = दोष शमन, कथानक बैठना = सत्संग करना, समाप्ति बैठना = जन्म-मरण से मुक्ति के उपाय जानना, आचार्यप्राप्ति बैठना = आध्यात्मिक गुरु की उपलब्धि करना, दान बैठना = त्यागभाव, व्याप्ति बैठना = आत्मा परमात्मा के लिए नित्य सम्बन्ध का ज्ञान करना, आरम्भ बैठना = कल्याणपथ मे बढ़ना, पूजा बैठना = पूजन मे स्थिर होना, सहयोग बैठना = आराध्य के साथ आराधक की सगति होना, पुनरावृत्ति बैठना = निरन्तर जप करना, भरण बैठना = दृढ़धारणा होना, उपमा बैठना = आराध्य का सादृश्य प्राप्त करना (देवो भूत्वा यजेद्देवं), हीन बैठना = आराध्य की तुलना में अपने को समझना, इसी को भक्त का दैन्यभाव कहते हैं। अधिक बैठना = बहुत समय तक साधना करना, आसन्न बैठना = आराध्य का सान्निध्य प्राप्त करना।*

उपर्युक्त समस्त अर्थ लक्षणा अथवा व्यजना शक्ति के आधार पर सगत होते है और इनसे उपसना के व्यापक उद्देश्यों पर भी सहज ही मे प्रकाश पड़ता है। विभिन्न ग्रन्थों में उपासना शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थो में हुआ है। यथा : आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।५।१५।१ में उपासना का सेवा अर्थ है। गौतम धर्मसूत्र ५।३६ में उपासना का अर्थ प्रणाम करना है। महाभारत के आदि पर्व मे उपासना शब्द बाणानुसन्धान अर्थ में असकृत प्रयुक्त हुआ है। भट्टिकाव्य मे (५।१०७) मे उपासना शब्द पहुँचने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रन्थों में भी उपासना शब्द के अनेकार्थो के प्रयोग ढूंढे जा सकते है।

विगत पृष्ठों में उपासना शब्द के विविधार्थो पर विचार किया गया है, इसी प्रसंग में इसकी परिभाषाओं का भी विवेचन उपयुक्त होगा, क्योंकि परिभाषा किसी शब्द के विस्तृत अर्थ अथवा तात्पर्यार्थ को अभिव्यक्त करती है।

उपासना की परिभाषायें

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
समीपसेवा विधिना उपास्तिरितिकथ्यते ।। (कुलार्णवतन्त्र १७।६७)

अर्थात् मन वचन और कर्म से प्रत्येक अवस्था में सदैव समीप रह कर आराध्य की सेवा करने को उपासना कहते हैं।

उपासनं नाम यथाशास्त्रमुपास्यत्यार्थस्य विपयीकरणेन सामीप्यमुपगम्य
तैलधारावत् समानप्रत्ययप्रवाहेण दीर्घकाल यदासनं तदुपासनमाचक्षते ।।
(शांकरभाष्य, गीता, अ० १२ श्लो० ३)

अर्थात् शास्त्रविधि के अनुसार उपास्यदेव के प्रति तैलधारा के समान अधिक समय तक चित्त की एकात्मकता का नाम उपासना है।

स्वामी करपात्री जी ने उपासना की परिभाषा (उपासना विशेषांक, कल्याण पृ० १२) इस प्रकार दी है : वेदादिशास्त्रवेद पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्यस्वरूपों के पुन: पुन: सकल्प एवं धारावाहिक चिन्तन को ही उपासना कहा जाता है।

जिस क्रिया के द्वारा हम अपने को अपने इष्ट के साथ विराजमान कर सकें उसी का नाम है : उपासना।[1]

आचार्य अनिरुद्धाचार्य जी के अनुसार जिस क्रिया से जीवात्मा बन्धन से मुक्त हो जाता है, उस क्रिया को उपासना कहते है। अथवा जिस प्रक्रियाविशेप से जीवात्मा में परमात्मा के सर्वज्ञता, तृप्ति एव अनादिबोध आदि धर्मो का संस्रव हो जाता है, उस पद्धतिविशेष को उपासना मानते हैं।[2]

दामोदर सातवलेकर के अनुसार विशेप आत्मिकशक्ति जिसके पास होती है उसके पास रहने से उसकी आत्मिक शक्ति का प्रभाव उसके पास में रहने वाले को प्राप्त होता है और उसको उपासना कहा जा सकता है।[3]

जय रणछोड़दास के अनुसार जिस उपाय की सहायता से दुर्लभतत्व की प्राप्ति सुलभ हो जाये, वही उपासना है।[4] इन्ही की द्वितीय परिभाषा इस प्रकार है : जिस क्रिया से जीवात्मा और परमात्मा के मध्य में स्थित जगत् तिरोहित हो जाये और

---

१. कल्याण उपासना विशेषांक, पृ० १५ उपासना का स्वरूप शीर्षक लेख (हरि बाबा)
२. वही, पृ० २२
३. वही, पृ० ७८
४. वही, पृ० ९७

उसकी ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति विकसित हो जाये, उसी क्रिया का नाम उपासना है।[1] इन्ही की तृतीय परिभाषा इस प्रकार है : जीवात्मा में परमात्मा के धर्मों के प्रवेश करने के उपाय का नाम उपासना है।[2]

श्री रामनिरीक्षण सिंह के अनुसार अपने उपास्य या आराध्य के निकट श्रद्धालु अथवा शुश्रूषा के रूप में बैठना ही उपासना है।[3]

श्री राममाधव चिंगले के अनुसार उपासना का व्यापक रूप से अर्थ है भगवत्तत्व के अनन्त रूपों में से (सगुण, साकार, निर्गुण, निराकार इत्यादि में से) किसी को लेकर भगवत्तत्व की ओर प्रवण होना।[4]

श्री श्रुतिशील शर्मा जी के अनुसार किसी के पास बैठ कर उससे तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर लेना उपासना है।[5]

श्री एन० कनकरज अय्यर के अनुसार परमतत्व या शुद्ध सत्वकी, जो सत्यों का भी परमसत्य है, प्रार्थनामात्र करना उपासना नही है, अपितु उस सत्य के साथ सही अर्थो मे सम्पर्क स्थापित करना उपासना कहलाता है।[6]

श्री जयराम जी वशिष्ठ के अनुसार मन का लक्ष्य की ओर बार-बार गतिशील होना (बार-बार लक्ष्य का स्मरण करना) अथवा लक्ष्य मे स्थिर होना उपासना है।[7]

आचार्य शिवकुमार के अनुसार उपासना वह वस्तु है, जो मनुष्य को भगवत् सान्निध्य की योग्यता दे देती है।[8]

पं० वेणीराम जी के अनुसार अपने उपास्य (इष्टदेव) के प्रति अनुराग होने पर उनका श्रद्धा-भक्ति से जो चिन्तन, अर्चन, पूजन किया जाये, उसे उपासना कहते है।[9]

श्री एम० के वेंकटराम अय्यर के अनुसार शास्त्र सम्मत किसी ऐसे उपयुक्त आलम्बन पर मन को सतत स्थिर करने की क्रिया जो साध्यवस्तु से सम्बन्ध रखने वाले समान विचारों के प्रवाह को उत्पन्न करे और विरोधी विचारो को मन में प्रविष्ट होने से रोके उपासना है।[10]

---

१. उपासना विशेषांक कल्याण, पृ० ६८
२. वही, पृ० ६८
३. वही, पृ० १०८
४. वही, पृ० १२२
५. वही, पृ० १३३
६. वही, पृ० १४३
७. वही, पृ० १४७
८. वही, पृ० १५५
९. वही, पृ० १५८
१०. वही, पृ० १८६

आचार्य गुरुरत्न उपाध्याय जी के अनुसार जिन साधनों से परमात्मा से विलग एवं अनाथ हुआ जीव उनके निकटतम पहुँच कर सनाथ बन जाता है, उसी को उपासना कहते हैं।[1]

श्री नागोराव वासरकर के अनुसार विशेषतः लक्ष्य वस्तु को केन्द्रित करके चिन्तन करने को उपासना कहा गया है।[2]

श्री कृपाशंकर रामायणी के अनुसार जिन क्रिया द्वारा हम अपने उपास्य के समीप बैठ सकें, अपने उपास्य का मंगलमय सान्निध्य प्राप्त कर सकें, उस क्रिया का नाम उपासना है।[3]

उपर्युक्त विभिन्न परिभाषाओं का पर्यालोचन भी आवश्यक है, जिससे उपासना की वास्तविक परिभाषा की जा सके। अस्तु विवेचन प्रस्तुत है :

(१) उपर्युक्त परिभाषाओं में से अधिकांश उत्तम कोटि की उपासना से सम्बद्ध होने के कारण अपूर्ण हैं, भले ही वे उत्कृष्टतम एवं लोककल्याणप्रद होने के कारण ग्राह्य हों।

(२) उपर्युक्त अनेक परिभाषायें सगुणोपासना पर अधिक केन्द्रित हैं निर्गुणोपासना पर कम।

(३) उपासना में प्रेम, श्रद्धावृद्धि, नैरन्तर्य, तीव्रलगन, निर्वेद आदि का होना आवश्यक है, किन्तु अधिकांश परिभाषाओं में इनका भाव न आ सकने के कारण उन्हें पूर्ण परिभाषायें कैसे कह सकते हैं ?

मेरे विचार में सत्, रज तथा तम इन तीन गुणों में से किसी भी गुणप्रधाना उपासना की निम्नलिखित परिभाषा हो सकती है। जिस क्रिया अथवा साधन द्वारा साधक अपने परमप्रिय आराध्य के सान्निध्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्थित होकर अन्तर्भाव में निरन्तर उसी का चिन्तन करता हुआ आनन्दमग्न होकर कृतकृत्य हो जाता है, उसे उपासना कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषा को इस प्रकार कसौटी में कस सकते हैं :

(क) गीता में उपासना (यजन = देवपूजा संगतिकरणदानयोः) तीन प्रकार की बतलाई गई है : (१) सात्विक, (२) राजस, (३) तामस।

> यजन्ते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ॥
> प्रेतान्भूतगणाश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः। (गीता १७। ४)

अर्थात् सात्विक पुरुष देवों की पूजा करते हैं, रजोगुणी पुरुष यक्ष और राक्षसों की पूजा करते हैं तथा तमोगुणी मनुष्य प्रेत एवं भूतगणों की पूजा करते हैं।

---

१ उपासना विशेषांक कल्याण, पृ० २५१
२. वही, पृ० ५७७ ३. वही, पृ० ६०९

सतोगुणी उपासना में मुख्यत: आत्माभिन्न परमात्मा की उपासना की जाती है, जैसा कि वृहदारण्यकोपनिषद् (ऋ० १ । ४ । १५) में उल्लेख मिलता है :

आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य: ।

अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए, उसे श्रवण करना चाहिए, उसका मनन करना चाहिए और उसी का निदिध्यासन करना चाहिए ।

हमारी परिभाषा के अन्तर्गत सात्विक उपासना की समस्त विशेपताये आती है अप्रत्यक्ष शब्द के उपादान से आत्मोपासना (अन्तरंग होने पर भी) इसी के अन्तर्गत है । आत्मा का श्रवण अन्तर्नाद ही है जो आनन्दानुभूति शब्द के उपादान से गतार्थ है । मनन करना चिन्तन का ही रूप है जो कि चिन्तन शब्द के उपादान से गतार्थ है । इसी प्रकार निदिध्यासन निरन्तर चिन्तन शब्द से गतार्थ है ।

सगुणोपासना मे भी प्रतीक स्वरूप रामकृष्णादि मूर्तियो का सान्निध्य संभव है । विभिन्न उपादानों द्वारा अर्चन, वन्दनादि, अनन्य भाव से करने पर ही सफल होता है । अनुराग भावना परमप्रिय आराध्य पद समुदाय के अन्तर्गत आ ही जाती है ।

इसी प्रकार रजोगुणी उपासना में भी उक्त परिभाषा घटित होती है । यज्ञ अथवा राक्षसों की प्रतीक मूर्तियाँ सम्भव ही है साधन सामग्री क्रिया के हेतु ही लाई जाती है उनकी आराधना में भी आराधकों को अनन्य भाव से पर्याप्त समय तक (निरन्तर) सलग्न रहना पड़ता है, इसमें उसे आनन्दानुभूति (निम्न कोटि की) भी होती है, जिसे सुखानुभूति कहना अधिक सगत होगा ।

तमोगुणी उपासना मे भी साधक अपने आराध्य भूतादि को परम प्रिय मानता है और कल्पित रूप का अप्रत्यक्ष सान्निध्य भी प्राप्त करता है । उस साधना में भी साधक अनन्य भाव से निरन्तर उसी प्रेतादि का चिन्तन करता हुआ आनन्दानुभूति (कल्पित सुख) प्राप्त करता है । इस कल्पित सुख को ही आनन्द मान लेने की भ्रान्ति करता है और अन्तत: साधना सफल होने पर कृतकृत्य भी हो जाता है ।

इस प्रकार तर्क की कसौटी पर हमारी कल्पित परिभाषा सर्वथा उचित प्रतीत होती है । वहाँ पर हम जिस आराधना का विवेचन कर रहे हैं उसकी परिधि में मुख्यत: निम्नलिखित चार अग आते है : (१) अर्चना, (२) स्तुति, (३) जप, (४) ध्यान । अतः आराध्य के समीप स्थित होकर उसकी अर्चना करना, स्तुति करना, जप करना और ध्यान करना ही समुदित रूप मे पूर्ण उपासना है । इन चार अगो में उत्तरोत्तर महत्वशील है । ध्यान की सफल स्थिति पर आ जाने पर आराधक के लिए यह आवश्यक या अपरिहार्य नही है कि वह अर्चना, स्तुति तथा जप भी करे परन्तु लोकसग्रह के लिए उसको चाहिये कि वह इनका ऐकान्तिक परित्याग न करे । गीता

में भी श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कर्मयोग का उपदेश देते हुये कर्म की महत्ता पर वल दिया है।[१]

आराधना, साधना, उपासना आदि के साथ भक्ति का पर्याप्त सादृश्य है। अनेक आचार्यों ने तो उपासना और भक्ति को अभिन्न माना है। यथा:

उपासना और भक्ति दोनों ही परस्पर समानार्थक एव समान कल्याणकारक माने गये हैं। उपासना भी अनेक प्रकार से उसी उपास्य की होती है और भक्ति भी अनेक प्रकार से उस एक ही भजनीय की होती है।[२]

उपास्य और भजनीय इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। जो उपास्य है, वही भजनीय है, जो भजनीय है, वही उपास्य है। इसी प्रकार उपासना और भक्ति भी एक ही है।[३]

विचार करने से ज्ञात होता है कि उपासना और भक्ति परस्पर पर्याय हो सकते हैं। नवधा भक्ति के निम्नलिखित प्रकार उपासना की परिधि में ही आते हैं :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरण पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ (श्रीमद्भा० ७।५।२३)

अर्थात् (१) श्रवण, (२) कीर्तन, (३) स्मरण, (४) चरणसेवा, (५) अर्चना, (६) वन्दना, (७) दास भावना, (८) सखाभाव, (९) आत्मनिवेदन—ये भक्ति के ९ प्रकार हैं) श्री जय नारायण मल्लिक ने उपासना के अन्तर्गत भक्तितत्व को स्वीकार करते हुए लिखा है, भक्ति का अर्थ है : भगवान की उपासना, भगवान की सेवा और भगवान की शरणागति।[४] उपासना के अनेकार्थो का उल्लेख करते हुये हमने सेवा आदि का उल्लेख कर दिया है। इस प्रकार उपासना और भक्ति को पर्याय मानने पर भी भक्ति को उपासना के अन्तर्गत मानना अनुचित न होगा। क्योंकि भक्ति के प्रमुख तत्व विनय की सप्तभूमिकायें (१) दीनता, (२) मान मर्यादा, (३) भयदर्शन, (४) भर्त्सना, (५) आश्वासन, (६) मनोराज्य और (७) विचारण उपासना के उपांगभूत है। प्राचीनता की दृष्टि से भी उपासना शब्द भक्ति से प्राचीनतर है।[५]

---

१. नियतं कुरु कर्म त्वं कर्मज्यायोह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेद कर्मणः ॥ (गीता अ० ३ श्लो० ८)
लोक संग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि। (वही ३। २०)

२. ३. उपासना विशेपाक (कल्याण) (श्री कृष्णबोधाश्रम का उपासना मे भक्ति-तत्व शीर्षक लेख)

४. उपासना विशेषांक (कल्याण), पृ० २७३।

५. ऋग्वेद (१। ५४। २) अर्चाशक्राय शाकिने ॥ अहरहः सन्ध्यामुपासीत् ॥ आदि।

उपासना के उद्देश्य

आध्यात्मिक उपासना का उद्देश्य मोक्षप्राप्ति है। आद्य शंकराचार्य जी ने अपने भाष्यों में इसी उद्देश्य की पुष्टि की है। यथा :

लब्ध्वा कथंचिन्नरजन्म दुर्लभं
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढ़धीः
स ह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात् ॥

अर्थात् दुर्लभ मनुष्य जन्म किसी प्रकार प्राप्त कर, उससे भी विद्यादिक ज्ञान प्राप्त कर जो व्यक्ति आत्ममुक्ति (मोक्ष) के लिए यत्न नहीं करता है, वह मूढबुद्धि आत्मघाती है, क्योंकि वह असत् को ग्रहण करता है।

महर्षि पंतजलि ने योगसूत्र में उपासना का उद्देश्य समाधिप्राप्ति तथा क्लेश-निवारण लिखा है।

स हि क्रियायोगः समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च।

महर्षि पतंजलि ने उपासना के लक्ष्य के अन्तर्गत जिस क्लेश निवारण का उल्लेख किया है, वह क्लेश अत्यन्त व्यापक है। यथा : (१) रागमूलक क्लेश, (२) द्वेष-मूलक क्लेश, (३) द्रोहमूलक क्लेश। काम, मत्सर, स्पृहा, तृष्णा तथा लोभ प्रथम वर्ग मे, क्लेश, क्रोध, ईर्ष्या, असूया, मोह तथा अमर्प द्वितीय वर्ग मे, क्लेश, मिथ्याज्ञान, संशय, मान तथा प्रमाद तृतीय वर्ग में आते है। इसी प्रकार चतुर्थ वर्ग अहंमूलक क्लेश भी माना जा सकता है जिसकी परिधि में दुर्बुद्धि, दम्भ, कुवासना, हिंसा, अस्मिता, दुराग्रह एवं दर्प आदि को स्थान देना चाहिए।

दिव्यवृत्ति भी उपासना का प्रधान लक्ष्य है, इसकी परिधि मे शम, दम, विनय मैत्री, दया, शान्ति, प्रेम, समता, सहानुभूति, निश्छल भावना आदि सद्वृत्तियाँ आती है।

सद्बुद्धि प्राप्ति उपासना का अत्यन्त महनीय उद्देश्य है। गायत्री मन्त्र, जो कि समस्त वैदिक साहित्य में मूर्धन्य माना जाता है, उसमे भी धियो योनः प्रचोदयात् वाक्य द्वारा बुद्धि-शुद्धि के लिए ही प्रार्थना की गयी है। वस्तुतः बुद्धिशुद्धि मानव के लिए अत्यन्त आवश्यक है। नीतिशास्त्र का भी यही कथन है :

बुद्धिर्यस्य वलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो वलम्। (पचतन्त्र)

भक्तप्रवर तुलसी ने भी मति या बुद्धि की महत्ता इस प्रकार स्वीकार की है :

जाहि राम दारुण दुख देही। ताकी मति आगे हर लेही। (मानस)

श्रीमद्भगवतगीता में तो सद्बुद्धि के विनाश होने से मानव के विनाश की सम्भावना व्यक्त की गई है :

शुद्धि सम्प्राप्ति भी उपासना का उद्देश्य माना जाता है। शुद्धि दो प्रकार की होती है : (१) अन्तःशुद्धि, (२) वाह्यशुद्धि। आराध्य का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए साधक अत्यन्त उत्सुक रहता है। जिस प्रकार हम किसी प्रतिष्ठित आत्मीय व्यक्ति के समीप जाने के पूर्व शरीरवस्त्रादि की उज्ज्वलता एवं निर्मलता का ध्यान रख कर वाह्यशुद्धि करते है, उसी प्रकार उपासक भी उपास्य के समीपगमन के पूर्व वाह्यशुद्धि करता है, किन्तु आराध्य तो अन्तःकरण में अधिष्ठित होता है, अतः साधक को अपने अन्तःकरण की शुद्धि भी करनी पड़ती है। इसके लिए योगाग्नि का उद्दीपन आवश्यक होता है, जिससे वासनाजन्य मूल नष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह कि उपासना एक ऐसा अलौकिक साबुन है जो बिना जल की सहायता के व्यक्ति के अन्तर्मल तथा वाह्यमल का निराकरण कर देता है।

आध्यात्मिक उन्नति सतोगुणी साधना का प्रधान लक्ष्य है। आराध्य की निरन्तर उपासना करने से परमात्मा का दिव्य प्रकाश अन्तःकरण को प्रकाशित कर देता है इस दिव्य प्रकाश से व्यक्ति युष्मद् अस्मद् के संकुचित दायरे से निकल कर वसुधैव कुटुम्बकम् के व्यापक एवं उन्मुक्त वायुमडल में विचरण करने लगता है। इस प्रकार उपासनारत पुरुष पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते। (गीता। ८। १६)

इसी प्रकार ईशसम्प्राप्ति, ईश्वरानुराग मे वृद्धि, श्रद्धा एवं विश्वास का विकास भगवत्कृपा की उपलब्धि, ऐश्वर्य सम्प्राप्ति, कुलोद्धार, योगक्षेम, विश्वकल्याण, कर्मबन्धोच्छेदन, सिद्धिप्राप्ति, चित्तैकाग्रता, मंगलमय वातावरण निर्माण, निर्भीकता, जीवनमुक्त-दशानुभव, विवेकप्राप्ति एव अखण्डानन्दोपलब्धि प्रभृति लक्ष्य सात्विकोपासना के उद्देश्य माने जाते है। यदि इन्ही को सूत्ररूप में कहे तो असत् की निवृत्ति और सत् की प्राप्ति वास्तविक उपासना का लक्ष्य है।

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय आरोह तमसो ज्योतिः।

प्रभृति ऋचाओं द्वारा इसी असत् की निवृत्ति एव सत् की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है। भक्तप्रवर तुलसी ने सत् के बारे में कितना सुन्दर स्पष्टीकरण दिया है।

उमा कहौं मैं अनुभव अपना। सत हरिभजन और जग सपना ॥

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में भगवद्भक्ति या भगवदोपासना को ही सत् कहते हैं, अतः उपासना का सर्वोत्तम लक्ष्य भगवत् प्राप्ति है, यह अक्षरशः सत्य है।

विगत पृष्ठों में उपासना के जिन उद्देश्यों की चर्चा की गई है, प्रायः उन सबका सम्बन्ध सात्विक उपासना से है, किन्तु उपासना भेद से उद्देश्यों में भी भिन्नता होना स्वाभाविक है। भारतीय साधना तीन प्रकार की मानी जाती है : (१) वैदिक उपासना, (२) तान्त्रिक उपासना, (३) पौराणिक उपासना। इन तीनों प्रकारों में भी

त्रिगुणात्मक उपासना के रूप प्राप्त होते हे। अतः यहाँ राजस एवं तामस उपासना के उद्देश्यो पर सक्षिप्त रूप से विचार करना अनुचित न होगा।

रजोगुणी उपासना मे साधक की दृष्टि स्वार्थसाधन की ओर अधिक आकृष्ट रहती है, किन्तु वह अपनी स्वार्थलिप्सा मे किसी की हानि का लक्ष्य नही रखता। उसकी साधना के उद्देश्य निम्नलिखित होते हे (१) मनोरथपूर्ति, (२) भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति, (३) दुःखनिवृत्ति, (४) सुखोपलब्धि, (५) अर्थलाभ, (६) अह की सतुष्टि, (७) ईषणप्राप्ति, (८) अल्पकालिक शान्ति, (९) व्यक्तिगत कल्याण, (१०) लोक-पूजाप्ति, (११) क्षुद्रसिद्धि प्राप्ति, (१२) यशकामना।

उपर्युक्त सभी उद्देश्यों का अभाव त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) मे होता हे, जैसा राजसी धारणा के विषय मे गीता मे वर्णित है।

ययातु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसगेन फलाकाक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी॥ (गीता। १८। ३४)

अर्थात् हे अर्जुन! फल की इच्छा करने वाला मनुष्य अति आसक्ति से जिस धारणा द्वारा धर्म, काम तथा अर्थ को धारण करता हैं, वह धारणा राजसी है।

इसी प्रकार तमोगुणी आराधना के निम्नलिखित लक्ष्य होते है :

(क) चिन्ता परिहार, (२) अपकार भावना, (३) मारन मोहन उच्चाटनादि षड्यन्त्रसाफल्य, (४) शत्रुदमन, (५) छलसिद्धि, (६) वाममार्गीसिद्धि सप्राप्ति, (७) लोकानुरजनादि, (८) शारीरिक सुखप्राप्ति, (९) दुरन्त अर्थलाभ, (१०) दम्भपूर्ति, (११) अतृप्तकामपिपासा की तृप्ति।

वाममार्गी उपासक इसी श्रेणी मे आते है। उन्हे वस्तुतः उपासक कहना उपासना शब्द की पवित्रता को कलुषित करना है। मद्य, मास, सुरा, सुन्दरी आदि भौतिक भोग व्यक्ति को कभी वास्तविक शान्ति नही प्रदान कर सकते।

अन्त मे निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि सात्विक उपासना ही श्रेष्ठ है और उसमे भी आत्मपर्याय परब्रह्म की उपासना सर्वोत्तम है। यथा :

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय॥ (यजु०।३१।३८)

अर्थात् उसी ब्रह्म को जानकर मृत्यु को जीत लेता है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग कल्याणकारक नही है।

(ख) शक्ति की उपासना का इतिहास

जब से मानव उत्पन्न हुआ, तभी से उसे शक्ति की आवश्यकता प्रतीत हुई, क्योंकि बिना शक्ति का आश्रय लिये किसी कार्य को सम्पन्न नही किया जा सकता। उदाहरणार्थ अग्नि में उष्णता तथा दाहकता एवं प्रकाश उसकी शक्तियाँ है। इनके बिना अग्नि का अस्तित्व ही नही रह सकता। वैसे तो शक्तियों के वैभिन्न्य एवं

उच्चावच का आभास मिलता है, किन्तु मूलरूप में एक ही शक्ति है, जो समस्त विश्व में ओतप्रोत है।

एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य, विविधा वदन्ति व्यवहारकाले।
भोगे भवानी पुरुषेपु लक्ष्मीः, कोपे तु दुर्गा प्रलये तु काली ॥ (स्फुटिक)

अर्थात् परमेश्वर की एक ही शक्ति व्यवहार दशा में अनेकरूपा कही जाती है। भोग में वह भवानी पुरुषों में लक्ष्मी, कोप में दुर्गा और प्रलयकाल में काली कहलाती है।

जिस प्रकार लोक-व्यवहार मे बालक पिता की अपेक्षा माता से अधिक आत्मीयता का अनुभव करता है उसी प्रकार यह जीव परब्रह्म (पिता) की अपेक्षा उनकी शक्ति (मातृरूपा) से अधिक आत्मीयता रखता है। सचमुच माता का हृदय वह सागर है जो पुत्र को देखकर वात्सल्यरूपी तरगो से आन्दोलित होने लगता है।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

अर्थात् पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाये, किन्तु माता उसके लिए कभी कुमाता नहीं होती। परब्रह्म की उपर्युक्त शक्ति के तीन प्रकार है: (१) महासरस्वती (२) महालक्ष्मी, (३) महाकाली। महासरस्वती सतोगुणरूपा, महालक्ष्मी रजोगुणरूपा और महाकाली तमोगुणरूपा है।

शक्ति का उल्लेख अति प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में अनेक रूपों मे पाया जाता है। इन्द्राणी, उपस्, रात्रि, द्यावा, पृथ्वी, अदिति, यमी, श्री, लक्ष्मी, वाक् आदि उसी आद्यशक्ति के विभिन्न रूप है, जो कि वेदों मे वर्णित है। इसी प्रकार ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् ग्रन्थों में प्रकृति, ओकार, आत्मा, ज्योति प्राण एव गायत्री रूप मे उसी शक्ति की महिमा वर्णित है। पुराणों मे पचदेवोपासना भी एकमात्र उसी शक्ति की ही उपासना है। शक्ति की इसी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है:

शक्तियोगः परोयोगः शक्तियोगः परतपः।
शक्तियोगः परधाम शक्तियोगः परा कला ॥ (शक्तिसगम)

अर्थात् शक्तियोग श्रेष्ठयोग है, परमतप है, परमधाम है और सर्वोत्तम कला है।

शक्ति उपासना के क्रमिक विकास को हृदयंगम करने के लिए काल विभाजन आवश्यक प्रतीत होता है। यथा: (१) प्राचीनकाल, (२) मध्यकाल, (३) आधुनिककाल। प्राचीन काल अत्यन्त व्यापक है, अतः उसका त्रिधा विभाग किया जाता है:

(क) वैदिककाल, (ख) रामायण-महाभारतकाल, (ग) पुराणतन्त्र काल।

प्राचीनकाल

(क) **वैदिक काल:** इस प्रकरण में सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एव सूत्रग्रन्थों मे वर्णित शक्तितत्व का विवेचन प्रस्तुत किया जायगा।

शक्ति की उपासना के विविध रूप ऋग्वेद में प्राप्त है। यथा :

जातवेदसे सुनवाम (ऋक्० शाकल सं० १।९९।१)

इसमें अग्निरूपा शक्ति की स्तुति का स्पष्ट उल्लेख है। ऋक्० के दशम मण्डल मे १२५वा देवीसूक्त मूलरूप में शक्ति उपासना का उद्गमस्थल माना जाता है। इसमें आठ मंत्रों द्वारा शक्ति की विभूतियों का विशिष्ट वर्णन प्राप्त होता है। यथा :

मैं ही रुद्र, वसु, आदित्य और विश्वेदेवों के साथ विचरण करती हूँ। मैं ही मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनीकुमारों को धारण करती हूँ। मैं ही यजमान के लिए यज्ञफल धारण करती हूँ, मैं संसार की एकमात्र अधिष्टात्री हूँ। मै धनदात्री हूँ, मैं ही याग के विभिन्न अंग हूँ, ज्ञानरूपा मैं ही हूँ। मैं ही विभिन्न प्रकारों से सर्वज्ञ हूँ और विभिन्न रूपों में स्थित मुझको ही सुरगण भजते है। मै ही जीवों के अन्न-भोजन की व्यवस्था करती हूँ, मेरी शक्ति से ही जीव देखते और प्राण धारण करते है। जो व्यक्ति मेरे इस स्वरूप को नही समझता, वही नष्ट होता है। मैं स्वयं यह बात कहती हूँ कि समस्त देव एवं मनुष्य उसी की सेवा करते है जिसे मै चाहती हूँ और जिसे-जिसे मैं चाहती हूँ उसी-उसी को महान् बना देती हूँ। मैं उसे ब्रह्म, ऋषि और सुमेधावी बना देती हूँ। मै ही ब्रह्मद्रोही, हननीय व्यक्ति के विनाशार्थ रुद्र के लिए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाती हूँ। मैं ही भक्त के हित के लिए युद्ध करती हूँ, मैं ही भूलोक और द्युलोक में सर्वत: प्रविष्ट हूँ। इन सभी के जनक को मैं ही जन्म देती हूँ, मेरी योनि समुद्र के अन्तर्गत जल में है, अत: मैने संसार को विविध प्रकार से व्याप्त कर रखा है। अपने शरीर से मैने द्युलोक को भी स्पृश्य बनाया है। मैं ही वायुवत विकासोन्मुख संसार को प्रवर्तित करती हूँ। मै द्युलोक के भी परे हूँ, मैं पृथ्वी से भी परे हूँ, यही मेरी महिमा है।

उपर्युक्त देवीसूक्त का सारांश यह सिद्ध करता है कि शक्ति और शक्तिमान दोनों में अभेद सम्बन्ध है। शक्तिमान् वही ब्रह्म है और उसकी स्त्रीरूपा शक्ति से उसका अभेद सम्बन्ध है।

ऋग्वेद के अन्तर्गत रात्रिसूक्त भी शक्ति के महनीय स्वरूप का प्रकाशक है। यही कारण है कि शाक्तसम्प्रदाय मे यह सूक्त विशेष समादृत है।

ऋग्वेद का श्रीसूक्त शक्ति के उद्भव का परिज्ञान कराने में विशेष सहायक सिद्ध हुआ है। इसी के लिए लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें श्रीशक्ति हिरण्यवर्णा, हरिणी, सुवर्ण तथा रजत की माला धारण करने वाली चन्द्रवत् प्रकाशिका तथा हिरण्यमयी कही गई है।

हिरण्यवर्णां हरिणी सुवर्ण रजत स्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मी जातवेदो म आवह ॥ (ऋक् ।५। श्रीसूक्त, १)

सामवेद में अग्निरूपा शक्ति की स्तुति में पूर्वार्चिक (आग्नेयकाण्ड) के प्र० अ० के अन्तर्गत ११४ मंत्र प्रयुक्त हुए हैं, जिनमें उसके तेज, ऐश्वर्य, औदार्य आदि दिव्य गुणो का उल्लेख किया गया है।[1] यथा :

हे अग्ने ! परमात्मन् आओ, देने हवि का दान।
व्यापक होने, द्योतित होने संस्तुति योग्य महान ॥
यज्ञासन में होता बनकर बैठो सह सम्मान।
(साम० पू० । अ० १।, ६।१६।१० ऋक्)

शुक्ल यजुर्वेद में उस मातृरूपा शक्ति का स्तवन इस प्रकार किया गया है :

ॐ अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मानयति कश्चन
सुभद्रिकां कांपीलवासिनीम् ॥ (२३।१८ वाजसनेयि संहिता)

अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में जगन्माता देवी के रूप मे पृथ्वी को मान्यता दी गई है। हो सकता है कि पृथ्वी के विश्वम्भरा नाम का यही रहस्य हो। इसी सूक्त में पृथ्वी के लिए इत्वरी शब्द आया है, सायण ने इसका अर्थ गतिशीला किया है। भारतीय मनीषियों के लिए यह कितने गौरव की बात है कि पृथ्वी की जिस गतिशीलता का पता वैज्ञानिकों को इस शतक में हो सका है, उसका पता हमारे अथर्ववेद के मन्त्रो के साक्षात्कर्ता अथवा मुनि को बहुत पहले ही से था।

अथर्ववेद के एक स्थल पर दुर्गादेवी का भी उल्लेख इस प्रकार है। दुर्गा के अधिष्ठान में भूमि आदि सब देवता बसते है।[2] इस उल्लेख से शक्तिरूपा दुर्गा के व्यापक महत्व की सूचना मिलती है, जिसका विशदरूप शाक्तपुराणो मे प्राप्त होता है।

वैदिक साहित्य में शक्ति उपासना का निरूपण करने के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थो में शक्ति-उपासना का प्रदर्शन किया जायगा। शतपथ ब्राह्मण मे ईश की शक्ति अथवा पत्नी रूप का उल्लेख पाया जाता है।

स वै नैवरेमे, तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत,
सह एतावानास, यथा स्त्रीपुमांसौ परिष्वक्तौ, स इममेवात्मानं
द्विधापादयत् ततः पतिश्च पत्नी च अभवताम् ॥ (शत० ।१४।३।४।३)

अर्थात् वह एकाकी रमण नही कर सका, अतः संसार भी एकाकी रमण नही कर पाता। उसने द्वितीय की इच्छा की। वह इतना हो गया कि जितने स्त्री पुरुष दोनों मिलकर हो सकते है। तब इसने अपने को ही दो भागों में विभक्त किया, उनसे पति और पत्नी हो गये।

---

१. साममाधुरी, पृ० १ : डॉ० कृष्ण दत्त अवस्थी (हिन्दी पद्यानुवाद)
२. दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता (अथर्व०। १२।४।४३)

उपर्युक्त उद्धरण से यह प्रतीत होता है कि युगलोपासना का मूलस्रोत यहीं से प्रारम्भ होता है और विभिन्न देव और उनकी पत्नियों के युग्म स्वीकार करने का स्रोत यही है। राधाकृष्ण, सीताराम आदि युग्म इसी स्रोत के विकसित रूप हैं। शतपथ के इस उद्धरण को शक्ति सम्प्रदाय में विशेष महत्व प्राप्त है। यद्यपि इसके पूर्व वेदों में शक्तितत्व के मूल मिलते हैं, लेकिन वे इसकी तुलना में अल्पमूल्यक हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् आरण्यक ग्रन्थों का क्रम आता है। इस परम्परा में तैत्तिरीय आरण्यक मात्र में शक्ति उपासना का उल्लेख प्राप्त होता है, अन्य में नहीं। सम्भवतः दर्शन प्रधान ग्रन्थ होने के कारण इन ग्रन्थों में शक्ति का विशेष उल्लेख नहीं किया गया और द्वितीय कारण यह भी हो सकता है कि इन ग्रन्थों के रचनाकाल तक शक्तिवाद पूर्ण स्फुट न हो पाया हो।

वस्तुतः शक्तिवाद का विकास उपनिषद् काल की देन है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ब्रह्म और जीव के रूपकात्मक आवरण के साथ माया शक्ति को अजा के रूप में प्रस्तुत किया गया है, वही शक्ति त्रिगुणात्मक सृजन कार्य करती है।[1] वह माया ही प्रकृति है और मायावी महेश्वर है। उसकी अवयवभूत वस्तु के द्वारा ही यह समस्त संसार व्याप्त है।[2]

इन उल्लेख से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि ईश की मायाशक्ति त्रिगुणात्मक रूप में मान्य हो चुकी थी। श्वेताश्व० के अतिरिक्त निम्नलिखित उपनिषदों में शक्ति के विभिन्न रूपों के उल्लेख प्राप्त होते हैं, किन्तु इन सबका रचनाकाल वैदिक-काल की परिधि में नहीं आ पाता, अतः यहाँ केवल उनके नामों के संकेत देना ही पर्याप्त है : (१) बह्वृचोपनिषद्, (२) केनोपनिषद्, (३) त्रिपुरोपनिषद्, (४) त्रिपुरतापनी उपनिषद्, (५) देवी उपनिषद्, (६) भावनोपनिषद्, (७) सीतोपनिषद्, (८) देव्यथर्वशीर्ष उपनिषद्, (९) सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद्, (१०) सरस्वतीहृदय उपनिषद्, (११) अरुणोपनिषद्, (१२) ललितातापनी उपनिषद्।

सूत्र ग्रन्थों के आलोडन से ज्ञात होता है कि इस काल तक देवी पूजा का प्रचलन हो गया था। बोधायन सूत्र में श्री देवी की पूजा का स्पष्ट उल्लेख है।[3]

---

१. अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥
(श्वेताश्व० ।४।४)

२. वही, ४।१०

३. मटीरियल फार द स्टडी आफ दि अरली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट (२।५, २४) एच० आर० चौधरी।

(ख) रामायण महाभारत काल : वाल्मीकि रामायण में श्री सीता जी रामचन्द्र जी से कहती हैं कि मैं आपको इस प्रकार सुशोभित करूँगी, जिस प्रकार श्री अपने पति अव्यय विष्णु को सुशोभित करती हैं ।[1] इस उल्लेख से कई तथ्य प्रकाश में आते हैं । प्रथम तो यह कि रामायणकाल तक शक्ति के श्रीरूप की लोक में पर्याप्त प्रतिष्ठा हो चुकी थी और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि रामायण के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि के समय तक सीता लगभग श्री के समकक्ष मान्यता प्राप्त करने लगी थी और श्रीराम विष्णु के समकक्ष समझे जाने लगे थे, भले ही इन दोनो का आदर्श पति-पत्नी (मानुषीरूप) ही के रूप में प्रख्यात था । यदि ऐसी मान्यता न होती तो महाकवि वाल्मीकि स्वयं सीता द्वारा उनके लिए श्री की उपमा कैसे दिला सकते थे । आज भी कोई व्यक्ति स्वयं अपने मुख से अपनी समकक्षता उसी व्यक्ति से घोषित करता है, जिसके समकक्ष या स्वल्पन्यून वह स्वयं होता है ।

रामायण में शक्ति के लक्ष्मी स्वरूप का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है :

लक्ष्मी स्तथा पद्मिनी पद्महस्ता । (वाल्मीकि० सुन्दर का० ।७।१४)

पुष्पक विमान के वर्णन प्रसंग में लक्ष्मी के इस उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि रामायण काल तक लक्ष्मी देवी की पर्याप्त मान्यता हो गई थी ।

रामायण के पश्चात् महाभारत के कई स्थलो पर दुर्गा शक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों ने उन स्थलो के उल्लेख को प्रक्षिप्त माना है ।[2]

(ग) पुराणतन्त्र काल : पौराणिक विकास के साथ ही साथ तन्त्रों का भी विकास प्रारम्भ हो गया था, अतः एक साथ इनमे शक्ति तत्व का अन्वेपण करना समीचीन होगा । पुराणों के रचनाकाल को दृष्टि-पथ में रखते हुये हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुप्तकाल तक (३१५, ५०७ ई०) विष्णु, कूर्म तथा वायु प्रभृति प्राचीन पुराणों का निर्माण हो चुका था । डॉ० आर० सी० हाजरा के कालक्रमानुसार मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वायु, मत्स्य, भागवत तथा कूर्मपुराण को प्राचीनतम स्वीकार किया जाता है ।[3] उक्त पुराणों में शक्ति के अनेक रूपों का विविध प्रकार से उल्लेख मिलता है । यथा :

विष्णु पुराण मे लक्ष्मी अथवा श्री देवी को समुद्रमन्थन से उत्पन्न, कमलासनस्था तथा कमलधारिणी के रूप में चित्रित किया गया है :

---

१. शोभयिष्यामि भर्तारं यथा श्रीर्विष्णुमव्ययम् ।
(वाल्मीकि० रा० । अयो० ।११८)

२. श्री राधा का क्रम विकास, डॉ० शशिभूषण सिंह, पृ० १३, प्र० सं०

३. पुरानिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एन्ड कस्टम्स । (१९४०)

तत: स्फुरत् कान्तिमती विकासि कमलेस्थिता ।
श्री देवी पयसस्तस्मादुत्थिता भृतपंकजा ।। (विष्णु० ।१।६।६६)

हम इस बात के प्रमाण प्रस्तुत कर चुके हैं कि रामायण काल में ही लक्ष्मी की देवी रूप मे प्रतिष्ठा दृढ़ हो गयी थी। पुराणों में उनका विष्णुपत्नीत्व तो विस्तृत होता गया, किन्तु उनका विष्णुशक्तित्व शनैः-शनैः तिरोहित होता गया है। तात्पर्य यह कि लक्ष्मी विष्णु की शक्ति से (गौणस्थान) परिवर्तित होती होती स्वतन्त्र शक्ति के रूप मे विकसित हो गई है। यथा :

नित्यैवेषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायनी ।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम: ।। (विष्णु० ।१।८।१७)

अर्थात् विष्णु से कभी विलग न होने वाली उनकी कान्तिस्वरूपा जगन्माता यह लक्ष्मी नित्य ही है, जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त विष्णु हैं, उसी प्रकार ये भी सर्वत्र व्याप्त हैं।

विचारणीय है कि श्री देवी का यह उत्तरोत्तर वर्धमान माहात्म्य विष्णु के समकक्ष पहुँच चुका था। यही शक्तिवाद का जयघोष कहा जा सकता है। इसी पुराण के (१।८।३५) एक स्थल पर तो लक्ष्मी की इतनी अधिक व्यापकता बतलाई गई है कि देव, मनुष्य तथा तिर्यक योनि में पुरुषवाचक भगवान है और स्त्रीवाचक श्रीलक्ष्मी जी हैं इनसे परे कुछ नहीं है।

ब्रह्माण्ड पुराण (३६।८) में कमलासनस्था भगवती श्री को मूर्तिमती नित्या-लक्ष्मी कहा गया है। यदि मार्कण्डेय पुराण को प्राचीनतम माना जाये, तो इसमें (दुर्गा सप्तशती) लगभग एक सहस्र श्लोकों में देवी के विभिन्न रूपों एवं चरित्रों का वर्णन मिलने से यह मानना पड़ेगा कि शक्ति का चरम विकास ब्रह्माण्डपुराण के रचनाकाल चतुर्थशताब्दी तक अवश्य हो चुका था।[1]

उक्त प्राचीनतम मान्य पुराणों के अतिरिक्त कूर्मपुराण (पू० । १।३५) में विष्णु का यह कथन प्राप्त होता है कि इसी विष्णुप्रभा की सहायता से मैं सुरासुर तथा मानव सहित अखिल विश्व को मुग्ध करता हूँ, ग्रसता हूँ और सृजन करता हूँ। सम्भवत: विष्णु का यह अधिकार परवर्ती पुराणों में स्वतन्त्र रूप से दुर्गा अथवा उमा प्रभृति शक्तियों को प्राप्त हो गया था।

ब्रह्मवैवर्त्त० में (प्रकृति । १।२२।३०) लक्ष्मी के महत्व का इस प्रकार उल्लेख मिलता है मूलप्रकृति के अन्तर्गत जो द्वितीय शक्ति है, शुद्धस्वरूपा, वही विष्णु की लक्ष्मी है। इस उल्लेख से मूल प्रकृति की अपेक्षा लक्ष्मी को अधिक महत्व मिल गया है क्योंकि उन्हें मूलप्रकृति का शुद्ध स्वरूप कहा गया है।

---

१. पुरानिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स। (१६४०) (आर० सी० हाजरा)

वराहपुराण (६।२,५) में यह उल्लेख मिलता है कि नारायण ने रमण करने की इच्छा से अपनी द्वितीय कामना से अपने को द्विधा विभक्त कर लिया। उससे जिस प्रथम स्त्री का आविर्भाव हुआ वह उमा हैं। कालान्तर में नारायणांश रूप शिव के साथ इस शक्ति का सम्वन्ध किस प्रकार जुड़ गया, यह विचारणीय है। वराहपु० का उक्त भाव शतपथ (१४।३।४।३) के 'सवै न रेमे' अंश से प्रभावित होता है, उमा नाम की कल्पना वराह में ही मिलती है, शतपथ में केवल नारी मात्र की उत्पत्ति का उल्लेख पाया जाता है।

जैसे जैसे शक्ति के अनेक रूपों का विकास होता गया वैसे ही वैसे उनमें समन्वय की समस्या भी उत्पन्न होती गई, फलतः एक ही शक्ति मान कर शेप के साथ अभेद सम्वन्ध मानने की धारणा वलवती होने लगी। पद्मपुराण (उ० खं० ।२२७।२४, २७) में उसी विष्णुप्रिया लक्ष्मी को श्री, कमला, विद्या, भूतेश्वरी, लोकमाता, भू, सती, सरस्वती, गौरी, स्वाहा, स्वधा, रति, रमा, नित्या, रुक्मिणी, सीता, शान्ति, नारायणी तथा सर्वसुखप्रदा नामों से अलकृत किया गया है। इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी शक्ति के परम विकसित रूप मिलते हैं।

तन्त्रशास्त्र भी वेदमूलक माना जाता है। जिस शास्त्र के अन्तर्गत साधना विशेष के द्वारा भोग एवं मोक्षप्राप्ति की चर्चा मिलती है उसे तन्त्र कहते है।[1] सामान्यतया विद्वान तन्त्र से शाक्तसम्प्रदाय के महत्व का ही आकलन करते हैं, परन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। तन्त्रशास्त्र मुख्यतया त्रिधा विभक्त है (१) ब्राह्मणतन्त्र, (२) वौद्धतन्त्र, (३) जैन-तन्त्र : इनमें ब्राह्मण तन्त्र भी त्रिधा विभक्त हैं। (१) पांचरात्र, (२) शैवागम, (३) शाक्तागम।

तन्त्रों में सम्प्रदायों की अनेकरूपता के कारण शक्तियों में भी अनेकरूपता आ गई। शक्तिसाधना में १० महाविद्याओं को शक्ति तन्त्रों ने विशेप मान्यता दी है। इनके नाम इस प्रकार हैं : (१) काली, (२) तारा, (३) त्रिपुरा, (४) भुवनेश्वरी, (५) भैरवी, (६) छिन्नमस्ता, (७) धूमावती, (८) मातंगी, (९) कमला, (१०) वगलामुखी।

काली तारा महाविद्या पोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
मातंगी सिद्धविद्या च कथिता वगलामुखी।
एता दश महाविद्याः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः॥

इसके पश्चात् पंचरात्र ग्रन्थों में शक्ति की उपासना का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जायगा। पाश्चात्य विद्वान स्चह्राडर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इण्ट्रोडक्शन टू दि पंचरात्र एण्ड अहिर्वुध्न्य' में पंचरात्र ग्रन्थों की संख्या १०८ लिखी है। रचना शैली

---

१. डॉ० श्री राममूर्ति : उपासना विशेषांक, कल्याण, पृ० ३६४

की दृष्टि से इनमें पर्याप्त अन्तर है, किन्तु उक्त विद्वान के अनुसार पंचरात्र ग्रन्थों का अन्तिम प्रणयन ८वीं शताब्दी तक हो चुका था।[1]

पंचरात्र ग्रन्थों में अहिर्बुध्न्यसंहिता तथा जयाख्यसंहिता विशेष महत्वपूर्ण हैं। जयाख्य० में शक्ति के विषय में इस प्रकार उल्लेख मिलता है :

सूर्यस्य रश्मयो यद्वदूर्मयश्चाम्बुधेरिव ।
सर्वैश्वर्य प्रभावेण कमला श्रीपतेस्तथा ॥ (जयाख्य० । ६।७८)

अर्थात् जिस प्रकार सूर्य की रश्मियाँ, समुद्र की लहरें परस्पर अभिन्न हैं, उसी प्रकार कमला (लक्ष्मी) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के प्रभाव से श्रीपति से अभिन्न है।

इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन तन्त्रों के रचना काल तक लक्ष्मी विष्णु के समकक्ष प्रतिष्ठित हो चुकी थी।

अहिर्बुध्न्य० (३।६।१०) में लक्ष्मी, श्री, पद्मा, कमला आदिशक्ति के नामों की व्युत्पत्तियों का प्रदर्शन कर यह सिद्ध किया गया है कि वह शक्ति जगत में व्याप्त है, वैष्णव भाव को स्वीकार करती है, अव्यक्तकाल पुंभावा है और कामनाओं की पूर्ति करती हैं। इसी ग्रन्थ में आगे चल कर विष्णु की दो मुख्य शक्तियों का वर्णन किया गया है। उनमें प्रथम इच्छात्मिका शक्ति और द्वितीय क्रियात्मिका शक्ति है। इनमें प्रथम लक्ष्मी है और द्वितीय सुदर्शन चक्र है।[2] इसी प्रकार सात्वतसंहिता परमेश्वरसंहिता एवं पाराशरसंहिता प्रभृति ग्रन्थों में शक्ति के अनेक रूपों का वर्णन मिलता है।

मध्यकाल (६०० ई०—१२०० ई०)

पुराणों में शक्ति की उपासना का इतिहास प्रस्तुत करते हुये हमने इस बात का उल्लेख कर दिया है कि उस समय तक लक्ष्मी, दुर्गा, उमा, काली, सरस्वती प्रभृति देवियों की पूजा प्रचलित हो चुकी थी।

श्रीमद्भागवतपुराण जिसकी रचना छठवीं अथवा सातवी शताब्दी में मानी जाती है, उसमें श्री सीता जी को लक्ष्मी का अवतार माना गया है। इस पुराण से पूर्व मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वायु तथा मत्स्यपुराण में सीता के लक्ष्मीरूप का उल्लेख नहीं मिलता। यद्यपि वाल्मीकि के उत्तरकाण्ड में (सर्ग ११७ के २७वें श्लोक में) सीता जी को लक्ष्मी का अवतार माना गया है, पर अधिकांश विद्वान उसे प्रक्षिप्त मानते हैं, क्योंकि मध्यवर्ती काण्डों में ऐसा उल्लेख नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार स्वामी रामानुज (११वीं शतक) के समय तक अन्य देवियों की अपेक्षा लक्ष्मी जी की प्रतिष्ठा सर्वोपरि रही। तन्त्रों के माध्यम से जिन शक्तियों का

---

१. इन्ट्रोडेक्शन टू दि पंचरात्र एण्ड अहिर्बुध्न्य (स्चह्राडर)

२. अहिर्बुध्न्य संहिता (३६।५३, ५७)

विकास हुआ था, वे लक्ष्मी से आगे बढ़कर प्रतिष्ठा नही प्राप्त कर सकी। इन स्वामी रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत की प्रतिष्ठा कर लक्ष्मीनारायण की उपासना का प्रचार किया। १२वीं शतक तक श्रीराधा ने भी शक्ति के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। स्वामी निम्बार्काचार्य (१२ वीं शतक) ने द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रचार किया और राधाकृष्ण की युगल उपासना पर विशेप बल दिया।

आधुनिक काल (१२०० ई० से अब तक)

निम्बार्काचार्य द्वारा प्रतिष्ठित राधा को कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के रूप में उत्तरोत्तर प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगी और इधर रामभक्ति के प्रचार के कारण श्रीसीता की भी प्रतिष्ठा आद्याशक्ति के रूप में होने लगी। रामानुज सम्प्रदाय के परवर्ती आचार्यों ने राम को परमपुरुष और सीता को आद्याप्रकृति के रूप में प्रतिष्ठा दी। अगस्त्यसहिता, राघवीयसंहिता, रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, रामोत्तरतापनीय उपनिपद्, रामरहस्योपनिपद् प्रभृति ग्रन्थ इस बात के प्रमाण है। १४वी शताब्दी मे स्वामी रामानन्द जी ने राम की आद्याशक्ति सीता की पूर्ण प्रतिष्ठा की। वैष्णव मताब्ज भास्कर तथा रामार्चनपद्धति में उन्होने राम को विष्णुस्वरूप और श्री सीता को उनकी शक्ति लक्ष्मी का स्वरूप माना है। १४वी शतक में जीव गोस्वामी ने राधावाद की पुष्टि की।

१५वी शतक में स्वामी बल्लभाचार्य जी ने राधा जी की शक्ति मान्यता का परिपोषण किया। लालित्य के कारण सीतावाद की तुलना में राधावाद अधिक लोकप्रिय हुआ। १६वी शताब्दी में राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रचलित होने पर चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव में राधा की आराधना स्वतन्त्र रूप से होने लगी। इसी प्रकार हिन्दी के क्षेत्र मे भक्तप्रवर तुलसी के कारण सीता जी का उद्भवस्थितिसंहारकारिणी रूप द्रुतिगति से प्रतिष्ठित हो गया। कृष्ण की मधुराभक्ति का प्रभाव रामभक्ति पर भी पड़ा। परिणाम यह हुआ कि कृष्णभक्ति की माधुरी की भाँति रामभक्ति में भी माधुरी का समावेश हुआ। इसी प्रकार १६वीं शताब्दी के अन्त तक रसिकसम्प्रदाय मे श्री सीता जी की श्रृंगारप्रधान लीलाओं का उल्लेख होने लगा। इस प्रकार १८वी शताब्दी तक सीता तथा राधा की मधुरोपासना उत्तरोत्तर घनी भूत होती गई।

१९वी शताब्दी में शक्ति उपासना का स्रोत क्षीण होने लगा। केवल मठों, मंदिरों एवं साधुओं तक उपासना का क्षेत्र सीमित हो गया। श्रृंगार की प्रवृत्ति से ऊबकर इस सुधारवादी युग में जनता ने सीता जी के शुद्धरूप (आद्याशक्ति) को पुनः अपना लिया है और राधा जी के श्रृंगारप्रधान रूप में भी पर्याप्त सुधार कर

लिया है। साम्प्रदायिक उपासना अब भी प्रचलित है। इस समय काली, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, सीता आदि शक्तियों की स्फुट उपासना जनता में प्रचलित है। युगीन परिस्थितियों के कारण शक्ति उपासना का स्रोत क्षीण हो गया है।

(ग) शक्ति तत्व में श्री सीता का प्रवेश

हम विगत पृष्ठों में इस बात का संकेत कर चुके हैं कि साहित्य के क्षेत्र में श्री सीता की प्रतिष्ठा प्रथम हुई है, किन्तु धार्मिक क्षेत्र में लक्ष्मी विग्रह के रूप में उनका प्रवेश पश्चात् हुआ है। जहाँ तक सीता शब्द के उल्लेख का प्रश्न है, वह तो विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ में कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में ऋग्वेद में ही कई बार आया है।[1]

सीता सावित्री के नाम से तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक अन्य उल्लेख भी प्राप्त होता है।[2] इसके अनुसार सीता सावित्री का विवाह राजा सोम के साथ सम्पन्न हुआ था। सोम का अर्थ चन्द्र भी होता है: ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद में जिस कृषि अधिष्ठात्री देवी के रूप में सीता का उल्लेख हुआ है, वह कालान्तर में तैत्ति० की सीता सावित्री के रूप में एकाकार हो गई। इसी प्रकार राजा सोम के पर्यायवाची चन्द्र को श्रीराम के साथ संपृक्त कर दिया गया। इस प्रसंग में यह तर्क देना असंगत है कि राम तो सूर्यवंशी थे, अतः चन्द्र से उनके नाम के सम्पर्क का कोई औचित्य नहीं। वस्तुतः गुणकृत औचित्य को प्रत्येक व्यक्ति मान्यता देता है। हमारे विचार से राम के लोकप्रिय गुणों के कारण ही सादृश्यात् उनके नाम के साथ चन्द्र शब्द का संयोग सर्वथा उचित है। इसी प्रकार सीता विषयक दोनों उल्लेखों की विशेषतायें भी सम्पृक्त हो गई और भूमिजा सीता का बीज रूप यहीं अस्तित्व में आया। सम्भवतः सीता सावित्री के अस्तित्व के कारण ही पूर्व प्रसिद्ध सावित्री के सतीत्व का आरोप भी परवर्ती सीता व्यक्तित्व में प्रविष्ट हुआ। अतः तैत्ति० के रचनाकाल के लगभग सीता का बीज अन्विष्ट होना चाहिए।

वैदिक साहित्य में कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता का प्राधान्य रहा। आगे चलकर गृह्यसूत्रों में भी इसी की महत्ता का विस्तार होता रहा। शांखायन गृ० सू० ४। १३, आश्वलायन गृ० सू० २, १०, ३ : ४, शुक्ल यजुर्वेद के पारस्कर गृ० सू० २।१३ आदि में सीता शब्द का प्रयोग कृषिसम्बद्ध सामग्री के रूप में ही देखा जाता है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य तथा सूत्र-

---

१. अर्वाची सुभगे भव सीते० (४ । ५ । ६)
इन्द्रः सीतां निगृह्णातु (ऋक्०, ४ । ५७ । ७ : १, १४०, ४)

२. तैत्ति० ब्रा० (२ । ३ । १०)

साहित्य में सीता का सम्बन्ध मुख्यतः कृषिकर्म से रहा, कहीं कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में और कहीं लांगल पद्धति के रूप में। वस्तुतः इस काल तक सीता में मानवी व्यक्तित्व का आरोप नहीं हो सका।

वाल्मीकि रामायण में मानवी सीता का उल्लेख हुआ है। वैदिककाल से लक्ष्मी-शक्ति का जो रूप पल्लवित होने लगा था, उसके साथ सीता के तादात्म्य का उल्लेख वाल्मीकि ने नही किया। प्रचलित रामायण के युद्धकाण्ड के अन्तर्गत सर्ग ११७ के २७वें श्लोक में सीता के लक्ष्मी अवतार होने का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वान इसे प्रक्षिप्त मानते हैं, क्योंकि तब तक रामभक्ति के प्रचार का अस्तित्व पुरातन ग्रन्थो में नहीं प्राप्त होता था। भक्ति का इतिहास विशेष प्राचीन है। अवतारवाद संहिताकाल से ही प्रचलित था (तैत्ति० संहिता, २, १, ३, १) किन्तु अवतारो की पूजा का उल्लेख प्राचीनतम ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता।

डॉ० हेमचन्द्र राव चौधरी ने यह अनुमान प्रस्तुत किया है कि सम्भवतः तृतीयशतक ईसापूर्व में वासुदेव कृष्ण और विष्णु में ऐक्यभावना मान्य हुई। भागवत सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण इष्टदेव माने जाते थे और ब्राह्मण धर्म के अनुसार विष्णु। बौद्धधर्म की प्रतिक्रियास्वरूप ब्राह्मणों में सात्वतों अथवा भागवतों के आराध्य कृष्ण को अपने विष्णु का अवतार मान लिया।[1] तैत्ति० आरण्यक (१०, १, ६) में वासु-देव कृष्ण तथा विष्णु के ऐक्य का उल्लेख प्राप्त होता है।

विद्वानों की यह धारणा है कि ई० पू० ३०० में कृष्ण की मान्यता स्थापित हो जाने पर सम्भवतः ई० पू० प्रथम शतक से ही रामावतार की भावना का प्रचलन हुआ। कविवर कालिदास ने मेघदूत में 'जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु' (पूर्वमेघ श्लो० १) के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि जनकतनया सीता, उस समय तक परमपवित्र देवी के रूप में मान्य हो चुकी थी और इनके नाम से सम्बद्ध रामगिरि जैसे तीर्थो का महत्व भी प्रतिष्ठित होने लगा था। अतः मूलरूप में शक्ति के क्षेत्र में सीता का प्रवेश ई० पू० प्रथम शताब्दी में ही सिद्ध होता है क्योंकि कविवर कालिदास का स्थितिकाल यही मान्य है।[2]

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में अवतारवाद की प्रचुरता वर्तमान रामा-यण के उत्तरकाण्ड में पर्याप्त रूप से प्राप्त होती है। इसके १७ वें सर्ग में सीता को वेदवती का अवतार माना गया है। रामायण में सभी विद्वानों ने उत्तरकाण्ड की सामग्री प्रसिद्ध मानी है। इतना होने पर भी रामायण का आधुनिक रूप द्वितीय शताब्दी ई०

---

१. एच० राय० चौधरी : अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट, पृ० ६३।

२. सस्कृत साहित्य का इतिहास : पं० बलदेव उपाध्याय।

तक निर्धारित हो चुका था।[1] अतः सीता में लक्ष्मीशक्ति का आरोप इसी समय तक मान्य होना चाहिए।

महाभारत में दाशरथि राम को स्पष्टतया विष्णु का अवतार माना गया है। यथा :

अथ दाशरथिर्वीरो रामो नाम महाबलः।
विष्णुर्मानुष्यरूपेण चचार वसुधामिमाम्॥ (महाभा०, आर० ३।१४७)

अर्थात् महाबलवान दशरथ के पुत्र राम विष्णु थे जो मनुष्य शरीर धारण कर पृथ्वी में विचरण करते थे। इस प्रकार स्पष्ट रूप से तो नहीं, किन्तु राम पत्नी के रूप में सीताजी विष्णुपत्नी महाभारत में भी सिद्ध होती हैं।

संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम नाटक अभिषेक नाटक में भास ने सीता को मनुष्यशरीरधारिणी साक्षात् लक्ष्मी कहा है :

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम्।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता॥
(भासकृत अभिषेक नाटक, अंक ६।२८ श्लो०)

भास का रचना काल ई० पू० द्वितीय शतक माना जाता है।[2] इससे सिद्ध होता है कि ई० पू० द्वितीय शतक में राम विष्णु के रूप में और सीता लक्ष्मी के रूप में मान्य हो गई थीं। गुप्तकाल तक उक्त रूपों की पर्याप्त प्रतिष्ठा हो चुकी थी, क्योंकि प्राचीन पुराणों में राम के विष्णु रूप का उल्लेख पाया जाता है।[3] इनमें सीता के लक्ष्मीस्वरूप का भी उल्लेख है। झाँसी जनपद के देवगढ़ के मन्दिर में रामायण के अनेक दृश्य अंकित हैं। यह विष्णु मन्दिर ६वीं शतक में निर्मित हुआ था। इस प्रमाण से भी यह स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल के अन्त तक रामभक्ति का पर्याप्त प्रचार हो गया था।

डॉ० दीनदयाल ने ईसा की पाँचवीं शताब्दी से १०वीं शताब्दी तक दक्षिण-भारत के आलवर सन्तों में रामभक्ति का क्रमबद्ध प्रचार माना है। ६वीं शतक की पूर्वार्द्ध में शैव अलवर का अस्तित्व माना जाता है, जिनमें रामभक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित थी।[4]

आर० डी० भण्डारकर ने उल्लेख किया है कि यद्यपि ईसा के समय से ही राम

---

१. राम कथा डॉ० बुल्के
२. संस्कृत साहित्य का इतिहास : पं० बलदेव उपाध्याय
३. हरिवंश (१४१), भागवत (स्कं० ९ अ० १०), ब्रह्म० (२१३ । १२९), विष्णु (१, ४, ८)
४. डॉ० दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० ३७, ३८

विष्णु के अवतारों में माने गये है, किन्तु उनकी विशेष प्रतिष्ठा ग्यारहवी शताब्दी के लगभग ही प्रारम्भ हुई थी।[1] विवेचन करने से यह मत इतिहाससम्मत प्रतीत होता है। एकादश शतक में स्वामी रामानुजाचार्य ने लक्ष्मीनारायण की उपासना प्रारम्भ की थी और अवतारों में श्री रामावतार का विशेष उल्लेख किया है।[2] इस सम्प्रदाय में राम की दास्यभक्ति का प्रतिपादन हुआ है। विशिष्टाद्वैत के संस्थापक आचार्य रामानुज ही माने जाते है। यद्यपि स्वामी रामानुजाचार्य ने राम भक्ति के सम्बन्ध मे अधिक उल्लेख नही किया, किन्तु परवर्ती आचार्यो ने राम भक्ति की पूर्ण प्रतिष्ठा की ओर उसे शास्त्रीय घोषित करने के लिए प्रचुर साहित्य का निर्माण किया। अगस्त्य संहिता, कालिराघव, बृहद्राघव तथा राघवीय संहिता में राम की दास्यभक्ति का विशेष उल्लेख पाया जाता है, इनमें श्री सीता जी मूलप्रकृति तथा राम परम पुरुष माने गए हैं। इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामरहस्योपनिषद्, रामपूर्वतापनीय उपनिषद् तथा रामोत्तरतापिनी उपनिषद् की गणना की जाती है। इनमें राम एवं सीता से सम्बद्ध अनेक मंत्रों का उल्लेख पाया जाता है। इन ग्रन्थों का रचनाकाल ११वीं शताब्दी माना जाता है।[3] साम्प्रदायिक उपासना को विशेष प्रतिष्ठा देने के लिए ही सीतोपनिषद् की रचना की गई प्रतीत होती है।

इसके अनुसार सीता जी वीरशक्ति चतुर्भुजी रूप धारण करने वाली है। वेद शास्त्रादि मूर्तिमान होकर उनकी स्तुति करते हैं। अष्टदलकमलस्था सीता देवी महादेवी हैं। ये कारण तथा कार्य का निर्माण करने वाली है। वे स्थिर होकर प्रसन्नचित्त होती है और अखिल देव उनकी अर्चना करते है।[4]

रामानुजाचार्य के अनन्तर स्वामी रामानन्द ने (१४१०-१५१० ई०) वैष्णव धर्म की पर्याप्त प्रतिष्ठा की, उन्होंने रामानुज के लक्ष्मीनारायण की उपासना में प्रगति की और लक्ष्मी के स्थान पर सीता तथा नारायण के स्थान पर राम की उपासना को बद्धमूल किया। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ वैष्णव मताब्ज भास्कर तथा रामार्चन पद्धति से इसका प्रमाण मिलता है।

साम्प्रदायिक रामायणों के प्रचलन से राम परब्रह्म और सीता पराशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। आध्यात्म रामायण मे इस तथ्य का स्थल-स्थल पर प्रदर्शन किया गया है। वेदान्त दर्शन के आधार पर रामभक्ति का प्रतिपादन ही इस ग्रन्थ में मुखर हुआ है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल १४वीं तथा १५वीं ई० के मध्य अनुमित

---

१. वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म, पृ० ४७, ४८ : आर० डी० भण्डारकर
२. श्रीभाष्य (२, २, ४२) स्वामी रामानुजाचार्य
३. ए वेबर (मैम्बयार बर्लिन एकाडेमी) १८६४, पृ० २८४
४. सीतोपनिषद् (के आधार पर), पृ० ३०, ३५

है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त अद्‌भुतरामायण, आनन्द रामायण प्रभृति साम्प्रदायिक रामायणों ने सीता को जगज्जननी तथा राम को जगत्पिता के रूप में मान्यता प्रदान की है।

सीताराम की इस आदर्श भक्ति-भावना पर कृष्णभक्ति के रसिकस्वरूप का प्रभाव पड़ा, परिणामस्वरूप लगभग १६०० ई० के अन्तिम दशक से रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय का अभ्युदय हुआ जो हिन्दी साहित्य में अग्रदास की रचनाओं में पाया जाता है। इन्हें अग्रअली के नाम से साम्प्रदायिक मान्यता प्राप्त है। इन्होंने अपने को जानकी जी की एक सखी मानकर मधुराभक्ति को प्रधानता प्रदान की है। इनके रससम्प्रदाय को जानकी सम्प्रदाय, जानकीवल्लभ सम्प्रदाय, रहस्य सम्प्रदाय अथवा सिया सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुसार सीता राम की सेवा का सुख प्राप्त करना तथा उनकी अलौकिक लीलाओं का आनन्द प्राप्त करना भक्त का लक्ष्य होता है। वस्तुतः इस सम्प्रदाय में राम को गौण तथा सीता जी को मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है। यथा :

सर्वोपरि मेरी स्वामिनी राघौ की प्यारी।
जाको परसि और नहिं परसी व्रतलीना एक नारी।। (अग्रदास पदावली)

आगे चलकर यह सम्प्रदाय १८वीं शताब्दी तक विशेष पल्लवित रहा किन्तु १९ वीं शताब्दी में श्रीसीता का वह रूप जो लक्ष्मी से अभिन्न माना जाने लगा था, साहित्य के क्षेत्र में मान्य न रह गया और आदर्श मानवी के रूप में उनकी प्रतिष्ठा आज भी अक्षुण्ण है। अब केवल साम्प्रदायिक महात्माओं में ही अपने-अपने मतों के आधार पर सीता जी को शक्ति के रूप में स्थान प्राप्त है। हिन्दू जनता जो कि आस्तिकता में विश्वास रखती है, वहाँ भी सीताराम की आराधना प्रचलित है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि श्री सीता ने शक्ति के रूप में ईसा की द्वितीय शताब्दी में मान्यता प्राप्त कर ली थी। वे ऋग्वेद में वर्णित लक्ष्मी का अवतार मानी जाने लगी थीं, किन्तु उनकी भक्ति का चरम विकास स्वामी रामानन्दाचार्य के समय ही हो सका और गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो उन्हें उद्‌भवस्थितिसंहारिणी के रूप में विश्वविख्यात कर दिया।

(घ) विविध सम्प्रदायों में श्री सीता और वैविध्य

यद्यपि राम भक्ति की उपासना विष्णु भक्ति के अन्तर्गत ही आती है, जिसका मूलरूप वैदिककाल में ही प्राप्त हो जाता है,[1] किन्तु सम्प्रदायों के उदय से भक्ति भी अनेक धाराओं में प्रवाहित हुई है। स्वामी रामानुजाचार्य (११वीं शतक) ने श्री सम्प्रदाय का प्रचलन किया, जिसमें मुख्यतया लक्ष्मीनारायण की उपासना पर बल

---

१. पं० बलदेव उपाध्याय : भागवत सम्प्रदाय, पृ० ५१, ८७

दिया गया। इस प्रकार वैष्णवी भक्ति के आचार्य के रूप में रामानुजाचार्य की प्रतिष्ठा हुई है। आगे चल कर स्वामी रामानन्दाचार्य (१४वीं शतक) ने रामावत सम्प्रदाय के अन्तर्गत सीताराम की पूर्ण प्रतिष्ठा की। श्री सीता के सम्बन्ध में स्वामी रामानन्दाचार्य के विचार इस प्रकार हैं :

दिग्पालों के अद्भुत भोग ऐश्वर्य तथा सम्पूर्ण चित्रमय विश्व जिनके कटाक्षों पर आश्रित है, जो शुभगुण सम्पन्ना है, वात्सल्य की सीमा हैं, अनन्त विद्युत सुषमामयी हैं, असीम क्षमाशीला पद्माक्षी वही सीता भगवान राम की प्रिया है।[1] नव प्रफुल्लित कमलतुल्य उनके नेत्र हैं। प्रणतजनों के लिए कामधेनु सदृश उनके चरण है, अशरण-शरण है।[2] श्री सीता जी की सहायता से ही भक्त राम को प्राप्त कर पाता है। सीता पुरुषकारभूता है[3] और वही उपाय भी हैं। सीता की उदारता के विषय में यह धारणा मानी है :

अप्रमेय कृपासिन्धुस्वरूपे रामसप्रिये ।
सुप्रमाता निशासीते श्री रामाभिमुखीभव ।। (श्री रा० प० पृ० ३९)

सीता की उपासना के सम्बन्ध में इस मतानुसार भक्त को कोई विशेष उपाय नहीं करना पड़ता। प्रपन्नजनों द्वारा कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग में से किसी एक का भी अनुष्ठान किये जाने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है।[4] भक्ति के विषय में रामानन्द सम्प्रदाय चार प्रमुख भेदों को स्वीकार करता है : (क) पिता पुत्र सम्बन्ध, (ख) सखा सम्बन्ध, (ग) पुत्र-पिता सम्बन्ध, (घ) पति-पत्नी सम्बन्ध। इस प्रकार दास्यभक्ति सख्यभक्ति, वात्सल्य भक्ति और माधुर्य भक्ति ये चार भेद माने गये। इनके अतिरिक्त शान्ताभक्ति भी स्वीकार की गई है।

सीता के उपासना के दो रूप ही प्रमुख प्रतीत होते है : (क) मर्यादोपासना, (ख) मधुरोपासना। इनमें मर्यादोपासना निश्चित रूप से प्राचीनतर है, क्योंकि स्वामी रामानन्दाचार्य ने दास्यभक्ति से अनुप्रेरित होकर उनके मर्यादित रूप की ही प्रतिष्ठा की है। कविवर तुलसी इसी रूप के उपासक थे।

यद्यपि रसिक भक्ति-भावना या मधुरोपासना का सूत्र अलवार सन्त शठकोप से ही प्राप्त होता है, जो कि ९वीं शताब्दी में विद्यमान थे, किन्तु उसकी भक्ति-भावना का साम्प्रदायिक रूप १७ वी शताब्दी में स्वामी अग्रदास की रचनाओं मे ही प्रतिष्ठित हुआ है। इसके मूल में कृष्ण भक्ति की रसिकता की प्रेरणा मानी जा सकती हैं।

१. श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर, पृ० १ (रामानन्दाचार्य)
२. श्री रा० प० रा० ना० दास, पृष्ठ २३
३. पुरुषकारपरा विनिगद्यते सकमला कमला कमलप्रिया। (वही, पृ० १७)
४. वै० म० भा०, पृ० १९

आचार्य माधव दास्य की ही स्वाभाविक परिणति माधुर्य को मानते हैं।[1] वस्तुत: यह रसिकोपासना रामानन्दाचार्य के सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही विकसित मानी जाती है। इस प्रकार यह कहना संगत है कि रामावत सम्प्रदाय में ही माधुर्य भक्ति का उत्कर्ष हुआ है। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत सीतोपनिषद् की विशेष प्रतिष्ठा है। इसमें इस प्रकार सीता विषयक मान्यतायें प्राप्त हैं :

सीता मूल प्रकृति स्वरूपा हैं, अत: उन्हें प्रकृति कहते हैं और प्रणव की प्रकृति-रूपा होने से भी उन्हें प्रकृति कहते है। वे साक्षात् योगामाया है। उनका सीता नाम त्रिवर्णात्मक है। सम्पूर्ण विश्व प्रपंच के बीज भगवान् विष्णु है, उनकी योगमाया का रूप ईकार है। स कार को सत्य अमृतसिद्धि चन्द्र तथा प्राप्ति का वाचक कहते है। दीर्घाकारयुक्त त कार विस्तारक एवं महालक्ष्मी का स्वरूप है। ई कार वाली अव्यक्त महामाया अपने अमृतमय अवयवों और दिव्याभूषणों से विभूषित रूप से व्यक्त होती हैं। वे त्रयरूपा अपने प्रथम रूप में शब्द ब्रह्म से युक्त है। वे प्रसन्न होकर बुद्धिरूप से बोध देने वाली हैं। वे अपने द्वितीय रूप मे जब इस भूतल पर व्यक्त हुईं तब जनक की यज्ञभूमि में हल के अग्रभाग से प्रकट हुईं। उनका तृतीय रूप ई कारमय एवं अव्यक्त है। यही तीन रूप पर्याप्त रूप से सीता कहे गये है।[2]

सेयं सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सर्वाधारकार्य कारणमयी, महालक्ष्मी देवेशस्य भिन्नाभिन्नरूपा, चेतनाचेतनात्मिका, ब्रह्म-स्थावरात्मा, तद्गुण कर्मविभागभेंदाच्छरीररूपा देवर्षि मनुष्य गन्धर्वरूपा, असुरराक्षस-भूतप्रेतपिशाच भूतादि भूतशरीररूपा भूतेन्द्रिय मन:प्राणरूपेति विज्ञायते ॥ (सीतोपनिषद्। १०)

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार सीता को सर्वाधिक महत्ता प्रदान की गई है। वे इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और साक्षात्शक्ति के रूप मे प्रकट होती है।[3] इच्छाशक्ति तीन प्रकार की होती है (श्री, भू, नीला)।[4] क्रियाशक्ति का स्वरूप इस प्रकार है। हरि के मुख से नाद उत्पन्न हुआ, नाद से बिन्दु, बिन्दु से ओंकार, ओंकार से परे राम वैखानस पर्वत है, जिस पर कर्मज्ञानमयी अनेक शाखाये होती है।[5] साक्षात् शक्ति भगवान की इच्छामात्र से वह संसार के रूपो को प्रकट करती हुई, दृश्य जगत में स्वयं व्यक्त होती

१. रामभक्ति मे मधुरोपासना, ११८ (भुनेश्वरनाथ मिश्र, माधव)

२. सीतोपनिषद्। १, ६ ३. वही, ११

४. वही, १२

५. क्रियाशक्ति स्वरूपम्—हरेर्मुखान्नाद:। तन्नादाद्बिन्दु:। बिन्दोरोंकार: ओंकारात् परतो रामवैखानसपर्वत:। तत्पर्वते कर्मज्ञानमयी बहुशाखा भवन्ति ॥ (वही २०)

है। वे शान्ति और तेजोमयी कृपास्वरूपा, शासनमयी, व्यक्ताव्यक्तकारणस्वरूपा, भगवदनुगामिनी, उनसे अभिन्न प्रभु आश्रिता, कथनीय एवं अकथनीय रूपा, निमेषोत्पत्ति, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह में सामर्थ्यशील तथा अविनाशिनी शक्ति कहलाती है।[1] इसी प्रकार सीता की वीरशक्ति का भी उल्लेख पाया जाता है, जो चतुर्भुजा है, जिनके हाथो मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा तथा युगल कमल शोभायमान रहते है। चार श्वेतहस्ती रत्नजटित कलशों द्वारा अमृतजल से उनका अभिषेक करते है और अनेक देव उन कामधेनुरूपा सीता की वन्दना करते है। वेदशास्त्र उनकी स्तुति करते है, वे महादेवी अष्टदलकमल पर विद्यमान रहती है।[2]

रसिक सम्प्रदाय मे सीता शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है :

सिनोति=वश करोति स्वचेष्टया भगवन्तं सा सीता।

अर्थात जो शक्ति अपनी चेष्टाओ से भगवान् राम को स्ववश करती है, वह सीता है। इतना ही नही, इस उपासना मे सीता के गुणो की भी सुन्दर कल्पना की गई है। युगलोपासना मे अभेद होने पर भी साधना मे प्रियापरत्व के कारण रसिकों ने सीता मे निम्नलिखित अष्टगुणो की कल्पना की है।

(क) सर्वांग सुन्दर प्रकाशमय रूप, (ख) किशोरवय, (ग) स्वरमाधुर्य, (घ) संगीतनृत्य प्रवीणता, (ङ) पुरुषकारत्व, (च) पराशक्तित्व, (छ) अखण्ड सौभाग्य, (ज) स्वाधीनपतित्व।

रसिक साधना में यह विश्वास किया जाता है कि प्रियतमा के इन गुणो के चिन्तन के प्रभाव से प्रिय की कृपा शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है। राम तथा सीता मे पुरुष तथा प्रकृति का सम्बन्ध है। उनकी साकेतलीला प्रकृति के साथ पुरुष की नित्य क्रीडा का प्रतिरूप है। सीता के बिना राम और राम के बिना सीता का अस्तित्व ही नही कल्पित किया जा सकता :

सीता राम विना नैव रामः सीतां विना नहि।
श्री सीतारामयोरेषः सम्बन्धः शाश्वतो मतः ॥ (जानकी विलास)

यही कारण है कि रसिकोपासना में सीता का विरह नही माना जाता और उनके सुखमय रूप को ही स्वीकार किया जाता है। इनकी मान्यता है कि राम वनवास मे चित्रकूट से आगे गये ही नहीं। वे तो ब्रह्म रूप में अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता के साथ चित्रकूट मे विहार करते रहे और चित्रकूट से आगे लक्ष्मी नारायण तथा शेष उनके रूप में गये थे।[3] यही कारण है कि इस सम्प्रदाय में सीता अलौकिक होती हुई भी श्रृंगार क्रीडारत हो गई है। इस सम्प्रदाय में सीताजी की आठ सखियो की कल्पना की

१. सीतोपनिषद्, पृ० ३४ २. सीतोपनिषद्, पृ० ३७

३. राम भक्ति मे रसिक सम्प्रदाय (डॉ० भगवती सिंह), पृ० २९७ (प्रथम सं०)

जाती है।[1] इसी प्रकार सीता जी की अंगजा सखियों की संख्या ३३ और राससहायिका सखियों की संख्या तो सहस्रों तक कल्पित की जाती है।[2]

इस प्रकार राम भक्ति का ऐतिहासिक विवेचन करने से यह प्रतीत होता है कि वैष्णवसाधना के अन्तर्गत शुद्धोपासना और मधुरोपासना के रूप में सीताजी की उपासना हुई है। दोनों क्षेत्रों में सीता जी की अलौकिक शक्तिमत्ता का प्रतिपादन मिलता है, किन्तु रसिक सम्प्रदाय में सीता जी कृत्रिम हो गई है। इसके अतिरिक्त शनैः शनैः भक्तों का झुकाव राम की अपेक्षा सीता की ओर अधिक हो गया है। ये उपासक यह मानते हैं कि मूलप्रकृति सीता जी का अंश होने से वह नित्य स्त्रीरूपा है। शरीरान्त होने पर शुद्ध स्त्री रूप प्राप्त कर जीव अंशी सीता जी की शरण में जाता है और उनके माध्यम से उसे परमपुरुष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार रसिक सम्प्रदाय में सीता का ऐश्वर्य एवं विलास प्रमुख है, जब कि रामानन्द के सम्प्रदाय में दास्यभावना के कारण सीता जी का सुमर्यादित एवं शुद्ध आध्यात्मिक रूप ही लिया गया है।

---

१. श्री प्रसाद सखी, चन्द्रकला, विमला, मदनकला, विश्वमोहनी, उर्मिला, चपकला, रूपलता, (वही पृ० २९१)

२. वही, पृ० २८९

उपसंहार

भारतीय वाङ्मय में श्री सीता के स्वरूप का व्यापक विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि सामयिक प्रवाह के अनुसार उसमें अनेक परिवर्तन होते गये है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। क्षेत्रीय विभिन्नताओं एव मान्यताओ के कारण भी उसमें अनेकरूपता दृष्टिगोचर होती है, किन्तु सीता के सौन्दर्य एव उनके पातिव्रत्य के विषय में आश्चर्यजनक एकरूपता प्राप्त होती है। किसी भारतीय एवं विदेशी राम-साहित्य में न तो सीता कुरूप कही गयी और न तो इनके पतिप्रेम पर ही किसी प्रकार की बौछार की गई। शेप अनेक अंशों में विभिन्नता के दर्शन होते है।

सर्वप्रथम सीता के जन्म पर ही विभिन्नता का रूप इस प्रकार प्रतीत होता है: प्रचलित वाल्मीकि रामायण एवं अनेक प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थो मे सीता की उत्पत्ति भूमि से मानी गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक सीता, जो कि कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में बहुचर्चित रही है, वही भूमिजा सीता की मान्यता में मूल है। मेरे विचार से सीता का प्राचीनतम जन्मवृत्तान्त यही उचित प्रतीत होता है। यद्यपि महाभारत के रामोपाख्यान, हरिवंश पुराण तथा पउम चरियं में सीता जनक की औरस पुत्री मानी गई है, किन्तु उक्त सभी रचनाये प्रचलित वाल्मीकि रामायण के पश्चात् की मानी जाती है। महाभारत का रामोपाख्यान भी वाल्मीकि रामायण से अनुप्राणित माना जाता है। जब भूमिजा सीता की मान्यता पुष्ट हो गई होगी और दत्तकपुत्री के स्थान पर सीता औरस पुत्री के रूप में प्रतिष्ठित हो चली होंगी, तभी उक्त ग्रन्थो मे सीता को जनकजा के रूप के प्रतिष्ठित किया गया होगा। समाज में प्रायः आज भी यह देखा जाता है कि कालान्तर में दत्तक पुत्र या पुत्री भी औरस मान लिये जाते हैं और इसी रूप में व्यवहारजगत उसको मान्यता भी देता है।

आगे चल कर रावणात्मजा या मन्दोदरी की पुत्री के रूप में सीता का उल्लेख मिलता है। वसुदेवहिण्डि (५वी शताब्दी) गुणभद्र कृत्त उत्तर पुराण तथा कुछ विदेशी रामायणों में सीता की उत्पत्ति इसी प्रकार बतलाई गई है। दशावतार चरित (११वी शतक) में क्षेमेन्द्र ने सीता के भूमिजा रूप के पूर्व उन्हें पद्मजा के रूप मे कल्पित किया है। अद्भुत रामायण के अनुसार सीता ऋपियो के रक्त से उत्पन्न हुई है। आनन्द रामायण में सीता अग्निजा के रूप मे वर्णित है। राम कथा को विकृत करने वाले बौद्धो ने दशरथ जातक मे सीता को दशरथात्मजा के रूप मे प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार सीता का मूलजन्म भूमिजा के रूप में ही सर्वप्राचीन मानना संगत है, जिसका विकास उक्त अनेक रूपों मे हुआ है।

सीता और लक्ष्मी की अभिन्नता का भी एक स्वतन्त्र इतिहास है। प्रचलित वाल्मीकि रामायण के सम्पादनकाल तक (२०० ई० पू०) सीता और लक्ष्मी की एकता स्थापित होने लगी थी। यद्यपि वायु आदि प्राचीन पुराणो तथा रघुवश (१०० ई० पू०) में भी सीता और लक्ष्मी की अभिन्नता का उल्लेख नही मिलता, किन्तु हरिवंश पुराण (अ० १।४१—४०० ई०) से लेकर अनेक परवर्ती रचनाओ मे सीता तथा लक्ष्मी की अभिन्नता का उल्लेख मिलता है। ११वीं शताव्दी से सामुदायिक रामभक्ति मे तो उनके रूप में और विस्तार होने लगा, वे आद्याप्रकृति एव योगमाया तक के रूप में प्रतिष्ठित हो गई।

वाल्मीकि रामायण में विवाह के पूर्व राम और सीता के पारस्परिक दर्शन एवं पूर्वानुराग का उल्लेख नही मिलता, किन्तु आठवी शताव्दी से सीता के इस पूर्वानुराग का भी उल्लेख मिलता है। महावीर चरित, जानकीहरण, महानाटक कल्किपुराण, आनन्द रामायण, कृत्तिवास रामायण, उड़िया रामायण (वलरामदास), कम्व रामायण (तमिल) गोविन्द रामायण तथा असमीया रामायण (माधवकदली) में सामान्य अन्तरो के साथ सीता के पूर्वानुराग का उल्लेख मिलता है। प्रसन्नराघव, मैथिली कल्याण, सौपद्म रामायण, मैंदरामायण तथा रामचरित मानस में तो सीता चण्डिकायतन अथवा पुष्पवाटिका जैसे किसी न किसी एकान्त स्थान मे राम के दर्शन कर मुग्ध होती हुई चित्रित की गई हैं।

सीता विवाह के सम्वन्ध में भी अनेकरूपता प्राप्त होती है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार तो सीता वीर्यशुल्का हैं, धनुर्भंग करना ही सीता के विवाह का मूल पण था। किन्तु पउम चरिय (४०० ई०) मे जनक म्लेच्छों से पीटित होकर राम से सहायता चाहते हैं और सीता का विवाह राम के साथ करने का वचन दे देते है। धनुप चढ़ाने का प्रण तो उसकी परवर्ती चेष्टा है। सम्भवत: जैन कवि ने जानवूझ कर राम के पराक्रम को न्यून करने के लिए यह परिवर्तन किया है। इसके अतिरिक्त पुराणों एवं अन्य प्रमुख रचनाओं में स्वयम्वर का ही उल्लेख मिलता है।

सीता जी के सपत्नियाँ थी या नही, इस विपय में भी मतान्तर है। वाल्मीकि रामायण से आनन्द रामायण तक (१४वी शताव्दी) के व्राह्मणधर्मानुप्राणित साहित्य में राम के एकपत्नी-व्रत की प्रशंसा की गई है, किन्तु जैन कथाओं में राम की अनेक पत्नियों का उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम विमलसूरिकृत (पउम चरियं) तथा आगे चलकर गुणभद्रकृत उत्तर पुराण में भी सीता की ८००० सपत्नियों का उल्लेख किया गया है। सम्भवत: राम का एकपत्नी-व्रत ऐसा आदर्श था, जो धार्मिक द्वेप के कारण

जैनियो के हृदय मे स्थान नही ले सका। रसिकोपासना की प्रवलधारा मे भी सीता की अनेक सपत्नियों का उल्लेख किया गया है। १७वी शताब्दी से अग्रदास ने इस मान्यता को विशेष बल दिया है। इसका एकमात्र कारण कृष्ण के शृंगारी रूप से स्पर्धा करना ही है, फलत: रसिक कवियों ने राम को अनन्त पत्नियाँ प्रदान की है।

राम वनगमन के समय सीता जी ने अपना क्या दृष्टिकोण अपनाया, इसमें भी विभिन्नता के दर्शन होते हैं। वाल्मीकि में तो सीता सरुष एवं परुषवादिनी होने के साथ-साथ हठधर्मिणी नारी के रूप मे प्रस्तुत की गयी है। उनके इस रूप का प्रभाव प्राच्य रामायणों में भी प्रतीत होता है किन्तु उत्तरोत्तर उनके स्वभाव मे सुशीलता एवं गंभीरता की प्रतिष्ठा करना कवियों का लक्ष्य रहा है। ११वी शताब्दी से जब भक्ति का वातावरण समुन्नत होने लगा, सीता के पूर्वोक्त स्वभाव में भी परिवर्तन किया गया। भक्तहृदय सीता देवी को परुषवादिनी के रूप मे कैसे प्रस्तुत कर सकता था ?

सीता जी के ऊपर काकचंचु प्रहार की घटना में भी अनेकरूपता प्राप्त होती है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार इन्द्र का पुत्र जयन्त सीता के स्तनो पर आघात करता है। प्राय: अनेक प्राचीन रचनाओ मे लगभग ऐसा ही उल्लेख मिलता है किन्तु रामभक्ति के विशेष उत्थान काल (११वी शताब्दी) के परवर्ती ग्रन्थो मे जयन्त सीता के चरणों में चंचुप्रहार करता हुआ चित्रित किया गया है। अनेक रचनाओ मे तो इस वृत्तान्त की ही उपेक्षा कर दी गई है।

छाया सीता का वृत्तान्त भी अनेकरूपता के लिए प्रसिद्ध है। वाल्मीकि रामायण में इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। सम्भवत: इसका प्राचीनतम उल्लेख कूर्म पुराण (७वी शताब्दी) मे मिलता है। आगे चल कर ब्रह्मवैवर्त्त, देवी भागवत, अध्यात्मरामायण, भावार्थ रामायण (मराठी) आदि अनेक ग्रन्थो मे इसी छाया सीता के अपहरण का वृत्तान्त मिलता है। रसिकोपासना मे तो वास्तविक सीता चित्रकूट में ही रह जाती है। इस प्रकार रामभक्ति के प्रभाव के कारण ही छाया सीता का वृत्तान्त और सीता का अग्नि में निवास करना, ये कथानक उत्पन्न हुये प्रतीत होते है।

सीताहरण के प्रसग में भी भारतीय वाङ्मय मे बहुरूपता के दर्शन होते है। वाल्मीकि मे तो सीताहरण का दारुण रूप प्रस्तुत किया गया है। रावण की इस दारुणता को दूर करने के लिए परवर्ती कवियों ने प्रर्याप्त प्रयास किये है। छाया सीता का वृत्तान्त, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, यह भी एक नवीन प्रयास ही कहा जायेगा। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थो मे यह उल्लेख मिलता है कि रावण ने सीता का स्पर्श ही नही किया। नृसिहपुराण, उत्तरपुराण, कम्ब रामायण, अध्यात्म रामायण एवं प्रसन्नराघव आदि अनेक ग्रन्थों मे रावण परस्त्री-स्पर्शजन्य पाप से

वंचित रहकर सीता का अपहरण करता है किन्तु इन ग्रन्थों में वर्णित उपायों में विभिन्नता पाई जाती है।

अशोकवाटिका में सीता जी हनुमान को प्रत्यभिज्ञान के रूप में क्या-क्या देती हैं, इस विषय पर भी अनेकरूपता के दर्शन होते हैं। वाल्मीकि के अनुसार चूड़ामणि, काकवृत्तान्त और मैनसिल तिलक वृत्तान्त, ये तीन अभिज्ञान सीता जी ने प्रस्तुत किये। महाभारत में पूर्वोक्त दो अभिज्ञानों का ही उल्लेख मिलता है। पउम चरिय में सीता द्वारा एक उत्तरीय वस्त्र देने का उल्लेख मिलता है। तमिल की कम्ब० रामायण में सीता जी शुकीवृत्तान्त को भी अभिज्ञान वचन के रूप में हनुमान को बतलाती हैं। रसिक सम्प्रदाय के कुछ ग्रन्थों में (चित्रकूट विहार) को भी प्रत्यभिज्ञान के रूप में वर्णित किया गया है। इनमें चूड़ामणि का सर्वाधिक उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकि रामायण में जब हनुमान अपनी पीठ पर बैठाकर सीता को ले चलने के लिए उनसे निवेदन करते हैं, तब सीता उनके प्रस्ताव के विरोध में मुख्यरूप में पंचतर्क प्रस्तुत करती हैं। (१) पतनभय, (२) राक्षसों के आक्रमण की आशंका, (३) राक्षसों से युद्ध में हनुमान के पराजय की शंका तथा परिणामस्वरूप अपने गुप्त स्थान में रखी जाने की आशंका, (४) राम का अयश, (५) सती नारी के लिए परपति स्पर्शजन्य दोष। परवर्ती साहित्य में इन तर्कों में कुछ न्यूनता प्रदर्शित की गयी है, इसका कारण सीता की मुखरता को संक्षिप्त करना प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त भक्ति की मर्यादा के कारण चतुर्थ तथा पंचम तर्क को सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली है।

सीता के लंकावास काल में त्रिजटा उनकी हितैपिणी सखी के रूप में थी या नहीं, इस प्रश्न पर भी अनेक विचार मिलते हैं। वाल्मीकि रामायण (५।२७।४) एवं महाभारत (३।२६४।८) के अनुसार त्रिजटा एक वृद्धा राक्षसी थी, जो सीता के चरित्र से प्रभावित होकर उन्हें सान्त्वना दिया करती थी। वाल्मीकि ने एक प्रक्षिप्त सर्ग में सरमा राक्षसी और कला नामक विभीषण की पुत्री का वर्णन सीता की हितैपिणी सखियों के रूप में किया गया है। स्वयंभू कृत पउम चरियं, हेमचन्द्र कृत योगशास्त्र तथा बंगला की कृत्तिवासरामायण में त्रिजटा एक गुप्तचरी के रूप में प्रस्तुत की गयी है, न कि सीता की हितैपिणी के रूप में। अधिकांश परवर्ती ग्रन्थों ने सीता की सखी के रूप में त्रिजटा को ही महत्व दिया गया है, सरमा तथा कला के नामों की चर्चा नहीं की गयी। इस प्रकार त्रिजटा का वास्तविक रूप सीता के हितैपिणी के रूप में ही सिद्ध होता है। मानस में तो उसमें भी रामभक्ति का प्रकाश दिखलाया गया है।

वाल्मीकि रामायण में रावण सीता को आकृष्ट करने के लिए अनेक बार माया का प्रयोग करता है। प्रथम तो वह मायानिर्मित राम का सिर दिखला कर सीता को भ्रमित करना चाहता है। द्वितीय बार शरपाशबद्ध राम लक्ष्मण को मुमूर्षु के रूप में

दिखलाता है और तृतीय वार इन्द्रजित द्वारा माया सीता का उच्छेदन दिखला कर रामादिकों को ही भ्रान्त बनाना चाहता है। परवर्ती साहित्य में उत्तरोत्तर इन छलो को छिपाया गया है। तमिल के कम्ब रामायण मे एक मायानिर्मित जनक की भी कल्पना की गयी है, जो सीता को रावण के पक्ष मे लाने का प्रयास करता है। भक्ति-साहित्य में रामचरित मानस तक आते-आते उक्त छलों का प्रदर्शन समाप्त कर दिया गया है। इसका एकमात्र कारण यह प्रतीत होता है कि भक्तकवि भगवती सीता को अधिक कष्टप्रद दशा में चित्रित करना अनुचित समझते रहे होगे।

श्री सीता के विषय में जो कथानक सर्वाधिक विवादग्रस्त है, वह है सीता की अग्निपरीक्षा। वाल्मीकि रामायण (युद्ध० १४४, १२० सर्ग) में सीता की अग्नि-परीक्षा का उल्लेख मिलता है। अनेक विद्वान इस उल्लेख को प्रक्षिप्त मानते है। महाभारत के रामोपाख्यान में भी अग्निपरीक्षा का उल्लेख नही मिलता। हरिवंश, वायु, विष्णु, भागवत तथा नृसिह पुराण आदि ग्रन्थो मे भी अग्निपरीक्षा का उल्लेख नहीं किया गया। पउम चरियं, उत्तर पुराण तथा कथासरितसागर मे भी यह वृत्तान्त उपेक्षित रह गया है। सम्भवतः पुराणों में स्कन्ध पुराण ही वह प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें सीता की अग्निपरीक्षा का उल्लेख मिलता है। (ब्राह्म सं० अध्याय २२) इस पुराण का रचनाकाल ८वी शताब्दी माना जाता है। इसके पश्चात्वर्ती ग्रन्थों एवं विशेषतः साम्प्रदायिक ग्रन्थों में अग्निपरीक्षा का उल्लेख मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अग्निपरीक्षा की धारणा श्रीमद्भागवत के (६०० ई०) के पश्चात ही वद्धमूल हुई होगी। छायासीता एवं अग्निपरीक्षा का पारस्परिक सम्बन्ध भी इस निष्कर्ष को पुष्ट करता है।

अर्वाचीन साहित्य में शाक्तप्रभाव के कारण सीता जी सहस्रस्कन्ध रावण, शतशीर्ष रावण एवं लक्षशीर्ष रावण प्रभृति अनेक राक्षसों का वध करती हुई चित्रित की गई है। अद्भुत रामायण, वंगला रामायण, विलका रामायण, आनन्द रामायण तथा मराठी की भावार्थ रामायण में सीता के इसी शक्ति रूप के दर्शन होते है। हमारे विचार से १४वी शताब्दी के पश्चात् ही सीता के इस शक्ति रूप की प्रतिष्ठा हुई है। वैसे तो १२वी शताब्दी से सीता और काली की अभिन्नता का सकेत देवी भागवत से ही मिलने लगता है।

सीता-निर्वासन के कथानक में भी अनेकरूपता के दर्शन होते है। यद्यपि वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड मे इसका विस्तृत उल्लेख मिलता है, जिसमे लोकापवाद के साथ ही साथ सीता के वनदर्शन सम्बन्धी दोहद को भी कारण माना गया है, किन्तु इसमें प्रक्षेप की अनेक संभावनाये प्रतीत होती है। महाभारत, हरिवंश, वायु, विष्णु तथा नृसिंह पुराण मे भी सीता-निर्वासन का उल्लेख नहीं मिलता।

कालिदास लिखित रघुवंश महाकाव्य के १४वें सर्ग में सीतात्याग का प्राचीन उल्लेख मिलता है। भवभूतिकृत उत्तररामचरित, कुन्दमाला तथा दशावतार चरित प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों में सीता-निर्वासन का कथानक प्राप्त होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान वाल्मीकि रामायण के रचनाकाल तक अर्थात् ई० पू० द्वितीय शताब्दी तक सीता-निर्वासन का कथानक प्रसिद्ध हो चुका होगा। सीतात्याग के तीन कारणों का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है। वाल्मीकि, रघुवंश, उत्तर-रामचरित तथा कुन्दमाला में लोकापवाद को सीता-निर्वासन का कारण माना गया है। द्वितीय कारण रजक वृत्तान्त के रूप में मिलता है। कथासरितसागर, श्रीमद्-भागवत, जैमिनिअश्वमेध तथा पद्मपुराण प्रभृति ग्रन्थों मे इस कारण का उल्लेख मिलता है। तृतीय कारण सीता द्वारा रावण के चित्र का निर्माण करना है। इसका उल्लेख हेमचन्द्र कृत जैन रामायण, कृत्तिवास रामायण, रामायण सार, तथा आनन्द रामायण आदि ग्रन्थों में प्राप्त होता है। उपर्युक्त तीनों कारणों में से प्राचीनतम कारण लोकापवाद ही सिद्ध होता है। शेष दो कारण किसी मूल कारण से विकसित हुए प्रतीत होते हैं।

सीता के पुत्रों के विषय में भी अनेक मत मतान्तर हैं। वाल्मीकि के अनुसार कुश तथा लव, सीता के यमल पुत्र माने जाते हैं (उत्तर० ६६ सर्ग)। पउमचरियं, जैनरामायण एवं उत्तररामचरित में भी सीता के पुत्रों का उल्लेख है। किन्तु गुण-भद्रकृत उत्तर पुराण के अनुसार सीता जी के ८ पुत्र उत्पन्न हुये थे। कथासरित-सागर में लव का जन्म प्रथम और कुश का पश्चात् वर्णित है। इसे वाल्मीकि जी ने कुशों द्वारा निर्मित बताया था। लगभग ऐसा ही वर्णन आनन्द रामायण (५ । ४ । ६२, ६८) में भी प्राप्त होता है। इस प्रकार सीता के यमल पुत्रों की विकासपरम्परा इस रूप तक व्याप्त है।

सीता निर्याण के सम्बन्ध में भी अनेक ग्रन्थों में विभिन्नता के दर्शन होते हैं। महाभारत, हरिवंश, वायु, एवं विष्णु पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में रामकथा सुखान्त है। राम के राज्याभिषेक पर्यन्त कथावस्तु ही इन ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय है। वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड तक कथावस्तु सुखान्त ही है, किन्तु उत्तरकाण्ड में क्षेपक रचना के कारण सीता के भूमि-प्रवेश का कथानक वर्णित है। रघुवंश महा-काव्य एवं अध्यात्मरामायण में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है। श्रीमद्भागवत, गोविन्द रामायण, भावार्थ रामायण तथा विचित्र रामायण प्रभृति ग्रन्थों मे सीता के पाताल-प्रवेश का वर्णन सामान्य परिवर्तनों के साथ प्राप्त होता है। परवर्ती अनेक ग्रन्थों में सीता के निर्याण का उल्लेख नही मिलता, केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि सीता जी लव-कुश युद्ध के समय राम के साथ अयोध्या लौट आई थीं। उत्तरराम-

चरित, बृहत्कथामंजरी, कुन्दमाला एवं जैमिनिअश्वमेध आदि ग्रन्थों मे ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है।

इस प्रकार भारतीय वाङ्मय में सीता से सम्बद्ध जितने ग्रन्थ प्राप्त है, उनमे सीता एक आदर्श पतिव्रता नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। यह बात दूसरी है कि किसी ग्रन्थ में वे मानवी हैं, किसी ग्रन्थ में लक्ष्मी, किसी ग्रन्थ मे योगमाया और किसी ग्रन्थ में आद्याशक्ति के रूप में वर्णित है।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

(क) संस्कृत ग्रन्थ

१. अथर्ववेद सं० श्रीराम शर्मा आचार्य (मथुरा)
२. अद्भुत रामायण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
३. अनर्घराघव (नाटक)
४. अभिषेक नाटक (भास) चौखम्बा सं० सी०, वाराणसी
५. अभिज्ञान शाकुन्तलम् (कालिदास) सं० सी०, वाराणसी
६. अमरकोश, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
७. अध्यात्म रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर
८. अहिर्बुध्न्य संहिता, वेंक० प्रेस, बम्बई
९. आग्निवेश्य गृह्यसूत्र, वेंक० प्रेस, बम्बई
१०. आनन्द रामायण, वेंक० प्रेस, बम्बई
११. उत्तर पुराण (गुणभद्र) वेंक० प्रेस, बम्बई
१२. उत्तररामचरित नाटक (भवभूति), चौ० सं० सी०, वाराणसी
१३. उदार राघव (साकल्य मल्ल), चौ० सं० सी०, वाराणसी
१४. ऋग्वेदसंहिता, सं० श्रीराम शर्मा आचार्य (मथुरा)
१५. कथासरित्सागर, वेंक० प्रेस, बम्बई
१६. काठक गृह्यसूत्र, वेंक० प्रेस, बम्बई
१७. काठक संहिता, वेंक० प्रेस, बम्बई
१८. कालिका पुराण, वेंक० प्रेस, बम्बई
१९. कूर्म पुराण, वेंक० प्रेस, बम्बई
२०. कुलार्णवतन्त्र, वेंक० प्रेस, बम्बई
२१. कुन्दमाला (डिङ्नाग) वेंक० प्रेस, बम्बई
२२. गरुड़ पुराण, वेंक० प्रेस, बम्बई
२३. गोभिल सूत्र, वेंक० प्रेस, बम्बई
२४. चम्पू रामायण (भोजराज), वेंक० प्रेस, बम्बई
२५. चाणक्य नीति (विष्णुगुप्त), चौ० सं० सी० वाराणसी

२६. जयाख्य संहिता, वेंक० प्रेस, बम्बई
२७. जानकी परिणय, वेंक० प्रेस, बम्बई
२८. जानकी हरण (कुमारदास), वेंक० प्रेस, बम्बई
२९. तत्वसंग्रह रामायण, वेंक० प्रेस, बम्बई
३०. तैत्तिरीय आरण्यक, वेंक० प्रेस, बम्बई
३१. तैत्तिरीय ब्राह्मण, वेंक० प्रेस, बम्बई
३२. तैत्तिरीय संहिता, वेंक० प्रेस, बम्बई
३३. देवी भागवत, वेंक० प्रेस, बम्बई
३४. धर्मखंड, वेंक० प्रेस, बम्बई
३५. धर्मसंहिता, वेंक० प्रेस, बम्बई
३६. नृसिंह पुराण, वेंक० प्रेस, बम्बई
३७. पंचतन्त्र, वेंक० प्रेस, बम्बई
३८. प्रतिमा नाटक (भास) चौ० सं० सी० वाराणसी
३९. पद्म पुराण ''
४०. प्रसन्नराघव (जयदेव) ''
४१. पातंजलयोगसूत्र (पतंजलि) ''
४२. पारस्कर गृह्यसूत्र ''
४३. पाणिनीय अष्टाध्यायी ''
४४. बोधायन गृह्यसूत्र ''
४५. महावीरचरित (नाटक) ''
४६. महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर
४७. महाभागवत ''
४८. मन्त्र रामायण (नीलकठ), वेंक० प्रेस, बम्बई
४९. मैत्रायणी संहिता, वेंक० प्रेस, बम्बई
५०. मार्कण्डेय पुराण, वेंक० प्रेस, बम्बई
५१. यजुर्वेद संहिता (मथुरा)
५२. रघुवश (कालिदास) चौ० सं० सी०, वाराणसी
५३. रामपूर्वतापन्युपनिषद् (मथुरा)
५४. रामचरित (अभिनन्द) चौ० सं० सी०, वाराणसी
५५. रामलिंगामृत (अयोध्या)
५६. रामायण मजरी (क्षेमेन्द्र) चौ० सं० सी०, वाराणसी
५७ रावणवध (भट्टि) चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी

५८. ब्रह्म रामायण, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
५६. ब्रह्म पुराण, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
६०. ब्रह्माण्ड पुराण, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
६१. बृहत्कथा मंजरी, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
६२. विश्वप्रकाश कोश, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
६३. वायु पुराण, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
६४. वामन पुराण, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
६५. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
६६. बाल्मीकि रामायण, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
६७. बाल रामायण, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
६८. विष्णु पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर
६६. वैय्याकरण सिद्धान्त कौमुदी (भट्टोजिदीक्षित), वेंक० प्रेस, बम्बई
७०. वैष्णव मताब्ज भास्कर (रामानन्द), वेंक० प्रेस, बम्बई
७१. शांकरभाष्य (शंकराचार्य), वेंक० प्रेस, बम्बई
७२. शिव पुराण, चौ० सं० सी०, वाराणसी
७३. शक्ति संगम ''
७४. शतपथ ब्राह्मण ''
७५. श्वेताश्वतर उपनिषद् ''
७६. श्रीभाष्य (रामानुज) ''
७७. श्रीराम विजय (रूपनाथ) ''
७८. श्रीरामाभ्युदय (अग्रदाचरण) ''
७६. श्रीमद्भागवत, गीता प्रेस, गोरखपुर
८०. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
८१. श्रीसूक्त, चौ० सं० सी०, वाराणसी
८२. सामवेद संहिता (मथुरा)
८३. स्कन्द पुराण, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
८४. सीतोपनिषद् (मथुरा)
८५. सीता स्वयम्वर (हरिकृष्ण भट्ट)
८६. हनुमन्नाटक चौ० सं० सी०, वाराणसी तथा वेंक० प्रेस बम्बई
८७. हनुमत्संहिता, चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी
८८. हरिवंश पुराण

(ख) हिन्दी ग्रन्थ

१. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, डॉ० दीनदयाल गुप्त
२. अपरा (सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला)
३. गोविन्द रामायण (गुरु गोविन्द सिह)
४. गुजराती साहित्य का इतिहास, जयकृष्ण दवे
५. चतुर्दशभाषा निबन्धावली, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना)
६. जैन साहित्य और इतिहास, नाथूराम प्रेमी (१९४२)
७. कामायनी (जयशंकर प्रसाद)
८. तुलसी ग्रन्थावली (भाग १) ना० प्र० सभा, काशी।
९. ध्यानमंजरी (अग्रदास)
१०. तेलुगु साहित्य का इतिहास (बालशौरि रेड्डी)
११. भजन रत्नावली (रामनारायण दास)
१२. भोजपुरी लोकगीत में करुणरस (दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह) हि०सा०स०, प्रयाग
१३. भोजपुरी लोकगीत (डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय)
१४. भागवत सम्प्रदाय (पं० बलदेव उपाध्याय)
१५. भाषा वाल्मीकि रामायण (विष्णुदास)
१६. मैथिली कल्याण (हस्तिमल्ल)
१७. मैथिली लोकगीत (श्री रामइकबाल सिह)
१८. मलयालम साहित्य का इतिहास (डॉ० के भास्करन् नायर)
१९. यशोधरा (मैथिलीशरण गुप्त)
२०. रइधू साहित्य का आलोचनात्मक अनुशीलन (डॉ० राजाराम जैन)
२१. रामचरित मानस (तुलसीदास) गीता प्रेस, गोरखपुर
२२. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय (डॉ० भगवती प्रसाद सिह)
२३. रामकथा (डॉ० कामिल बुल्के)
२४. रामभक्ति शास्त्र (डॉ० रामनिरजन पाण्डेय)
२५. रामभक्ति साहित्य में मधुरोपासना (भुवनेश्वर मिश्र, माधव)
२६. रामचन्द्रिका (केशवदास)
२७. रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव (डॉ० बदरी नारायण श्रीवास्तव)
२८. राम चरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन (डॉ० शिवकुमार शुक्ल)
२९. लोकायतन (सुमित्रानन्दन पन्त)
३०. वैदेही वनवास (अयोध्यासिह उपाध्याय)

३१. वैदेही (आचार्य युगल किशोर अवस्थी, युगलेण) अप्रकाशित
३२. श्री राधा का क्रम विकास (पं० वलदेव उपाध्याय)
३३. श्री सीताराम शृंगार रस (महाराजदास)
३४. साम माधुरी (अप्रकाशित) डॉ० कृष्णदत्त अवस्थी
३५. संस्कृत साहित्य का इतिहास (प० वलदेव उपाध्याय)
३६. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा (प० चन्द्रशेखर पाण्डेय)
३७. सस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ (डॉ० जयकिशन प्रसाद)
३८. संस्कृति के चार अध्याय (रामधारी सिंह दिनकर)
३९. संशय की एक रात (नरेश मेहता)
४०. सिद्धराज (मैथिलीशरण गुप्त)
४१ सूर सागर (ना० प्र० सभा, काशी) पं० नन्ददुलारे वाजपेई
४२. साकेत (मैथिलीशरण गुप्त)
४३. हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल)
४४. हिन्दी साहित्य (डॉ० माताप्रसाद गुप्त)
४५. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त)

(ग) अंग्रेजी ग्रन्थ

१. अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट (एच० चौधरी)
२. इन्ट्रोडेक्शन टू दि पंचरात्र एण्ड अहिर्बुध्न्य (एच० श्रादर)
३. दस रामायण (एच० याकोवी)
४. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया (हापकिंस)
५. लैंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया (डॉ० ग्रियर्सन)
६. मेम्वयार वर्लिन एकाडेमी (ए० वेवर)
७ हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्० (विटर नित्स)
८. पुराणिक रेकार्ड्स (आर० सी० हाजरा)
९. संस्कृत लिट्रेचर (ए० ए० मेकडोनल)
१०. दि रिडिल आफ दि रामायण (सी० वी० वैद्य)
११. वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म (आर० सी० भण्डारकर)

(घ) प्रान्तीय भाषा ग्रन्थ

१. कृत्तिवास रामायण (वंगला) लखनऊ (देवनगरी लिपि मे प्रकाशित)
२. कंब रामायण (तमिल) हिन्दी अनुवाद (विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना)
३. चिन्ताविष्टयाय सीता (मलयालम)

४. तौरवे रामायण (कन्नड़)
५. भावार्थ रामायण (मराठी)
६. मैथिली रामचरितमानस (मैथिली)
७. रंगनाथ रामायण (तेलुगु) गौनवुद्धारेड्डी (हिन्दी अनु०) (रा० प्र० परि० पटना)
८. रामायण (असमीया) (माधवदेव कंदली)
९. रामायण (उड़िया) (वलरामदास)

(ङ) विविध

१. मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ
२. जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी १९१५
३. नागरी प्रचारिणी पत्रिका स० २०२३
४. कल्याण (उपासना विशेषांक)
५. पउम चरियं (प्राकृत) विमलसूरि
६. उत्तर पुराण (अपभ्रंश) पुष्पदन्त
७. वलभद्र पुराण (अपभ्रंश) रइघू (अप्रकाशित)
८. खुद्दक निकाय (पाली)